हमारा मार्ग-क्रमण।

करुणावलय भगवान् की कृपाकटाक्षता के कारण आज हमें पुनर्वार उस मंगलमय, परमस्फूर्तिदायक, शुभदिन के स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसके भरोसे हम भविष्य में अपने देश की तथा देश भाइयों की टूटी फूटी सेवा करने की आशा करते हैं। जिस मंगलमय, मनोरथपूरक, विश्वेश्वर की प्रेरणा से हम, अनधिकारी होने पर भी, कार्यक्षेत्र में कूद पड़े, जिसकी असीम दयादृष्टि से हम तुच्छातितुच्छ रँगरूट होते हुए भी अपने कार्य में यथावत् नहीं तो कम से कम कुछ सफलता पा सके तथा जिसने हमें कर्तव्यसागर में ढकेलकर उस सागर की अकर्मण्यता की तलहटी में न पैठने देने के लिये हमारी बाँह गहकर हमें कर्तव्यसागर को पैर जाने की स्फूर्ति दिलाते रहे, उस परमपिता को शतशः बार धन्यवाद देकर, प्रणाम कर और भावी कार्यवाही में सफलता प्राप्त होने के अर्थ आशीर्वाद-भिक्षा मांगकर हम अपने प्रेमियों की गुणग्राहकता तथा उदारभावों के बदले भी कृतज्ञता प्रकट करना परमावश्यक कर्तव्य समझते हैं, जिन्होंने हमारी टूटी फूटी सेवा का सादर स्वीकार कर लिया है। हम अपने उन परमपूज्य अनुभवी साहित्य-भक्त के भी अत्यन्त उपकृत हैं जिन्होंने हमारे गले में

आशीर्वाद रूपी माला पहिनाकर

हमें चिरभारित किया है। यदि सच कहा जाय तो हमारे भूतकाल की कार्यवाही में सफलता प्राप्त होने में मुख्यतः साहित्य प्रेमियों के आशीर्वाद ही कारणीभूत हुए हैं और हम कह सकते हैं कि उनकी गुणग्राहकता तथा हमारे कार्य की प्रशंसा रूपी उत्साहवर्धकता के भरोसे ही हम अपनी भावी कार्यवाही को चिरस्मरणीय करना चाहते हैं। हम अपने प्रेमियों से बार बार यही कहते आये हैं कि हमारी शक्तियां बहुत ही अल्प हैं और हमारी आकांक्षाएं बड़ी बड़ी हैं। ऐसी बेजोड़ दशा में हमारी सारी आकांक्षाएं एकदम पूरी हो जाना नितान्त असम्भवनीय है। तथापि हम विश्वास दिलाते हैं कि हम अपनी आकांक्षाओं को साध्य करने में यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं और इसका नमूना है

हमारी गतवर्ष की कार्यवाही

है। गत वर्ष हमने 'जगत' के द्वारा हिन्दी जगत की जो कुछ सेवा की है उसका पुनर्वार उल्लेख करना, अप्रत्यक्षरीति से, अपने प्रेमियों की रसिकता का दिग्दर्शन कराना है, पर हम वैसा नहीं करना चाहते। हमारे सभी प्रेमी सच्चे गुणग्राहक हैं, इस बात पर हमें दृढ़ विश्वास है तथापि अपने प्रेमियों से—हम जिन देवों के भक्त हैं, उनसे:—

आत्मनिवेदन

करना हम अपना परम कर्तव्य समझते हैं। कहा जा चुका है कि 'जगत' की कार्यवाही जगत-प्रेमियों के सन्मुख है। जगत ने नाना प्रकार से अपने प्रेमियों को रिझाया है। इसने 'आर्यधर्म के स्वरूप' का स्पष्टतया आर्यपुत्रों को बतलाने का; 'शिक्षा का आदर्श' सामने रखकर देश को शिक्षित बनाने का; तत्वज्ञानियों के 'तत्वज्ञान' को बताने का; 'समरकथन के सन्देश और दांव पेंच' प्रत्यक्षरूप से दिखाने का तथा कवि मयूरों के मनोहर काव्यालापों से पाठकों का मनोरंजन करने की चेष्टा है; ऐतिहासिक कथानकों से पाठकों को लाभ पहुँचाया है, प्राचीन हिन्दुओं की श्रेष्ठता बतलाई है, अपने भाइयों की 'दशा' दिखाने की चेष्टा की है तथा

गीता-रहस्य जैसे धार्मिक रहस्य समझाकर

धर्म की भित्ति पर ही राष्ट्र-भवन निर्माण करने की युक्ति बतलाई है। साथ ही धन्यवाद लेखकों के लेख तथा असंख्य चित्र रूपी व्यञ्जनों को परोस कर पाठकों को अघाया है और उक्त व्यंजनों के साथ ही साथ

आगरे की चर्परी दालमोंठ

रूपी 'स्यमन्तक्यामन्तकप्रकाश' का भी सवाद चखाया है। नाना विध व्यंजनों तथा आगरे की दाल मोंठ का सवाद चखाकर

दक्खन की चर्परी चटनी

रूपी विविध-विचारों को भी रसिक जनों के सन्मुख रखी है। पाठकों की तृप्ति हो जाने पर 'विश्वदूत' को ब्रिटिश विमानों का सारथ्य सौंपकर उन विमानों को 'विश्व-साहित्य' में भ्रमण कराते हुए

जर्मनों के दांत खट्टे करने की

पूर्ण रूप से चेष्टा की है। सारांश, गत वर्ष 'जगत्' ने जबरदस्त जंगल में जमघट जमानेवाले जबरदस्त जयेच्छुकों की जम जाने के पहिले ही जनता के हृदय में चिरस्मरणीय स्थान पा लिया है। हमारी कार्यवाही का पहिला ही दिन-हमारे कर्तव्य की पहिली ही सीढ़ी हम अपूर्व उत्साह के साथ लांघ गये, इसका हमें संतोष है। यद्यपि हम जैसे अबोध को अपनी सारी कर्तव्य सीढ़ियां लांघ जाना अत्यन्त कठिन कार्य है और विस्तृत कार्यक्षेत्र के देखते उससे विमुख होना सम्भवनीय सा प्रतीत होता है, तथापि हमारी भूतकाल की कार्यवाही तथा नये दिन के नये उत्साह ने हमारे नैराश्यान्धकार को नष्ट कर हममें नई चेतना, नई भावना तथा नई शक्ति का आविर्भाव किया है। जिससे हमने

आगामी वर्ष में नई २ और उपयुक्त सामग्री

को लेकर अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित होने का प्रण किया है। गत वर्ष हमने 'विश्वदूत' वा 'विश्वसाहित्य' 'महाराष्ट्र के हिन्दी कवि' जैसे गूढ़तर विषयों को लेकर 'जगत्-प्रेमियों' की सेवा की है। हमारे प्रेमी स्वयं ही सोच सकते हैं कि 'विश्वसाहित्य' जैसे गूढ़तर विषयों का लिखना तथा 'जगत्' के कार्य से फँसे रहने पर भी हिन्दी कवियों की खोज भाल करना कितना समय, कितना परिश्रम तथा कितने द्रव्य का काम था ? इस वर्ष में भी 'भारतीय रंगभूमि' 'सामयिक-साहित्य प्रवाह' 'साहित्य समालोचन' 'बड़ों से बातचीत' (Interview) 'कल्पतरु' 'अद्भुत जगत' आदि कई अनूठे विषयों से 'जगत्' को अलंकृत करने का विचार है। यदि हमारा उत्साह बना रहा और 'जगत प्रेमी' हमारी सेवा का गौरव करते रहे तो हम

सामयिक पत्रों के माथे का कलंक

मिटाने का आज ही प्रण करते हैं। कई अज्ञ लोग भ्रमवश यह कहा करते हैं कि हिन्दी संसार अभीतक गुणग्राहकता नहीं सीखा है, पर हमारा इस कथन पर विश्वास नहीं है। लोग गुणों की क़दर करना जानते हैं। अब तो केवल गुणियों की ही आवश्यकता है। हिन्दी पत्रों के संचालकों की शिकायत है कि हिन्दी पत्रों के ग्राहक नहीं बढ़ते, परन्तु हम सर्वांश में इससे सहमत नहीं हैं। वास्तव में देखा जाय तो अभीतक निरे हिन्दी पत्र यथावत् सम्पादित नहीं होते, जिससे जनता उन्हें पसन्द नहीं करती और वह व्यर्थ ही बदनाम होती है। पर, जनता को व्यर्थ ही बदनाम न कर हम उसे गुणों से अपना प्रेमी बनाने की चेष्टा करेंगे। सब से अन्तिम बात हमें

अपने दोषों के विषय में

कहनी है। हमें मालूम है कि हम में निरे दोष हैं। दोष किसमें नहीं होते, पर हम धीरे २ उन्हें दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। गत वर्ष हमसे कई भूलें भी हुई हैं, जिसके लिये हम अपने प्रेमियों से क्षमायाचन के लिये तैयार हैं। अन्तमें हम अपने प्रेमी बन्धुओं, हिन्दी साहित्य सेवियों, अनुभवी विद्वानों, सत्य समालोचकों तथा अपने सत्यशुभचिन्तकों से यही प्रार्थना करते हैं कि वे समय समय पर हमारे कार्य में यथायोग्य सहायता तथा योग्य परामर्श देने की कृपा करें। परमसहायक परमेश्वर से भी यही प्रार्थना है कि वे हमारे उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हों !

जीवनयात्रा।

(लेखक —श्रीस्वामी दयाल, हिमालय।)

दुग्ध-धारा-सरित्।

(१)

ह एक छोटा सा हरा भरा सुन्दर उद्यान था। वहां पर छोटी बड़ी आयु के पुरुष और स्त्रियां मंद मंद शीतल वायु का आनन्द लेती फिर रही थीं। प्रभात का सुन्दर समय था। रंग रंग के फूलों के सुहावने गुच्छों ने उद्यान स्थल को विचित्र गलीचा बना रखा था। ओस ने माणिक-हार बिछा दिये थे। शीतल और मंद वायु प्रसन्नता और प्रफुल्लता के शुभ संदेश देती फिर रही थी। स्त्रियों की गोद में छोटे छोटे बच्चे थे। मनुष्यों के झुंड के झुंड हाथ में हाथ दिये हंसते बोलते इधर उधर टहल रहे थे। शुभाशाओं ने उनके मुख अपूर्व छटामय कर रखे थे। हरा भरा उद्यान आंखों के आगे लहलहा रहा था। हृदय की उमंगों की निर्मलजल की धाराएं आशाक्षेत्र को हरा भरा कर रही थीं। दृष्टि के अंत और विचार की सीमा तक एक एक परिमाणु खिला हुआ और हरा भरा दिखाई देता था। मध्योद्यान में एक दुग्ध-नदी लहरें ले रही थी। वह क्या ही निश्चिन्त समय था! छोटे छोटे बच्चे भूख लगने के कारण नदी के तट पर आये, मुंह झुकाया और तृप्त हो गये! वह क्या ही अच्छी सम्पत्ति थी, जिसे हृदय से लगाने से संसार भर का दुख निवृत्त हो जाता था तथा चिन्ता और क्लेश मिट जाते थे। उस आनन्द के आगे सप्त-द्वीप का राज भी मात था। समय नरेश की यह आज्ञा थी कि प्रत्येक मनुष्य अतिथि-सेवा अपना धर्म समझे। यदि कोई उस सेवा से वञ्चित रह जाता तो अपने को अभागी समझता था। वह भूमि धन्य थी, जहांपर जो मनुष्य दीखता वह प्रसन्न और जो स्त्री दीखती वह प्रफुल्लित थी। स्त्रियों के झुंड के झुंड जिस समय अपने अपने बालकों को गोद में लेकर टहलने को निकलते थे, उस समय वृक्षों से आनन्द-शब्द गूंज उठते थे।

वे रक्षक और सेवक जो पथियों की सेवा के लिये नियत थे, कैसे अच्छे लोग थे कि शतवार बलिहार थे। पथियों को थोड़ी सांस लगी और व्याकुल हुए। उनके मस्तक उषःकाल के तारे की नाईं प्रकाशमान और उनके हृदय प्रकाश-सम्पत्ति से भरपूर थे। प्रेम का काजल उनके नेत्रों को सुसज्जित करता था और सेवाभाव के प्रकाश से उनके मुख चमक रहे थे। उनमें छल का नाम न था; कुटिलता का काम न था; निर्मल प्रेम था और शुद्ध सेवाभाव था। वे निजजीवन को तक न्योछावर करने को उद्यत् और अतिथि-सेवक थे तथा सुगमता पूर्वक कृतकार्यता के साथ अतिथिजनों की सेवा करते थे। यदि कोई पन्थी उनके सेवाकाल ही में सदा के लिये उनसे दूर हो जाता तो वे रोते और सिर पीटते थे। यहां एक बात को देखकर आश्चर्य हुआ। बहुत थोड़े पन्थी ऐसे देखे, जिन्होंने रक्षकों की रक्षा और सेवा को ध्यान में नहीं रखा। उनका उस सेवा से उत्तीर्ण होना तो असंभव था, परन्तु जब वह समय आता कि वे उनसे कुछ आशा करते तो पंथी आंख चुरा लेते, इन्द्रिय-विषय में लिप्त हो जाते, भ्रष्ट लोगों से मित्रता करते, अपने मित्रों से भेदभाव रखते और आप रक्षक बन कर पथियों की सेवा करते; परन्तु उस सेवा को भुला देते, जिसके कारण भगवान ने उन्हें उस योग्य बनाया। फिर भी वे पाई हुई दशा में प्रसन्न थे। वहां पर जिसको जो कुछ सुना, यही कहते सुना, "सेवा करना तुम्हारा धर्म है। न करो तो कोई दण्ड नहीं।" वे बहुत दूर तक पथियों के साथ जाते और जहां तक बनता, उन्हें नेत्रों को ओझल न होने देते तथा उनके प्रत्येक दुख में भागी बने रहते। उनमें कोई कोई ऐसे भी सुहृदयी थे, जो बुद्धिचक्षु पर परदा डाल लेते, संसारी-स्नेह को खो देते, अपने दुष्कर्मों का उदाहरण दिखाकर सत्यार्थ का नाश कर देते और पहले ही घाट में बिचारे पथियों की बाट मारने लग जाते थे।

बालशाला।

(२)

बालशाला नामक एक सुन्दर और रमणीय महल जीवन नगर खड़ा आकाश से बातें कर रहा था। नगर के चारों ओर चू गच्ची के पक्के मकान बने हुए थे। बालशाला के फाटक पर रंग रंग झंडे फहर रहे थे। दीवारों की गुलकारियां, गोल दरवाज़ों की चि कारी की फुलवारियां वसंतऋतु का आनन्द दे रही थीं। रंग के जड़े हुए रत्न जगमगा रहे थे। लोग सुखी और आनन्दित थे कोई कंगाल थे और न धनी। बाज़ार चौड़े और खुले हुए थे दूकानदार सुशील और नम्रभाववाले थे। वह अद्भुतस्थान था जहां चारों ओर आनन्द की नौबतें झड़ती थीं।

बालशाला में चारों ओर लंबे, चौड़े और पक्के कमरे बने हुए वह निश्चिन्तता का समय था, संतोष और चैन का राज था, धना का अपूर्व ठाठ था और स्व-राज का काल था। वे रक्षक विशेष क ही थे, जो पहले घाट में थे; परन्तु उनके प्रेम की मात्रा पहले से गई थी। वहांपर पथियों का सत्कार और गौरव दिनदिन बढ़ता जा था। वह भूमि धन्य थी जहां दुख दरिद्र पास तक नहीं फटकता सुहृदयता नानाप्रकार के रस व्यंजन उनके भोजनपात्र में परोस दे थी। वे बालक खेल कूद के भारीमूल्यवाले वस्त्र पहिने प्रसन्न और आनन्द का मुकुट सिर पर लगाये इधर उधर फिरते थे। वे व ही अच्छे दिन थे, जो फिर न फिरे और वह क्या ही अच्छा स्थ था, जो फिर देखने में न आया! वहांपर कुटिलता और दुष्टता भाव न था, छादनादि की चिन्ता न थी, धन और निर्धनता का ध्य न था और कुटिलता और निन्दा का नाम नहीं था। जिसकी आ श्यकता हुई, उसकी पूर्ति भी होगई और जो इच्छा हुई वही होगई। उनकी भोली भाली और प्यारी प्यारी बातों और सीधे स कामों पर न्यायाकाश से माणिक-वर्षा होती थी, निश्चिन्तता और संतोष का माली प्रसन्नता और आनन्द के फूल न्योछावर कर रहा था, प्रीत और प्रेम के हार गले में पड़ रहे थे, कृतकार्यता के रत्न खिड़कियों में चुने हुए थे और सुख और निश्चिन्तता की लता दीवारों पर चढ़ी हुई थीं। भाव यह कि उसका प्रत्येक भाग स्वर्गोद्यान बना हुआ था।

रक्षक भी कैसे अच्छे सेवक थे कि आज्ञा मिलते ही सेवा करने लिये उद्यत होजाते थे। वे ऐसे भाववेत्ता थे कि संकेत मात्र जीवन न्योछावर करने को उपस्थित हो जाते थे। प्रबन्ध भी इत अच्छा था कि बड़े बड़े योद्धा और राजा तक उन पथियों के आ नम्र थे। उस घाट का सम्पूर्ण समय निर्भयता और स्वतन्त्रता से व्यत हो गया। वहांपर आवश्यकता से पहले प्रत्येक वस्तु विद्यमान थी न किसी बात का खटका था, न किसी प्रकार का भय। न गौरव इच्छा थी और न धन की। वहांपर न तो दुर्भाव की ही सामग्री थी और न भ्रम की। जो मिला वही खा लिया। जहां निद्रा आ गई वहीं पड़ रहे चित्त में तर्क नहीं था और मन में भड़क नहीं थी। "क्या होगा" की चिन्ता नहीं थी और "क्या हो गया" का स्मरण नहीं था कोई बात मन के विरुद्ध हुई तो रो दिये। कोई अच्छी वस्तु आ गई तो हंस दिये; परन्तु हृदय में ग्रहण शक्ति थी। जो सुनते वही करते थे। यात्रा के फल का निर्भर यहीं पर था। यहां की थो सी भूल रसातल को पहुंचा देती थी।

युवोद्यान।

(३)

युवोद्यान की सीमा में प्रवेश करते ही हृदयकमल स्वयं खिल लगा। वायु के मंद मंद झोंके हृदय को प्रफुल्लित करने लगे। फूलों सौरभ और मस्त सुगंधि से दूर दूर तक वन उपवन महक रहे ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये, हृदय में उमंग और इच्छायें उत्पन्न होती ग पास पहुंच कर देखा तो एक सुन्दर उद्यान दूर तक बसा गया है

उसके दरवाज़े लगे हैं और चारों ओर दीवारें खड़ी हैं; परन्तु भीतर जाने के लिये किसी प्रकार की रोक टोक नहीं है। पग आगे को बढ़ाया। वह देश हरा भरा-फूला फला-दृष्टि में आया। उद्यान का प्रत्येक भाग स्वर्गभूमि सा बना हुआ था। रंग रंग के फूल खिल रहे थे। सुगंधियों ने वायु और वायु ने उद्यान को महँका रखा था। गुलाब की पखड़ियां बिछी हुई थीं। शीतल और मीठे जल की धारायें बह रही थीं। फलों से लदे हुए वृक्षों के झुंड के झुंड झूम झूम कर भूमि को चूम रहे थे। घमलों की पंक्तियां सज रही थीं। केले की छाया दूर तक फैली हुई थी। संगमरमर के कुण्ड बने थे। रंग रंग की मैनकायें तैर रही थीं। मध्योद्यान में एक बारहदरी थी। पटापटी के परदे पड़े हुए थे। मखमल की चादरें बिछी थीं। चन्द्रमुखी अप्सरायें सिर से पैर तक रत्नाभूषण में डूबी सुन्दर और अमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित इधर उधर टहल रही थीं।

पन्थी बालशाला की ओर से दौड़े चले आ रहे थे। वे युवोद्यान की सामग्री देख कर ऐसे लट्टू होते थे, मानो आयु भर वह सामग्री और प्रसन्नता उनका साथ नहीं छोड़ेगी। उस मनोहर भूमि की प्रत्येक वस्तु में कुछ ऐसी आकर्षणशक्ति थी, जिससे उनका चित्त स्वयं खींचा चला जाता था। यहांपर दो चार मूर्तियां ऐसी भी दीख पड़ीं, जिन्होंने इस बात का पता पा लिया कि यह मनोहारी दृश्य नाश-मान और अनित्य था।

विचार पूर्वक देखा तो वास्तव में यह सम्पूर्ण युवोद्यान एक जादू का यन्त्रालय देख पड़ा। गुलाब के पेड़ कांटों से पटे पड़े थे। चमेली के फूलों में मधुमक्खियां छुपी बैठी थीं। लताओं में सर्प और बिच्छू लिपटे थे। झिरनों का जल देखने में तो निर्मल परन्तु पीने में विष का गुण रखता था। चोर, गांठकतरे और उठाईगिरे नेत्रों के आगे फिर रहे थे और अपनी विद्या में ऐसे निपुण थे कि कैसा ही चतुर मनुष्य क्यों न हो, उसे अपनी बातों में फंसा लेते थे। जिसको देखा, विषय के अमल में मस्त और उन्मत्त था। दीवारों पर नाना तरह के चित्र और मूर्तियां लग रही थीं; परन्तु प्रत्येक मूर्ति एक फांस थी। थोड़ा आंख उठाकर देखा और गले का हार हो गई। यहां पर जो वस्तु थी, देखने में कुछ और बरतने में कुछ और ही थी। वायु के मंद मंद झोंकों तक में विष मिला हुआ था। थोड़ी वायु का झोंका लगा और पन्थी लोट पोट हो गया। उद्यान के उस ओर एक भयानक वन था। ढाक का जंगल कोसों दूर चला गया था। यहांपर केवल वनजन्तु बसे हुए थे। मांसाहारी जन्तुओं के भयानक शब्दों से, रात्रि को, सारा जंगल गूंज जाता था। बहुधा भेड़िये भीतर घुस आते थे। सिंहों के मुंह में लोहू लगा था। चीते हर समय ताक में रहते और जंगली हाथियों के झुंड इधर से उधर निकल जाते थे।

युवोद्यान के जल में यह विशेष गुण था कि पन्थी अपने वस्तुतः रूप को भूल जाता था। उसे मोह और लोभ घेर लेते थे, दुर्वासनायें और कामनायें चारों ओर नाचती थीं, चिड़चिड़ापन आ जाता था, नेत्रों पर मोह और अहंकार के परदे पड़ जाते थे, सुन्दरता और प्रेम की मूर्तियां मन को हर लेती थीं, अधिकारवृद्धता और अत्याचार की आदतें आ जाती थीं, ईश्वर भय उड़ जाता था, एक ओर स्वार्थ का जाल बिछा हुआ था और दूसरी ओर सम्बन्धियों के बन्धन थे। आप यह कि आदि से अंत तक युवोद्यान और बारहदरी एक [illegible] था, जहां पन्थी को डाला और दूसरी ओर फेंक दिया। दुःखी [illegible] हाथों में हथकड़ियां और पैरों में बेड़ियां जकड़े और कसे हुए [illegible] बाहर निकलते थे। उनके पास भूतकाल की स्मृति, दो चार [illegible] के टोके, इस लोक परलोक के [illegible] और पापों की भारी गठरी सिर पर होती थी। वे मुड़ मुड़ कर पीछे की ओर को देखते जाते थे, परन्तु जो पग उठता था वह पलट नहीं सकता था।

वे लोग अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ियां मारते थे। यदि वे [illegible] युवोद्यान की [illegible] से देखते और विचारते [illegible] इसके सुधार के लिये [illegible]। यहांपर [illegible] खड़े हुए [illegible] रहे हैं। दुःखी चिल्ला रहे हैं। [illegible] आंसुओं और हड्डियों से [illegible] रहे थे। कोई [illegible] के वियोग से व्याकुल [illegible] कोई किसी के दुख से दुःखी। किसी की [illegible] दूर नहीं [illegible]। किसी का [illegible] था। [illegible] था। कोई [illegible] था। कोई [illegible] था। कहीं [illegible] और कहीं [illegible] और कहीं [illegible] था।

[illegible]

और स्त्रियां दुःखी थीं। बड़े बड़े महल मेड़ियां ऊजड़ पड़ी थीं। पक्के और सुन्दर मकान शून्यवत् खड़े थे। बसनेवाले अनन्त थे, पर सब अपने २ दुख से दुःखी थे। उनमें बहुत से ऐसे भी थे, जिनको भगवान ने धन सम्पत्ति से मालामाल कर रखा था। जिन्हें प्रभु कृपा साथ देती थी, वे सन्तानवान और निश्चिन्त थे; परन्तु विचार से देखा, तो दुख और क्लेश में बाल बाल जकड़े थे। दरिद्र और आलस्य की अंगुलियां उनके कानों में ठुसी हुई थीं और मोह तथा लोभ के परदे नेत्रों पर पड़े हुए थे।

जरासागर।

(४)

युवोद्यान के उस भाग में जीवन नगर से मिला हुआ जरासागर लहरें ले रहा था। लोग नाव में बैठ २ कर पार उतरने का यत्न कर रहे थे। लहरों के थपेड़े, जल के भँवर, पर्वतों की चट्टानें, उलट वायु के झोंके धारा के सामने भी कठिनता से आने देते थे। आलस्य और दरिद्र के केवट, जब किसी कठिनाई का सामना होता तो हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाते थे। पन्थियों की आंखों पर मोह के ऐसे परदे पड़े हुए थे कि साथ की नौकायें डूबती चली जाती थीं, पर उन्हें भूलकर भी अपने डूबने या नाश का ध्यान नहीं आता था। वे अमरजीवन का तकिया लगाये हुए इच्छाओं और आशाओं की मीठी और सुरीली तानें सुनते चले जाते थे। उनकी यात्रा के समाप्त होने का कोई विशेष समय नियत नहीं था। जीवन की सम्पूर्ण सामग्री नाव में भरी हुई थी और संसार भर के कार्य्य और व्यवहार जल ही में होते थे। दूरदर्शिता पास तक नहीं फटकती थी। अंत पर दृष्टि नहीं जमती थी। अहंकार का भीजा मस्तक में समाया हुआ था। धन की इच्छा प्रेम का हाथ सिर पर फेर रही थी। अनुचित भाव गोद में लोट रहे थे। अधर्म की घटा सिर पर छाई हुई थी। मान और बड़ाई के कुहरे ने कोसों तक अंध-कार कर रखा था। संसार की नाशमानता का बादल तुला हुआ सिर पर खड़ा था; परन्तु हठधर्मी और स्वमान की सुन्दर देवियां आंख उठाने का अवसर नहीं देती थीं। दुष्कर्मों के अजगर भाड़े उठ रहे थे। छल और कपट के घड़ियाल मुख खोले हुए बैठे थे। नाशा-धिकार के भँवर जगह २ पर पड़ रहे थे; परन्तु ये आशा के बंधे हुए जन्तु पुकार पुकार कर कहते थे कि हम जैसे कोई हैं ही नहीं।

पापों और दोषों के ऊंचे ऊंचे पर्वत खड़े थे। दिशायन्त्र और दूरद-र्शक यन्त्र कुछ काम नहीं देते थे। पाप की नाव टक्कर खाकर बीच मंझधार में ही डूबती थी। साथ की नौकाओं को डूबते देख कर भी पन्थी उस घटना को ध्यान में नहीं लाते और प्रत्येक यही समझता कि 'जो डूबा, वह उसी दण्ड के फल का अधिकारी था। मुझे कोई भय नहीं है।' वे दूसरी नौकाओं को डूबते देखकर हंसते थे और जब उनके ऊपर आन पड़ती, तो चिल्लाते थे और डूबते जाते थे।

जरा सागर में एक टापू दीख पड़ा। "उसका नाम था पश्चात्ताप द्वीप।" यहांपर कुछ सज्जन पुरुष फूस की झोंपड़ियां लगाये हुए सिर झुकाये बैठे थे। उनकी श्वेत डाढ़ियां उनके मुख पर तेज बर-साती थीं। गौरव की बड़ी बड़ी पगड़ियां उनके सिर पर बंधी हुई थीं, पर झगड़ालू भायों के छींटे पड़े हुए थे और माथे पर कलंक का टीका चमक रहा था। भूतकर्म का शोक और दुष्कर्म तथा संस्कारों की चंचलता के दुख चारों ओर से घेरे हुए थे। वे सिर से पैर तक लज्जासागर में डूबे हुए थे। उनकी आकाश की ओर दृष्टि थी और मुख से 'प्रभु प्रभु' ही शब्द निकलते थे। एक और समूह देखा। सब की इन्द्रियां बेकाम हो चुकी थीं। मुख से बात नहीं निकलती थी। मृत्यु सिर पर मँडरा रही थी। शोक और मोह दोनों ओर से [illegible] हुए रहे थे। [illegible] ने उनके [illegible] बिगाड़ दिये थे। संसार उनसे [illegible] था और वे संसार से [illegible] रहे थे।

एक स्त्रियों का समारोह देखा जिसमें कि नारी [illegible] स्त्रियां वृद्धावस्था में थीं, जब कि [illegible] होने को थी, [illegible] नहीं पाती थी। [illegible] और ईर्षा का काजल उनके नेत्रों में [illegible] हुआ था। [illegible] हुए, [illegible] का [illegible] हुए, [illegible] के [illegible] हुए, [illegible] और [illegible] का [illegible] बनाये हुए, [illegible] जीवन का [illegible] हुए, [illegible] और [illegible] की [illegible] नहीं थी। [illegible] देखा। वह नेत्रों से [illegible], हाथों से [illegible], [illegible] से [illegible],

मुख में दांत नहीं, पेट में आंत नहीं, श्वेत दाढ़ी रूपी बगुले का पंख लगाए एक वृद्ध तले पड़ा ब्याज के टोटे को रो रहा था।

उससे मिली हुई सीमा शून्यनगर की थी, जिसकी पक्की दीवार आकाश से बातें कर रही थी। उसकी ऊंचाई का कुछ पता नहीं था। पक्षी भी उसे पंख नहीं मार सकता था। उसके विस्तार और ऊंचाई की यह दशा थी कि भीतर का शब्द बाहर नहीं आता था। लोग पथियों को फाटक तक पहुंचा सकते थे। उसके आगे का कुछ भी वृत्तान्त नहीं जाना जा सकता था। भवन के फाटक पर एक पट्टी लगी हुई थी, जिसपर मोटे २ अक्षरों में लिखा था—

"वे लोग धन्य हैं जो अपनी जीवनयात्रा सद्धर्मपूर्वक व्यतीत करते हैं।"

दौलताबाद का किला।

पास से दिखाई देनेवाला किले का दृश्य।
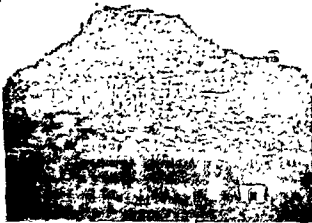
दूर से दिखाई देनेवाला किले का दृश्य।
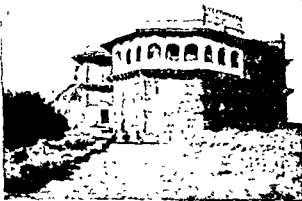
किले के पास का निजाम का महल।

जातीय विभक्तता।

जिनको अपने देश, भेष, भाषा से प्रीति नहिं
जिनके जीवन की कोई निर्दिष्ट नीति नहिं
जिनमें परता-शून्य परस्पर में प्रतीति नहिं
खान-पान-सम्मान-सुगम सम्मिलन-रीति नहिं
उनमें आत्मिक अनुरक्तता आ सकी क्योंकर कभी?
उनकी जातीय विभक्तता जा सकी क्योंकर कभी?

श्रीधर पाठक।

भावसागर।

थोड़ा भी हंसते देखा ज्यों ही मुझे,
त्यों ही शीघ्र रुलाने को उत्सुक हुए।
(क्यों ईर्षा है तुम्हें देख मेरी दशा?)
पूर्ण सृष्टि होने पर भी यह शून्यता—
अनुभव कर के हृदय व्यथित क्यों हो रहा?
क्या इसमें कारण है तेरी ही कमी?
और वस्तु से जब तक कुछ फिटकार हो,
मिलती नहीं हृदय को, तेरी ओर वह।
तब तक जाने को प्रस्तुत होता नहीं।
कुछ निजस्वता तुम पर होता मान है
गर्वस्फीत हृदय होता तब स्मरण में।
अहंकार से भरी हुई यह प्रार्थना
देख न शंकित होना, समझो ध्यान से
यह मेरे में तुम हो, साहस दे रहे।
लिखता हूं तुमको, फिर उसको देख के
स्वयं संकुचित होकर भेज नहीं सका।
क्या? अपूर्ण यह जानी भाषा, भाव भी
यथातथ्य प्रकटित हो सकने हो नहीं।
अहो अनिर्वचनीय भावसागर! सुनो
मेरी भी क्या लहरें क्या कह सकी हैं॥

जयशंकर 'प्रसाद'।

वीरबल ।

लेखक—विद्यारत्न श्रीजगन्नाथदास विशारद ।

राजा वीरबल की बादशाह अकबर से बुद्धिमत्तामूलक मित्रता तथा उसकी प्रदर्शिका लघुकथायें जितने देशान्तरों में भी प्रसिद्ध हुई हैं, उतनी प्रसिद्धि उनकी चरित्रावली तथा उनके अन्यान्य प्रसिद्ध गुणों ने नहीं प्राप्त की; अतएव उस विख्यात पुरुष का वंश, जन्मस्थान, नाम प्रभृति के सम्बन्ध में जो कुछ ऐतिहासिक अंश आजकल तिमिरावृत्त है, उसका प्रमाण द्वारा अपनयन कर उसे निरावृत्त (प्रकाशित) करने का यह यत्न है ।

अकबरीय नवरत्न ।

१ नवाब खानखाना, २ फ़ैज़ी, ३ अबुलफ़ज़ल, ४ हकीम महमान, ५ मुल्ला दोपियाज़, ६ राजा वीरबल, ७ राजा टोडरमल, ८ राजा मानसिंह, ९ त्रिलोचनमिश्र (तानसेन), ये अकबर के नवरत्न थे। उनमें से ४ हिन्दूरत्न थे और वीरबल नायक मणि थे।

इस विषय को एक प्राचीन श्लोक में भी बद्ध किया है। वह इस प्रकार है :

अकबर नरभूपस्तानसेन कलावान् ।
नरहरगुण पालं ब्रह्मदास कवीन्द्र ।
नयविनय गुणज्ञो टोडरश्चाभिमन्त्री ।
यवन पति सुराज्ये पंचरत्नं नरेन्द्रा ॥

राजा अकबर, कलावान् तानसेन, गुणी नरहर, कवीन्द्र ब्रह्मदास, मंत्री नयविनय गुणों का ज्ञाता टोडर ये पांच रत्न यवनपति के राज्य में थे।

एक हिन्दी कवि ने निम्न रत्नचतुष्टय ही बतलाये हैं:—

शाहा हद अकब्बरा, टोडरमल वजीर ।
तान हद तानसेन, बुद्धि हद वरबीर ॥

वीरबल नाम की उत्पत्ति ।

वीरबल नाम अकबर के दिए हुए एक सम्मान-पद की संज्ञा है। उनका वास्तविक नाम तो ' ब्रह्मदास ' था। अतएव उन्होंने अपनी कविता में अपना नाम ' कवि ब्रह्म ' या केवल ' ब्रह्म ' ही रखा है। अकबर के दरबार में प्रविष्ट हो जाने के अनन्तर उन्हें दो उपाधियां मिली थीं। पहिली ' कविराय ' और दूसरी ' वीरबल '।

अकबर के राज्यकाल में अनेक अधिकारी अपने नाम को मानपद संज्ञा से ही व्यवहृत करते थे। स्वयं अकबर का नाम " जलालुद्दीन मोहम्मद " था और ' अकबर ' उसका सम्मानपद था, किन्तु सम्मानपद के नाम से ही वह विख्यात हुआ है। इसी प्रकार मुख्य प्रधान का नाम ' अबदुल रहीम ' था। उसको ' खानखाना ' की उपाधि मिली थी, अतः वह भी ' खानखाना ' के नाम से ही विख्यात हुआ है और इतिहासों में भी उसका वही नाम लिखा गया है, परन्तु उसने अपनी कविता में अपना नाम ' रहीम ' रखा है। प्रख्यात गवैया ' तानसेन ' का वास्तविक नाम त्रिलोचन मिश्र था, परन्तु उसको ' त्रिलोचन मिश्र ' नहीं वरन अकबरप्रदत्त ' तानसेन ' के नाम से कहते हैं। उसी प्रकार हमारे चरित्र नायक 'ब्रह्मदास' नाम से अज्ञातप्राय होकर अकबर प्रदत्त ' वीरवर ' उपाधि से विख्यात हुए। इसका परिचायक संस्कृत का ' प्रक्रिया कौमुदी टीका प्रकाश ' नामक ग्रन्थ है। उसमें तथा अन्य प्रस्फुट श्लोकों में भी उनका वही नाम लिखा गया है।

कवि केशवदास, कवि भूषण आदि प्राचीन हिन्दी कवि तथा राजकृष्ण आदि संस्कृत कवियों ने भी वही नाम लिखा है और अबदुल फजल, बदौनी आदि फारसी के लेखकों ने सर्वत्र वीरबल नाम ही लिखा है।

वास्तव में अकबर ने उन्हें ' वीरवर ' की उपाधि प्रदानित की थी, पर पीछे से उनका नाम " वीरबल " प्रचलित हो गया है।

कितने ही ग्रन्थों में उनके नाम महेशदास, महीदास, शिवदास आदि लिखे हैं, पर वे सभी अप्रामाणिक हैं।

वीरबल के वंशादि ।

तत्सम्बन्धी साहित्य—आईने-अकबरी जैसे प्रमुख मुसलमान इतिहासों में उनके सम्बन्ध में कुछ विशेष उपलब्धि नहीं होती; क्योंकि अकबर की कीर्ति की विस्तृति और राज्य-प्रसंग ही उनके लेखकों के लक्ष्य का बिन्दु था। इसीसे वे " वीरबल " के विषय में कृपण थे और उन्होंने जहां तहां कुछ लिखा भी है तो वह अशुद्धसा प्रतीत होता है।

वीरबल के परममित्र और आश्रयदाता बादशाह अकबर ।

इस से बीरबल के पिता का नाम ' गंगादास ' तथा माता का ' अनभा ' सिद्ध होता है।

बीरबल का पुत्र कल्याण भी अपने पिता के ही अनुरूप था। कल्याण के विषय में उसके व्याकरण गुरु शेषकृष्ण ने लिखा है:—

> यस्यापांग तरंगिते गुरुमयी, वक्षे च वाह्नतुरी।
> कण्ठे चापि सरस्वती, हृदि हरेर्भक्तिश्च, शक्तिर्भुजे॥
> आस्ते पाणितले सदा वितरण धीः, पादमप्रेतूप—
> श्रेणी मौलि मणिप्रभा, बतकथं क्षिणः कुमारो, यशाः॥

दूसरा पुत्र लाल—आइने अकबरी में बीरबल के ज्येष्ठ पुत्र का नाम ' लाल ' कहकर उसकी २०४ पदवीधरों में गणना की है। बदौनी ने लिखा है कि वह उड़ाऊ था। उसने सब द्रव्य कुमार्ग में खो दिया था और नौकरी में वृद्धि न होने के कारण अन्तमें इस्तीफा देकर फकीर हो गया (हि० १००६)

बीरबल का राजकीय चरित।

ऐतिहासिक साहित्य—बीरबल के इस भाग के मुख्य प्रकाशन में तत्समकालीन मुसलमानों के ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। उनमें अब्दुल-फ़जल कृत अकबर नामा जिसका ' आइने अकबरी ' तृतीय तथा अन्तिम भाग है—में बीरबल के सम्बन्ध में मुख्यतः केवल नगरकोट युद्धप्रसंग और यूसुफ़ज़ई युद्ध प्रसंग के समाचार हैं। बदौनीकृत ' मुंतखिब-उल-तवारीख ' में एक दो तुच्छ प्रसंग और बीरबल के कुछ धर्म विचारों के विषय में उल्लेख किया गया है; परन्तु उक्त ग्रन्थ का कर्ता ' चुस्त-कदर मुसलमान ' होने के कारण अकबर को मुसलमान धर्म से विमुख करनेवालों में बीरबल को प्रधान मानकर जहां तहां बीरबल को अयोग्य विशेषण दिये हैं। शेखनुरुलहक कृत ' जबदस्तुन तवारीख ' और निजामुद्दीन अकबर कृत ' तबक़ात-अकबरी ' भी है। इनके सिवाय मआसिर-उल-अमरा आदि भी कई ग्रन्थ हैं, पर वे विशेष अर्वाचीन समझे जाते हैं।

बीरबल का अकबर के साथ प्रथम समागम—ऊपर कहचुके हैं कि बीरबल वंशपरम्परा से राजा और समृद्धिवान् था। अकबर के समागम के पूर्व भी कविरूप से उसकी कीर्ति फैल रही थी। इस से सम्भव है, अकबर का ज़ोर बढ़ते बढ़ते जिसप्रकार अन्यान्य बड़े बड़े राजा अकबर के पक्ष में होगये थे, उसी प्रकार बीरबल भी उसी के पक्ष में हो गया हो।

बदौनी ने एक प्रसंग पर लिखा है कि बीरबल पहले राजा रामचंद्र का सेवक था, पर वह सेवकता सहायकता के अर्थ को प्रतीत होती है।

एक दूसरा [illegible]सवेत्ता राजा मानसिंह का बीरबल को अकबर के समीप ले [illegible]तलाता है, पर वास्तव में बात क्या है, इस का कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। अनेक दन्तकथाएं ही इसके विषय में प्रचलित हैं।

बीरबलकी बुद्धिमता—इसके विषय में एक यह दन्तकथा है कि एक समय बादशाह अकबर दिल्ली में किसी एक बहुरूपिये का तमाशा देख रहे थे। बहुरूपिये ने इस तरह से स्वरूप परिवर्तन किया कि बादशाह बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने अपना दुशाला उसे दे दिया। बीरबल उस समय बालक था। पाठशाला से लौटते समय मार्ग में उस तमाशे को देखकर कुछ देर के लिये वहां खड़ा रह गया। उसने बहुरूपिये के परिवर्तित शरीर पर, उसकी परीक्षा लेने के लिये, एक कंकड़ी फेंकी। उस समय उस बहुरूपिये ने उसी भाग को, जानवर के शरीर की भाँति, हिलाया। बीरबल उस सत्य-कलातत्व से अति प्रसन्न हुआ। इनाम देते समय उसके पास और तो कुछ नहीं था, केवल एक टोपी थी। उसे उतार कर उसने उस बहुरूपिये को इनाम दे दी। बहुरूपिया उससे अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस टोपी को बादशाह को बता कर कहने लगा, ' आजतक जितने इनाम मुझे मिले हैं; उन सब में मैं इसे प्रथम श्रेणी का इनाम समझता हूं; क्योंकि इसको देनेवाला यथार्थ गुणग्राहक और गुणज्ञ है। इससे अकबर ने बीरबर को अपने पास बुला लिया और उन्हें अपने यहां रख लिया।

अकबर की सभा में बीरबल की महत्ता—आइने अकबरी के ३० वें आइन में उनकी गणना दो हज़ारी पदवीवालों में की है। दो हज़ारी का अर्थ ..घुड़सवारों का सरदार किया जाता है। पर, बदौनी के [illegible] से ज्ञात होता है कि इस दुहज़ारी का दो हज़ार बीघे का इनामी अर्थ होता है।

बीरबल को प्राप्ति—उस समय नगरकोट में जयचन्द नामक राजा राज्य करता था। किसी कारण से अकबर का उसके साथ युद्ध हुआ। सन् १५२० ई० में वह फ़तह कर लिया गया और उसका राज्य बीरबर के लिये लिख दिया गया।

बदौनी ने तो बीरबर को जागीर देने के लिये ही अकबर के युद्ध करने का कारण बतलाया है। अस्तु।

इसी प्रकार बीरबल को ' गुनाहिंच-दानिशवर ' की पदवी भी मिली थी।

अकबर और बीरबल की मित्रता।

एक पक्ष में गुणवेत्ता और दूसरे में गुणग्राहकता से उत्पन्न होकर अकबर और बीरबल की मैत्री भोज और कालिदास की जुग जोड़ी की भांति अब भी देश देशान्तरों में प्रसिद्ध हो रही है।

मित्र रूप पारसमणि—कहा जाता है कि एक बार ईरान के बादशाह ने अकबर का सुख, शोभा, समृद्धि आदि देख कर अकबर से पूंछा कि क्या तुम्हारे पास कोई पारसमणि है? इसके उत्तर में अकबर ने बीरबर को हाथ में पकड़ कर, उन्हें दिखाकर, कहा—

> उद्यम से लछमी मिले, मिले द्रव्य से मान।
> दुर्लभ पारस जगत् में, मिलनो मीत सुजान॥

मैत्री के प्रत्यक्ष चिन्ह—अकबर को बीरबर इतने प्यारे थे कि वे क्षण भर के लिये भी बीरबल का वियोग नहीं सह सकते थे। जिस समय फतहपुर सीकरी बसाई गई, उस समय अकबर ने अपनी इच्छा से ही अपनी परमप्रिय और मुख्य रानी सुलताना बेगम के महल के पास ही बीरबल-भवन बनाया। यह भवन सन् १५२१ में पूर्ण हुआ था। उसकी भव्यता के विषय में मि० एच० जी० कीन सी० आई० ई० ने बहुत कुछ लिखा है। यद्यपि अन्तःपुर में इस भवन के बनने के कई कारण बतलाये जाते हैं, पर ये सब कल्पना प्रसूत हैं। अकबर ने अपने स्नेह को प्रकट करने के लिये ही बीरबल का भवन अन्तःपुर में बनवाया था; अतएव मुख्यतः उक्त कारण ही उसे भवन के निर्माण का प्रतीत होता है।

अकबर के नवरत्न नामक चित्र में भी क्रम का भंग कर अकबर के सामने ही सब से प्रथम बीरबल बिठलाये गये हैं।

अकबर जिस समय अपने अल्प परिवार के साथ अहमदाबाद गये थे। उस समय भी बीरबर को साथ रहने की उन्होंने आज्ञा दी थी।

इसके अतिरिक्त अकबर की प्रकट-मित्रता का चिन्हस्वरूप एक ग्राम दोनों के संयुक्त नाम से " अकबर बीरबलपुर " नामक बसाया गया, जो कानपुर ज़िले में विद्यमान है। बीरबल वहांपर भी कभी कभी रहा करते थे। अब भी उनके रहने के भव्य-भवन वहां विद्यमान हैं। वह तिकवापुर से लगभग २ मील उत्तर में है।

एक और उदाहरण से भी इस बात की पुष्टि होती है। ' शिवा बावनी ' का लेखक कवि भूषण त्रिपाठी स्वकृत ' शिवराज भूषण ' नामक अलंकार ग्रन्थ में अपने वंश का वर्णन करता है:—

> बसति त्रिविक्रमपुर सदा तरनि तनूजा तीर।
> बीर बीरबल से जहां उपजे कवि अरु भूप।
> देव बिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वरतद्रूप॥

अब वह ग्राम ' तिकवांपुर ' के नाम से, अपभ्रंश रूप से, विख्यात है।

अन्तिम समागम या वियोग—कहा जाता है कि जब बीरबल युसुफज़ई युद्धप्रसंग में जाने को तैयार हो कर अकबर की आज्ञा से प्रस्थापित होने लगे, तब उनके घोड़े की रकाब को स्वयं अकबर ने थोड़ी देर-तक पकड़ कर सहगमन किया था। उस समय स्नेह से व्याकुल बीरबल के नेत्रों में से आँसू निकल पड़े और बादशाह से गद् गद् होकर बोले, " महाराज, बस, मैं अब इस लड़ाई में से जीता लौट कर नहीं आऊंगा, क्योंकि मेरी प्रतिष्ठा और मान की पराकाष्ठा आ गई है। "

यह भी कहा जाता है कि वचनवश बादशाह को, बीरबल को युद्ध पर जाने की, आज्ञा देनी पड़ी, पर उस बात से बादशाह बड़ा दुखित हुआ। उसने आज्ञाप्रचारित की कि जो बीरबल के मरण का समाचार सुनावेगा, उसका शिरच्छेद किया जायेगा।

अकबर को बीरबल के मरण के प्रथम समाचार—उक्त आज्ञा के हो जाने से तथा बीरबल पर बादशाह का अप्रतिम प्रेम सर्वप्रसिद्ध होने से बीरबल के मरण के वृत्तान्त आ जाने पर भी बादशाह को उसका

समाचार सुनाने की किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ी। उस समय बादशाह का प्रवास आगरे में था और प्रवीणराय नायिक के साथ कवि केशवदास भी वहीं पर थे। कवि की कुशाग्रबुद्धि का परिचय राजसभा को भलीभाँति मिल चुका था। अतः सब सभ्यों ने केशव से उस दुखमय समाचार को बादशाह के कर्णगोचर कराने के लिये प्रार्थना की और केशव ने उसे स्वीकार कर लिया।

जब राजसभा में नियमानुसार सब सभ्य अपने आसनों पर शोकमुद्रा से बैठे थे और अब्दुल्फ़ज़ल आदि प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें किस प्रकार केशव कवि इस दुःसमाचार को सुनाते हैं। इतने में कवि केशवदास ने प्रवेश किया और बादशाह को आशीर्वाद देकर गंभीर स्वर से बोलेः—

याचक सब भूपति भये, रह्यो न कोई लेन।
इन्द्रहुको इच्छा भई, गयो बीरबल देन॥

अकबर स्वयं कवि होने से समझ गये कि मेरा प्रेमपात्र दूर गया है और वे बीरबल को इस संसार में कोटि उपायों से भी देख नहीं सकते। धीरवीर बादशाह मित्र के शोक को सहने के लिये असमर्थ हुए। अकबर के मन और चक्षु के आगे अन्धकार छा गया और उन्होंने तुरन्त दरबार बरख़ास्त कर दिया।

अकबर का शोक—अकबर ने तुरन्त शोकवस्त्र धारण किये। वे दो दिनों तक भोजन करना तक भूल गये। हठात् भी उनके गले के नीचे अन्न का प्रवेश न हो सका।

उस समय अकबर ने एक फरमान नवाब खानखाना के लिये निकाला कि हमारे सभारत्न बुद्धिमान् मंत्री राजा बीरबल इस असार संसार को छोड़कर चल बसे, अतएव हमारा आनन्द शीर्ण-विशीर्ण हो गया! शोक! संसार की मित्रता में विष भरा हुआ है। यह संसार धोखे की टट्टी है। सुख के पीछे दुःख और सम्पत्ति के पीछे विपत्ति लगी ही रहती है। इत्यादि अनेक करुणाजनक विषय, उस फरमान में, बादशाह ने लिखे थे।

कहा जाता है कि बादशाह ने बीरबल की मृत्यु के सम्बन्ध में अनेक मरसिया शोकोक्ति-कही थीं। उनमें सेः—

सब को सब कुछ दीन, एक हुए मो दुसहदुख।
सो अब हमको दीन, कुछ नहिं राख्यो बीरबल॥

पाठान्तर— सबको सब कुछ दीन, दुःख न काहूं को दियो।
सो अब हमको दीन, भली निबाही बीरबल!

बीरबल के अप्रतिम गुण

बीरबल में प्रतिभा, समयज्ञता, कलाज्ञता, चातुर्य, कवित्वयत्ता, धीरवरता और दानवीरता आदि अनेक गुण थे।

उन्होंने बीरता के सम्बन्ध में अनेक युद्धों में विजय पाया। इसीसे 'बीरवर' की उपाधि मिलना सर्व प्रसिद्ध है।

बीरबल का ज्ञान—बीरबल का संस्कृत-भाषा-ज्ञान ऊँचे दर्ज़े का था। उनकी कविता के शब्दार्थों से इसका प्रतिबिम्ब भलीभांति देख पड़ता है।

राजा बीरबल अपने पूर्वजों की भाँति विद्याप्रेमी, विद्वानों के गुणज्ञ और गुणानुरूप दाता भी थे। इस बात को प्र० कौ० में स्पष्ट दिखलाया है।

शश्वद् विद्वन्मण्डली परिवृतो विद्याविनोदं व्यधात्।

बीरबल की सभा का वर्णन कवि गंग ने इस प्रकार से किया हैः—

मालती शकुन्तलासी को है कामकन्दलासी,
हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरे।
ऐल फैल फिरत सवार खरा आसपास,
चौवन की चहल गुलाबन की गागरे॥
ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा बीरबल,
गंग कहै गूंगे रहे के रही है गिरा गरे।
मदि रह्यो मागधनि, गीत रह्यो ग्वालियर,
गोरा रह्यो गौरना अगर रह्यो आगरे॥

बीरबल की उत्तम कविता—बीरबल अपनी कविताओं में अपना नाम 'ब्रह्म कवि' रखते थे। उनकी कविताओं का संग्रह अभी किसी स्वतंत्र ग्रन्थ रूप में नहीं हुआ है। योंही इतस्ततः उपलब्ध होता है।

बीरबल की कविता पर प्रसन्न होकर बादशाह ने उनको 'कविराय' का पद दिया था। शेषकृष्ण ने भी उनकी कविता की बहुत प्रशंसा की है।

कविसूर्य श्रीसूरदासजी की प्रशंसा में एक दोहा है, उसमें भी लिखा है—

सुन्दर पद कवि गंग के
उपमा के 'बरबीर'।
केशव अरथ गँभीर को
सुर के तिगुणतीर॥

'ब्रह्मकवि' की कविता में प्रधानतः शृंगाररस और शान्तरस रहा करता था। शृंगार की कविता में तो 'उपमा का बरबीर' वाली उक्ति यथार्थ में चरितार्थ होती हैः—

अकबर का नवरत्न दरबार।

रति केलि के समय कर्णं से निर्गलित कर्णाभरण के विषय में वर्णन हैः—

एक समै सजनी नियमें निशि केलि करी अरु स्याम सिधारे।
आलसवंत उठयो नहीं जात परे हियो कर केश सँभारे॥
श्रौनन तें तरवन गिरयो इक, 'ब्रह्म' भने उपमा उन मारे।
मानहुँ है गह टार्यो रथ चन्द्र को रत्न पाछे रथ चक्र गुनारे॥

कुचोपरि नखक्षत वर्णनम्।

सखि भोर उठी बिनु कंचुके भामिनि, कान्हर सों करि केलि घनी।
कवि 'ब्रह्म' भने, जिहि देखत ही बन जात नहीं मुख तें बरनी॥
कुच अग्र नखक्षत बैन दियो, मुख नाई निहारति है सजनी।
[illegible]॥

निद्रा समये प्रियेण कुचोपरि निहित कर वर्णनम्।

[illegible]।
[illegible]॥
'ब्रह्म' [illegible]।
[illegible]॥

शान्तरस के सवैया।

बीरबल ईश्वर की सेवा में प्राय पुरुषों की भाँति कुछ समृद्धि या दया की प्रार्थना नहीं करते थे, किन्तु सच्चे भक्तों की भाँति

हरि शरणगते' के ही घे शिक्षक थे। ये ईश्वरके प्रति कहते हैं:--

जो तुम छत्र को छाँह चलावत, सो नहिं कछु मैं रिधि पाई।
जो तू घरोघर भीख मँगावत, सो न कहूँ कछु भाग दगाई॥
'ब्रह्म' भने विनती इतनी अब, छोड़ूँ नहीं हरि सों शरणाई।
दीन दयाल कृपा कर सागर, मोहिं कहा, सब तोहि बड़ाई॥

फिर जो मनुष्य ईश्वर पर विश्वास छोड़कर द्रव्योपार्जन के लिये अनेक पाप करते हैं, ऐसे पुरुषों को उद्देश कर अपने मन को उपदेश करते हैं:--

यदपि सोच करे अब द्रव्य को, गर्भ में कौन की गाँठ को खायो।
जा दिन जन्म लियो जग में, तब केतिक कोटि लिये सँग आयो॥
वाको भरोस क्यों छोड़े अरे मन! जासों अहार अचेत में पायो।
'ब्रम्ह' भने जनि सोच करे यहि सोच है जो विश्वास सहायी॥

समस्यापूर्ति।

जिस प्रकार सामान्य तथा विशिष्ट प्रसंगों पर राजा भोज सम्पूर्ण पद्य-पूर्ति की अभिलाषा से एक काव्य-पाद कवियों को देते थे और उनकी प्रतिभा के बल से नाना प्रकारकी पूर्तियों से आनन्द प्राप्त करते थे, उसी प्रकार अकबर की सभा में भी होता था।

एक समय पर्यटन करते हुए बादशाह ने यमुना में स्नान कर निकली और मुख पर आये हुए केशों को हाथ से दूर करती हुई किसी कामिनी को देखकर, सभा में आकर, बीरबल को 'निकस्यों रवि फोड़ पहाड़ के ताईं' यह समस्या सुनाई। समस्या को सुनकर कविवर बीरबल ने समस्या की निम्न पूर्ति की।

न्हात गयी रस केलि किये अलबेलि भये उठ मगन भई।
नीर कढ़ीबे दै तुरत यमुनाजल में जल चंचल हुई॥
कि दुवरी जल सों निकसी उघरी अरु मुखै छिपाई।
है कर केश सम्हार लिये "निकस्यों रवि फोड़ पहाड़ के ताईं॥"

बीरबल की काव्य-प्रतिभा का परिचय लोगों को कराने के लिये हम उनकी और भी १,२ पूर्तियां यहांपर लिखते हैं।

"केहि कारण डोल में डोलत पानी।"

एक सखी जल लावन को चली निरखी अवध रजधानी।
जोवहि कूप में डोल भरै जल खैंचत में अँगिया मसकानी॥
देखि गयो उघरी छतिया कवि 'ब्रह्म' कहैं मनसा ललचानी।
हाय बिना पछिताइ रही "यहि कारण डोलमें डोलत पानी॥"

"मनो चन्द्र को चीर कुसुम चुवायो।"

एक सखी प्रिय ने मुख से मुख खोल के आज तमोल खवायो।
चन्द्रमुखी कर लय के आपनो ज्यों कर जोर के मांग नवायो॥
लाल उरोज गई बरसौं उमगी छतिया जियरा हुलसायो।
मुसकातहि पीक गिरी मुख सों "मनौं चन्द्र को चीर कुसुम चुवायो"॥

विस्तारभय से बीरबल की गौरव-गाथा यहीं पर समाप्त करना ठीक है। बीरबल जैसे सुगुणी-सुकवि का पदसंग्रह अभी तक किसी ने प्रकाशित न करना तथा अकबर के राजत्वकाल में हिन्दी का विशेष रूप से प्रचार करने तथा साहित्य का उपकार करनेवाले इस महात्मा का कोई स्मारक न बनाना क्या हिन्दी-भाषा-भाषियों की अरसिकता का द्योतक नहीं है?

इरान की खाड़ी के, आइ० ई० फोर्स डी के, निम्न घायल-वीर मद्रास-हास्पिटलशिप के द्वारा भारत में लाये गये हैं।

'हरि शरणागते' के ही ये भिक्षुक थे। ये ईश्वर के प्रति कहते हैं:--

जो तुम छत्र को छाह चलावन, तो नहूँ कछु में रिधि पाई।
जो तू घरोघर भीख मँगावन, तो न कहूँ कछु भाप दयाई॥
'ब्रह्म' भने विनती इतनी अब, छोड़ूँ नहीं हरि तो शरणाई।
दीन दयाल कृपा कर माधव, मोहिं कहा, सब तोहि बड़ाई॥

फिर जो मनुष्य ईश्वर पर विश्वास छोड़कर द्रव्योपार्जन के लिये अनेक पाप करते हैं, ऐसे पुरुषों को उद्देश कर कवि मन को उपदेश करते हैं:---

यदपि सोच करे अब द्रव्य को, गर्भ में कौन की गाठ को खायो।
जा दिन जन्म लियो जग में, तब केतिक कोटि लिये सँग आयो॥
वाको भरोस क्यों छोड़े अरे मन! जासों अहार अचेत मे पायो।
'ब्रह्म' भने जनि सोच करे यहि सोच है जो विरलाऊ लहायो॥

समस्यापूर्ति।

जिस प्रकार सामान्य तथा विशिष्ट प्रसंगों पर राजा भोज सम्पूर्ण पद्य-पूर्ति की अभिलाषा से एक काव्य-पाद कवियों को देते थे और उनकी प्रतिभा के बल से नाना प्रकारकी पूर्तियों से आनन्द प्राप्त करते थे, उसी प्रकार अकबर की सभा में भी होता था।

एक समय पर्यटन करते हुए बादशाह ने यमुना में स्नान कर निकली और मुख पर आये हुए केशों को हाथ से दूर करती हुई किसी कामिनी को देखकर, सभा में आकर, बीरबल को 'निकस्यौ रवि फोड़ पहाड़ के ताईं' यह समस्या सुनाई। समस्या को सुनकर कवियर बीरबल ने समस्या की निम्न पूर्ति की।

रात समै रंग केलि कियो अगभोरे भये उठ मज्जन धाई।
नीर के छीरमें दै डुबकी यमुनाजल मे जस चन्द्रिका छाई॥
लै डुबकी जल सों निकसी उरझी अलकें मुखपै छितराई।
द्वै कर केश सम्हार लिये "निकस्यौ रवि फोड़ पहाड़ के ताईं॥"

बीरबल की काव्य-प्रतिभा का परिचय लोगों को कराने के लि[ये] हम उनकी और भी १,२ पूर्तियां यहांपर लिखते हैं।

"केहि कारण डोल में डोलत पानी।"

एक समै जल लावन को घरसों निकसी अलबेली ब्रजरानी।
जातहि कूप में डोल भरै जल खेंचत मे अँगिया मसकानी॥
देखि सभा उघरी छतिया कवि 'ब्रह्म' कहै मनसा ललचानी।
हाथ बिना पछिताइ रही "यहि कारण डोलमें डोलत पानी॥"

"मनो चन्द्र को चीर कुसूम चुवायो।"

एक समै पिय ने मुख से मुख खोल के आप तमोल खवायो।
चन्द्रमुखी कर नाय के आपनों ज्यों कर जोर के शीश नवायो॥
लाल उरोज गहे करसो उमगी छतिया जियरा हुलसायो।
मुसकातहि पीक गिरी मुख सो "मनों चन्द्र का चीर कुसूम चुवायो"

विस्तारभय से बीरबल की गौरव-गाथा यहीं पर समाप्त कर[ना] ठीक है। बीरबल जैसे सुगुणी-सुकवि का पदसंग्रह अभी त[क] किसी ने प्रकाशित न करना तथा अकबर के राजत्वकाल में हि[न्दी] का विशेष रूप से प्रचार करने तथा साहित्य का उपकार करनेवा[ले] इस महात्मा का कोई स्मारक न बनाना क्या हिन्दी-भाषा-भाषि[यों] की अरसिकता का द्योतक नहीं है?

इरान की खाड़ी के, आइ० ई० फोर्स डी के, निम्न घायल-वीर मद्रास-हास्पिटलशिप के द्वारा भारत में लाये गये हैं।

प्राचीन भारत में मनुष्य-गणना ।

लेखक—श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री, साहित्याचार्य ।

कुछ मनचले अंग्रेज़ और उनके मुंह ताकनेवाले भारत के बाबूगण भले ही भारत के विषय में ऊंटपटांग बक दें, इसका भारतवासियों के पास कुछ औषध भी नहीं है, परन्तु विचार की दृष्टि से भारतीय साहित्य जाननेवाले उन बातों का कुछ भी महत्व नहीं समझते। यह ठीक है कि भारत के प्राचीन व्यवस्थाओं को जानने का साधन हम लोगों के पास नहीं है। यह नितान्त आश्चर्य की बात है कि हम अपने घर की बात नहीं जानते; परन्तु इसमें भी अधिक आश्चर्य की बात है कि हमारे घर की बात दूसरों को मालूम हो जाय और हम उनसे सीखें। ये सब कमज़ोरियां के लक्षण हैं, जो हमारी समानस्थिति की जातियों में पाये जाते हैं।

प्राचीन भारत में मनुष्य-गणना की रीति किस प्रकार प्रचलित थी, उसका उद्देश्य क्या था, यही बात हम चाणक्य के अर्थशास्त्र के आधार पर लिख देना चाहते हैं। मनुष्य-गणना शासन का एक अंग है। आज के सभ्य राज्यों की तो बात ही जाने दीजिए। पुराने समय के भारतवासी भी मनुष्यगणना का महत्व जानते थे और यहां भी मनुष्यगणना होती थी; परन्तु दोनों के उद्देश्य एक नहीं है। आज मनुष्यगणना शायद टैक्स (कर) बढ़ाने के लिए की जाती है और पुराने समय की मनुष्यगणना का उद्देश्य कुछ और था। प्रधान उद्देश्य था राज्य के अधिवासियों की संख्या का यथार्थ ज्ञान और दूसरा उद्देश्य था संख्या बढ़ने पर उनके लिये नये स्थानों का निर्माण।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से जाना जाता है कि चन्द्रगुप्त के समय में मनुष्यगणना प्रचलित थी, परन्तु इस के लिए कोई खास समय नियत नहीं था। इस कार्य के लिए राज्य का एक विभाग ही अलग था। उस विभाग में अनेक कर्मचारी नियत थे। इस विभाग के सबसे बड़े कर्मचारी को "समाहर्ता" कहा करते थे। समाहर्ता के अधीन इस विभाग के साथ दूसरे भी विभाग रहा करते थे। समाहर्ता इस काम को चार भागों में बांट दिया करते थे। प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष को "स्थानीय" कहते थे। एक स्थानीय के आधीन अनेक "गोप" होते थे। गोपों को स्थानीय की आज्ञा से काम करना पड़ता था। एक एक गोप को दस या पांच गांव का काम दिया जाता था।

इनके अतिरिक्त "प्रदेष्टा" नाम के एक कर्मचारी होते थे। ये स्थानीय तथा गोपों के कार्यों की देखरेख करते थे। जब उनका कार्य सन्तोषदायक नहीं मालूम होता, तब समाहर्ता एक और कर्मचारी नियुक्त करते थे और वह प्रदेष्टा स्थानीय तथा गोपों पर गुप्त भाव से दृष्टि रखता था, छिपकर इनका कार्य-क्रम देखता था तथा इसकी सूचना समाहर्ता को देता था।

"समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभागेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिकर प्रतिकरमिदमेतावदिति निबन्धयेत्। एवंच जनपद चतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत्, गोपस्थानीयस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहंच कुर्युः।"

(कौटिलीयार्थ शास्त्र)

इस प्रकार समाहर्ता का काम बताकर स्थानीय और गोप आदि के काम बताये गये हैं। गोप के काम ये हैं—

प्रत्येक गांव के चारों वर्णों के मनुष्यों की गणना करना। किसान, गोपाल, व्यवसायी, शिल्पी और दासों की संख्या जानना।

प्रत्येक घर के वृद्ध-युवा स्त्री-पुरुषों की गणना और उनका चाल चलन, जीविका कर्म और व्यय जानना।

गृहपालित पशुओं की संख्या जानना।

करदाता और करमुक्त मनुष्यों की गणना। कौन धन के रूप में कर देता है और कौन परिश्रम के द्वारा कर देता है आदि बातें को भी गोप जाने।

तदनन्तर चाणक्य ने गुप्तचर का कर्तव्य बतलाया है, जो इनके देखरेख करने के लिए नियत किये जाते हैं।

गुप्तचर के काम।

प्रत्येक गांव की समस्त जनसंख्या जानना।

प्रत्येक गांव की गृहसंख्या और कुटुम्बसंख्या जानना।

प्रत्येक कुटुम्ब की जाति और व्यवसाय जानना।

जिनका कर माफ है, उनकी परीक्षा सावधानी से करना।

घर के मालिक का निर्णय करना।

प्रत्येक घर का आयव्यय जानना।

गृहपालित पशुओं की संख्या जानना।

ये गुप्तचर के कर्तव्य हैं। ये कार्य प्रायः गोपों के कार्य के अन्तर्गत हैं। गोप-कार्य तथा स्थानीय आदि के कार्य पर भी गुप्तचर दृष्टि रखा करते थे; अतएव पूर्वोक्त कार्यों के अतिरिक्त इन्हें दूसरे कार्य भी करने पड़ते थे। वे कार्य ये हैं—

गांव में नये मनुष्यों का आने तथा ग्रामवासियों के गांव छोड़ कर जाने का कारण जानना।

गांव में नये आनेवाले तथा गांव छोड़ कर जानेवाले के सम्बन्ध की बातों का जानना। सन्दिग्ध मनुष्यों पर दृष्टि रखना।

अवस्था और समय के अनुसार इन गुप्तचरों को अनेक रूप धारण करने पड़ते थे। कभी ये गृहस्थ होते थे और कभी संन्यासी। कभी कभी उन्हें वन, पर्वत आदि बीहड़ स्थानों में भी रहना पड़ता था और वहां रहकर चोर, डाकू आदि का पता लगाना पड़ता था।

राज्य के मनुष्यों की गणना इस प्रकार की जाती थी। उस समय राजधानी के मनुष्यों की गणना भी होती थी। राजधानी के मनुष्यों की गणना करनेवाले को नागरिक कहते थे। ये भी स्थानीय आदि की सहायता से काम करते थे।

धर्मशालाओं के अधिकारियों को भी आये गये मनुष्यों की सूची बनानी पड़ती थी और वह सूची स्थानीय के पास भेजी जाती थी। प्रत्येक घर के अधिपति को भी यही काम करना पड़ता था। जो इस नियम का पालन नहीं करता था, उसे दण्डित होना पड़ता था। नियम-विरुद्ध चलनेवालों की सूची वणिक, शिल्पी और वैद्यों को बनानी पड़ती थी।

वन, उपवन, देवालय, तीर्थस्थान, धर्मशाला, राजपथ, श्मशान, गोचरभूमि आदि स्थानों के मनुष्यों की गणना इन्हीं के आधीन थी।

इस उदाहरण से यह बात साफ़ मालूम होती है कि पहले समय में भारतीय राज्यों में मनुष्यगणना होती थी। यह बात उन लोगों को विशेष ध्यान देकर पढ़नी चाहिए जो समझते हैं कि मनुष्यगणना की परिपाटी यूरोपीय सभ्यता का एक फल है। आज से दो हज़ार वर्ष पहले भारत में आनेवाले मेगास्थनीज़ ने भी इस [illegible] उल्लेख किया है।

हिन्दी के उपन्यास।

(लेखकः—श्रीवृन्दावनलाल वर्म्मा, बी ए.)

हिन्दी में दो तरह के उपन्यास हैं। एक तो अन्य भाषाओं के अनुवाद, दूसरे मौलिक। यहां हिन्दी के मौलिक उपन्यासों से मतलब है।

इन उपन्यासों की घटनाएं अधिकांश विचित्रतापूर्ण हैं। लेखकों ने यह कोशिश की है कि किसी तरह घटना-वैचित्र्य द्वारा पाठकों का कौतूहल वर्द्धन किया जाय। इसी उद्देश्य का फल चन्द्रकान्ता, रंगमहल में हलाहल, कुँवरसिंह सेनापति इत्यादिक उपन्यास हैं। जान पड़ता है कि हमारे लेखकों का आदर्श अंगरेजी भाषा का उपन्यास-लेखक Reynold ही रहा है। यह कहना व्यर्थ है कि Reynold का आदर्श हिन्दी-लेखकों के लिए बहुत हीन है। कुछ लोगों का कहना है कि Reynold के उपन्यास सदाचार से रहित होते हैं। मैं उन लोगों से सहमत होने में असमर्थ हूं। उसके उपन्यासों में बड़े बड़े ऊंचे आदर्श भरे पड़े हैं। उसकी कमज़ोरी दूसरे तरह की है। वह है पात्रों के यथोचित चरित्र-चित्रण की कमी। एक पात्र के चरित्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग का दूसरे पात्र के चरित्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग पर क्या छाया पड़ती है, यह बात Reynold कम बतला सका है। हाँ, उसमें घटना-वैचित्र्य इतना अधिक है कि वह पाठकों का खानापीना तक भुला दे। हमारे लेखकों ने Reynold के इसी गुण के ग्रहण करने की चेष्टा की है।

घटना-वैचित्र्य का उपन्यास-कला में ख़ास स्थान है। यदि उसमें यह न हो तो वह मूंग की अलौनी दाल सरीखी स्वादहीन मालूम होने लगेगी। घटनावैचित्र्य कल्पनाशक्ति को उत्तेजित करता है। इस उपाय से मनुष्य का काफ़ी मनोरंजन हो जाता है, पर उसी तरह जैसे कठपुतलियों के खेल से बच्चों का।

कल्पनाशक्ति मनुष्य के मस्तक में बालशक्ति है। उसका उत्तेजित होकर विकास पाना आवश्यक है, परन्तु केवल इसीके बढ़ने से तर्कना (Reason) और भाव का (Intuitive faculty) बौनी बनी रह जाती है और मनुष्य को पूरी पूरी उन्नति होने में बड़ी बाधा पड़ती है। इसलिए उपन्यास-कला में इन बातों को भी अवश्य ही यथोचित स्थान मिलना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि जो विचारे यहां थोड़ी घड़ी मनोरंजन करने के लिए उपन्यास हाथ में लें, उनको फिर उपन्यास पढ़ते पढ़ते एक काम और करना पड़े। यदि लेखक चाहें तो उपन्यास को इस ढंग का बना सकता है कि कल्पना, तर्कना और भावना तीनों का एक साथ वर्द्धन हो सके। इसका सब से सरल उपाय यह है कि प्रत्येक पात्र का पूरा पूरा चरित्र-चित्रण संसार में जैसे मनुष्य हैं, उनके वैसे ही चरित्र खींचे जाने चाहिए। शिक्षित पाठक को यह न जान पड़े कि यह पात्र उपन्यास का है। उसको यह ज्ञान होना चाहिए कि यह संसार का जीता जागता मनुष्य है। एक चरित्र की दूसरे चरित्र पर छाया और स्वभाव के भीतर स्वभाव, छाया के भीतर छाया दिखलाना उत्कृष्ट कलाकार का कर्तव्य है। केवल कुछ बातों के वश ही वाक्य समझा देने के लिए पात्रों से वार्तालाप कराना उपन्यास के पन्ने बढ़ाना है। कोई पात्र व्यर्थ न चाहिए तथा मूलकथा का जहां परिपाक हुआ हो, वहां मानो सम्पू काम करते हुए छिपे छिपे या खुला खुली दिखलाई पड़ने चा होली जलानेवाले एक या दो हज़रत न हों, वरन् सारा हुल्ल तरह से काम करे कि यदि एक भी उस हुल्लड़ से अलग कर जाय तो होली बिना जले रह जाय।

किस पात्र के कौनसी बात करते हुए किस समय चेहरे क्या भाव आजाता है, यह बात बतलाना बहुत आवश्यक है। ले ने संसार में अपनी आंखों या कल्पनाद्वारा जो कुछ देखा है, सू दृष्टि से मानवचरित्र या किसी घटना विशेष का जो कोना अवलोकन किया है, उसका आभास उसके पाठकों को मिल जाना चाहिए। कार्य और कारण का जो चरित्र और घटन अटूट सम्बन्ध है, उसका दिखलाना उपन्यासकला को ऊंचे दर्जे पहुंचाना है। हमारे यहां के उपन्यासों की घटनाएं और पात्रों चरित्र तो एक दूसरे से पतली गोंद से चिपकाए हुए मा पड़ते हैं।

हिन्दी के उपन्यास क्या हैं, कठपुतलियों का खेल है और उपन्य लेखक हैं कठपुतलियों को नचानेवाले मदारी। एक पुतली सोने बनी है, बहुमूल्य आभूषण और बढ़िया कपड़े पहिने हुए है। दूस चांदी की, तीसरी तांबे की, चौथी लोहे की, पांचवीं काठ की छठी मिट्टी की बनी है। आभूषण और कपड़े भी अनुकूल पहिने हैं। मदारी अपने मुँह से सारी कहानी समझाता जाता है पुतलियों को भी नचाता जाता है। सब पुतलियां मदारी के ही परस्पर बातचीत करती हैं, लड़ती भिड़ती हैं, परन्तु सोने की पुत पर चांदी की पुतली का कोई असर नहीं पड़ता और न चांदी पुतली का मिट्टी की पुतली पर। यदि मदारी को प्रभाव का दिखलाना भी पड़ा तो झट से मिट्टी की पुतली को अलग हटा उसकी जगह चांदी की पुतली को रख दिया और कहदिय "देखो, मिट्टी की पुतली चांदी की पुतली होगई!"

जब तक हिन्दी के लेखक सूक्ष्मदृष्टि से पहले संसार को, घट ओं को और संसार के हिस्से अपने समाज को भलीभांति न दे लेंगे और अच्छी तरह कार्यकारण का सम्बन्ध न समझ लेंगे तब त हिन्दी के उपन्यास कठपुतलियों के तमाशे से अधिक काम नहीं होंगे।

यों तो आदर्श के लिए Walter Scott, Lytton, Jan austen, George Elliot, बा० रवीन्द्रनाथ इत्यादि उपन्यास लेखक उत्कृष्ट कलाकार हैं, परन्तु जो लोग Scott या रवीन्द्रना बनना चाहते हैं वे उनकी रचनाओं का अध्ययन करके वैसे नहीं ब सकते, किन्तु उन बातों का अध्ययन और अवलोकन करने से वै और कदाचित् उनसे भी बढ़कर हो सकते हैं, जिन बातों का उ लोगों ने स्वयं अध्ययन और अवलोकन किया था।

चेतना।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] गुप्त।

नेतृपरीक्षा।

(लेखक—परिव्राजक श्रीदयानन्द, बी. ए.)
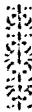
जातिगत तथा समाजगत उन्नति के लक्षण गुणपक्षपात, पुरुषार्थशक्ति और ज्ञान हैं। इस विधान के अनुसार कहना होगा कि जातिगत अवनति के लक्षण दोषदर्शनप्रवृत्ति, आलस्य और अज्ञान हैं। यद्यपि प्राचीनकाल में हिन्दू-समाज में उक्त लिखित उन्नति के लक्षण विद्यमान थे, तथापि इस समय तो अवनति के लक्षण ही देखने में आते हैं। फलतः जातिगत और समाजगत बन्धनों की शिथिलता के कारण अब हिन्दू-समाज के मनुष्यों को न तो पिता, माता तथा अन्यान्य कुटुम्बियों की लज्जा का विचार है और न समाज में निन्दनीय होने का ही कुछ भय है। अब सर्वत्र भीषणनिरंकुशता, आचारहीनता और असदाचरिता फैल गई है, जिसके कारण हिन्दू-समाज दिन पर दिन रसातल को जा रहा है। जिस आर्यजाति का लक्ष्य स्थिर कराने के लिये श्रीभगवान् ने स्वयं आज्ञा की है कि मैं "पौरुषंनृषु" अर्थात् पुरुषों में पुरुषार्थरूप हूं, जिस जाति में प्राचीनकाल के निवृत्तिपथगामी, वानप्रस्थ और संन्यासीगण तक केवल संसार हितकर कार्यों में लिप्त रहकर एकमात्र पुरुषार्थ के अवलम्बन द्वारा कर्मयोगी हो अपनी जीवन-यात्रा का निर्वाह किया करते थे, उसी आर्यजाति में अब निवृत्तिसेवी संन्यासियों का तो कहना ही क्या है, प्रवृत्तिमार्ग के अधिकारी गृहस्थ भी आलस्यग्रस्त हो उद्यमहीन होगये हैं और इधर तुरीयाश्रमी संन्यासी प्रायः अपने आश्रमधर्म को भूलकर कामिनीकांचनासक्त हो रहे हैं। ब्राह्मणों में प्रायः तप, संयम, जितेन्द्रियता और त्याग का नाश होकर धनलालसा, आलस्य, लोभ, विषयभोगप्रवृत्ति और इन्द्रियपरायणता की वृद्धि हो रही है। क्षत्रियों में शौर्य का नाश होकर घोर कामासक्ति बढ़ रही है। वैश्यगण उद्यमहीन होकर निर्धन हो गये हैं और कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि से विमुख होकर दुर्दशाग्रस्त हो रहे हैं। शूद्रगण स्वधर्म को छोड़कर अनधिकार चर्चा में प्रवृत्त दिखाई देते हैं। संस्कृतविद्या के पारदर्शी विद्वद्गण बहुधा आचारहीन और धर्मज्ञानविहीन हो रहे हैं और राजभाषा के ज्ञाता शास्त्रश्रद्धाविहीन, स्वेच्छाचारी और अनार्यभावापन्न हो रहे हैं। कलियुग में दानधर्म प्रधान होने पर भी प्रायः धनी लोग केवल नाम तथा राजसम्मान के लिये ही दान किया करते हैं। सभी ओर इस प्रकार नाना विपरीत लक्षण दिखाई देते हैं। जातीय पाप के फल से देशव्यापी कठिन महामारी, प्लेग आदि भीषण रोग उत्पन्न होकर प्रतिदिन हिन्दू-प्रजा का क्षय और अधोगति करा रहे हैं। घोर मर्मभेदी दुर्भिक्ष ने सारे भारत को ग्रस्त कर लिया है। समष्टि प्रजा की अधर्मप्रवृत्ति और दुर्गति के कारण पंचतत्वों में विकार होकर ऋतुविपर्यय आदि दोष तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूमिकम्प, उल्कापतन, धूमकेतूदय आदि शान्ति-नाशकारी अमंगल सदा प्रकटित होरहे हैं; अतएव भारतवर्ष के इन सब आधिभौतिक और आधिदैविक विषयों पर विचार करने से यही सिद्धान्त होगा कि अब हिन्दू-समाज कर्मभ्रष्ट, तपोभ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट, आचारभ्रष्ट तथा शान्तिभ्रष्ट होकर अत्यन्त हीन दशा को प्राप्त हो गया है।

हिन्दू-समाज की इस हीनदशा का सुधार कैसे हो? सुधार के लिये नेता चाहिए। यदि संसारचक्र के नेता, सर्वशक्तिमान् परमात्मा न होते तो प्रकृति की यह मनोरम स्थिति नहीं रह सकती। यदि ज्ञान-जगत् के नेता पूर्णज्ञानी ऋषिगण न होते, तो संसार में ज्ञान की नित्य और नियमित स्थिति नहीं बनी रहती। यदि देवजगत् के नेता शक्तिमान् देवतागण न रहते, तो कर्मानुसार जीव की गति कदापि नहीं देखने में आती। यदि स्थूल-जगत् के नेता पितृगण न होते तो, धनधान्यपूर्ण, सुजला, सुफला, वसुन्धरा जगज्जनों के सम्मुख शोभायमान नहीं रहती; अतः समष्टिकार्य के लिये-उसकी उन्नति के लिये-योग्य और शक्तिमान् नेता अवश्य चाहिये। हिन्दू समाज की वर्तमान् दीनदशा को सुधारने के लिये भी हिन्दूजाति को योग्य नेता का अन्वेषण या उद्भावन अवश्य करना पड़ेगा। अब ऐसे महात्मा नेता का आविर्भाव कैसे हो सकता है, उसके लिये कोई उपाय है या नहीं, यही हिन्दूजाति की वर्तमान चिन्ता का विषय है। चिन्ता करने पर सिद्धान्त होता है कि इस विषय में हिन्दू-समाज के दो आवश्यक कर्तव्य हैं, जिनके नियमित अनुष्ठान से हिन्दू-समाज को योग्य नेता मिल सकेंगे। पहिला कर्तव्य यह है कि जब किसी शुभकार्य के साधन के लिये तुम स्वयं इच्छा करते हो, तब यदि किसी दूसरे को वैसे ही कार्य में यत्नशील देखो तो अन्यान्य विषय में मतभेद होने पर भी इसके साथ योगदान करो; क्योंकि जब रथ में दो शक्तियां एकचित्त होकर उसे खींचती है, तभी रथ चलता है। दूसरा कर्तव्य यह है कि प्रतिवेशी, परिचित अथवा कोई भी स्वजातीय व्यक्ति हो—जिसको कि तुम वस्तुतः सम्मान के योग्य समझते हो—उसे अवश्य ही सम्मानित करो। हम जाति के हिन्दू हैं। हम अपनी इष्टसिद्धि के लिये अपने हाथ से मिट्टी उठाकर, उसकी प्रतिमा बनाकर, उसकी पूजा करना तथा उससे वर मांग लेना खूब जानते हैं; अतः हम अपने जातियस्वभावानुसार, प्रकृतिस्थ होने से, छोटे को अच्छी तरह से बड़ा बना सकते हैं। बड़े को ही देखने और बनाने की चेष्टा करते करते हमारे भाग्य में बड़े जन अवश्य ही उत्पन्न होजायंगे; क्योंकि संसार इच्छाशक्ति का ही परिणामरूप है।

जिस देश में असूया, द्वेष और दोषदर्शिता का आधिक्य है, उस देश में यथार्थ महात्मा का आविर्भाव नहीं हो सकता और, यदि, होता भी है तो ऐसे महात्मा अल्पायु होते हैं। क्योंकि, जातीयगुणपूजाप्रवृत्ति की समर्थन शक्ति से ही ऐसे विभूतियुक्त महात्मा का जन्म होता है और उसे दीर्घायु प्राप्त होती है। इसीलिये जातीय दोष-दर्शन-प्रवृत्ति से ही समाज और जाति में श्रेष्ठ विभूति का अभाव हो जाता है और वैसे महात्मा उत्पन्न नहीं होते तथा उत्पन्न होने पर भी वे अल्पायु होजाते हैं। हिन्दू-जाति की इस अधःपतित दशा में असूया, द्वेष और दोषदर्शितादिक दुष्प्रवृत्तियों की विशेष वृद्धि हुई है। हिन्दू-जाति स्वदेशीय और स्वजातीय-किसीको भी महापुरुष के रूप में नहीं देखना चाहती। उसके ख्याल में अपने यहां के सभी नौकौड़िये हैं। ठीक है, "जैसा साधन, वैसी ही सिद्धि भी होती है।" हम नौकौड़ी के आदमी देखना चाहते हैं, इसलिये हमारे भाग्य में नौकौड़ी के ही आदमी मिलते हैं। हिन्दू जाति में से जब तक यह भीषण दोष दूर नहीं होगा, तब तक हिन्दू जाति में महापुरुष का आविर्भाव नहीं हो सकेगा। फलतः अनुवर्ती लोगों के रहने से ही महात्मापुरुष अग्रणी हो सकते हैं। स्वजातीय मनुष्यों की निन्दा करना, विजातीय मनुष्यों का दोषानुसंधान करना और विजातीय पुरुषों का अनुकरण न करना—ये ही हिन्दू जाति के मर्मगत और मज्जागत महापाप हैं और हमारे समाज का वर्तमान अधःपतन और दुर्दशा इन्हीं महापापों का अवश्यंभावी फल और इनका प्रायश्चित्त रूप है। अब यह प्रमाणित होगा, जब हम स्वदेशीय महात्माओं की गुणगरिमा को पहचान सकेंगे और उनकी कर्मनिष्ठा, तपस्विता, निःस्वार्थपरता और मनुष्यप्रकृति जनों को सर्वगुणाधार नहीं समझेंगे एवं इनकी समालोचना के लिये स्वदेशोद्धार-पूर्वकार्य का अपमान, स्वदेशी रीति-नीति के उपेक्षा और स्वजातीय लोगों की इच्छा तथा निन्दा-प्रचार

करके अपनी जिह्वा और जीवन को कलंकित नहीं करेंगे।

भारतभूमि वास्तव में रत्न प्रसविनी है। यहांपर सदा महान् बीजों का अंकुर निर्गत होता रहता है। यदि ऐसा न होता तो इतने नवीन नवीन सम्प्रदायों की उत्पत्ति कैसे होती? वे चाहे छोटे मोटे ही क्यों न हों, पर जिनमें एक एक सम्प्रदाय बनाने की शक्ति है, उनमें कुछ न कुछ विशेषता अवश्य ही है, ऐसा समझना चाहिये; परन्तु इससे यह सिद्धान्त नहीं होता कि जो कोई संस्कारक या सुधारक नामधारी हो जाय, उसीकी ही अनुकृति करनी होगी। यदि दूसरे पक्ष में ऐसा अनुवर्त्तन करना भी अच्छा है, तो भी किसी में शक्ति या गुण का लेशमात्र देखते ही ईर्ष्या या असूया करना उचित नहीं है, परन्तु जो महात्मा हिन्दू-समाज के यथार्थ नेता बन सकेंगे, उनमें निम्नलिखित लक्षण अवश्य ही होने चाहिये।

वे परमधार्मिक, आध्यात्मिक, उन्नतिशील, त्यागी, परार्थपर और स्वजातीय लोगों के हिताकांक्षी हों। (२) वे समस्त हिन्दू-जाति में परस्पर सम्मेलन के उपयोगी उपायों का आविष्कार करें, अतः अधिकारभेदविज्ञान को अटूट रखते हुए भी समस्त सम्प्रदायों के प्रतिपक्षपात शून्य हों। (३) वे पूर्ववर्त्ती स्वदेशीय शिक्षादाता और नेताओं का कुछ भी अगौरव न करें; बल्कि अपने उदार तम मतवाद के बीच में पूर्वाचार्यों से प्राप्त संपूर्ण शिक्षासूत्रों का सन्निवेश करें। (४) वे पारमार्थिक ज्ञान के साथ व्यवहारकुशलता की योग्यता भी रखें और उसकी सहायता से आर्यमर्यादा के मौलिक आदर्श-समूहों को देश-कालानुसार सामञ्जस करने में समर्थ हों। (५) उनके मतवाद में शास्त्र और विज्ञान का समस्त सारतत्त्व सम्मिलित हो। (६) वे सूर्यदेव की तरह भारताकाश में पूर्वोदित ग्रहनक्षत्रादि को अपनी ज्योति में लय करें, परन्तु किसी को निर्वासित न करें। उक्त सब लक्षणों के साथ ही साथ तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता अगाधपांडित्य, असाधारणवाक्शक्ति, अपूर्वलिपिकुशलता, असीमउदारता और समस्त ओजो-गुणों-का भी उनमें सम्मिलन हो।

प्रकृति के नियमानुसार उच्च तथा सदाचारी कुल में ही नेता का होना प्रकृत्यनुकूल होगा। उक्त लिखित सब लक्षणों के देखने पर निम्न लिखित सद्वाक्य का भी स्मरण करना चाहियेः—

"यद्यद् विभूति मत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽश सम्भवम्"॥

अर्थात् जिसमें प्रभा, श्री और तेज देखा जाय, वहीं भगवान् के तेज से उत्पन्न है, ऐसा चाहिये।

अतः जिस पुरुष में पूर्वोक्त लक्षणों का आभास मिले उनका गौरव बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिये। देश के बुद्धिमान् लोग, यदि इस नियम का अनुसरण करें तो यदि देश में कोई ऐसे महापुरुष उत्पन्न हो गये हों तो वे शीघ्र ही प्रकट हो जायंगे और यदि ऐसे कोई महात्मा प्रकट न हुए हों तो उनके आविर्भाव का समय निकटवर्ती हो जायगा। सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान की शक्ति व्यापक है जिस प्रकार प्रकृति के हृदय की प्रार्थनाशक्ति और भक्तों की प्रार्थनाशक्ति के आकर्षण से, युगानुसार, धर्मरक्षा के लिये श्रीभगवान् की व्यापकशक्ति केन्द्र-विशेष के द्वारा असाधारण रूप से प्रकटित होकर कोई विशिष्ट कार्य करती है, उसी प्रकार समस्त हिन्दू-जाति की हार्दिक प्रार्थनाशक्ति और पुण्यप्रभावशक्ति के आकर्षण से भगवान की शक्ति हिन्दू-जाति के अभ्युदय के लिये उपर्युक्त लक्षणाक्रान्त होकर श्रेष्ठ नेतारूप से प्रकट होकर भारत का भाग्योदय कर देगी, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। महाशक्तिमयी की दिव्य लोकविदारिणी दिव्यशक्ति को भक्त भगीरथ की तपःशक्ति ने ही मर्त्यलोक में आकर्षित कर लिया था; अतः हिन्दू-जाति की इच्छाशक्ति के समवेत होने से भगवद् विभूतिरूप नेता का आविर्भाव होना असम्भव नहीं है। हिन्दू मात्र के हृदय में ऐसी आशा का संचार होना चाहिये कि, 'हिन्दू-समाज के अधःपतन का निवारण, उत्कर्ष-साधन तथा कल्याणप्राप्ति के लिये स्वजातीय नेता का आविर्भाव अवश्य ही होगा'। इस प्रकार आशा के स विश्वास भी सम्मिलित रहना चाहिये; क्योंकि भगवान् कहा है—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्"।

अर्थात् धर्मग्लानि और अधर्म के उदय होनेपर विभूतिरूप भगवान् प्रकट होते हैं; अतः इस प्रकार का विश्वास हृदय में बद्धमू होने से हिन्दू-जाति के कार्यकलाप, व्यवहारप्रणाली और चि वृत्ति ऐसी ही विशेषता को प्राप्त हो जायगी।

किसी महापुरुष नेता का आविर्भाव होगा, यह सत्य परन्तु कहां होगा और कब होगा, इसका अनुमान करना कठिन है इसलिये "ऐसी घटना अपने ही घर में होगी" ऐसी प्रत्येक व्य के चित्त में धारणा होनी चाहिये और तदनुसार अपने घर के प्रकट होनेवाले देवता के पवित्र मन्दिर की तरह, प्रतिष्ठित र रखना चाहिये। द्वेष, हिंसा, लोभ, मात्सर्य आदि नीच प्रवृत्तियों अपने मन की रक्षा करनी चाहिये। अपनी २ सन्तानों के बारे ऐसी धारणा होनी चाहिये कि मानो अपना दुग्धपोष्य शिशु ऐसा महात्मा होगा। ऐसा होने से ही हिन्दू-जाति सम्मेलन-सू में बद्ध होगी, ऐसा होनेसे ही जन्मभूमि यशोमाला से सुशोभि होगी और ऐसा होने से ही भारत में सद्धर्म का अभ्युदय होग जिससे समग्र हिन्दू-जाति विमुक्त मायाचार और पुण्यवान जायगी। एक शिशु की भावी अवस्था और शक्ति क्या होगी इसका निश्चय कौन कर सकता है? अपने २ अन्तःकरण में नेत महापुरुष के आविर्भाव की आशा इस प्रकार दृढ़ और उदाररूप संचित रखकर अपने २ जीवन को पवित्र बनाने के निमित्त यत्नवा होने से तथा शिशु और युवकों की सुशिक्षा के लिये निरन्तर चे करने से सभी मनुष्यों के चित्त दिन प्रति दिन उन्नत होते जायंगे अनेकानेक सुशील मनुष्यों का हृदय इस प्रकार उन्नत, पवि और एकाग्र होना भी महापुरुष के आविर्भाव का दूसरा कार स्वरूप हो जायगा। एकप्राणता और पुरुषार्थ के साथ कतिप मनुष्यों की चित्तोन्नति न होनेसे किसी देश में महापुरुषों का आवि र्भाव नहीं होता है। जिस प्रकार उच्च अधित्यका में ही उच्चत पर्वत-श्रृंग उत्थित होता है उसी प्रकार हृदयवान् व्यक्तियों में से ही उच्चतम महात्माओं का आविर्भाव होता है। हिमालय पर्वत की अधित्यका से ही काञ्चनगिरि की उत्पत्ति हुई है, किसी देश से नहीं। अतः देश और समाज के जन साधारण के हृद में, जिससे आशा, अध्यवसाय, एकाग्रता, सत्यनिष्ठा, सहानुभूति जातीयता और धर्मभाव की वृद्धि हो-ऐसा प्रयत्न करना हिन्दू समाज के लिये आवश्यक कर्त्तव्य है। शिक्षाकार्य और बुद्धिमत्ता पटुता, स्वावलम्बन, धार्मिकता, लिपिकुशलता, उदारता और ओजस्विता-वृद्धि के साथ ही साथ स्वजातिवात्सल्य के प्रति एकाग्र होकर परिचालित होना आवश्यक है। इस प्रकार समवेत चेष्टा के द्वारा ही—भारत का भावी—कल्याणसाधन होगा। भगवान् हमें भारतनू को यह सुमंगल दिन शीघ्र ही दिखलावें!

युग परिवर्तन।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

एलोरा की गुफाएं ।

(लेखक—श्रीशालिगराम वर्मा)

बहुत से युरोपीय विद्वानों का मत है कि भारतवर्ष का यथार्थ इतिहास न मिलने का मुख्य कारण यह है कि यहां के पूर्व निवासियों की इतिहास की ओर रुचि ही नहीं थी और वे राजाओं तथा महाराजाओं का इतिहास लिखने के बदले इस विश्व के निर्माणकर्ता के गुणानुवाद गाना ही अपना कर्तव्य समझते थे । उनका आध्यात्मिक विषय से ही अधिक संबंध था और वे इस संसार को असार और स्वप्नवत् समझकर इसकी माया में नहीं फँसना चाहते थे। उन विद्वानों के उक्त विचार कहां तक सत्य हैं, इसके प्रमाण में इस समय हम केवल इतना ही लिखना आवश्यक समझते हैं कि इतिहास शब्द की जो परिभाषा उन्होंने की है (क्योंकि उसीके उदाहरण स्वरूप उनके लिखे हुए वे इतिहास हैं जो आजकल समस्त भारतवर्ष में पढ़े जाते हैं और जिनमें हमारे नवयुवकों को केवल लड़ाइयों के नाम, उनकी विजय तथा उनका घटनाकाल ही बतलाया गया है) उसे असत्य और भ्रमपूर्ण प्रमाणित कर दें। इंग्लैंड के परमविख्यात दार्शनिक प्रोफेसर हक्सले (Professor Huxlay) का कहना है कि " इतिहास मानुषिक सभ्यता के आरंभिक विकास या उन्नति की कहानी मात्र है। " (History is nothing more than a clear description of the evolution of civilization in man—or briefly a story of the progress of human civilization) उक्त प्रोफेसर महाशय ने

एलोरा का घृष्ण-कुण्ड ।

इस विषय पर अपने एक व्याख्यान में उन्नति की व्याख्या, विकास सिद्धान्त के अनुसार, ऐसी रोचक और यथार्थ की थी कि उससे उत्तम और भावपूर्ण व्याख्या आज तक किसी ने नहीं की । आपने कहा कि " समानता से विभिन्नता में परिवर्तन होना ही उन्नति कहलाती है "। (progress is the change from homogeneity to heteragencity.) अतएव क्या इस व्याख्या के अनुसार केवल लिपिबद्ध पुस्तकों का ही नाम इतिहास है ? क्या हमारी प्राचीनतर शिल्पकला के द्वारा हमारे देश के इतिहास का ज्ञान नहीं हो सकता ? क्या इस देश की सजीव संस्थायें, विद्यालभवन, मनोमोहिनी गुफाएं, धर्माभिव्यक्ति-प्रवर्धक मंदिर और कौतूहलोत्पादक शिलालेख हमारे इतिहास के सजीव और अमिट पृष्ठ नहीं हैं ? क्या केवल पुस्तकों के द्वारा ही मानुषिक सभ्यता के विकास का पता लगता है ? इन प्रश्नों के उत्तर से ही पाठकों को विदित हो जायगा कि वे विद्वान् कहांतक उदार और विचारशील हैं ? आज इन्हीं विचारों को सामने रखकर हम अपने पाठकों को भारत-गौरव-दर्शक परमविख्यात एलोरा की गुफाओं की सैर कराना चाहते हैं।

हैदराबाद रियासत के उत्तरीय भाग में, औरंगाबाद से १३ मील और दौलताबाद से ७ मील की दूरी पर, एक छोटी सी पहाड़ी के पास, प्राचीन हिन्दूशिल्पियों ने इस गुफा को ५ वीं शताब्दि में बनाना प्रारंभ किया था । औरंगाबाद से तांगे में बैठकर यात्री लोग प्रायः दो घंटों में रोज़ा नामक ग्राम में पहुंच जाते हैं । यहां से गुफाएं १५ मिनट के रास्ते पर हैं । बीच की गुफा का नाम कैलाश है, जो अपनी मनोहारिणी सुन्दरता के लिये संसारभर में विख्यात है । यात्रियों को इन गुफाओं के देखने के लिये पहिले दाहिनेवाली गुफा से देखना प्रारंभ करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से ही उन्हें उस ऐतिहासिक रहस्य का पता चलेगा, जिसके लिये ये कन्दरायें परमविख्यात हैं।

इन गुफाओं के द्वारा भारतवर्ष के मुख्यतः तीन धर्मों के इतिहास का बड़ा ही मनोरंजक दृष्टान्त मिलता है । बौद्धमत से ब्राह्मणधर्म द्वारा किस प्रकार जैनमत का प्रचार हुआ, यही विषय इन तीनों गुफाओं की चित्रकारी और मूर्तियों से प्रमाणित होता है । प्रत्येक के मतानुसार, प्रत्येक गुफा के शिल्पकौशल में भी, विभिन्नता पाई जाती है । बदामी गुफाओं में भी उक्त तीन धर्म ही अलग २ चित्रित हैं । एलीफेंटा गुफाओं में शैवधर्म प्रधान है और सुप्रसिद्ध अजंता की गुफाओं में बौद्धधर्म का ही गौरव प्रदर्शित है । पर, एलोरा की गुफाओं में तीनों धर्मों के ही सच्चे चित्र चित्रित होने के कारण

कैलाश गुफा का पहिला मंज़िल ।

उनकी अधिक विशेषता समझी जाती है। इन गुफाओं का निर्माण काल अभीतक ठीक ज्ञात नहीं हो पाया है, तथापि Fergusson साहब की पुस्तक की नवीन आवृत्ति से हम इतना उद्धृत कर देना परमावश्यक समझते हैं:—

बौद्ध काल	विश्वकर्मा से तीन ताल पर्यन्त ।	५००-६५० ई०
हिन्दू „	दशावतार, रावण की खाई और रामेश्वर इत्यादि ।	६५०-७५० ई०
द्राविड़ „	कैलाश ।	७५०-८०० ई०
जैन „	इन्द्रसभा तथा जगन्नाथसभा ।	८००-११०० ई०

अब हम प्रत्येक काल की गुफाओं का यथाक्रम वृत्तान्त संक्षेप में देने की चेष्टा करते हैं।

जिस पहाड़ी के नीचे ये गुफाएं बनी हुई हैं, वह अर्द्धाकार है। अजन्ता गुफाओं की पहाड़ियां प्रायः सीधी ही हैं, पर ये

ढाल हैं। इसीसे दोनों गुफाओं की बनावट में भी विभिन्नता है। एलोरा की गुफाओं में ३४ कन्दरायें हैं, जो प्रायः सवा मील तक फैली हुई हैं। इन सब गुफाओं के सामने एक २ चौक बना हुआ है और चौक के आगे एक दीवार है, जिसमें होकर इन गुफाओं का दरवाज़ा बना है। इसमें बौद्धों की १२ गुफायें हैं, जिनमें विश्वकर्मा नामक चैत्यगुफा ही परम रमणीक है। इस गुफा की बाहरी दीवार की ड्योढ़ी बड़ी ही विचित्र है। इसके भीतर घुसने पर इस की छत और उसका चंदोवा देखकर दर्शक को बड़ा कौतूहल होता है। इसकी छत में उत्तम शिल्पकारी का नमूना दिखलाया गया है। पत्थर की शिला में बेलबूटे आदि बड़े विचित्र हैं। संभवतः चंदोवा भी इसी शिला में से काटा गया है। इस गुफा के बीच में बुद्धदेव की एक मूर्ति, पैर नीचे किये हुए, विराजमान है। उनके चारों ओर देवतागण विमानों पर आकाश में सुशोभित हैं। कैलाश के अतिरिक्त और कोई गुफा इस गुफा की मनोरमता को नहीं पहुंचती है। इस गुफा के पास कई विहारस्थल हैं, जिनमें बौद्धदेव की वैसी ही बैठी मूर्तियां स्थापित हैं। इसके पश्चात् दो थाल और तीन थाल नामक गुफायें हैं। इन गुफाओं की बनावट भी प्रायः वैसी ही है और इनमें भी बौद्धदेव की मूर्तियां मौजूद हैं।

कैलाशमंडप।

यहां से आगे बढ़ते ही शिल्पकारी में भेद प्रतीत होने लगता है। दशावतार नामक गुफा में हमें ब्राह्मण-युग की शिल्पकारी ही प्रधान प्रतीत होती है। बहुत से यात्रियों का कहना है कि वे गुफायें पहिले बौद्धों ने ही बनाई थीं, पर ब्राह्मणयुग में उनका बनना समाप्त हुआ था। बड़े २ विद्वानों का यह कहना है कि वे गुफाएं ब्राह्मणकाल की ही बनी हुई हैं। गुफा की पहिली मंजिल की लंबाई ८५ फीट है और गहराई ३० फीट है। दूसरी मंजिल पर ८५ फीट लंबा और ८० फीट चौड़ा एक विशालभवन बना हुआ है। सब भवनों के चारों ओर अनेक मूर्तियां बनी हुई हैं। इनमें से बहुतसी तो विध्वंस हो गई हैं और बहुतसी अब भी अच्छी अवस्था में हैं।

आगे बढ़ कर कैलाश है। इसी कैलाश के लिये Ferguson साहब ने लिखा है कि " भारतीय शिल्पकला का सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कैलास ही है। प्रायः सभी यात्रियों ने भी इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और इसी कारण समस्त यात्री इससे पूर्णतया परिचित हो जाते हैं। बौद्ध गुफाओं की अपेक्षा इसमें यह एक विशेषता है कि यह केवल शिलाओं के भीतर बनाई हुई गुफा की भांति नहीं बनी है वरन् मैदान में बने हुए एक विशाल मन्दिर की भांति है। यहांपर चट्टान को बाहर और भीतर दोनों ओर से काटा गया है। बाहरी दीवार के कारण यह मन्दिर अज्ञात रहता है, पर कुछ उंचाई पर जाते ही इसकी अद्भुत कारीगरी का दर्शन हो जाता है। यह मन्दिर पहाड़ी की बगल में बना है। इसके बनाने में चट्टानों को १०६ फीट गहरा काटा गया है। गोपूराम पर यह गहराई आधी ही रह जाती है। इस विशाल मन्दिर की लंबाई २८० फीट और चौड़ाई १६० फीट है। यह अपूर्व मन्दिर यथार्थ ही द्रविड़-मन्दिरों की भांति बना है। इसका विमान ८६ फीट ऊंचा है और बाहर की ओर एक बड़ी पौली बनी हुई है। इसीके समीप नांदिये के लिये एक छोटी सी दूसरी पौली मौजूद है। इस मन्दिर के बीचोबीच दो सुन्दर स्तम्भ बने हैं, जिनपर बड़ी सुन्दर शिल्पकारी की गई है। बड़ी पौली की दीवारों के चारों ओर छोटी २ गुफायें हैं जिनमें बड़ी सुन्दर चित्रकारी हो रही है। इस कैलाश की प्रशंसा में Ferguson साहब ने लिखा है कि —

" The lofty basemant of the temple is in itself a remarkable conception ... . all testify to the attempt made to ontruial and out do all previous temples of the kind. "

" इस विशाल मन्दिर की ऊंची बैठक जिसपर हाथी और शेर आदि २ जानवरों की बड़ी सुन्दर और विशाल मूर्तियां बनी हुई हैं, वही ही विचित्र निर्माणशक्ति का नमूना है। इसका विशाल भवन, सुन्दर और सुसज्जित स्तम्भ तथा गौखें आदि २ के देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि इसके पूर्व बने हुए सभी मन्दिरों से इसे हर प्रकार उत्कृष्ट और अद्वितीय बनाना ही इसके निर्माण कर्त्ताओं का लक्ष्य था। "

Fergusson साहब के लिखने के अनुसार इस मन्दिर में इस की अविनाशी कीर्ति की अपेक्षा बहुत थोड़ा द्रव्य व्यय हुआ है। आप का कहना है कि जिस दृढ़ता से इन शिलाओं की शिल्पकारी को सदा के लिये प्राचीन हिन्दूशिल्पियों ने अमर बना दिया है, वैसा करना, आज दिन भी, असंख्य धन व्यय किये बिना, असंभव है। इसके पश्चात् दो तीन गुफाओं की बारी है, पर कैलाश की अलौकिक सुन्दरता के सामने उनपर दृष्टि ही नहीं जमती। इस गुफा में एक विशेषता यह है कि जहां और सब गुफाओं में प्रकाश के लिये एक ही दिशा खुली हुई है, वहां इसमें तीनों दिशाएं खुली हैं। इसके स्तम्भ भी बड़े विचित्र हैं।

अब जैन गुफाओं की बारी आई। वास्तव में इनकी कला उतनी अच्छी नहीं है। इस पर बौद्ध और ब्राह्मणकाल की शिल्पकला का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है, पर तो भी इस में कई विशेषतायें हैं। बदामी गुफा में ही इस काल की शिल्पकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलता है, तथापि इन्द्रसभा और जगन्नाथसभा अपने नमूने की एक ही हैं। यहांपर बहुत से हिन्दू देवताओं की विशाल और परमसुन्दर मूर्तियां मौजूद हैं और स्तम्भ भी बड़े ही सुन्दर बने हुए हैं। वर्णन करने की अपेक्षा इन की अलौकिक सुन्दरता का अनुभव देखने से ही भली प्रकार प्राप्त हो सकता है।

विज्ञ पाठक स्वयं ही विचारें कि भारतीयसभ्यता की विशेष उन्नति का परिचय क्या इन गुफाओं के अतिरिक्त किसी लिखी हुई पुस्तक से अधिक मिल सकता है?

आम उसूल है कि कच्चा फल तोड़ने से अच्छा नहीं लगता। कम उम्र में शादी करने से औलाद की जिस्मानी हालत खराब होती है, उनकी Physical developoment (जिस्मानी तरक्की) ऐसी नहीं होने पाती कि औलाद तन्दुरुस्त पैदा हो। यही वजह है कि अब कद भी बहुत छोटा होता जाता है। अभी मौका चला नहीं गया है। अगर कोशिश की जावे तो मुमकिन है कि अपनी कौम अपनी पुरानी जिस्मानी हालत पर पहुंच जावे।

—महाराजा सिन्धिया।

कुल बल जैसो होई है, तैसी करिये बात।
बणिक पुत्र जाने कहा, गढ़ लेवे की घात॥

—भारतेन्दुजी के पिता गिरधरदासजी।

अपने अपने अर्थ को, तिय पूजत त्रिख भीति।
सुफल फले मनकामना, तुलसी प्रेम प्रतीति॥

—श्रीतुलसीदासजी।

साईं अपने चित्त की भूल न कहिये कोई।
तब लगि मन में राखिये, जब लगि कारज होइ॥

—श्रीगिरिधरदास।

एकहि साधे सब सधे सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को फूले फले अघाय॥

—श्रीकबीर।

हिन्दी भाषा ।

पड़ने लगती है पियूष की शिर पर धारा ।
हो जाता है रुचिर ज्योति मय लोचन तारा ॥
वर विनोद की लहर हृदय में है लहराती ।
कुछ बिजली सी दौड़ सब नसों में है जाती ॥
आते ही मुख पर अति सुखद जिसका पावन नामही ।
इक्कीस कोटि जन पूजिता हिन्दी भाषा है वही ॥ १ ॥

जिसने जग में जन्म दिया औ पोसा पाला ।
जिसने यक यक लहू बूंद में जीवन डाला ॥
उस माता के शुचि मुख से जो भाषा सीखी ।
उसके उर से लग जिसकी मधुराई चीखी ॥
जिसके तुतलाकर कथन से घर में धार सुधा बही ।
क्या उस भाषा का मोह कुछ हम लोगों को है नहीं ॥ २ ॥

दो सूबे के भिन्न भिन्न बोली वाले जन ।
जब करते हैं खिन्न बने, कुछ भर अवलोकन ॥
जो भाषा उस समय काम उनके है आती ।
जो समस्त भारत भू में है समझी जाती ॥
उस अति सरला उपयोगिनी हिन्दी भाषा के लिये ।
हम में कितने हैं जिन्होंने तन मन धन अरपन किये ॥ ३ ॥

गुरु गोरख ने जोग साधकर जिसे जगाया ।
औ कबीर ने जिस में अनहद नाद सुनाया ॥
प्रेमरंग में रँगी भक्ति के रस में सानी ।
जिस में है श्रीगुरुनानक की पावन बानी ॥
है जिस भाषा से ज्ञान मय आदि ग्रंथ साहब भरे ।
क्या उचित नहीं है जो उसे निज सर आंखों पर धरें ॥ ४ ॥

करामात जिसमें है चंद कला दिखलाती ।
जिस में है मैथिल कोकिल काकली सुनाती ॥
सूरदास ने जिसमें सर वर सुधा बनाया ।
तुलसी ने जिसमें सुर पादप फलद लगाया ॥
जिसमें जगपावन पूत तम रामचरितमानस बना ।
क्या परमप्रेम से चाहिये उसे न प्रतिदिन पूजना ॥ ५ ॥

बहुत बड़ा अति दिव्य अलौकिक परममनोहर ।
दास ग्रंथ साहब समान का ग्रंथ बिरचकर ॥
[illegible] ने जिसमें निज कला दिखाई ।
जिस में अपनी जगत पवित्र कर जाति जगाई ॥
यह हिन्दी भाषा दिव्यता रतने अमूल्य मणि सों भरी ।
क्या हो नहिं सकती है सकल भाषाओं की सिर धरी ॥ ६ ॥

औ अनुपम अति दिव्य काव्य रत्नों की माला ।
कवि केशव ने कलित कंठ में जिसके डाला ॥
सुमन सरस कुसुम बड़े कमनीय मनोहर ।
देव बिहारी ने जिसके युग कमल पदों पर ॥
[illegible] पर वह भाषा [illegible] ।
जगमगा रही है जो किसी भारतेन्दु की ज्योति से ॥ ७ ॥

[illegible] अनूप [illegible] ।
जिस में है अति [illegible] सुहाना ॥
[illegible] हित से था जिसके वर का [illegible] ।
[illegible] के अन्दर [illegible] में था जो [illegible] ॥
यह दयानंद [illegible] जिसका [illegible] ।
उस भाषा का गौरव [illegible] है बड़ा ॥ ८ ॥

महाराज रघुराज राजेश्वरों से रहते ।
थे जिसके अनुरक्त सदा ही [illegible] ॥
राजविभव पर लात मार हो परमउदासी ।
थे जिसके नागरीदास एकान्त उपासी ॥
यह हिन्दी भाषा बहु नृपति वृन्द पूजिता वंदिता ।
क्यों सकती है उन्नति किये वसुधा को आनंदिता ॥ ९ ॥

वे भी हैं, हैं जिन्हें मोह, हैं तन मन अर्पक ।
हैं सर आंखों पर रखनेवाले, हैं पूजक ॥
हैं वार्तावादी, गौरवविद्, उन्नतिकारी ।
वे भी हैं जिनको हिन्दी लगती है प्यारी ॥
पर कितने हैं, वे हैं कहां जिनको जी से है लगी ।
हिन्दू जनता नाहिं आज भी हिन्दी के रँग में रँगी ॥ १० ॥

एक बार नाहि बीस बार हमने हैं जोड़े ।
पहले तो हिन्दू पढ़नेवाले हैं थोड़े ॥
पढ़नेवालों में हैं कितने उर्दूसेवी ।
कितनों की है सकल फलद अंग्रेजी देवी ॥
कहने रुक जाता कंठ है नाहि बोला जाता यहां ।
निज आंख उठाकर देखिये हिन्दी प्रेमी हैं कहां ॥ ११ ॥

अपनी आंखें बन्द नहीं मैंने कर ली हैं ।
वे सन्दीप्ति लखी जो तिमिर बीचवली हैं ॥
है हिन्दी आलोक पड़ा पंजाब धरा पर ।
उससे उज्वल हुआ राज्य इन्दौर ग्वालिअर ॥
आलोकित उस से हो चली राजस्थान वसुंधरा ।
उसका बिहार में देखता हूं फहराता फरहरा ॥ १२ ॥

मध्यहिन्द में भी है हिन्दी पूजी जाती ।
उसकी है बुन्देलखंड में प्रभा दिखाती ॥
व माई के लाल नहीं उसको भूले हैं ।
सूबे भर में जो सरोज के से फूले हैं ॥
कितनी ही आंखें हैं लगी जिन पर आकुलता सहित ।
है जिनके गौरव रुचिर से रव हिन्दी जग गौरवित ॥ १३ ॥

है हिन्दी-साहित्य समुन्नत होता जाता ।
है उसका नूतन विभाग भी सुफल फलाता ॥
निकल नवल उपन्यास चित हैं उमगाते ।
नव नव मासिक मेगज़ीन हैं सुरुचि बढ़ाते ॥
कुछ जगह न्यायप्रियतादि भी सुनकर हिन्दी हित कही ।
कुछ अन्य प्रान्त के सुजन की आंखें भी उस पर पड़ीं ॥ १४ ॥

किन्तु बहुत अब तक काम हुआ है जितना ।
यह है किसी सरोवर के कुछ बूंदों इतना ॥
जो हलके, [illegible] भर सकती है ।
अब तक तो उसकी सकल नींव ही पड़ी है ॥
अब तक उस का बल का बढ़ा [illegible] अंकुर ही दिखा ।
[illegible] है विलक्षण [illegible] ॥ १५ ॥

बहुत बड़ा पंजाब और वहां का हिन्दू दल ।
है पकड़े चल रहा आज भी उर्दू अंचल ॥
[illegible] उसकी बड़ी [illegible] है ।
उसके उर तंत्री का ध्वनि [illegible] है ॥
[illegible] ।
[illegible] हिन्दी को [illegible] ॥ १६ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
हम कैसे कहें उसे नहीं हिन्दू हित की लौ लगी ।
पर विजातीयता रंग में है उसकी निजता रँगी ॥ १७ ॥

भाषा-द्वारा ही विचार हैं उर में आते ।
वे ही हैं नर नव भावों की नींव जमाते ॥
जिस भाषा में विजातीय भाव ही भरे हैं ।
उसमें फँस जातीय भाव बच रहे रहे हैं ।
है विजातीय भाव ही का हरा भरा पादप जहां ॥
जातीय भाव अंकुरित हो कैसे उलहेगा वहां ॥ १८ ॥

इन सूबों में ऐसे हिन्दू भी अवलोके ।
जिनकी रुचिप्रतिकूल नहीं रुकती है रोके ॥
वे होमर इलियड का पद्य समूह पढ़ेंगे ।
टेनिसन की कविता कहने में उमग बढ़ेंगे ॥
पर जिस में धारायें विमल हिन्दू जीवन की बहीं ।
वह कविता तुलसी सूर की मुख पर आती तक नहीं ॥ १९ ॥

मैं पर भाषा पढ़ने का हूं नहीं विरोधी ।
चाहिये हो मति निज भाषा मधुरता शोधी ॥
जहां विलसती हो निज भाषा रुचि हरियाली ।
वहीं खिलेगी पर भाषा प्रियता कुछ लाली ॥
जातीयभाव बहु सुमन मय है वर उर उपवन वही ।
हो विजातीय कुछ भाव के जिस में कतिपय कुसुम ही ॥ २० ॥

है उर के जातीय भाव को वही जगाती ।
निज गौरव ममता अंकुर है वही उगाती ॥
नस नस में है नई जीवनी शक्ति उभारती ।
उससे ही है लहू बूंद में बिजली भरती ।
कुम्हलाती उन्नति लता को सींच सींच है पालती ॥
है जीव जाति निर्जीव में निज भाषा ही डालती ॥ २१ ॥

उस में ही है जड़ी जाति रोगों की मिलती ।
उससे ही है रुचिर चांदनी तम में खिलती ॥
उस में ही है विपुल पूर्व तन बुधजन संचित ।
रत्न राजि कमनीय जाति गत भावों अंचित ॥
कब निज पद पाता है मनुज निजता पहचाने बिना ।
नहिं जाती जड़ता जाति की निज भाषा जाने बिना ॥ २२ ॥

पाकर जिसका चरित जाति है जीवन पाती ।
है जिसका इतिहास जाति की प्यारी थाती ॥
जिसका पूत प्रसंग जाति हित का है पाला ।
जिसका वर गुण [illegible] है गौरव [illegible] ।
उनकी सुमूर्ति महिमामयी वंदनीय [illegible] ।
निज भाषा ही के अंक में अंकित अपनी है बनी ॥ २३ ॥

उस निज भाषा परम फलद की [illegible] ।
यह सकती है कौन जाति जीती धरती पर ॥
[illegible] न जाति [illegible] दुर्गति [illegible] ।
जो निज भाषा प्रेम [illegible] में हुई न [illegible] ॥
कैसे निज [illegible] है [illegible] ।
जो निज [illegible] अंकुर नहिं उर में उलहे ॥ २४ ॥

है प्रभु अपना [illegible] ।
निज गौरव [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥ २५ ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

पुनिया ने रोकर कहा, "देखो तो चलकर! हाय! बहुते ज़हर खालिया है! मैं आज किसका मुंह देख कर उठी थी। सोनेकी लंका छार हुई जाती है!"

विश्वनाथ ने दौड़ते हुए जाकर देखा जमीन पर मालती छटपटा रही है। मुख श्याम होगया है। विश्वनाथ ने रूंधी आवाज से पुकारा, "मालती!" मालती का मुख और भी विवर्ण होता जा रहा था। बड़े कष्ट से मालती ने धीरे से आंखें खोलीं और सकरुणदृष्टि से स्वामी की ओर देखकर फिर मूँद लीं। विश्वनाथ ने मालती का सिर गोदमें उठा लिया। उसकी आंखों से दो बूंद आँसू मालती के मुखपर टपक पड़े। उसने पेन्सिल से एक कागज पर अपने परममित्र डाक्टर रमानाथ को पत्र लिखा, "शीघ्र आइये, हालत खराब है—विपत्ति में फँसा हूं।" चिट्ठी लेकर नौकर डाक्टर के पास दौड़ता हुआ चलागया।

आदमी के चले जाने पर विश्वनाथ ने पुकारा "मालती!" कुछ आंखें खोलकर मालती ने कहा, "पुकारते हो? क्यों?"

"मालती, तुमने यह क्या किया? क्या कहीं किसी को इस तरह दंड दिया जाता है?" मालती ने कहा—"जीने से क्या लाभ! मैं सब जानती हूं।"

टूटी आवाज से विश्वनाथ ने कहा, "मालती! क्या जानती हो?" उसकी आंखों से दो बूंद मालती के मुख पर फिर टपक पड़े। मालती ने कहा, "प्राणनाथ! रोओ मत। मैं तुम्हें एक दिन भी सुखी न कर सकी, क्षमा करना!"

विश्वनाथ ने मालती का मुख चूमकर कहा, "मालती! तुम्हें पाकर मैं स्वर्ग को भी तुच्छ समझता था। क्या तुम नहीं जानती कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं?"

मालती ने कहा, "जिसे पाकर तुम सुखी हुए हो—"

विश्वनाथ ने बालक की भांति रोकर कहा, "क्षमा करो मालती, क्षमा करो? सब झूंठ है! उस पत्र को मैंने स्वयं अपने बायें हाथ से केवल मज़ाक में लिखा था। ईश्वर साक्षी है! रामकिशोर सब जानता है। हा! मैंने अपने हाथ अपने पैरों कुल्हाड़ी मारी!"

मालती ने कहा, "छिः कोई रोता है—दुख काहेका? एक मालती जाती है जानेदो, हज़ार मालती मिलेंगी।"

विश्वनाथ ने कहा, "नहीं, नहीं, हमारी मालती की तुलना—"

मालती ने कहा "मैं बच जाऊं तो फिर तो कभी उपेक्षा नहीं करोगे?"

विश्वनाथ ने कहा, "अगर अबकी तुम को मैं पाऊंगा, तो तुम्हें मैं अपने हृदय पर ही रखूंगा।"

मालतीने कहा, "छिः कोई ऐसा कहता है! अगर मेरे बचने से तुम सुखी होगे, तो मुझे फिर बचने की इच्छा होती है।" यह कहकर मालती उठ बैठी। विश्वनाथने व्यस्त होकर कहा "यह क्या? न, न लेट जाओ, तुम्हें कष्ट होगा।"

मालती ने कहा, "कष्ट काहे का? क्या तुम सच कहते हो कि वह पत्र जाली है?"

विश्वनाथ ने कहा, "बिलकुल बनावटी! यह लो, तुम्हें स्पर्श करके कहता हूं कि वह झूंठ है।"

मालती ने स्वामी के पैर में अपना सिर रखकर कहा, "क्षमा करो! तुम्हें मैंने व्यर्थ में ही कष्ट दिया। मेरा विषपान भी झूंठ है।"

× × × × ×

डाक्टर रमाकान्त के आने पर विश्वनाथ ने कहा "एकतो तुम बहुत दिनों से मिले नहीं थे। दूसरे आज अप्रैल की पहिली तारीख है। आप जैसे मित्र को छोड़कर भला किसे 'एप्रिल फूल' बनाता! उसीके उपलक्ष्य में श्रीमतीजी ने आपको आज एक मध्यान्ह भोज देने का निश्चय किया है।" डाक्टर रमाकान्त ने हंस कर कहा, "आपका भी तो कुछ नुकसान होगा। पता नहीं भविष्य की सन्तान इस भोज को मेरे उपलक्ष में समझेगी या आपके!"

× × × × ×

रातको मालती ने विश्वनाथ से हंसकर कहा "सखी यमुना आज यहां आई थी, सो झूठ है, मैंने ही तुमसे झूठमूठ सब बातें कह गई थी। यह सब उसी की बुद्धि का फल है। पुनिया भी इस बात को जानती है।"

विश्वनाथ ने मालती को दोनों हाथों से खींच छाती से लगा लिया और कहा "सखी, अच्छा ही हुआ!"

पश्चात्ताप।

[१]
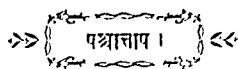
हा! अभाग्यवश साथ तुम्हारा छोड़ा मैंने।
छोड़ा सुखद सनेह हाय मुख मोड़ा मैंने॥
कठिन प्रेम की डोर बीच से तोड़ी मैंने।
सुखकर मैत्री हाय नीच से जोड़ी मैंने॥

[२]

क्या होगा परिणाम नहीं कुछ जाना मैंने।
बुरे भले का नाम नहीं पहिचाना मैंने॥
सब प्रकार से सुखद इसी को जाना मैंने।
इष्टदेव करि हाय इसी को माना मैंने॥

[३]

इसमें ही है सभी शान्ति सुख जाना मैंने।
सर्व सुखों का धाम इसी को माना मैंने॥
नाता इससे अटल भक्ति से जोड़ा मैंने।
विद्या को भरपूर भक्ति से छोड़ा मैंने॥

[४]

माता, पिता, गुरु, लोग, इष्ट-जन ने समझाया।
मित्र मंडली हार गई पर ध्यान न आया॥
वृद्ध मात ले गोद प्यार से समझाती थी।
विद्या के अति योग्य गुणों को बतलाती थी॥

[५]

बेटा, विद्या प्राप्त करो तो सुख पाओगे।
सभ्य जगत् में पुत्र! सभ्य तुम कहलाओगे॥
माता की यह बात ध्यान से सुन लेते थे।
रह जाते चुप चाप न उत्तर कुछ देते थे॥

[६]

कितना ही गुरु, लोग, इष्ट जन समझाते हैं।
लेकिन न होता ख्याल बुरे दिन जब आते हैं॥
हुई अविद्या इष्ट एक दिन खेला खाया।
पर विद्या की ओर न रंचक ध्यान लगाया॥

[७]

पर क्या निपट गँवार सुखी मैं रह सकता था।
इस हिय-बेधक वाक्य बाण को सह सकता था॥
मुझको मूढ़ गँवार लोग कहते कहवाते।
हा! हा! मेरा हृदय छेद कर वे चल जाते॥

[८]

सगे सहोदर इष्ट मित्र ने मुझे न छोड़ा।
कह के मुझ को मूर्ख और है मुख को मोड़ा॥
माता ने भी हाय नेह की दृष्टि छिपाई।
कहते हैं दिल खोल मूर्ख सब लोग लुगाई॥

[९]

वाक्य बाण यह सदा हाय किस भाँति सहेंगे।
कहला करके मूर्ख सदा किस भाँति रहेंगे॥
मुझ दुःखी का कभी हाय उद्धार न होगा।
विद्या से परिपूर्ण हृदय आगार न होगा॥

[१०]

माता मुझ पर अतुल प्यार क्या फिर न करेगी।
क्या सुखमय उपदेश हृदय में फिर न भरेगी॥
गुरु जन का उपदेश मुझे क्या फिर न मिलेगा।
हा! यह मेरा हृदय घाव क्या फिर न सिलेगा॥

[११]

फिर क्या मुझको मित्र-मंडली समझायेगी।
मधुर मधुर उपदेश हास्य-मिस बतलायेगी॥
भ्राता का उपदेश नीतिमय शिक्षाकारी।
कर सकता था मुझे [illegible] सब भाँति सुखारी॥

[१२]

पर उसमें था हाय! नहीं कुछ ध्यान लगाया।
उसी कर्म का आज हाय यह है फल पाया॥
हाय! मधुर उपदेश याद जब आजाता है।
टूक टूक हो हाय कलेजा फट जाता है॥

सुभद्रा कुँवरि।

फिजीप्रवासी भारतवासी।

(लेखक—" ध० न० इ० ")

फि*जी प्रवासी भारतवासी दुष्ट गोरों के पाशविक अत्याचार से यमयातना का अनुभव कर रहे हैं। उनके दुखितहृदय और पातिव्रत-भ्रष्ट भगिनियों के आर्तनाद, खुल्लमखुल्ला, भारतवासियों की सच्ची अकर्मण्यता का दिग्दर्शन करा रहे हैं। उनकी आत्माएं भारत और भारतीयों को शाप दे रही हैं 'भगवान सत्यानाश करें उस देश का जहांपर रहनेवालों के हृदय रूपी ऊसर में जातीय सम्मान रक्षा रूपी बीज नहीं जमते और निर्वंश हो उनका जो पूरे अकर्मण्य, चलतेफिरते कठपुतलों की नाईं अपने देश को भारवत् हैं और जिनके हृदय देशनिवासियों-अपने सगे भाइयों-के आर्तनाद को सुनकर नहीं पसीजते तथा जिनमें अपने भाइयों पर होनेवाले अत्याचारों को सुनकर भी जातीय सम्मान-रक्षा की प्रेरणा नहीं होती। सच है, उस जाति का मटियामेट हो जाना बहतर है जो अपने जातीय सम्मान पर होनेवाले दुसह चोटों को आनन्द से सहती हो और जिसके कानों पर जातीय सम्मान रक्षा की जूं तक न रेंगती हो! कुली-प्रथा जातीय सम्मान की घातक है। कुली-प्रथा से भारतवासियों के ललाट पर कलंक का टीका लग चुका है। ऐसी दशा में अपने ललाट पर के कलंक को धो डालना क्या हमारे भाइयों का कर्तव्य नहीं है? क्या हमारे जातीय सम्मान को जलानेवाली इस वन्हि को बुझाना महा-पाप है? क्या उपनिवेशों में दास्यपंक में लेटते हुए अपने भाइयों का उद्धार करने में हमें विलम्ब करना चाहिये? भारतीय कहलाने वालो, चेतो! हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक तथा करांची से लेकर आसाम तक, एक स्वर से, कुलीप्रथा के विरुद्ध ऐसा घोर आन्दोलन करो, जिससे तुम्हारा कोई भी भाई कुली बनकर कुंभि-पाक में न गिरने पाय! क्या तुम्हें अपने भाइयों पर होनेवाले अत्याचारों का कुछ भी ख़याल है? ठीक है। मसल मशहूर है कि "घर के लोगों की अपेक्षा सुनार से ही कान छिदवाना अच्छा लगता है।" इसके अनुसार ज़रा एक विदेशीय की कुलीप्रथा के बारे में निष्पक्ष सम्मति को ध्यानपूर्वक पढ़ो, कुलियों के दुःखों का पढ़कर ही अनुभव करो और अपने हृदय से पूछो कि कुलीप्रथा को नष्ट करने के विषय में आपके क्या कर्तव्य हैं? इसे ध्यान पूर्वक पढ़ो और आज ही कुली प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन करने का प्रण करो, फिर तुम स्वयं ही देखोगे कि यह कुप्रथा कितनी जल्दी नाम-शेष हुई जाती है! अस्तु।

आज हम जिस पुस्तक की कुछ बातें पाठकों के सामने रखते हैं, उसका नाम है 'Fiji of to-day'* अर्थात् 'वर्तमान फिजी'। यह पुस्तक मि० जे० डबल्यू० बर्टन की लिखी हुई है। जिन लोगों ने पं० तोताराम सनाढ्य की 'फिजीद्वीप में मेरे २१ वर्ष' नामक पुस्तक पढ़ी है, वे जानते हैं कि फिजी में हमारे भारतीय भाइयों और भगिनियों पर कैसे कैसे अत्याचार होते हैं। हमारे भाइयों की दशा के विषय में एक निष्पक्ष विदेशी की क्या सम्मति है, यही बात हमें इस लेख में दिखलानी है। सत्य और तिसपर भी अप्रिय सत्य के लिखने के लिये बड़ी (Moral courage) नैतिक साहस की आवश्यकता है। मिस्टर बर्टन कैसे खरे, साहसी और स्पष्ट लिखनेवाले हैं, यह बात पाठकों को उन अवतरणों से ज्ञात हो जायेगी जो उनकी पुस्तक से लेकर इस लेख में दिये गये हैं।

मिस्टर बर्टन ने शर्तबन्दी में गई हुई भारतीय भगिनियों की दशा का बड़ा ही हृदयवेधक चित्र खींचा है। इन निस्सहाया अबलाओं पर जो जो ज़ुल्म किये जाते हैं उनका एक दृष्टान्त उक्त साहब ने अपनी पुस्तक के २८५-२८६ पृष्ठ पर दिया है। पाठकों के अवलोक-नार्थ हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं। बर्टन साहब लिखते हैं-

It is mid-day. A woman went to work in the *morning, and left her infant, according to the ruls* of the estat, at the planlation creche. The little one had been ill during the night, and the mother had become anxious about it. She stole from her work to see it, and found that it still had fever. She determined to bring it back with her to the field-which is contrary to rules She is doing this when her overseer, a big, burly Britisher, rides along on his chestnut horse. He sees her carrying the child on her hip, and immediatly hurls off English and Hindustani oaths at her.

'Back you go! Take back your kid to the creche, you—'

The woman turns in fear, and puts her hands together in entreaty The whip comes down upon her half naked back and legs The child is struck also. Both are crying and screaming, and the mounted brute almost puts his horse's hoops upon her. A Erurопean happens to be passing.

'You Coward! Call yourself an Englishman to strike a woman like that?'

He laughs uneasily.

'These d———d coolies—especially the women-must taste the whip There is no keeping *them under else.*'

अर्थात् दो पहर का वक़्त है। एक स्त्री सबेरे काम करने के लिये खेत में गई और अपने छोटे से बच्चे को कुली लैन में छोड़ती गई, क्योंकि कोठी का ऐसा ही नियम है। उस स्त्री का बच्चा रात को बीमार था और उसे बच्चे के बारे में बड़ी चिन्ता थी। वह अपने काम पर से छुप कर कुली लैन को अपने बच्चे को देखने के लिये चली गई। पहुंचने पर उसे ज्ञात हुआ कि बच्चे को अब भी बुखार है। उसने विचार किया कि चलो इस बच्चे को अपने साथ खेत पर ले चलूं गो कि यह बात नियम के विरुद्ध है। वह अपने बच्चे को खेत पर ला ही रही थी कि इतने में एक ओवरसियर-एक बड़ा मोटा ताज़ा अंग्रेज़-अपने घोड़े पर चढ़ा हुआ था पहुंचा। उस ओवरसियर ने उस स्त्री को अपने बच्चे को लाते हुए देख कर उसे हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी में गालियां देना शुरू किया। वह ओवरसियर बोला "जाओ, जाओ, वापिस जाओ। इस छौने को कुली लैन को वापिस लेजाओ!"

डर के मारे वह स्त्री लौटने लगी और अपने दोनों हाथ जोड़ कर खड़ी होगई। उस बिचारी की अधनंगी पीठ और पैरों पर ओवरसियर ने कोड़े लगाये! उस लड़के के भी चोट लगी। दोनों रोने चीखने लगे और उस नरपशु ने जो घोड़े पर चढ़ा हुआ था घोड़े के खुर उस स्त्री के ऊपर लगभग रखदिये।

इतने में एक यूरोपियन वहां से निकला और उस ओवरसियर से बोला "तुम कायर आदमी! तुम अपने को अंगरेज़ कहते हो और उस स्त्री को इस तरह मारते हो?

---

* यह पुस्तक Charles. H. Kelly
25-35 City Road
& 26 Pater noster Row E. C. London.
से ७½ शिलिंग में मिल सकती है।

यह ओवरसियर बनी हुई हँसी हँसने लगा और बोला "इन डैम कुली लोगों को और खास करके कुली औरतों को तो अवश्य ही कोड़े का मज़ा चखाना चाहिये। इनका और दूसरा इलाज़ कोई नहीं है।"

भारतीय भगिनियों की यह दुर्दशा पढ़कर कहो किस भारतवासी को दुःख न होगा? मातृस्नेह के कारण ही यह स्त्री अपने ज्वर-पीड़ित बच्चे को खेत पर ले जा रही थी। ऐसी दशा में दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हुई निस्सहाया अबला की अधनंगी पीठ पर कोड़े फटकारना! इस अत्याचार की भी कोई हद है!

खेत पर ओवरसियर हमारी भगिनियों के साथ कैसे कैसे अत्याचार करते हैं, इसका एक दृष्टांत बर्टन साहब ने अपनी पुस्तक के २११-२१३ पृष्ठ पर दिया है। यह दृष्टान्त अधिक विस्तृत है, अतएव उसका केवल अनुवाद ही यहाँ दिया जाता है। बर्टन साहब लिखते हैं—

"जगनन्दनसिंह एक हिन्दुस्तानी ईसाई है इस कारण कुछ गोरे आदमी उससे खास तौर पर घृणा करते हैं। वह बड़ा परिश्रमी है और एक मिल में अच्छी नौकरी पर है। उसकी स्त्री दुर्भाग्यवश रूपवती है। एक दिन जगनन्दनसिंह अपने अंग्रेज़ मिशनरी के पास गुस्से में भरा हुआ जाता है और कहता है—

"पादरी साहब! मेरा नाम ईसाइयों के रजिस्टर में से काट दो, जिससे मेरे कारण ईसाई धर्म पर कलंक न लगे। मैं उस ओवरसियर को, जो मेरी स्त्री के ऊपर काम लेने के लिये नियुक्त है, जानसे मार डालना चाहता हूं।"

पादरी०—"बात तो बताओ, मामला क्या है?"

जगनन्दन "मामला क्या है! वह सुअर मेरी स्त्री से बदमाशी करने के लिये कहता है। मेरी स्त्री ने उसकी बात भी नहीं माना और कहा "मैं तो विवाहिता हूं।" आज के दिन उस दुष्ट पापी ने मेरी स्त्री को खेत में पकड़ लिया और उसके साथ बलात्कार करना चाहा। स्त्री ने अपनी रक्षा के लिये प्रयत्न किया और ओवरसियर के हाथ में काट खाया। जब वह ओवरसियर मेरी स्त्री को क़ाबू में न कर सका तो उसने मेरी स्त्री के सिर में कोड़ा मारा और क्रोध में मेरी स्त्री के तमाम कपड़े फाड़ कर फेंक दिये और उसको लगभग नंगा करके खेत में छोड़ दिया जिससे दूसरी स्त्रियां उस पर हँसने लगीं।"

फिर जगनन्दनसिंह ने एक मैले कपड़े की धज्जीयें दिखाईं जो कि एक चोली की थीं। सम्भवतः उस ओवरसियर ने इस वस्त्र को बहुत ज़ोर से नोंच कर फाड़ा था।

फिर जगनन्दनसिंह बोला, "साहब मैं उस ओवरसियर को मारते मारते अधमरा कर दूंगा।" तब वह मिशनरी जगनन्दन सिंह को शान्त करने लगा और कहने लगा कि तुम अदालत में इस बात की रिपोर्ट कर दो।

यह सुनकर जगनन्दन सिंह ताना देता हुआ और हँसता हुआ बोला "क्या अदालत में? अदालत में सच बोलनेवाले के लिये बिलकुल न्याय नहीं है। नहीं, नहीं; बस अब मेरी छुरी ही न्याय करेगी।"

पादरी साहब०—"ऐसा मत करो, यह ठीक नहीं।"

जगनन्दन०—"साहब, यह ओवरसियर पांच छः औरतों को गवाह बना लेगा। ये औरतें क़सम खाके कह देंगी "ओवरसियर ने उस दिन छुआ भी नहीं बल्कि बात यह थी कि मोती का तास्क (ठेके का काम) बहुत कड़ा था इसलिये गुस्से में आकर स्त्री ने साहब के हाथ में काट लिया है।" यह ओवरसियर भी अपने हाथ के निशान दिखला देगा।

पादरी साहब ने जगनन्दनसिंह की शिकायत ठीक समझी और चुप रह गये। तो भी उन्होंने जगनन्दन से कहा "भाई, धीरज रक्खो और क्षमा करो!"

जगनन्दन सिंह ने कहा "क्या आप मुझ से कहते हैं धीरज रक्खो! वाह वाह! क्या मैं उसे क्षमा करूं? आप ही बताओ कि यदि यह ओवरसियर ऐसा कार्य आपकी स्त्री के साथ करता तो क्या आप उस हालत में धीर न रखते? क्या आप उसे क्षमा प्रदान करते?"

इस बात के विचार में आते ही पादरी साहब का खून खौलने लगा। वे सोचने लगे कि यदि यह काम मेरी स्त्री के साथ किया जाता तो मुझे तभी सन्तोष होता जब कि मैं ओवरसियर का काम तमाम कर देता। तब पादरी साहब जगनन्दन सिंह से सहानुभूति प्रकट करने लगे। बहुत देर तक बातचीत करने के बाद जगनन्दन सिंह का क्रोध शान्त हुआ और उसने बड़ी मुश्किल से पादरी साहब को वचन दिया कि मैं उस ओवरसियर से बदला न लूंगा।"

इस पर टिप्पणी करते हुए बर्टन साहब लिखते हैं

"So the scoundrel escaped punishment, and English prestige among this people suffered another loss" अर्थात इस प्रकार यह दुष्ट ओवरसियर साफ़ बचगया और भारतवासियों के हृदय में अंग्रेज़जाति की इज्ज़त एक दर्जे और कम हो गई।

यह दशा तो जगनन्दनसिंह की स्त्री की है जोकि ईसाई है और जिसकी सिफ़ारिश पादरी साहब भी कर सकते हैं। अब रही हिन्दू और मुसलमान स्त्रियां सो उनकी दुर्दशा के विषय में हम क्या कहें, पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं।

आगे चलकर इन्हीं गोरे ओवरसियरों के विषय में बर्टन साहब लिखते हैं—

'कभी कभी—बहुत करके—भारतीय स्त्रियों के साथ गोरे आदमी जो बुरा बर्ताव करते हैं वही मारपीट का कारण होता है। कुछ अंग्रेज़ लोग यह ख़याल करते हैं कि कृष्णवर्ण स्त्रियों को अपने शरीर पर कुछ अधिकार नहीं है, क्योंकि वे कृष्णवर्ण हैं।

फिजी में कुछ अंग्रेज ऐसे हैं जो कि किसी स्त्री को पवित्र नहीं समझते हैं और यदि एक स्त्री या उसका पति सतीत्व बेचने से इंकार करे तो वे इस बात पर विश्वास ही नहीं करते हैं। सौभाग्य से ऐसे लोगों की संख्या अब कम होती जाती है।'

एक जगह बर्टन साहब ने और भी लिखा है—

'जब कोई ओवरसियर गुंडा, कामी और जंगली होता है तो शर्तबंदी की प्रथा के कारण कुलियों को मनमाने कष्ट दे सकता है, वह उनसे बदला ले सकता है और अपनी कामेच्छाओं को, बिना पकड़े जाने के डरके, पूर्ण कर सकता है। ऐसे आदमी को पाप कर्म से रोकने के लिये बस एक दवाई है यानी कुली की गन्ना काटने की छुरी'। (देखो पृष्ठ २८५) ओवरसियरों के इन दुष्ट कार्यों का बड़ा बुरा परिणाम होता है, बहुतसा रक्त पात होता है और कितनी ही जानें भी जाती हैं। भारतवासी सतीत्व को कितनी बड़ी चीज़ समझते हैं, यह बात कहने की आवश्यकता नहीं। जब वे देखते हैं कि भारतीय भगिनियों पर अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं तो उनका खून खौलने लगता है और वे एकाध ओवरसियर का काम तमाम कर देते हैं, फिर चाहे उन्हें फांसी भले ही होजावे। बर्टन साहब लिखते हैं, "भारतवासी डरनेवाले आदमी नहीं होते। जहां एक बार उन्हें क्रोध आगया कि बस फिर संसार की कोई शक्ति उन्हें नहीं रोक सकती। एक दुराचारी ओवरसियर ने एक हिन्दुस्तानी स्त्री का सतीत्व ज़बरदस्ती नष्ट किया था। यह ब्राह्मणी थी और इसके कितने ही मित्र थे।......इन लोगों ने उस ओवरसियर से इस ब्राह्मणी के सतीत्व नष्ट करने का बदला लेने का निश्चय कर लिया। इन्होंने बदला ले लिया। उस ओवरसिअर के टुकड़े टुकड़े कर डाले। जो दुर्गति इन लोगों ने उस ओवरसियर की की वह अवर्णनीय है। बदला लेकर ये लोग बड़ी शान्ति के साथ फांसी पर चढ़ गये।"

कुली लैनों के विषय में बर्टन साहब ने जो कुछ लिखा है उसका अनुवाद यह है।

'ये लोग तारकोल से पुती हुई कोठरियों में रहते हैं। हरएक कोठरी दस फीट लम्बी और सात फीट चौड़ी होती है। इनमें कोई फर्श बना हुआ नहीं होता। हाँ, गोबर से लीप कर कुली लोग जो फर्श बना लेते हैं उसी को फर्श समझना चाहिये। इनमें टीन की छत होती है। इन छोटी छोटी अभागी कोठरियों—या यों कहिये सन्दूकों—में तीन कुली या एक कुली अपने कुटुम्ब के साथ, खाते पीते और सोते हैं। इस गुफा में उनकी सारी सांसारिक धन सम्पत्ति रहती है। इसी में चूल्हे के लिये जगह निकालनी होती है और यही शयनस्थान भी होता है। एक दो कुत्ते और चिड़ियों को भी यहीं स्थान दिया जाता है अथवा दो बकरियां भी इसी में रहती हैं और इनके साथ और जो जानवर होते हैं वे भी। इस प्रकार एक दस फीट लम्बी और ७ फीट चौड़ी कोठरी में

-जो कम्पनी ने इन्हें कृपा कर दी है-सब जानवर और तीन आदमी मिलजुलकर रहते हैं ! कम्पनीवाले बारबार कहा करते हैं कि भारतवासियों को अपने घर-भारतवर्ष-में इनसे भी बुरी जगहों में रहना पड़ता है। ऐसे कितने ही बहाने वे बताया करते हैं, लेकिन चाहे कुछ हो हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि जिन कोठरियों में कुलियों को रहना पड़ता है वे बिलकुल ही छोटी और स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त ही हानिकारक होती हैं।

बर्टन साहब ने इस बात की भी शिकायत की है कि फिजी की गवर्मेंट प्रवासी भारतवासियों की शिक्षा के लिये कुछ भी प्रबन्ध नहीं करती। बर्टन साहब लिखते हैं—

'बहुत लड़ाई झगड़ा करने के बाद कहीं मिशनरी लोगों को यह पता मिला कि तुम कुलियों के लड़कों को पढ़ा सकते हो। कम्पनीवालों को इस बात का डर था कि कहीं यदि हिन्दुस्तानियों को शिक्षा—विशेषतया अँग्रेज़ी शिक्षा—दी जाने लगी तो व कुलीगिरी के काम के नहीं रहेंगे और यदि कुली ईसाई होगये तो फिर, सब मनुष्यों के भाई भाई होने के ऊटपटांग विचार उनके दीमाग में आने लगेंगे !'

फिजी प्रवासी भारतीयों की नैतिक स्थिति बहुत खराब है। यह बात बर्टन साहब ने अपनी पुस्तक के २७४ वें पृष्ठ पर लिखी है। बर्टन साहब लिखते हैं "इस प्रकार लैनों में हिन्दुस्तानियों के आचरण की सबसे बुरी बातें ज़ोर पकड़ती हैं। यदि किसी आदमी में कुछ भी सहृदयता हो तो संसार का सब से अधिक दुःखप्रद और विषादकारक दृश्य उसके लिये यह होगा कि वह फिजी की कुली लैन को देखे। प्रत्येक मनुष्य के चहरे से नीचता और दुर्गन्ध ही दीख पड़ती है। दुराचारिणी पापमुखी स्त्रियां पातकी पुरुषों पर ताने मारती हुई दीख पड़ती हैं अथवा एक दूसरे से ज़ोर ज़ोर से लड़ती हुई और क्रोध में मुँह बनाती हुई दीख पड़ती हैं। इस दृश्य को देख कर दर्शक के हृदय में बड़ी करुणा उत्पन्न होती है और साथ ही साथ बड़ी घृणा भी उत्पन्न होती है।"

हमारी समझ में फिजी प्रवासी भारतीयों की नैतिक दुर्दशा का कारण यही है कि वहां स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से बहुत कम है। इसमें हमारे भाइयों का बहुत कम दोष है। असली दोष तो है इस दुष्ट Indenture system यानी 'कुली-प्रथा' का जिसके कि अनुसार १०० मर्द पीछे कुल ४० स्त्रियां ही भेजी जाती हैं। इसपर भी यह बात आवश्यक नहीं है कि ये ४० स्त्रियां इन कुलियों की स्त्री ही हों ! कुली डिपो में दुष्ट आरकाटी घोड़ा घोड़ियों की तरह जोड़ा मिलाकर किसी की स्त्री किसी को दे देते हैं और धर्म और जाति का कुछ भी ख्याल नहीं करते ! उन्हें ब्याही, बिनब्याही, सधवा, विधवा की कुछ पर्वाह नहीं !!! ऐसी दशा में यदि प्रवासी भाइयों की नैतिक अवस्था बहुत बुरी हो जावे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

बर्टन साहब ने अपनी पुस्तक में एक अध्याय लिखा है। जिसका नाम है "Muhammad, Krishna or Christ." इस अध्याय में उन्होंने इस बात पर बहस की है कि फिजी में किस धर्म का आधिपत्य रहेगा, मुसलमानी मज़हब का, हिन्दूधर्म का या ईसाईमत का।

बर्टन साहब लिखते हैं कि हिन्दुओं को ईसाई बनाना अत्यन्त कठिन है। आप लिखते हैं "ईसाई लोगों के लिये यह काम बहुत ही मुश्किल है कि भारतवासियों को वे ईसाई बनावें। वे भारतवासी कोई सीधे सादे आदमी नहीं है जो झट ईसाई होजावें। ये दुनिया की एक सबसे अधिक सूक्ष्मदर्शी और तीव्र बुद्धि जाति के हैं। ये लोग फिजियन लोगों की तरह, जिनके कि पुरखे थोड़े दिन हुए नर मांस भक्षण करते थे, नहीं हैं। ये लोग उस समय में पूर्णतया सभ्य होने का अभिमान कर सकते हैं जब कि हम लोगों के पूर्वज भेड़ियों की खाल पहिने हुए और शरीर को रंगों से चित्रित किये हुए, जंगलों में घूमते थे।"

आगे चलकर बर्टन साहब ने लिखा है "भारतवासी बिना ईसाई धर्म के ही बिलकुल सन्तुष्ट हैं और बाइबिल उनके लिये एक किस्सा कहानी मात्र है। उसे वे उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से वे हिन्दू-धर्म की कल्पित कथाओं को देखते हैं। जिन लोगों का भारतवासियों से घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहा, वे इस बात को नहीं जानते कि भारतवासियों पर धार्मिक प्रभाव डालना कितना कठिन है और जिन लोगों का सम्बन्ध रहा भी है, उनमें से भी थोड़े ही इस बात को समझते हैं।"

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओं को ईसाई बनाना ज़रा टेढ़ी खीर है, लेकिन ईसाई लोग जितने परिश्रम के साथ फिजी में प्रयत्न कर रहे हैं इससे हमें भय होता है कि वे एक न एक दिन अपने कार्य में सफल होंगे। इस समय भी लगभग ७० हिन्दू ईसाई होगये हैं। हज़ारों रुपये व्यय करनेवाले और अविश्रान्त परिश्रम करनेवाले ईसाई धर्म के प्रचारक यदि अपने कार्य में सफल न होंगे तो और कौन होगा ?

फिजी के मुसलमान लोग भी अपने धर्म के प्रचारार्थ यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ हिन्दू मुसलमान भी होगये हैं।

हिन्दू कैसे मुसलमान बनाये जाते हैं, इसका एक दृष्टान्त बर्टन साहब ने अपनी पुस्तक के ३२४ वें पृष्ठ पर दिया है। उसका अनुवाद यह है:—

"एक मुसलमान, जहां हिन्दूलोग रहते हैं वहां, चुपके से दूकान खोलता है। ६ महिने तक तो वह अपने धर्म का प्रचार करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं करता। वह हिन्दू-त्यौहारों के अवसरों पर चन्दा भी देता है और इस प्रकार हिन्दुओं का विश्वासपात्र बन जाता है। धीरे धीरे वह अपना काम शुरू करता है। शनैः शनैः वह कटाक्ष करने लगता है कि हिन्दू धर्म में कुछ सुधार करने की आवश्यकता है और मैं बतला सकता हूँ कि कौन कौन से सुधार उसमें होने चाहिये। आखिरकार एक न एक हिन्दू चंगुल में फँसही जाता है। वह मुसलमान उसे अपने घर ले जाता है और उसके साथ अपनी लड़की की शादी कर देता है। वह हिन्दू कभी फिर अपने पुराने हिन्दूधर्म को वापिस नहीं जाता। जब हिन्दू के सम्बन्धी उसे (हिन्दू को) तंग करते हैं तो वह मुसलमान उसे साहस दिलाता है और कहता है कि दृढ़ बने रहो। देखो, जब हज़रत मुहम्मद साहब और अबूबकर को उनके दुश्मनों ने घेरा था और वे गुफा में जा छुपे थे तब हज़रत महम्मद साहब ने कहा था "भाई अबूबकर, तुम क्यों डरते हो ? अभी हम दो हैं लेकिन ख़ुदा की मेहरबानी से हम तीन हो जावेंगे।"

उक्त दृष्टान्त से यह प्रकट होता है कि मुसलमान लोग, अन्याय से, अपने धर्म के फैलाने में लगे हुए हैं। अब रही हिन्दूधर्म के प्रचार की बात, सो इस विषय में कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। बर्टन साहब भी लिखते हैं कि हिन्दूधर्मवाले अपने धर्म प्रचार की कुछ परवाह नहीं करते।

सनातनधर्मी तो समुद्रयात्रा करना घोर पाप समझते हैं। घरपर बैठे हुए दुनिया भर के दुष्कर्म करो कोई चिन्ता नहीं, लेकिन प्रवासी भाइयों में हिन्दू धर्म के प्रचारार्थ जाना यह घोरतम पाप इनसे कदापि नहीं होसकता ! अब रहे आर्यसमाजी सो उन्हें ब्राह्मणपार्टी और बाबू पार्टी इत्यादि के घरेलू झगड़ों से फुर्सत ही नहीं ! ये लोग दम तो यह भरते हैं कि अमरीका में वैदिकधर्म का नाद बजावेंगे लेकिन करते धरते खाक नहीं। अपने चुटकुले भजनों में ये लोग गाते हैं—

> दुनिया में चारों वेदों का परचार करेंगे
> जो कुछ कहा ऋषी ने उसे सर पै धरेंगे

पुनश्च

> आवेंगे सब आप ही उनसे लिखा है [illegible]
> गुरुकुल का ब्रह्मचारी [illegible] बन रहा है

आर्यसमाज को सोचना चाहिये कि अमरीका में वैदिक धर्म का झंडा गाड़ना और यूरोप में वैदिक धर्म का नाद बजाना यह कोई हँसी खेल नहीं है, दुनिया में चारों वेदों का परचार करना गप्पों का मठा नहीं है और अरब के मूर्खों की बात एक कोरी गप्प और ढकोसला है—ये सब मन के लड्डू हैं। इनसे भूख कदापि नहीं बुझ सकती। इनसे कहीं अधिक उपयोगी और सरल कार्य यह है कि जो २० लाख भारतवासी विदेशों में रहते हैं उनके लिये कम से कम इतना प्रबन्ध तो किया जावे कि वे हिन्दू बने रहें।

अन्तमें हम जगत के पाठकों से अनुरोध करते हैं कि यदि हो सके तो एक बार वे Fiji of to-day को अवश्य पढ़ें।*

---

* [illegible]

मातृ-विनय ।

रवि-किरण-प्रकाशी चन्द्रमा के समान ।
उस परमपिता के तेज से भासमान ॥
प्रिय जननि हमारी शान्ति, सन्तोष धाम ।
तुव सुखद पदों में कोटि बार प्रणाम ॥ १ ॥

यदपि हम तुम्हारे सर्वथा हैं अयोग्य ।
तव-सुख हम को भी है नहीं आज योग्य ॥
तदपि निज सुतों को भूल जाना न माता ।
जननि बिन तनय क्या है कहीं त्राण पाता ॥ २ ॥

तनय वह तुम्हारे देवि ! थे सर्व धन्य ।
तुम पर जिनकी थी भक्ति श्रद्धा अनन्य ॥
तुव हित निज प्यारे प्राण वे वारते थे ।
तुव विमुख जनों को शीघ्र संहारते थे ॥ ३ ॥

जलधर करता है छत्र छाया ललाम ।
वर पद-रज धोता सिन्धु हो पूर्ण काम ॥
बन विमुख हमी हैं हो रहे सौख्य हीन ।
निज पद-च्युत होके कौन होता न दीन ॥ ४ ॥

अब निज तनयों को अंक में मातु धारो ।
कुसमय-सरिता में डूबने से उबारो ॥
वर सुखकर बातें जो नहीं मानते हैं ।
वह निज जननी के प्रेम से मानते हैं ॥ ५ ॥

ठाकुरप्रसाद शर्मा ।

विनीत-विनय ।

गुण, गौरव, ज्ञान सभी नर में
सुख, शान्ति, स्वतन्त्रता खो चुके हैं।
धन, धाम हैं दीन दुखी हैं सदा
अपने सब भाग्य को रो चुके हैं।
वश के दुःख, शोक कृतघ्नता की
जग में नदियाँ भी डुबो चुके हैं।
हम में कुछ शेष रहो अब क्या
जितना कुछ होना था हो चुके हैं ॥ १ ॥

शेष रहा सकता नहीं कोई
कहीं हम से अब हीनता में।
टेक गये भारत ही हैं
डूब एक हैं एक मलीनता में ॥
पावेंगे पाप से त्राण न येन
प्रभाव है पाप की पीनता में।
देखो दयानिधि ! हैं अब तो
दुनिया से बढ़े हुए दीनता में ॥ २ ॥

दुःख है मूल सुखों का सदा
तो अयोग्य यों दुःख दिखाना न था।
उन्नति मन्त्र को भूल गए,
तो असम्भव यों गिर जाना न था ॥
बैर, विरोध परस्पर था
तो बुरा यों बुरा फल पाना न था।
दीन के बन्धु हैं आप तो मैं
कहूं कैसे कि दीन बनाना न था ॥ ३ ॥

मेल रहा न स्वदेशियों में
मति नष्ट समूल हुई सो हुई।
माधवी भाग्य हमारी रहा !
हम से प्रतिकूल हुई सो हुई ॥
भूल गए भ्रम में भय के हम्हें
भूल के शूल हुई सो हुई।
दीजे भुला भुवनेश ! इसे
हम से यह भूल हुई सो हुई ॥ ४ ॥

हम दीन हैं दीनदयालुता की
विरदावलि आप संभालिएगा।
अघ ओघ सने हम हैं अघनाशन !
नाम विचार के तारिएगा ॥
कितने बिगड़े हैं विलोकिए तो
बिगड़ी अब आप संवारिएगा।
हम जैसे हैं तैसे हैं पूछिएगा
निज ओर "सनेही" निहारिएगा ॥ ५ ॥

तरु कामना का हम रोप चुके
घनश्याम ! उसे करुणा जल दीजिए।
सरदी गरमी से बचा के उसे
कढ़ने कला-कौशल-कोंपल दीजिए ॥
खिल जाँय हरे ! कलियाँ दिल की
उनमें फिर साहस का फल दीजिए।
बलि हों बलवान के हाथों नहीं
हृदयों में हमारे वही बल दीजिए ॥ ६ ॥

बीती सो बीत 'सनेही' गई
उसका नहीं देना उलाहना है।
दीनता ओर बढ़ा रहे हैं
दयासागर आपका याहना है ॥
और से माँगने में जग में
है हँसी प्रभु की न सराहना है।
चाहिए क्या हमें और प्रभो !
चहैं आप हमें यही चाहना है ॥ ७ ॥

सनेही ।

ग्वालियर राज की पाठ्य पुस्तकें ।

राजा के अनेक कर्त्तव्य हैं, अतः वे गिनाए नहीं जा सकते । राजा को अपनी प्रजा के सुखार्थ कैसा और कितना परिश्रम उठाना पड़ता है, इस विषय से वे भलीभांति परिचित हैं, जो किसी देशी राज के निवासी हों और वे उस राज के स्वामी की पालिसियों तथा उसके कार्यों से परिचित हों । ब्रिटिशराज की तो बात ही दूसरी है । इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है कि ब्रिटिशराज की प्रजा देशीराज की प्रजा से अधिक सुशिक्षित रहती है । इसके कई कारण हैं । उन कारणों में से मुख्य कारण यह है कि उन लोगों के सामने अच्छे २ आदर्श होने से वे स्वभावतः ही अच्छे मार्ग की ओर झुकते हैं । लोगों का कहना है कि *ब्रिटिश प्रजा* को, *किसी देशी* राज की प्रजा की अपेक्षा, विचारस्वतंत्रता तथा आचारस्वतंत्रता अधिक रहा करती है । पर, हम इस बात से बिलकुल सहमत नहीं हैं । बहुधा कई लोग उक्त भ्रमवश ही निरी बेतुकी बातें बका करते हैं और कहा करते हैं कि 'देशी राज्यों में रहने की अपेक्षा ब्रिटिश राज में रहना अधिक सुखावह है' पर यह उनकी देशीराज विषयक निरी अज्ञता का द्योतक है । हम उन्हें मुंहतोड़ उत्तर देना नहीं चाहते । यदि वे लोग स्वयं ही किसी देशी राज में जाकर रहेंगे तो उन्हें यहां की प्रजा की विचार और आचार स्वतंत्रता मालूम हो जायगी । हां, उन्हें यहांपर कुछ संकुचित विचारों के लोग तो जरूर ही मिलेंगे, पर इसका कारण यथोचित शिक्षा या उनके सुशिक्षित होने के लिये यहांपर अच्छे २ आदर्शों का अभाव ही है । तथापि वे लोग जो भ्रम वश हो देशी राज्यों के विषय में निरी बेतुकी बातें हांका करते हैं, इस बात को समझ लें कि देशी राज दिनों दिन तरक्की किये जाते हैं और देशी राज के लोग—जो उनकी समझ से पिछड़े हुए हैं—उन लोगों से बहुत ही अच्छे हैं जो ब्रिटिश राज में रहते हैं । ज़रा वे एक बार किसी देशी रियासत में या उस रियासत की राजधानी में जाकर देखें तो सही, उन्हें कैसा अजीब दृश्य दिखाई देगा । वहां पर वे छोटे से लेकर बड़े से बड़े राज कर्मचारियों को भी अपने ही भाइयों को देखेंगे । क्या देशी रियासतों में बड़ी से बड़ी नौकरियां भी अपने ही भाइयों को मिलना हमारे लिये कम गौरव की बात है ? हम दावे के साथ कहते हैं कि उन्हें जैसी स्वतंत्रता का सुख किसी देशी राज में रहने की अपेक्षा अन्यत्र कहीं पर भी नहीं मिल सकता । वर्तमान समय में प्रायः सारी देशी रियासतों में नागरी भाषा का दौर दौरा है, [illegible] के लिये [illegible] नहीं है और कई देशी रियासतों में मुफ्त [illegible] अनिवार्य शिक्षा (Free & compulsory Education) का प्रचार है । यहां तक कहें, देशी रियासतों में वे सारे साधन मौजूद हैं, जो देशी राज की प्रजा को अच्छा सिटीज़न-अच्छा नागरिक बनाने के लिये आवश्यक हैं । यह यही कारण है कि आज बड़ौदा, मैसूर, ग्वालियर जैसे देशी राज भारतवर्ष में आदर्श राज गिने जाते हैं । देशी राजा को अपनी प्रजा के सुख के लिये छोटी २ बातों की ओर भी ध्यान देना पड़ता है, परन्तु ब्रिटिश राज की प्रजा को बहुत सी, [illegible] आवश्यकताओं पर आन्दोलन कर, उन्हें पूरी कराना पड़ता है । [illegible], किसी आवश्यकताओं पर [illegible] आन्दोलन करना और उन्हें पूरी करा लेना प्रजा को Constitution [illegible] है । पर, राजा को और प्रजा की आवश्यकता पर [illegible] ध्यान देना उसकी [illegible] प्रणाली का एक नमूना है । इस लेख के द्वारा हमें एक देशी राजा की [illegible] का ही एक नमूना बतलाना है । [illegible] महाराजा ग्वालियर की प्रजापालन प्रणाली के विषय में कुछ लिखकर [illegible] दिखलाने का [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

विद्वत्ता में भी महाराजा साहिब कुछ कम नहीं हैं, क्योंकि आपने 'ज़मींदार हितकारी' तथा 'पशु चिकित्सा' जैसे सुवृहत् ग्रन्थ रच कर हिन्दी साहित्य के एक अंग की पूर्ति की है । महाराजा साहिब उन्नतिपथ के कैसे अनुगामी हैं, इसका पता आपने अपने राज में देवनागरी भाषा का प्रचार किया है, इससे भलीभांति चलता है । सारांश, 'हिन्दी जगत्' महाराजा साहिब की विद्यारसिकता को जानता है । आपने 'हिन्दी जगत्' पर बहुत कुछ उपकार किये हैं, अतएव 'हिन्दी जगत' आपका चिरकृतज्ञ है । महाराजा साहिब ने अपनी प्रजा के सुविधार्थ एक और सुकार्य कर 'हिन्दी जगत्' को चिरआभारित किया है, अतएव महाराजा साहिब के उस सुकार्य से हिन्दीसंसार का परिचय करा देना अत्यावश्यकीय है । महाराजा साहिब का वह कार्य है, अपने राज की हिन्दी पाठशालाओं में स्वतंत्र हिन्दी पुस्तकें जारी कराना । अब तक ग्वालियर राज के स्कूलों में कैसी पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं, इसका उल्लेख हम आगे चल कर करेंगे । ये पुस्तकें राज की ओर से नहीं बनी थीं और न राज से उनका कुछ सम्बन्ध ही था । यह विषय महाराजा साहिब को बहुत ही खटका, अतएव आपने अपने राज की *पाठशालाओं में पढ़ाई* जाने के लिये स्वतंत्र पुस्तकें बनवाना ही उचित समझा । महाराजा साहिब के आदेशानुसार वे स्वतंत्र पुस्तकें बन गईं और ग्वालियर राज की पाठशालाओं में पढ़ाई भी जाने लगीं । महाराजा साहिब ने हिन्दी भाषा के उद्धारार्थ जो कुछ कार्य किये हैं, वे तो प्रशंसनीय हैं ही, पर, आपका अपने राज की पाठशालाओं के लिये स्वतंत्र पुस्तकें निर्माणित करने का कार्य विशेष प्रशंसनीय है । महाराजा साहिब की इस सुकृति की ओर हिन्दी जनता का ध्यान आकर्षित होना योग्य था, पर उसे वैसा करने का अभी तक कोई मौका नहीं मिला । हमें भी, उसके विषय में आज ही लिखने की कोई आवश्यकता नहीं थी, पर, हम विशेष कारणवश इस विषय पर *कुछ लिखने के लिये बाध्य किये गए* हैं । हम ग्वालियरराज के निवासी हैं, अतएव ग्वालियर की प्रजा के नाते में हम अपना नाम समझते हैं । दूसरे हिन्दी-पत्र सम्पादक के नाते भी *हम महाराजा साहिब की इस सुकृति* पर दृष्टिपात करना अपना पवित्र उद्देश्य समझते हैं । यद्यपि ग्वालियर राज की पाठशालाओं में प्रचलित हिन्दी पुस्तकें हमें समालोचनार्थ प्राप्त नहीं हुई हैं, तथापि यह भी कोई आवश्यक नहीं है कि पत्रसम्पादक केवल समालोचनार्थ आई हुई पुस्तकों पर ही अपने विचार प्रकट करें और अन्य पुस्तकों के विषय में एक पंक्ति भी लिखना पाप[illegible] समझें । हमारी समझ से तो पत्रसम्पादक को संसार की सारी नई और पुरानी बातों पर अपने विचार प्रकट करना अपना मुख्य उद्देश्य समझना चाहिये । इसी बात को सोच कर हम महाराजा साहिब के इस कार्य पर दृष्टिपात करते हैं । आशा है, हमारी इस आलोचना की ओर ग्वालियर राज के शिक्षा विभाग के कर्मचारियों तथा ग्वालियर की [illegible] हुए [illegible] के महाशयों का ध्यान आकर्षित होगा ।

यह कोई बात नहीं है कि राजा की आज्ञा से किये गये सभी कार्य विशेष होते हों । [illegible] राजा [illegible] प्रजा के हितसाधन में किसी बात की कमी नहीं करना, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

वाह कविजी! क्या बात कहनी है! बलिहारी है आप की तथा आपके इस काव्य की! आपकी इस तुकबन्दी को देख कर कोई तुक्कड़ भी तो अवश्य ही शरमा जायगा! फिर औरों के विषय में तो कहना ही क्या है! पुस्तक के अन्त में आपने बुझौवल रख कर लड़कों की तर्कनाशक्ति का बढ़ाने का भी अच्छा यत्न ढूंढ निकाला है। इस पुस्तक के साथ ही—

शील शिक्षा पहिला भाग

भी पढ़ाया जाता है। अंग्रेज़ी Moral Reader का आपने हिन्दी अनुवाद किया है 'शील शिक्षा (!)'। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर लिखा है 'सात वर्ष की उमर तक।' पर, इस वाक्य से किसी विशेष अर्थ का बोध नहीं होता। यदि इसका यह अर्थ समझ लिया जाय कि यह 'शिक्षा' केवल सात वर्ष की उमर तक के बालकों को दी जाय तो यह बात भी अनुचित दीख पड़ती है। एक तो सात वर्ष का बालक अच्छी तरह पढ़ भी नहीं सकता और यदि वह पढ़ना सीख भी ले तो वह उन बेढंगे शब्दों को, जिनका उपयोग करने का लेखक महाशय को रोग होगया है, किसी प्रकार से भी समझ नहीं सकता। दूसरे यह भी एक विचारणीय बात है कि यदि उस कक्षा में, जिसके लिये यह पाठ्य पुस्तक नियत की गई है, बड़ी उमर के लड़के भी पढ़ते हों तो उन्हें यह पुस्तक पढ़ाई जाय या नहीं! इसके भी 'मिठाई की लालच दे के उनको ज़ेवर लेने की ग़रज़ से बहका ले जाते हैं' 'यदि तू कोट से है बड़ा, दे मुर्दे को जान' 'खबर तोहि का है नहीं, कि है यह जीव असो' जैसे गद्य पद्य के नमूनों के देखने से लेखक की लेखन-शक्ति तथा कविता-शक्ति का परिचय मिलता है। हां, इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है कि इस पुस्तक के विषयों का चुनाव अच्छा किया गया है, जिसके उपलक्ष्य में हम लेखक महाशय का अवश्य ही अभिनन्दन करेंगे। यदि इसकी भाषा तथा कविता निर्दोष रहती तो ये पुस्तकें हिन्दी में बिलकुल अनूठी कहलाती तथा हम अन्यान्य देशी राजाओं से भी यही या इसी तरह की पुस्तकें उनके राज की पाठशालाओं में पढ़ाई जाने का अनुरोध करते। अस्तु।

लड़कों की दूसरी किताब

की आरम्भिक ईश्वर प्रार्थना भी ग़ज़ब की है। कहते हैं, भगवान की प्रार्थना टूटे फूटे शब्दों में ही करनी चाहिये। हमारे कविजी ने भी इने-गिने-चुने टूटे फूटे शब्दों में ही ईश्वर प्रार्थना की है। ज़रा सुनिये तो सही। कविता कैसी भक्तिरस से सनी हुई है और इसे सुनकर भगवान कैसे द्रवीभूत नहीं होंगे!

ईश्वर तू है जगत का, पालक सिर्जनहार (!)
तेरे सारे हुक्म से, चलत सकल संसार॥
तेरी नीति अपार है, तेरा राज अटल।
समझ न जावे सकल हैं, हम पापी दुर्बल॥
बिन तेरी पूंग (पूरी या कचौरी!) दया, चल न सकें एक पग।
बड़े २ अकल भरे, ऋषि मुनि अरनो मग॥

ठीक! ख़ूब ठीक!! कविजी, दया रखिये। यदि आप जैसे सोलहर रंगरूट हिन्दी अखाड़े में भर्ती हो जायेंगे तो सचमुच ही पिंगल महाराज का नाम निशान तक नहीं रहेगा। हम तो आपकी कविता को देखकर घबराते हैं और हा हा खाते हैं। अजी महाराज, आप में कविता करने की तो ऐसी अपूर्वशक्ति है कि उसी शक्ति के कारण आपको आज इतनी दूर आलोचना के मैदान में आना पड़ा है। लेखकाचार्य बन बैठने का दावा भी आप जैसा वीर ही कर सकता है। 'बहुत से आप लोगों में ऐसे होवेंगे कि जो दिन-भर में कई बार आयने में अपना मुख देखते होंगे' यह आपकी वाक्य रचना की साक्षी बताती है। आप लिखने में ऐसे २ शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो आपस में कभी लड़े नहीं रहते। ज़रा इस 'कि' की उलझन को तो देखिये:—

"उस्ताद ने कहा कि कारण यह है कि छोटे और मोंथे जानवर जिनमें कि सामर्थ्य और साहस नहीं होते वे उन्हें धमकाने की कोशिश करते हैं कि जिन्हें देख सचमुच वे डरते हैं।"

हिन्दी-वाक्य-सागर में गोता लगाकर आपने लिखावट के चिन्हों के नियमों का भी अच्छा पता लगाया है। आपके चिन्हों के प्रयोग करने का उदाहरण तो देखिये—

"जब दिमाग़ को चोट लगती है तो हम कुछ काम नहीं कर सकते और इसमें अगर ज्यादा चोट आगई तो हम जो भी नहीं सकते यह हमारे शरीर से जो हम चाहते हैं वह करता है. जब हम यह चाहते हैं कि हमारे हाथ या पैर कुछ काम करें तो हम अपने दिमाग़ से कह देते हैं वह उनके लिये हुक्म भेज देता है, और वे उस हुक्म को तुरन्त मान लेते हैं"

अब आपकी इस पुस्तक के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है। अब

शील शिक्षा दूसरा भाग

के विषय में लीजिये। इसमें भी कई बेढंगी और बेमुहाविरे की बातें पाई जाती हैं। सब से अधिक खटकनेवाली बात है यही पुनरुक्ति दोष। इसमें कुल १० पाठ हैं, जिनमें से 'कृतज्ञता' और 'सच्चाई का बल' इन दो पाठों के अतिरिक्त शेष सभी पाठ वे ही हैं जो इसके पहिले भाग में हैं। सारांश दोनों का एक ही है। हां, विषय-विवेचन में कुछ फेरफार कर दिया गया है। तिस पर भी दोनों भागों के कुछ पाठों के कुछ२ वाक्य तो बिलकुल मिलते जुलते हैं। भाषा भी 'ज़रूरियात से फ़ारिग़ होना' जैसी है। इस पुस्तक का विषय पहिले भाग से मिलता जुलता होने पर भी यह सात वर्ष से आठ वर्ष तक के बालकों के लिये बनाई गई है। अस्तु। अब

लड़कों की चौथी किताब

के विषय में कुछ लिखना अत्यावश्यकीय है। यह २८७ पृष्ठों का एक खासा पोथा है। इस पुस्तक का विवेचन देखने ही योग्य है। कभी लेखक महाशय मज़हबी मामलों में हस्तक्षेप करते हैं तो कभी हकीमी नुसखों में। कभी आप नैमिषारण्य की बातें करते हैं तो कभी नैनीताल की पहाड़ियों पर सैर करते फिरते हैं। कभी व्याकरण, तर्क, छन्द, अलंकार का विवेचन कर महा-महा-महा गुरु बनते हैं तो कभी पुरातत्ववेत्ता या इतिहास-संशोधक बन बैठते हैं। कविता की टांग तोड़ना और भाषा का उधेड़बुन करने की इच्छा इसमें भी कार्यरूप में परिणत हो गई है। हां, इसमें वर्णित सारी बातें बालकों को मनोरंजक एवं च ज्ञानप्रदायक हैं, अतएव विषय निर्वाचन में अपनी सारी योग्यता को नष्ट कर देने वाले इसके लेखक का अभिनन्दन करना आवश्यकीय है।

शील शिक्षा तीसरा भाग

भी देखने के योग्य है। पिछले विषयों की आवृत्ति करते हुए, इसमें कुछ बातें बढ़ा दी गई हैं, जो वास्तव में पठनीय हैं। भाषा का नमूना न देना ही योग्य है। यह किताब आठ वर्ष से नौ वर्ष की उमर तक के विद्यार्थियों के लिये बनाई गई है।

कृषि शिक्षा पहिला भाग

तो सचमुच ही अपूर्व वस्तु है। इसमें कृषकों के लिये बड़ी अच्छी अच्छी बातें बतलाई गई हैं। यद्यपि बेढंगी बातों से यह भी खाली नहीं है तथापि पुस्तक की बातों के देखने यह अवश्य उपयोगी ही है। पर, हमारी समझ में पूज्य श्री १०८ श्री महाराजा साहिब कृत 'ज़मींदार हितकारी' के रहते ऐसी पुस्तकों का कुछ भी काम नहीं है। यदि 'ज़मींदार हितकारी' ही पाठ्य पुस्तकों में नियत कर दी जाय तो बड़ा अच्छा हो। एक बात और है। कृषि की पुस्तकें केवल कृषकों के बालकों को ही पढ़ाने से हम सहमत हैं। हां, अन्यान्य विद्यार्थियों के लिये यह एक ऐच्छिक तौर पर रखी जाय तो कोई हानि नहीं। आशा है, शिक्षा विभाग के कर्मचारी इस ओर ध्यान देंगे।

लड़कों की पांचवीं किताब

की मुटाई चौथी किताब से कम है। अर्थात् चौथी किताब के तो २८८ पृष्ठ हैं, पर इस पांचवीं के १७४ से भी कम! इसे बेढंगापन कहा जाय या नहीं! किताब के विषयों के देखने इसे 'तज़्किरात की किताब' कहें या 'गोरखधंधे किताब' की। 'दुनिया के हालात' की किताब कहें या पड़ 'फिलॉसफी' की। 'मनोभाव के विभाग की' कहें या 'ज्ञान की शिक्षा' की। सारांश, इसमें सिर से पैर तक बेतुके विषय रखे हैं। 'इंजिनियर' को आपने 'इंजन' लिखा है। कविता की टांग आपने यहांपर भी तोड़ी है। आपके तोड़ने का एक नमूना देखिये।

कबहुं न कर अति सोच बिगड़े अपने काम को ।
यदि हो अन्त में लाभ, फल जाको उत्तम अधिक ॥

शील शिक्षा ४ था भाग तथा कृषि विद्या २ रा भाग

का पुलन्दा इसके पीछे भी बना हो हुआ है। शील शिक्षा के इस भाग में कुछ नई और विचित्र बातें जरूर ही देखने में आई। चकन-फकन आपको पनपनाना अच्छा लगता है, इसीलिये प्रत्येक शब्द के पीछे आप 'पन' शब्द रख देते हैं। 'मनुष्यता' को 'मनुष्यपन' बनाने का 'अक्षतापन' करना आप जैसे साहित्याचार्यों का ही काम है। कृषि शिक्षा दूसरा भाग पुनरुक्ति दोष से खाली न होने पर भी इसमें कई अच्छी अच्छी बातें रखी हैं। इसमें 'ग्वालियर राज्य (!) के जमीन को किस्में' लेख अच्छा है, जो वास्तव में राज की बालक-प्रजा को अत्युपयोगी है। अन्यान्य बातें भी यथानुकूल ही हैं।

लड़कों की छठी किताब

की सुढाई दूसरी किताब के बराबर है! मालूम नहीं, पुस्तक लेखक ने सुढाई का क्रम किस विचार से रखा है। हम लेखक महाशय की कविता पर बहुत ही मुग्ध हैं, अतएव हमें विवश हो उसका बारम्बार उल्लेख करना ही पड़ता है। पर, अब हम इस अन्तिम नमूने को ही चखाकर होनहार कवियों से कविजी से काव्य शिक्षा लेने का अनुरोध करेंगे। कविता पढ़िये—

है देवी तू मात है, सारी सृष्टिकि खान ।
तू ही ने किया प्रकट, जगतही यही महान ॥
तू ही भिरजन करत है, तू ही रक्षा सार ।
तू ही नाशन है सदा, अब है हो या तब ॥

बस, बहुत हुआ। अब तो कविजी के काव्यामृतपान से हम बहुत ही उकता गये। इसलिये, आपकी इस काव्यामृत को घटकों को यहीं पर रखना ठीक है।

आपके रीडर की इससे अधिक और कोई क्या प्रशंसा करे? आपकी सनातनधर्म-भक्ति भी सराहनीय है क्योंकि आपने

सनातन धर्म की पुस्तकें

बनाकर मुक्ति का सच्चा मार्ग ढूंढ निकाला है। मालूम नहीं, आपने सनातन धर्म की कितनी किताबें बनाई हैं। हमें तो केवल सनातन धर्म की चौथी किताब को ही देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अत एव हम केवल इस भाग के ही देखने से कह सकते हैं कि यह पुस्तक 'यथा नाम तथा गुणः' नहीं है। मालूम नहीं, लेखक महाशय ने इसका नाम 'सनातन धर्म पुस्तक' क्यों रखा है? वास्तव में देखा जाय तो इसमें सनातन धर्म के कोई सिद्धान्त नहीं हैं सिवा इसके कि कुछ धार्मिक सतयुगी महात्माओं के चरित्र अवश्य ही संगृहित हैं। विषय सूची में आपने 'अस्तेय (चोरी न करना)' 'श्रम (तुलाधार वैश्य)' जैसे विषय लिखे हैं, पर मालूम नहीं, अस्तेय और चोरी न करना तथा श्रम और तुलाधार वैश्य ऐसा क्यों लिखा है? पुस्तक का नाम 'सनातन धर्म की पुस्तक' रखी जाने से एक और शंका उत्पन्न होती है। यदि पाठशालाओं में किसी आर्य समाजी, ब्रह्मसमाजी, ईसाई या मुसलमान का लड़का पढ़ने के लिये जाय तो क्या उन्हें उनके मत की भी अलग अलग पुस्तकें पढ़ाई जायँगी? इस प्रकार पाठशालाओं में, धार्मिक विद्वेष फैलाकर, धर्म की ओट में आपस में फूट के बीज बोना कहां तक ठीक है! अस्तु। लेखक महाशय की लेखन शैली के नमूने देखिये—

[illegible] के उदाहरण हैं।

[illegible] हो [illegible] दीजिये।

[illegible] और वहीं मर गया।

जरा गौर फरमाकर इस शर्मन हिन्दी के मुहावरों को पढ़िये। कैसा [illegible] है। 'परदेश में जिया' 'वैवाह करनेवाला महाशय' जैसे मुहावरों को समझने के लिये हमें सरकार का [illegible] आना ही योग्य है, जिसमें शर्माजी ने इनका अर्थ समझने में [illegible] होगी। इन शर्माजी के काव्य [illegible] पर [illegible] पर ऊपर लिख ही चुके हैं। हमारी प्रकृति [illegible], इनके ग्रन्थों के [illegible] का [illegible] करने की [illegible] करने के लिये, इनके आपकी कविता को बहुत ढूंढा।

पर इसमें कविता की एक पँखुड़ी तक दिखाई नहीं दी। अब

शीलशिक्षा पांचवें तथा छठे

भाग पर भी विचार करना है। इसमें आपने 'तहज़ीब (सभ्यता)' 'कर्म, भाग्य और पुरुषार्थ (काम, तक़दीर और तदबीर)' जैसे डबल नाम के शीर्षक रख कर हिन्दी पढ़नेवालों को उर्दूदां बनाने की अच्छी राह दिखा दी है। आपके गद्य लेखन रूपी आगरे की दाल का मसाला चखने से हमारे जी में मचलाहट सी होती है। अब रही काव्यामृत के विषय में। अतएव उसके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसका पान करते २ हमारा जी अघा गया है। इसलिये अब शीलशिक्षा से मौन रहकर

कृषि विद्या की तीसरी पुस्तक

पर दृष्टिपात करना योग्य है। इसमें अनधिकार चर्चा की है आपने असामयिक शब्दों के प्रयोग करने की। इस लेख के पाठक ही कह सकते हैं कि हमारे लेखकजी को 'नवनीत' के लिये कई अच्छे २ प्रचलित शब्द होने पर भी उन्हें उस 'नवनीत' जैसे बड़े भारी संस्कृत शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी? पर, आपको तो संस्कृत की टांग तोड़नी थी न? अन्यान्य बातों के देखते पुस्तक कृषकों के लिये अत्यन्त लाभदायक है। अस्तु।

अब इस विविध पुस्तकों की आलोचनारूपी पुष्पमाला को बढ़ाने से सम्भव है कि पुस्तक-लेखक महाशय उस भारी पुष्पहार का बोझ सहने में असमर्थ हो जायँगे; अतएव अब इस हार का अधिक न बढ़ाना ही ठीक है। अन्त में हम

इस विस्तृत आलोचना के लिखने का कारण

भी बतलाना आवश्यक है। ग्वालियर राज एक देशी राज है। यहां के भूपाल हिन्दी के एक अत्यन्त भक्त और अपूर्व पुरुष हैं। प्राचीनकाल से, ग्वालियर तथा ग्वालियर राज का, हिन्दी से खासा सम्बन्ध है। कहा जा चुका है कि इन पंक्तियों का लेखक भी ग्वालियर राज का ही निवासी है; अतएव इसे अपने प्रदेश में-नहीं, हिन्दी से विशेषरूप से सम्बन्ध रखनेवाले एक राज में-ऐसी भ्रष्ट और क्लिष्ट पुस्तकों के प्रचार से हिन्दी भाषा पर, जो ग्वालियर राज की खास भाषा है, ऐसा घोर अन्याय होता हुआ देखकर ग्वालियर की पाठ्य पुस्तकों पर कुछ लिखने की इच्छा हुई। इतने में इसे अपने घर, मालवा प्रान्त में, जाने का अवसर मिला। उस प्रान्त के एक शिक्षक से वहां की पाठ्यपुस्तकों के विषय में, कुछ बातचीत भी हुई। शिक्षक महाशय ने भी इन पुस्तकों पर दुःख प्रकट किया। साथ ही उन्होंने इन पुस्तकों के बन जाने से पढ़ाई में ज्यादती हो जाने का भी कारण बतलाया। एक २ कक्षा में इतिहास, भूगोल, गणितादि पठित विषयों के साथ ही लड़कों की पुस्तक, सनातन धर्म रीडर, शील शिक्षा, कृषि रीडर आदि पुस्तकों को देखकर इन पंक्तियों के लेखक का जी उकता उठा। शीघ्र ही इसने शिक्षक महोदय से उक्त सभी पुस्तकों के देखने की इच्छा प्रकट की और उन्हें देखकर इसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि शिक्षा विभाग के कर्मचारियों ने-प्रान्तीय इन्स्पेक्टरों ने-देहाती स्कूलों में पाठ्यक्रम की इतनी ज्यादती क्यों और कैसी रखी? कैसे शोक की बात है कि प्रान्तीय इन्स्पेक्टर प्रति तीसरे और छठे मास स्कूलों का मुआयना करें और पहिली छःमाही के मुआयने पर आधा और दूसरी छःमाही पर, इतने बड़े २ पोथों से युक्त, सारा पाठ्य क्रम पूर्ण पढ़ाया हुआ देखें! तिसपर भी १०, १० और १२, १२ रुपये मासिक कमानेवाले बिचारे मास्टर शिक्षकों को [illegible] या छः मास में सारा कोर्स पूरा पढ़ा सकें! इत्यादि बातों को सोच कर ही इन पुस्तकों की आलोचना के मैदान में आना पड़ा। अब ग्वालियर शिक्षा विभाग के कर्मचारियों तथा ग्वालियर टेक्स्ट बुक कमेटी के मेम्बरों से

यही प्रार्थना है

कि वे, ग्वालियर राज के हिन्दी शिक्षकों की योग्यता तथा उनके वेतन [illegible] तथा क्लिष्ट पुस्तकों के पढ़ाने के कष्ट की ओर [illegible] हिन्दी के गले पर छुरी न फेरने का पुण्य सम्पादन करते हुए, ऐसी भ्रष्ट तथा क्लिष्ट पुस्तकों को बन्द करने या इनके संशोधित [illegible] अपने राज की पाठशालाओं में प्रचलित करने की यथासाध्य और यथाशीघ्र चेष्टा करें!

भारतीय प्रजातन्त्र पर विचार।

लेखक:—श्रीराधामोहन गोकुलजी (राधे)।

आज कल प्रजातन्त्र की ओर प्रजा का झुकाव, साधारण जनता की यह उग्र अभिलाषा कि उन्हें राजनैतिक जीवन में वह स्थान मिले जो अबतक केवल थोड़े से विशिष्ट लोगों का ही भाग है, इस सीमा को पहुंचनेपर आता जा रहा है कि हम उसे मन की लहर मात्र नहीं कह सकते, और न हम व्यर्थ अभिलाषा ही मान सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जिस विषय में प्रजा का मन इतना लगा हुआ है, जिस बात के लिए प्रजा इतनी व्यग्र हो रही है उसे अब सरकार बहुत दिनों तक भूल में नहीं डाल सकती।, प्रजा के मन्तव्यों ने सरकार के दिल पर प्रभाव डाला है, यद्यपि प्रजा की इस अभिलाषा को सफल न होने देने के लिए स्वार्थपरायण समुदायों व सम्प्रदायों से घोर विरोध की ध्वनि लगातार उठा करती है, लेकिन इस विरोध को प्रजा की तीव्र आलोचना व सदाकांक्षा छिन्न भिन्न करने में लगी हुई है। सरकार का विदेशी होना एक ओर से और साधारण जनता में विद्याबल की कमी दूसरी ओर से हमारे विरोधियों को जरूर सहायता देती रहेगी, परन्तु देश दशा के ज्ञाता जानते हैं कि अब वह समय बहुत दूर नहीं है जब कि सरकार को प्रजा के मत के आगे मस्तक झुकाना ही पड़ेगा। क्योंकि इसी में दोनों का कल्याण है।

हमारे विरोधी कहने को चाहे कुछ भी क्यों न कहें परन्तु उनमें भी कोई ऐसा आजकल नहीं है जो दिनोंदिन दृढ़ होती हुई समुत्थित राष्ट्र की ध्वनि में एक शुभ महाशक्ति को न देखता हो, उत्तम भावों की नींव धरने की मनोकामनावाले नवान्वय की इच्छाओं को, पद दलित व गर्त्तनिक्षिप्त जनता के प्रकाश में आने के भावों की यथार्थता को न समझता हो और यह कहता हो कि यह केवल थोड़े से चीत्कारप्रिय बकवादियों की पुकार है या ख्याली पुलाव पकाने वालों की लेखनी की थोथी दौड़ है।

याद रखना चाहिये कि इस विषय में एक गूढ़ गम्भीरता है—एक शुभ महाशक्ति है। संसार के भाग का यह एक पृष्ठ है जिसे परमात्मा का निज उंगलियों ने स्वर्णाक्षर में नवान्वय के हृदयपटल पर लिखा है। इस ईश्वरीय न्याय का अभ्युदय होनेवाला है, जिसका मनुष्य एक निमित्त मात्र है—यह न्याय संसार की लगातार उन्नति का न्याय है, अटल विकाश के सिद्धान्त का एक स्वयंसिद्ध चक्र है। बिना इसके न संसार में जीवन रह सकता है, न आन्दोलन दिखाई दे सकता है और न धर्म कर्म का ही-पता लग सकता है। क्योंकि जहां यह न्याय नहीं, जहां जहां इस अटल न्याय का हाथ नहीं वहां भाग्य व परमात्मा भी नहीं। शत्रु व मित्र दोनों को ही हमारे इस सार्वभौम्य सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ेगा। पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि मित्र इस नवस्थिति के प्रादुर्भाव व समुन्नति को प्रसन्नता व आनन्द की दृष्टि से देख कर उत्साहित होता है, तो शत्रु इस बात को मर्य्यादा का अतिक्रमण और माना हुआ अनिवार्य्य उत्पात समझता चला जाता है, पर क्या मानवीहृदय इन विरोधियों के भावों से स्वभावतः विरोध करने से रुक नहीं सकता?

हमारे पाठक कह सकते हैं कि ये शत्रु या विरोधी लोग अभिमान की मदिरा से चूर हैं, मोहमयी मदिरा के नशे में बेहोश हैं, मन्द, भ्रष्ट और कलुषित हृदय होते हैं। लेकिन, यद्यपि बहुतों की बाबत यह बात सत्य हो, परन्तु हम सबकी बाबत यह नहीं कह सकते। उनमें अधिकांश लोग बड़े सच्चे, धार्मिक व सदाशयी भी पाये जाते हैं। ये सद्-हृदय व न्यायप्रिय लोग हैं, किन्तु उनसे उनका सत्याभिमान ही ऐसा होगया है कि संसार में प्रजा की यह इच्छा (जिसको ऊपर कहा जा चुका है) अनर्थ का मूल है। पर साथ ही हम यह भी तो देखते हैं कि प्रजातंत्र के सुहृदों में भी ऐसे लोग मौजूद हैं जो इस काम में हाथ डालने आगा पीछा करते और भयके मारे निष्क्रिय देखने में आते हैं। इस दशा में हम कैसे कह सकते हैं कि प्रजातन्त्र के भावों के शत्रु या विरोधियों में सब के सब बुरे या दुराशयी लोग ही हैं। संभव है कि आठ दस वर्ष पहले जो हल्ला कुछ अनुचित रीति से मचाया गया था वह आज भी अनेक शत्रुओं व मित्रों की बातों में प्रध्वनित हो रहा हो। इस दशा में हमें अपना मतलब सावधानी से प्रकट करना पड़ेगा। बिना समझे किसी समुदाय को एक ओर से भला या बुरा कहना बड़ी बेसमझी की बात होगी।

स्वतन्त्रता का पवित्र भाव उन हृदयों में अधिक है जिन्हें हमलोग बहुधा एक ओर से आड़े हाथों लिया चाहते हैं। पर, हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि स्वार्थांध लोग सर्वत्र होते हैं। जहां मित्रों में एक ओर मुंह के बल दौड़कर गिरनेवाले हैं वहां शत्रुओं में भी आंख पर पट्टी बांधकर चलनेवाले हो सकते हैं, पर यह किसी जाति का दोष नहीं वरन व्यक्तियों का ही दोष है। जब हम इतिहास के विस्तीर्ण मैदान पर सावधान होकर दृष्टि डालते हैं तो हमें महात्मा मसीह के शब्द और महर्षि व्यास की बात याद आती है; वह 'वसुधैव कुटुम्बकं' और वह 'समस्त मनुष्यों को ईश्वर के पवित्र पुत्र बतलाते हैं' (All men are children of God.)

क्या यह कम आनन्द की बात है, क्या इसमें अधिक आशा व संचार होने का स्थान नहीं है कि एक ओर 'आत्मवत् सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति' व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के माननेवाले हों और दूसरी ओर 'सब मनुष्य ईश्वर के ही बालक हैं' के सिद्धान्त का अभिमान करनेवाले। हमें तो इसमें अवश्य ही आशा की झलक दिखायी देती है। हम सब भाई हैं, एक ही परमपिता के पुत्र हैं और एक आर्य कुल के वंशधर हैं। इस दशा में इन शुभ समाचार से कि करोड़ों हमारे अन्य भाई हमारे साथ मिल कर इस संसार के पवित्रकाम के पूरा करने में हमारा हाथ बंटाना चाहते हैं, क्या हम आनन्दित होने के बदले भय से कम्पित हों और भावी काल के चित्रों को देखकर हताश हो दुखी हों, जलें, विरोध करें या अविश्वास करें। दोनों ही पक्षों के लिए यह तो एक महदानन्द की बात होनी चाहिये व है कि एक ओर ब्राइस्ट व दूसरी ओर कृष्ण के नाम से हम एक ही उस महापुरुष की उपासना के अनुगामी नहीं हैं जो बारम्बार कहता है कि 'हे परमात्मन् आपकी इच्छा पूरी हो, आपका पवित्र शासन संसार को सुखी करे, स्वर्गीय आनन्द व शांति भूमण्डल पर विराजमान हो!'

देखना यह है कि हम भारतवासी चाहते क्या हैं। यही तो चाहते हैं कि हमारी उपर्युक्त प्रार्थना स्वीकृत होकर कार्य रूप में परिणत दिखायी दे। हमारा यही पवित्र उद्देश्य है कि दयामयजन मानवी समाज समुन्नत हो कर देव-समाज बन जाय और भारत भी उसका एक अंग हो। क्योंकि जब इस देवसमाज की स्थापना न होगी, पारस्परिक आशंका और झगड़ों व उपद्रवों का स्वाभाविक भय व नैसर्गिक कामना दिनोंदिन अपना प्रचण्ड रूप धारण करती जायगी जिसका परिणाम मनुष्यजाति का अनिष्ट होने के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। जिस देव-समाज के सब सादर होते हैं, जहां एक प्रेम के प्रवाह का महत्व के साथ चलते हैं वह सबके लिए सर्वत्र मंगल ही मंगल दिखायी देता है। इसीलिए प्रत्येक आर्य करता है—'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः........।' हम लोग

भूमि को स्वर्ग बनाने की कामना करते हैं क्योंकि निस्सन्देह यह पृथिवी हम मनुष्यों का कारखाना या दुकान है, इसमें काम व कमाई कर के हम लोग स्वर्ग के भागी हो सकते हैं।

कौन नहीं जानता कि हमारा न्याय उस सर्वशक्तिमान् के सामने उन्हीं कामों के आधार पर होगा जो हम इस संसार में करते हैं। अन्याय की आयु, अन्याय का महत्व और अन्याय के प्रति मानवी-प्रेम कम होता है। ईश्वर अपनी अन्तिम व्यवस्था देने के पहले देखेगा कि हमने कितने दीन दुखियों, निस्सहायों की सहायता की है या कितनों का स्वत्व अपहरण किया व सताया है। परमात्मा के न्याय में दो प्रकार की धाराएं दो भिन्न व्यक्तियों या जातियों के लिए नहीं हैं। परमात्मा वणिक उस ठग की भांति काम नहीं करता जो दो प्रकार के बाट नपने रखते हैं। यदि श्रीकृष्णदेव इस संसार में सबके लिए ही आये व सबके लिए ही उन्होंने अपनी शिक्षा का प्रकाश किया तो मसीह भी सब के लिए आया, सब को अपनाया व सब के लिए अपने प्राण उत्सर्ग किये।

क्या न्यायशास्त्रविशारद कह सकता है कि ईश्वर के पवित्र पुत्र ईश्वर की आंख में बराबर व मनुष्य की दृष्टि में छोटे बड़े हैं, और यह तर्क तर्कशास्त्र समर्थित है। जो मनुष्य ईश्वर के अपराधी बनते हैं उसके न्याय को तोड़ते, उसकी आज्ञा के प्रतिकूल चलते हैं उन्हें जानना ही चाहिये कि सर्वशक्तिमान जिसकी ओर है उसीकी जय निश्चय है। संभव है कि क्षणभर के वास्ते किसी अन्यायी की जय हो परन्तु चिरस्थायिनी विजय उसी की होगी जो ईश्वरीय न्याय का मन, वाणी व कर्मों से अनुमोदन करता है। हमारा यह कथन व्यक्तियों व जातियों दोनों से एक-समान है। कोई धर्मनिष्ठ नहीं मान सकता कि संसार में अन्याय हो, एक व्यक्ति के लाभ को दूसरे व्यक्ति के स्वार्थ पददलित हों और एक जाति के सुख, सुविधा व महत्ता के निमित्त अन्य किसी जाति का अकल्याण हो—यह ईश्वरीय इच्छा है अतः हम भी बलपूर्वक इसका विरोध करते हैं। हम नहीं मान सकते कि मनुष्यजाति मात्र का या किसी राष्ट्र या व्यक्ति विशेष का इसमें कल्याण है कि यह भाई भाई की तरह न रहकर विलग हों, परस्पर द्वेष, ईर्षा, स्वार्थपरायणता, वैर आदि दुर्गुणों का परिचय दें।

हमारी दृष्टि में स्वदेशीय विदेशीय का प्रश्न नहीं है वरन न्याय व अन्याय का प्रश्न है क्योंकि मनुष्य ही एक जाति व एक राष्ट्र है। यही देखना है कि मानवीजाति व राष्ट्र के प्रधान परमात्मा के प्रति कौन प्रेम करता है, कौन उसकी आज्ञाओं का पालन करता है और कौन उसके व उसके नियम के शत्रु हैं। इसी मूल सिद्धान्त पर प्रजातन्त्र व स्वराज्य की नींव है।

इस प्रकार के प्रत्येक विचार व आन्दोलन को ही राष्ट्रीय धर्म कहते हैं। इन विचारों के भीतर गूढ़ धार्मिक तत्व भरे हैं जिन्हें स्वार्थ स्वार्थान्ध पुरुष न देख सकते हों परन्तु दूरदर्शी अवश्य अनुभव कर रहे हैं। एक दिन आवेगा और अब शीघ्र आवेगा कि जब इस सार्वभौम्य धर्म को सब देशों, जातियों या राष्ट्रों को सिर झुका कर मानना पड़ेगा।

हमने इस लेख में प्रजातन्त्र से यह अर्थ किया है कि प्रत्येक राष्ट्र (जाति) का अपने शासन में प्रधान हाथ हो। एक परमात्मा, उस का अटल न्याय व उसकी प्रजा के प्रत्येक व्यक्तियों में समता के सिद्धान्त ही प्रधान हों। कैसा सुन्दर वह दिन होगा जब यह वासना फलवती होगी और उसके फलवती होने में मानवजाति मात्र का सच्चा श्रम होगा। भारत के लिए वह दिन बड़ा ही पवित्र होगा जब उसके प्राचीन गौरव उसके सार्वदेशिक भाई सिद्धान्त की रक्षा करने का सहरा ब्रिटिश सरकार व भारतीय प्रजा के सिर एक साथ ही बँधेगा।

पं० सत्यनारायण शर्मा,

'कविरत्न।'

दीना दुखी ब्रजबानी का
उद्धार करने के लिये।
प्रकटित हुए, ब्रज-काव्य का
शुचि-ध्वज उड़ाने के लिये॥
सरलता की मूर्ति देखो,
हैं सत्यनारायण यही।
'कविरत्न' के पद से विभूषित,
धन्य है ब्रज की मही॥

'सत्य-भक्त।'

यक्षपत्नी।

"रामकृष्णा आर्ट स्टूडियो" कानपूर में अंकित और पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' द्वारा प्राप्त।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः। (मेघदूत।)

भूमि को स्वर्ग बनाने की कामना करते हैं क्योंकि निस्सन्देह यह पृथिवी हम मनुष्यों का कारखाना या दुकान है, इसमें काम व कमाई कर के हम लोग स्वर्ग के भागी हो सकते हैं।

कौन नहीं जानता कि हमारा न्याय उस सर्वशक्तिमान् के सामने उन्हीं कामों के आधार पर होगा जो हम इस संसार में करते हैं। अन्याय की आयु, अन्याय का महत्व और अन्याय के प्रति मानवी-प्रेम कम होता है। *ईश्वर अपनी अन्तिम व्यवस्था देने के पहले देखेगा* कि हमने कितने दीन दुखियों, निस्सहायों की सहायता की है या कितनों का स्वत्व अपहरन किया व सताया है। परमात्मा के न्याय में दो प्रकार की धाराएं दो भिन्न व्यक्तियों या जातियों के लिए नहीं हैं। परमात्मा वणिक उस ठग की भांति काम नहीं करता जो दो प्रकार के बाट नोने रखते हैं। यदि श्रीकृष्णदेव इस संसार में सबके लिए ही आये व सबके लिए ही उन्होंने अपनी शिक्षा का प्रकाश किया तो मसीह भी सब के लिए आया, सब को अपनाया व सब के लिए अपने प्राण उत्सर्ग किये।

क्या न्यायशास्त्रविशारद कह सकता है कि ईश्वर के पवित्र पुत्र ईश्वर की आँख में बराबर व मनुष्य की दृष्टि में छोटे बड़े हैं, और यह तर्क तर्कशास्त्र समर्थित है। जो मनुष्य ईश्वर के अपराधी बनते हैं, उसके न्याय को तोड़ते, उसकी आज्ञा के प्रतिकूल चलते हैं उन्हें जानना का चाहिये कि सर्वशक्तिमान जिसकी ओर है उसीकी जय निश्चय है। संभव है कि क्षणभर के वास्ते किसी अन्यायी की जय हो परन्तु चिरस्थायिनी विजय उसी की होगी जो ईश्वरीय न्याय का मन, वाणी व कर्मों से अनुमोदन करता है। हमारा यह कथन व्यक्तियों व जातियों दोनों से एक समान है। कोई धर्मनिष्ठ नहीं मान सकता कि संसार में अन्याय हो, एक व्यक्ति के लाभ को दूसरी व्यक्ति के स्वार्थ पददलित हो और एक जाति के सुख, सुविधा व महत्ता के निमित्त अन्य किसी जाति का अकल्याण हो—

यह ईश्वरीय इच्छा है अतः हम भी बलपूर्वक ...
है। हम नहीं मान सकते कि मनुष्यजाति ...
या व्यक्ति विशेष का इसमें कल्याण ...
रहकर विभक्त हों, परस्पर ...
आदि दुर्गुणों का परिचय दे ...

हमारी दृष्टि में ...
न्याय व अन्याय ...
राष्ट्र है। हमें ...
के प्रति कौन ...
है और कौन उ...
पर प्रजातन्त्र व ...

इस प्रकार के ...
कहते हैं। इन विच...
स्यात स्वार्थान्ध पुरु...
अनुभव कर रहे हैं। प...
जब इस सार्वभौम्य धर्म ...
झुका कर मानना पड़ेगा।

हमने इस लेख में प्रजात...
(जाति) का अपने शासन ...
का अटल न्याय व उसकी प्रजा ...
ही प्रधान हों। कैसा सुन्दर ...
फलवती होगी और उसके फल ...
सच्चा श्रम होगा। भारत के लिए ...
जब उसके प्राचीन गौरव उसके स...
रक्षा करने का सहरा ब्रिटिश सरकार ...
साथ ही बँधेगा।

पं० सत्यनारायण शर्मा,

'कविरत्न।'

दीना दुखी ब्रजवासी का
उद्धार करने के लिये।
अवतरित हुए, ब्रज-वाङ्मय का
शुचि ध्वज उड़ाने के लिये॥
सरलता की मूर्ति देखो,
हैं सत्यनारायण यही।
'कविरत्न' के पद से विभूषित,
धन्य है ब्रज की मही॥

'सत्य-भक्त।'

यक्षपत्नी।

तन्वीं श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभार.दलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः। (मेघदूत)

जनवरी मास का महायुद्ध ।

(लेखकः—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०)

जनवरी में, महायुद्धीय रणक्षेत्र पर कोई महत्वपूर्ण घटनायें नहीं हुईं। अब सम्भवतः वसंतऋतु में महायुद्ध की अग्नि पुनः भीषणरूप धारण करेगी, इस विचार से अमेरिका के प्रेसिडेंट ने, उक्त समयके पूर्व ही सुलह करने का परामर्श देने के लिये, कर्नल हाऊस नामक अपने एक विश्वासपात्र प्रतिनिधि को मित्रपक्ष और शत्रुपक्ष की ओर भेजा है। यद्यपि इस समय कोई भी पक्ष धैर्यहीन नहीं देख पड़ता तथापि अमेरिका के सामर्थ्य के देखते उभयपक्ष को अमेरिका की सहानुभूति की आवश्यकता है। इस दृष्टि से क्या अमेरिका के प्रेसिडेंट का प्रयत्न सफल होना सम्भवनीय है? युद्ध की परिस्थिति के देखते यह कहा जा सकता है कि यह समय सुलह का नहीं है तथापि यह भी सत्य है कि अब उभयपक्ष को युद्ध से नफरत होने लगी है। जब जर्मनी ने वार्सा में प्रवेश किया था, तब प्रेसिडेन्ट विलसन ने मध्यस्थ होना अर्थात् उभयपक्ष में सुलह करा देना योग्य नहीं समझा था। पर, ज्यों ही शत्रुसेना ने सर्विया में प्रवेश किया, त्यों ही अमेरिका के प्रेसिडेन्ट उभयपक्ष ... सुलह करा देने के लिये तैयार हो गए। इस भेद पर खूब विचार करने से यह मालूम हो सकता है कि यही समय सुलह के लिये अनुकूल है। जर्मनी के मन में पोलैंड, बेलियम या कोरलैंड के हस्तगत कर लेने पर भी सुलह करने की इच्छा उत्पन्न होना असंभवनीय था। पर, मुख्य बात यह थी कि वह तुर्की पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न कर रही थी। इतने में, बलगेरिया के जर्मनपक्ष में सम्मिलित हो जाने से, सर्विया का नाश होकर, तुर्कस्थान और जर्मनी संलग्न हो गये। पर, अब मित्रराष्ट्रों को इसकी बिलकुल चिंता नहीं है। अबतक इंग्लैंड के पास केवल जलयुद्धसेना ही यथेष्ट थी, पर अब जनवरी मास से, अनिवार्य सैनिकों की भर्ती का नियम परिचालित कर देने से, उनके पास स्थलयुद्धसेना की भी कमी नहीं रही है। ऐसी दशा में केवल बेलियम को स्वतंत्रता देने तथा तुर्की पर का जर्मनी का प्रभाव हटाने की गरज़ से इंग्लैंड को, और भी दो वर्ष तक, युद्ध में उलझा रखना प्रेसिडेंट विलसन को योग्य नहीं जँचा। इसीलिये उन्होंने उभयपक्ष को सुलह करने का अनुरोध किया है। सम्भवतः उनके प्रयत्न का परिणाम फरवरी या मार्च मास में दिखाई देगा।

रशिया का बल।

जनवरी में रशियन सेना की, आस्ट्रियन प्रदेश ब्युकोविना में, सफलता को देखकर शत्रुसेना ने टार्नोपोल के आसपास की रशियन सेना को पीछे हटाने का *प्रयत्न किया, पर उस सेना ने टार्नोपोल के उत्त*रीय स्ट्रीर नदी से प्रिपेट नदी तक की शत्रु सेना को मार भगाया। अर्थात् रशियन सेना ने जनवरी मास के आरंभ ही में ब्युकोविना की राजधानी जर्नोविट्ज़ पर चढ़ाई की, जिससे रोमेनिया की सीमा से लेकर उत्तरीय प्रिपेट तक के प्रदेश में भारी गड़बड़ मचकर, जनवरी मास में उभयदल के बीच भीषण संग्राम हुआ, पर उससे किसी को भी कुछ हानि नहीं हुई। फरवरी मास के आरंभ ही से ब्युकोविना प्रदेश, नीस्टर नदी और *गेलीशिया प्रदेश में भी युद्धाग्नि* प्रज्वलित हो गई है तथा मार्चमास में वही अग्नि भीषणस्वरूप धारण करेगी, ऐसा अनुमान है। मित्रसेना ने पश्चिम की ओर की शत्रुसेना को धर दबाने के पूर्व ही रशिया ने गेलीशिया पर चढ़ाई करने की बड़ी भूल की है। गत वर्ष भी ऐसी भूल करने ही के कारण अन्त में रशिया को पिछड़ना पड़ा था। उस समय पहले भी रशियन फिर सेना ने बड़े धैर्य से कार्पेथियन पर स्वाधिकार कर लिया और फिर हंगेरिया की ... महायुद्ध का अन्त ... की आशा की थी कि इतने में जर्मनी ने *रशिया के इधर-उधर* को धर दबाया और पहिली चढ़ाई में ही रशिया का सारा बल नष्ट हो जाने से, तथा मित्रसेना के पास सैनिक सामग्री का अभाव होने के कारण पश्चिम की ओर से यथायोग्य सहायता न मिलने से, विवश होकर, रशिया को पिछड़ना पड़ा। गत वसंतकाल के मुख्य चढ़ाई की सारी कार्यवाही रशिया को करनी थी तथा इस वसंतकाल की कार्यवाही एंग्लो-फ्रेंच सेना को करना है। ऐसी दशा में रशिया को केवल मित्रसेना का सहायक ही बनना था। इस दृष्टि से भी रशिया ने गेलीशिया की रणाग्नि को प्रज्वलित करने की भारी भूल की है। यदि मई-जून मास तक रशिया की ओर जर्मनी का अधिक ध्यान आकर्षित नहीं होगा तो रशिया की वर्तमान कार्यवाही उसे फलप्रद होगी। जर्मनी को, फरवरी या मार्च मास में, पश्चिम की ओर से मित्रसेना के चढ़ आने की भी आशंका है; अतएव वह जनवरी मास के आरंभ ही से भावी चढ़ाइयों को रोकने का प्रयत्न कर रही है। *प्रायः इसीलिये कुछ जर्मन सेना ने न्यूपोर्ट, यिप्रेस,* सोम और ऐन नदी पर की एंग्लो फ्रेंच सेना पर चढ़ाई की थी। सम्भव है कि जर्मन सेना वसंतऋतु के पूर्व ही केले लेने का प्रयत्न करेगी, पर अब मित्रसेना के पास अटूट सैनिक सामग्री तैयार हो जाने के कारण वह उतनी धृष्टता कदापि नहीं कर सकती। केले और पेरिस को लेकर महायुद्ध की समाप्ति करने की *जर्मनी की इच्छा तो सन १९१४ ई० के* मार्न और यीप्रेस नदी पर की हार से ही नष्टप्राय हो चुकी है। और तभी से उसने रशिया का पराभव कर, तुर्की से संलग्न होकर, युद्ध की समाप्ति करने का निश्चय कर लिया है। गतवर्ष उसे अपनी उक्त निश्चित कार्यवाही में कुछ सफलता प्राप्त होने पर भी इस वर्ष उसने सफलता प्राप्त करने का उक्त मार्ग क्यों तज दिया? पर, कदाचित जर्मनसेना पहिले एंग्लो-फ्रेंच सेना की चढ़ाई की ओर ध्यान देकर ज्यों ही रशिया के किसी ओर अपनी दाल गलती हुई देखेगी, त्यों ही वह उस ओर चली जायगी। अतएव जब पश्चिमीय रणक्षेत्र प्रज्वलित होता तभी रशिया को चढ़ाई करना योग्य था। पर, रशिया को विवश होकर, जनवरी मास ही में, ब्युकोविना और गेलीशिया में युद्धाग्नि को चेताना पड़ा है। रूमेनियन युद्ध के समय रशिया कुछ भी नहीं कर सका है, अतएव अपनी उस बात को रखने के लिये तथा माउंटनिग्रो और अलबेनिया पर की आस्ट्रिया की चढ़ाई को रोक कर मित्रसेना को उत्तेजित करने के लिये ही उसने यह चढ़ाई की है। पर, यदि, यही चढ़ाई सर्वियन युद्ध के पूर्व की जाती तो इसका अच्छा परिणाम होता। जनवरी में आस्ट्रिया ने रशिया की सेना को रोक कर मांटिनिग्रो और अलबेनिया को अपने अधिकार में कर लिया है। अब उधर एड्रियाटिक समुद्र पर भी आस्ट्रिया का प्रभाव स्थापित होगया है, जिससे इटाली को कुछ हानि पहुंचना संभवनीय है। यदि फरवरी मास में रशिया को यथायोग्य सफलता न मिल सकेगी तो सेलोनिका की मित्र सेना को सेलोनिका का त्याग करना पड़ेगा।

जनवरी में, रशिया को काकेशियस की ओर अच्छी सफ*लता प्राप्त होने के कारण उसने इरान में अच्छा प्रबंध* कर लिया है। अब केवल टैग्रिसीय. इराक में शांतता रखना आवश्यक है। कुछ अंग्रेज़ीसेना को बगदाद से पिछड़ने के कारण ही शत्रुओं को इरान में बगावत करने का मौका *मिल गया था*, पर वह सेना टायग्रीज नदी के *कुतुलअमारा* तक पहुंच गई। तुर्कों ने उस स्थान को भी घेर डालने का प्रयत्न किया, पर अंग्रेज़ी सेना वहीं पर अड़ी रही और बराबर तुर्कों का सामना करती रही। मित्रसेना को सहायता पहुंचाने के लिये बसरा से भी कुछ सेना भेजी गई, जिससे राह में ही उभयदल के सामने हुए और तुर्कों को पिछड़ना पड़ा। डार्डेनिलीस की ओर मित्रसेना के हट जाने से तुर्क सेना को कान्स्टेंटिनोपल से बगदाद की ओर अथवा स्वेज़ की नहर ओर के पहुंचने में बड़ी सुगमता हो गई है। इस दृष्टि से शत्रु सेना का स्वेज़ की ओर और अथवा बगदाद और आना कुतुल-अमारा की मित्रसेना का पराभव कर, इरान को अपने जाल में फंसा के सीस्तान से, इरान की खाड़ी की ओर पहुंचना भी *सम्भवनीय है*। पर, ये सब बातें फरवरी मास के युद्ध के परिणाम पर अवलंबित हैं।

हों जातीय विचार उन्नति कला, विज्ञान-धारा बहै। हिन्दी में अनिवार्य्य हिन्द सुख से, सर्वोच्च शिक्षा लहैं॥
सारे दोष, कुरीति, द्वेष विनसैं औ स्वत्व जानैं सभी। जागे भारत "चित्रमय-जगत्" के उद्देश्य पूरे तभी॥

Vo. 6.] फरवरी, १९१६. February 1916. [No. 2.

श्रीजालंधर-शिष्य, हिन्दी-रत्न, मानसिंह।

अब तक मानसिंह नामधारी हिन्दी कवियों में आठ मानसिंह कवियों का पता मिश्रबंधुओं को लग चुका है, और उनके नामोल्लेख कविकीर्तन के ४२१ (महाराजा जोधपुर), ४७१ (अश्वमेध का रचयिता, समय १६१२), ८४० (हनुमान नखशिखादि ग्रंथों का कर्ता समय १८२१), ८८१ ('मोक्षदायक ग्रंथ' का रचयिता, समय १८३५), ९२१ (मानसिंह, जोधपुर राजपूताना), ९५५ (मोक्षदायक ग्रंथ के रचयिता, समय १८७५), १०८१ (अयोध्या नरेश) तथा १२१७ (गिरवा, बांदा, निवासी) वें पृष्ठों पर किये गए हैं। मिश्र बंधुओं ने आठ मानसिंह कवि मान लेने में बड़ी भूल की है, यह उक्त सूची से भी सिद्ध होता है। आपने भूल से ८८१ वें पृष्ठ पर के मानसिंह का (मानपंथी, मोक्षदायक ग्रंथ का रचयिता) पुनर्वार ९५५ वें पृष्ठ पर उल्लेख कर दिया है! तिसपर भी आपने अपनी भूल को छिपाने के लिये दूसरे मानसिंह का समय, १८३५ के बदले १८७५ बतलाया है! इतने बड़े ग्रंथ में ऐसी और भी कई बड़ी २ भद्दी भूलें हुई हैं! हमें हाल में दो और नए मानसिंह नाम के कवियों का पता लगा है। एक मालवान्तर्गत ओरछा का है। और उसका हाल हम और कभी लिखेंगे। जिस मानसिंह कवि की कविता आज यहां प्रकाशित की जाती है, वह महाराष्ट्र या इसके आसपास का ही निवासी होगा, ऐसा अनुमान है। यह महाराष्ट्र देश में प्रचलित नाथ सम्प्रदाय का अनुयायी था। हमारे मित्र भांडारकर, जिन्हें निम्न कविता मिली है, कहते हैं कि यह कवि छत्रपति शिवाजी का समकालीन है। 'गणेश' 'मानसिंह' आदि नये कवियों का पता लगने से मालूम होता है कि शिवाजी के समय महाराष्ट्र में बहुत से हिन्दी कवि थे। इस कवि के विषय में और कुछ भी अधिक हाल नहीं मालूम हुआ है।

राग—बिहाग।

बिगरी कौन सुधारे। नाथ बिन॥ ध्रु०॥
धनिपने का सब कोई साथी : बिगड़ी काम न आवे रे।
भरी सभा में लज्जा राखी : दीनानाथ गुसाईं रे॥ १॥
बरसे देव की बरखी हुसरिया : सब गोरस गिर जाई रे।
गंगा नहाई यमुना नहाई : तो भी न गई बदराई रे॥ २॥
दया धरम का आल बनाया : कहुं दीव तिर जाई रे।
धर्माधर्मी पार उतर गये : पापी को डुबवाया रे॥ ३॥
सभी दुरी ये दोनों दाहिने : दरस्सरा से जाई रे।
नाथ [illegible] सुखाले : मानसिंह [illegible] रे॥ ४॥

नयी सृष्टि।

(लेखक—प्रो॰ शिवराम महादेव परांजपे, एम. ए.।)

प्राचीन समय की बात है, सूर्यवंश में त्रिशंकु नाम का एक राजा होगया है। एक दिन बैठे बिठाये उसके मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि यज्ञ यागादि कर के सशरीर स्वर्ग में जाऊं। उसने अपने गुरू वशिष्ट के पास जाकर उनसे अपना मनोरथ कह सुनाया। वशिष्ठजी ने उसे समझाया कि, "राजन्, आदमी का सदेह स्वर्ग में जाना बिलकुल असम्भव बात है।" उस समय बिचारे वशिष्ठजी को इस बात का क्या पता था कि आज जो बात असम्भव मालुम हो रही है, वही दूसरे युग में बहुतों को सम्भव जान पड़ेगी! त्रिशंकु के जी में सदेह स्वर्ग जाने की ऐसी लगन लगी हुई थी कि वशिष्ठ जी की बात से उसके मन का समाधान न हुआ। उसने सोचा गुरूजी से तो काम नहीं हुआ, चलो कदाचित् उन के पुत्रों से काम हो जाय। इस अभिप्राय से वह गुरू के सौ पुत्रों के पास पहुंचा और उनसे अपने मन की बात कही कि आप लोग मेरे लिए कोई ऐसा यज्ञ कीजिए कि मैं सशरीर स्वर्ग को जा सकूं। उन्होंने भी इस बात को सर्वथा असम्भव बतलाया। तब लाचार हो-कर वह विश्वामित्र के पास पहुँचा। गुरू की बातों पर अविश्वास कर के दूसरे के पास जाने के कारण वशिष्ठ के पुत्रों ने उसे चाण्डाल हो जाने का शाप दे दिया था। पर इस दशा में भी विश्वामित्र ने उससे कहा, "कोई परवाह नहीं। मैं तेरे लिए ऐसा यज्ञ करूंगा कि तू सदेह स्वर्ग को चला जायगा।" कहने के साथ ही साथ विश्वामित्र ने यज्ञ की तयारी भी आरम्भ कर दी। सभी २ बड़े ऋषियों को निमंत्रण दिया गया। सब का आगमन हुआ। यज्ञमण्डप की रचना हुई। सब सम्मति से कार्य-प्रणाली निश्चित हुई। स्वयं विश्वामित्र ने अध्वर्यु का भार ग्रहण किया। यज्ञ में प्रत्यक्ष हविर्भाग लेने के लिए विश्वामित्र ने देवताओं को आवाहन किया। पर, चाण्डाल का यज्ञ और अध्वर्यु क्षत्रिय, इन दोनों कारणों से कोई देवता हविर्भाग लेने न आए। इस पर विश्वामित्र को बड़ा क्रोध हुआ।

जब देवता-गण त्रिशंकु को स्वर्ग से नीचे ढकलने लगे, तब विश्वामित्र ने पृथ्वी पर से ही उसे आश्वासन दिया।

क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गईं। उन्होंने यज्ञ ... में लेकर त्रिशंकु से कहा, "हे त्रिशंकु, ये देवता ... नहीं आए, इससे संतुष्ट हो कर ये तुझे सदेह स्वर्ग में ... लेकिन न लें, मुझे इनकी नानिक भी परवाह नहीं है ... तपोबल से तुझे सदेह स्वर्ग में भेजता हूं। तू देख तो सही ... स्वर्ग को भी ... है!" विश्वामित्र ... इतनी बात का ... कहिये कि राजा धी... को चढ़ने लगा। ... बात स्वर्ग में इन्द्र के ... तक पहुची तो वहां ... खलबली पड़ी। इन्द्र ने ... यह तो बड़ा अनर्थ होगा ... जीवित मनुष्य सदेह ... में आने लगे। जैसे हो ... इसे रोकना ही चाहिए ... इससे इन्द्र ने स्वर्ग से त्रिशंकु ... को पुकार कर कहा, 'त्रिशंकु ... तू ऊपर मत आ, यहां तुझे ... हरगिज़ जगह नहीं मिलेगी।' ... तब तो त्रिशंकु बहुत घबड़ाया ... उसका ऊपर जाना बन्द हो ... गया और वह नीचे को गिरने ... लगा। उसने विश्वामित्र को ... पुकारा। विश्वामित्र ने क्रोध ... से बिगड़ कर सब लोगों के ... सामने कहा, "त्रिशंकु, ठहर, ... तू मत डर। कोई चिन्ता ... नहीं, जो ये देवता तुझे अपने ... स्वर्ग में नहीं लेते। मैं तेरे ... लिए आजसे आठ दिन के ... भीतर ही दूसरी सृष्टि रचूंगा ... और उस सृष्टि के स्वर्ग में ... दूसरा इन्द्र रच कर तुझे ... उसके बराबर बिठाऊंगा।"

विश्वामित्र के मुख से इस कठोर प्रतिज्ञा के शब्दों के निकलने का समय बड़ा ही भयावना था, और ... की स्थिति भी बड़ी ही विलक्षण हो गई थी। ऐरावत-हाथी पर सवार, हाथ में अंकुश लिये ... देवता स्वर्ग के द्वार पर मूर्ति धारण किये हुए त्रिशंकु को रोकने के लिए खड़े हुए थे। पांच स्वर्ग के किनारे २ बुर्जों पर यक्ष, गंधर्व और किन्नरों की प्रचण्ड सेना शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो कर त्रिशंकु पर आक्रमण ... को प्रस्तुत थी। इधर नीचे विश्वामित्र महाराज क्रोध से आंखें किये खड़े थे ...

मण्डप का ऋत्विग् समूह और अन्य दर्शक-दल विश्वामित्र के तपोबल से आकाश में लटकते हुए राजा त्रिशंकु की ओर टकटकी बांध कर देख रहे थे। इधर बिचारे त्रिशंकु की बुरी गति थी। कभी तो वह इन्द्र के जय से नीचे आता और कभी फिर विश्वामित्र की सामर्थ्य से ऊपर जाता था-बड़ी खींचातानी में पड़ा हुआ था।

इन दोनों शक्तियों की तनातनी के कारण मध्यनक्षत्रमण्डल के निकट लटकता हुआ राजा त्रिशंकु जब सब जगह के लोगों में साफ तौर से दिखाई देने लगा, तब सब लोग इधर उधर पूछ ताछ करने लगे कि, "भाई यह क्या अचंभा है?" इस पर लोगों में कानाफूँसी होने लगी तब उन्हें राजा त्रिशंकु की सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा, तदर्थ किया हुआ विश्वामित्र का यज्ञ, इन्द्रादिक देवताओं की त्रिशंकु के स्वर्गारोहण में बाधा और उसके कारण आठ दिन के भीतर दूसरी सृष्टि निर्माण कर डालने की विश्वामित्र की घनघोर प्रतिज्ञा इत्यादि सारी बातें मालूम हो गईं। विश्वामित्र की तपस्या का उग्र तेज सर्वसाधारण पर विदित था। सब को इस बात का निश्चय था कि विश्वामित्र ने जो बात ज़बान से निकाल दी है उसे कर के छोड़ेंगे। कितनों को इस बात तक की आशंका होने लगी कि यह महाराज नयी सृष्टि ही रच कर बस नहीं करेंगे, कहीं गुस्से में आ कर पुरानी सृष्टि को भस्म भी न कर दें! विश्वामित्र की तपोसिद्धि पर लोगों का बड़ा ही विश्वास था, इस से जब यह नई सृष्टि की बात संसार में फैली तो जीवाजीव में खलबली मच गई। तत्कालिक संसार की परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः असन्तुष्ट था। वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट रहना और तदतिरिक्त किसी काल्पनिक स्थिति की चाह करना मनुष्यत्व के लिए स्वाभाविक बात है। यही बात थी कि सब लोग उस सृष्टि पर असंतोष प्रकट कर रहे थे और चाहे जैसे हो, इस के परिवर्तन होने ही में भलाई समझ रहे थे। ईश्वर-निर्मित सृष्टि के सम्बन्ध में असन्तोष प्रकट करना अनुचित कार्य है, इस का तो कोई मन में ध्यान तक न लाता था। प्रत्येक मनुष्य का मन बाहर भीतर से इस सृष्टि के विरुद्ध हो रहा था। इस दशा में जब पहली सृष्टि वालों ने विश्वामित्र की दूसरी सृष्टि की बात सुनी तो "जड़ चेतन सब जीव जहाना" सब में जो गड़बड़ मची, उसका ठीक २ वर्णन लिखना सर्वथा असम्भव है।

पहली सृष्टि के विरुद्ध लोगों की बहुतेरी शिकायतें थीं और उसके लिये जी जान से आन्दोलन करने पर भी उन बातों पर कोई ध्यान न देता था। बहुत से निर्मूल और निराधार तर्कों के आक्रमण से उनका मुँह बन्द किया जाता था। जैसे, जो कुछ हुआ है सब अच्छा ही है, ईश्वर ने जो कुछ किया है वह सब तुम्हारे भले ही के लिए किया है, इस पर विश्वास रखो, वह कभी तुम्हारा बुरा नहीं करेगा इत्यादि; पर इन बातों से उनके अन्तःकरण को कुछ बोध न होता था। ईश्वर के खुशामदी-वेदांती भी उपरोक्त प्रकार की निराधार बातें कह २ कर इस जग में त्रिविध तापों के सताए हुए मनुष्यों को उपदेशों द्वारा यथाशक्ति शांत बनाए रखने का प्रयत्न करते थे। पर उनके प्रयत्नों का कोई विशेष फल न होता था। दरिद्री इनसे पूछते थे कि, भाई, बतलाओ तो ईश्वर ने हमें दरिद्री क्यों किया? बदसूरत लोग अपने कुरूप होने का कारण पूछते थे। जब इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य के अपनी २ परिस्थिति के सम्बन्ध में शिकायत पेश करने से बहुत ही हल्ला मचने लगता तब ईश्वर की ओर के कुछ वकील आगे बढ़ कर उन्हें समझाते थे, "भाइयो, इस में शिकायत की कौनसी बात है। जैसे तुमने कर्म किये होंगे, अब वैसेही फल भोगते हो। अब अच्छे कर्म करोगे तो ईश्वर के राज में आगे चलकर तुम्हें अच्छा फल मिलेगा। जैसा कर्म वैसा फल!" दोनों पक्षों में विवाद का यह प्रश्न उत्पन्न हो जानेसे झगड़े की जड़ और भी मजबूत होगई। क्योंकि इस बात पर लोग स्वाभाविक रूप से प्रश्न करने लगे—

लो०—हमने वे कर्म कब किये?

वे०—इस जन्म में नहीं तो पिछले जन्म में किये होंगे।

लो०—तो पिछले जन्म में हमने वह कर्म क्यों किये?

वे०—उस के पहले जन्म में तुमने कुछ कुकर्म किये होंगे उन्हीं के कारण तुम्हें इन कर्मों के करने की इच्छा उत्पन्न हुई, यही नियम है।

लो०—तो फिर उस जन्म के कुकर्म हमारे हाथ से क्यों हुए थे?

वे०—उसके भी पूर्व के कुकर्मों के कारण।

लो०—यों कहा तक पीछे हटते जाना होगा? यद्यपि यह विचार-पद्धति तर्क की दृष्टि से संयुक्तिक है और कभी इसका अन्त होगा, तथापि इन उत्तरों से मन का समाधान नहीं होता। इसके सिवा यदि आप इसी प्रकार पीछे ही पीछे हटते चले जायँ तो भी आपको यह बतलाना पड़ेगा कि बिलकुल पहले कर्म क्यों हुए?

वे०—(हँसकर) पहिले कर्मों से आपका क्या तात्पर्य है? जब कर्म अनादि हैं तब उसमें पहला क्या? फिर पहले कर्म क्यों हुए, यह हम लोग नहीं कह सके।

लो०—ठीक, तुम लोग तो बतला नहीं सके और ईश्वर बोलता नहीं। तुम्हारा और ईश्वर का तो कुछ बिगड़ता नहीं, बीच में दुःख से हम लोग पिसे जाते हैं। दिन रात दारिद्र्य और दुःख में जीवन बिताना पड़ता है। सिवा इसके जब तुम, इस संसार में कोई धनी और कोई दरिद्री क्यों होता है, कोई जन्मभर चैन उड़ाता है और कोई टुकड़ों तक के लिए तरसता है इसका क्या कारण है, इन सीधेसादे प्रश्न का समाधानकारक उत्तर नहीं दे सके तो फिर क्यों नाहक तुम इस संसार की सुव्यवस्थितता का ढोल गले में बांधकर लोगों को समझाने के फेर में पड़ते हो? और क्यों दूसरों को मूर्ख समझ कर अपने को ज्ञानी समझते हो? तुम्हें किसने हमारे और ईश्वर के बीच में यह दलाली करने को कहा है?

इन प्रश्नों एवं ऐसे ही अनेक अवसरों पर होनेवाले वाद-विवादों को सुन कर प्रत्येक व्यक्ति इस बात की सहज में कल्पना कर सकता है कि उस समय की सारी जग-व्यवस्था के सम्बन्ध में लोगों के मन में कितना असंतोष भरा हुआ था। बिचारे गरीबों को कोई भी न पूछता था। वे चुपचाप बैठे दुःख सहन कर रहे थे। वे रात दिन दुःख भोगते थे पर यह उनके समझ में आता था कि हमें कौन दुःख देता है! ऐसे लोगों ने जब विश्वामित्र की नयी सृष्टि की बात सुनी तो उनके मन में नवीन आशा का संचार होगया। चेहरे फिर गये। मुख पर आशा का तेज झलकने लगा। अन्तःकरण प्रफुल्लित हो गया। मालूम होने लगा, मानों नया सूर्य निकला है। दशों दिशाओं में बहनेवाली पवन में नवीन जीवन का भास होने लगा। आकाश के तारों में अधिक चमक दिखाई पड़ने लगी। चारों ओर आनंद ही आनंद की लहरें दिखाई देने लगीं। जन समुदाय के अन्तःकरण में आत्मविश्वास की लहरें हिलोरें मारने लगीं। लोगों ने सोचा कि प्राचीन संसार के दुःखदायक बन्धनों को तोड़ कर नई सृष्टि में अपनी सुविधानुसार नवीन स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने का यह बहुत ही सुन्दर अवसर मिलगया है। सब के मन में यह बात गड़ गई कि विश्वामित्र सचमुच हमारे हित के बहुत बड़े मित्र हैं। सबने निश्चय किया कि चलकर विश्वामित्रजी को सूचना देनी चाहिये कि नवीन सृष्टि के समय हम लोगों को किन २ सुधारों की आवश्यकता है।

नयी सृष्टि रचने की प्रतिज्ञा का अन्तिम शब्द मुख से निकलते ही विश्वामित्र ने दूसरी सृष्टि पैदा करना आरम्भ कर दिया। राजा त्रिशंकु स्वर्गारोहण के लिए दक्षिण दिशा की ओर आकाश में ऊपर चढ़ता था। पर, बीच में ही उसकी ऊर्ध्वगति का प्रतिरोध हो जाने के कारण वह दक्षिण दिगमंडल के पास सिर नीचे और पैर ऊपर को किये लटक रहा था। इससे उसे धीरज बंधाने और अपनी प्रतिज्ञा का विश्वास दिलाने के लिए विश्वामित्र ने उसके सम्मुख ही दक्षिण दिशा में नवीन सृष्टि की रचना आरम्भ की। उत्तर ध्रुव के चारों ओर घूमने वाला सप्तर्षि मण्डल जिस प्रकार उत्तर दिशा की ओर है वैसा ही एक सप्तर्षि मण्डल उन्हों ने दक्षिण दिशा की ओर बनाया। तथा उनके आगे पीछे उन्हों ने और भी कितने ही अन्य नक्षत्र बनाये। इन नवनिर्मित को देखकर त्रिशंकु को बहुत कुछ संतोष हुआ। यह देखकर कि मेरे सामने नवीन सृष्टि का निर्माण हो रहा है, मैं ही उस सृष्टि का कारण और केंद्रस्थल होऊंगा, उस के मन में ... जो दुःख हो रहा था वह दूर हो गया। ... उसके ... [illegible] ... विश्वामित्र का ... [illegible] ... यह ... सृष्टि में इन्द्र का स्थान रहा जाय या नहीं।

इस प्रकार उनके उक्त विचार में गड़ जाने के कारण नूतन सृष्टि रचना में कुछ देर होगई। इस देर का और भी एक कारण हुआ। नई सृष्टि में किन किन बातों का सुधार होना चाहिये, यह सूचित करने के लिये सैकड़ों जीव विश्वामित्र के यज्ञमंडप के पास एकत्रित हो गये। उन लोगों की गड़बड़ी के कारण विश्वामित्र की समाधि ही न लगती थी। तब विश्वामित्र ने अपने शिष्यों को भेजकर इस बात का पता लगवाया कि इन लोगों के आने का कारण क्या है। इससे विश्वामित्र को यह बात सुझाई दी कि जब हमें नयी सृष्टि बनानी है तो उस सृष्टि में पुरानी सृष्टि की भूलों का सुधार करना बहुत उचित है; और तदनुसार उन्होंने अपने अपने शिष्यों को यह बात नोट कर लेने की आज्ञा दी कि किस की क्या शिकायत है और कौन क्या सुधार चाहता है।

इधर विश्वामित्र का ढंग देखकर स्वर्ग में इंद्रादि देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई। जब इंद्र को यह बात मालूम हुई कि विश्वामित्र ने नई सृष्टि की रचना आरम्भ भी कर दी है, कुछ नक्षत्र भी बना डाले हैं और अब वह इस विचार में है कि नई सृष्टि में दूसरा इंद्र बनाना चाहिए या इंद्र की जगह ही उड़ा देनी चाहिए। तब तो इंद्र को बड़ी घबराहट हुई; और अब इसके आगे क्या करना चाहिये, इस आपद का क्या उपाय होना चाहिए, विश्वामित्र की सामर्थ्य को दबाने की शक्ति अपने में से किसी में है अथवा नहीं या उनसे सन्धि करना श्रेयस्कर है, इसी प्रकार के अनेक प्रश्न देवताओं के सम्मुख उपस्थित हुए और उनके निर्णय के लिए देवताओं की मीटिंग होने लगीं।

जब पृथ्वी पर मनुष्यों को देवताओं की इस हलचल और घबराहट का पता चला तो वे बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे, खूब हुआ! आज तक देवताओं ने बड़ी मनमानी की, बड़ी अँधाधुन्द मचाई, अपने चरण पुजवाये, हमलोगों को ठोकरें खिलवाई, आप मोहनभोग का नैवेद्य उड़ाते रहे, हमें भूख से तड़पा २ कर मारा, विश्वामित्र जी ने यह बड़ा अच्छा अवसर ला दिया है, अब इनकी खूब कसर निकलेगी, चलो विश्वामित्रजी के पास चलकर उन्हें राय देनी चाहिये, पुराने संसार का नाश करके नवीन संसार किस प्रकार संतोषकारक तत्वों पर रचा जाना चाहिए, यह बड़ा आवश्यक कार्य है। यह सोचकर सब लोग विश्वामित्र के आश्रम को चले।

विश्वामित्र के तपोवन के सामने धीरे धीरे इन लोगों की इतनी भीड़ हो चली कि विश्वामित्र के ६४ हज़ार शिष्यों के लोगों का वक्तव्य लिखने बैठने पर भी उनकी नवीन सृष्टि सम्बन्धी सूचनाओं का अन्त न होता था। कितने ही का वक्तव्य बिना लिखे रह गया, कितने ही की अधूरी बातें लिखी गई और कितने ही की सूचनायें लिखने में ऐसी गड़बड़ मची कि किसी की माँग किसी के नाम जा पड़ी और इससे अनर्थ हो जाने का प्रसंग उपस्थित हो गया। यह तो स्पष्ट ही है कि जब उस समय पूरी तौर से यह लिखना तक मुश्किल था कि कौन क्या चाहता था तो उस का यहाँ पूरा वर्णन करना उस से भी अधिक दुस्साध्य है। तथापि तत्कालीन सूचनाओं और माँगों में से किसी २ का कथंचित् उल्लेख कहीं २ मिलता है।

वृक्षों ने सब से यह प्रार्थना उपस्थित की कि इस पुरातन जगत् में हम लोग खड़े रहते रहते थक गये हैं, इसलिए इस नयी सृष्टि में हमें ऐसी सुविधा मिलनी चाहिये कि इच्छानुसार हम लोग ज़मीन पर लेट और खड़े हो सकें।

लताओं ने कहा, आज तक तो हम लोगों ने वृक्षों के सहारे से जीवन बिताया है लेकिन अब आगे हमें अपने पैरों खड़े होने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये।

[illegible] का कहना यह था कि पहले समय में हमारे पंख थे, पर इन्द्र ने उन्हें काट दिये, अब इस नयी सृष्टि में हमें अपने पंख वापिस मिलने चाहिये। और इसी प्रकार [illegible] में इन लोगों को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कहा, युगानुयुग से जल में रहते रहते हम लोग सर्दा गई हैं, अतः इस नयी सृष्टि में हमें स्थल पर घूमने फिरने की आज्ञा दी जाय। जब मछलियों का यह प्रस्ताव पेश हो रहा था, तब बहुत से मत्स्याहारी लोग वहीं खड़े थे। उन्होंने बड़े ज़ोर से इसका समर्थन करते हुए कहा, 'हाँ, यह बिलकुल ठीक है, यह बात ज़रूर होनी चाहिये।'

सर्पों ने विनय प्रकट कर के कहा कि हम लोगों में जो विष है, उसके कारण हमें बड़ा कष्ट मिलता है। इस दुर्गुण के कारण हमें हर एक आदमी दुतकारता और मारता है, यह दशा कुछ अच्छी नहीं है। अतएव इसका कुछ उपाय होना चाहिये। इस पर विश्वामित्र-शिष्यों ने सर्पों से कहा कि अच्छा, तुम्हारी जीभों से विष तो निकाल लिया जाय, लेकिन फिर वह कहाँ रखा जाय? यदि किसी को उसके लेने के लिये खड़ा करो तो तुम्हें उससे मुक्त करने का प्रबन्ध किया जायगा। उस समय वहां कुछ दुर्जन, निन्दक और चुगलखोर खड़े थे। उन्होंने इन बातों को सुना और आपस में सलाह करने लगे कि यार, यह माल तो अपने मतलब का है। योंही मुफ्त में हाथ से निकला जा रहा है, इसे जरूर ले लेना चाहिये। उन्होंने विश्वामित्र के शिष्यों से कहा, अच्छा साहब, साँपों का जितना विष निकलेगा वह सब हम लोग अपने जिह्वाग्र पर धर लेंगे और सर्पों का बोझ हलका कर देंगे।

हाथी ने आगे बढ़कर शिकायत की कि और सब प्राणियों के दाँत मुँह के अन्दर होते हैं, पर केवल हम्हीं लोगों के दांत ऐसे हैं जैसे एकाध दतेले (काटू) मनुष्य के दाँतों की भांति बाहर निकले रहते हैं। इससे ऐसा प्रबन्ध हो तो अच्छा कि हमारे दांत भी भीतर ही रहें। इस पर यह आक्षेप हुआ कि जिस के दांत उसी के मुँह में डालने ठीक नहीं। अतः इस सूचना पर विचार नहीं हुआ।

बगुलों ने यह एक पुरानी बात कही कि साहब, पहली सृष्टि के आरम्भकाल में हमारे और ढोंगी साधुओं में परस्पर यह तै हुआ था कि थोड़े दिनों तक हम लोग आँखें बन्द किये हुए नदी तट पर खड़े खड़े अपना आहार संग्रह करेंगे और ढोंगी साधु आँख पृथ्वी पर आँखें मूंद कर लोगों को फँसा कर अपना मतलब साधेंगे। उसी शर्त पर आजतक हम लोग जल के किनारे अपना काम करते रहे, पर अब जल से हमारा जी हट गया है। सो अब इस नयी सृष्टि में हम भी साधु बन कर लोगों को फँसाने का धंधा किया करें और उन्हें हम लोगों की भांति गले भर पानी में खड़ा कीजिये।

'कितने ही पशुओं ने अपनी ओर से यह कैफियत दाखिल की कि ऐसे बहुत से मनुष्य हैं जो अक्ल में तो बिलकुल हमारी बराबरी के ही हैं, बल्कि किन्हीं किन्हीं बातों में तो हम से भी गये बीते हैं। पर साग जो निर्बुद्धि का चिन्ह है, यह केवल हम्हीं लोगों के सिर पड़ा है। अतः नयी सृष्टि में यह पक्षपात जरूर दूर हो जाना चाहिये। या तो यह किया जाय कि मूर्खों के सिर पर भी मूर्खता के चिन्ह स्वरूप हम्हीं लोगों की भांति सींग लगाये जायँ या उन्हीं की भांति हम लोगों के सिर से सींगों का बोझा हलका कर देना चाहिये।

ऐसी ही अनगिनत भिन्न २ आकांक्षायें थीं, उन्हें कहां तक गिनाई जाय। संक्षेप में यह बात कही जासकती है कि हर आदमी अपनी पूर्व स्थिति से दबा हुआ था, और अननुभूत पूर्व किसी नवीन स्थिति की अभिलाषाओं की लहरों में मग्न था। कितनों ही को तो ऐसी जल्दी पड़ी कि उन्होंने विश्वामित्र की नई सृष्टि की राह देखना उचित न समझा और अपने आप अपनी स्थिति बदलनी आरम्भ कर दी। [illegible] ने धीमान बनने के लिए अपने तन पर के चीथड़ों का फाड़ फेंका। [illegible] ने मनुष्य में मिलने की चाह से [illegible] उड़ा डाले। गदहों ने घुड़सवारों में नाम लिखाने के लिए अपने [illegible] काम करा डाले। यही विलक्षण २ बातें होने लगीं। इसी तरह गड़बड़ी और भीड़ की अधिकता के कारण विश्वामित्र के शिष्यों के हाथ से भूल से एक की माँग दूसरे के सिर लिखी जाने लगी। कितने ही लोगों ने [illegible] के स्थान में कसदार [illegible] के मुख माँगे थे। पर लेखकों की भूल के कारण यह माँग [illegible] स्त्रियों के नाम के सामने चढ़ गई। [illegible] स्त्रियों ने [illegible] और [illegible] होने की प्रार्थना की थी। [illegible] के नाम के आगे में लिख गई। कितनी ही [illegible] ऐसी थीं कि [illegible] में इसका ठीक मतलब भी न समझ[illegible]

इससे भी खास रजिस्टर में कुछ गलतियां रह गईं। बहुत से ऐसे लोगों ने, जो कि दूर दूर की प्रसिद्ध और गुप्त बातें सहज में समझ लेने के अभिलाषी थे, अपनी यह प्रार्थना लिखाई थी कि हमें दूर तक की बातें सुनाई देनी चाहिये। उनके नाम के आगे लेखकों को लिख रखना था कि इन्हें लम्बे कानों की ज़रूरत है। यद्यपि इस प्रकार बड़ी गड़बड़ हो रही थी, तथापि उस गड़बड़ से यह एक बात समझती थी कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पूर्व स्थिति में कुछ न कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता थी। जो धनी थे उन्हें और अधिक धनी होने की चाह थी। राजाओं को भी अपने सात्विक राज्य की अपेक्षा और अधिक राज्य मुफ्त में मिल जाय तो बहुत अच्छा हो। परिवर्तन के इस बड़े बखेड़े में परिवर्तन न चाहने वाले विरले ही लोग थे। केवल हिन्दू-धर्म की पतिव्रता स्त्री मात्र ही ऐसी थी कि उन्हें अपने पतियों के सम्बन्ध में किसी उलट-फेर की आवश्यकता न थी। उस दल ने अपने नाम के आगे अपनी यह इच्छा लिखवायी कि यदि आपकी दूसरी सृष्टि भी बने तो हमें उसमें भी अपने पहले ही पति की आवश्यकता है।

ये सूचनायें तो व्यक्ति विषयक थीं। परन्तु और भी कितनी ही सूचनायें, जो सात्विकस्वरूप की और सार्वत्रिक उपयोग की थीं, लिखवायी गई थीं। कितने ही राजाओं की यह चाहना थी कि पृथ्वी के गर्भ और समुद्रतल में सुवर्ण के जो परमाणु बिखरे पड़े हैं, उन्हें उस स्थिति में रहने देना उचित नहीं है। उचित यह होगा कि सृष्टि कर्ता उन सब को एकत्र करके बड़ा सा गट्ठा बांध कर पृथ्वी पर कहीं रख दे, और गुप्त से उसका पता-निशान हम लोगों को बतला दे। मनुष्यों की एक और सभा ने जल के सम्बन्ध में अपनी यह राय पेश की कि, जल के सम्बन्ध में पूर्व सृष्टि रचना में बड़ी भारी भूल हुई है। गर्मी पाकर भाप से बना हुआ जल मेघमंडल में बहुत ऊँचाई पर रहता है। वहां से वर्षा के रूप में वह नीचे गिरता है और फिर उसे चहबच्चे से, लोटा-डोरी से या पंप के ज़रिये ऊपर लाना पड़ता है, यह द्राविड़ीय प्राणायाम ठीक नहीं है। इसकी अपेक्षा यह अच्छा होगा कि मेघमंडल में जल जहां ऊँचाई पर रहता है, नई सृष्टि में उसे वहीं का वहीं रहने दिया जाय और वहीं से पनालों की सहायता से घर-घर पहुंचा दिया जाय। क्योंकि ऐसा करने में वहां से पानी लाने में सुविधा रहेगी, और से पानी आवेगा और व्यय भी कम होगा। कम्पों ने भी सूर्य के प्रकाश से रोशनी का माल लाने की एक कल्पना विश्वामित्र की नवीन सृष्टि के लिए निकाली थी। उसमें कोई ऐसी विशेष बात न थी। सिर्फ सूर्यमंडल से रोशनी की नलियां लगाकर उन्हें घर घर लगा देना, इसकी बदौलत से रात में भी दिन की तरह काम होगा, और भोजन बनाने के लिए चूल्हा फूंकने बैठने की आवश्यकता दूर हो जायगी! स्त्री पुरुष-अधिकार-परिषद नाम की उस समय एक पुरानी या [illegible] परिषद थी। उस परिषद ने विश्वामित्र को [illegible] कर यह सूचना दी थी कि पूर्व सृष्टि के जरायुज और अंडज, ये जो सृष्टि के भेद हैं, वे इस परिषद को बिलकुल स्वीकार नहीं हैं। इस परिषद का यह मत (प्रस्ताव) है, कि जरायुजवालों, स्त्रियों के आरोग्य एवं सौन्दर्य के लिए हानिकर होने के कारण अब, नवीन सृष्टि में [illegible] कर देनी चाहिए। और इस परिषद का यह भी मत है कि [illegible] बैठे रहने का, जो [illegible] है, उसके [illegible] बाद [illegible] को जो दूसरी [illegible] है, वहां मनुष्यों में भी सम्भव हो!

यह चित्र दक्षिण तारकापुञ्ज से ही सम्बन्ध रखता है। इस चित्र में चार तारे अपने सामने चतुष्कोणाकृति में स्वस्तिक के सदृश होने से इन्हें [illegible] (Southern Cross) भी कहते हैं। इनमें सब से नीचे का तारा [illegible] का है। और [illegible] पर जो ३ तारे त्रिकोणाकार में हैं [illegible] हैं। इसी के पास दक्षिणार्ध नामक ७ तारे और भी हैं। इन्हें सप्तर्षि कहते हैं। आकाश में दक्षिण की ओर आकाश गंगा के पास में इस नक्षत्र की [illegible] दिशा की ओर [illegible] देती है, तब इसे देखने से बड़ा आनन्द होता है। इसमें मुख्य तारों के विषुवांश १२ घंटे ४० मि० १० सेकण्ड है और इसकी क्रान्ति दक्षिण में ६२ अंश, २० कला, ११ विकला है।

पदार्थविज्ञानशास्त्र वेत्ता, रसायनशास्त्र वेत्ता, यतिशास्त्र वेत्ता और ज्योतिषशास्त्र वेत्ता इत्यादि नानाविधशास्त्रवेत्ताओं की एक मिश्र सभा उस समय बहुत प्रसिद्ध थी। उसके सभासद, विश्वामित्र से, यह कहने लगे कि, आकाश के तारे अन्यान्य गुरुत्वाकर्षण के योग से अन्तरिक्ष में उन उन स्थानों पर स्थिर हैं, यह हम गुरुत्वाकर्षण के नियम से समझते हैं। पर ये एक एक तारे जब आकाश में बनाये जा रहे थे और उनके गुरुत्वाकर्षण की शक्ति एक दूसरे पर अद्यापि लागू नहीं हुई थी, उस समय उस स्थिति में ये तारे आकाश (अधान्तरों) में कैसे टिके हुए थे, यह हम लोगों की समझ में नहीं आता। अतः यह आप कैसे करते हैं, सो इस नयी सृष्टि के समय देखने के लिये हम लोग आये हैं। आशा है कि यह प्रयोग आप हम लोगों को दिखावेंगे। इसी प्रकार भांति भांति की सूचनाओं और प्रार्थनाओं को सुनकर विश्वामित्र का मन घबड़ा गया। ये सूचनायें यहां तक बढ़ती गईं कि उनका लिखना तो अलग रहा, किन्तु ध्यान में रखना तक असम्भव हो गया; फिर उनके अनुसार काम करने की तो बात ही निराली है। इन सब कारणों से विश्वामित्र के मस्तिष्क-विकृत होने का अवसर उपस्थित हो गया। उधर त्रिशंकु आकाश में, इस डर से कि कहीं गुरुत्वाकर्षण का अत्याधिक्य हुआ तो मैं नीचे जा पड़ूंगा, चिल्ला रहा था, "बचाइये विश्वामित्रजी बचाइये, गिरा रे गिरा!" इस ओर से विश्वामित्र उसे आश्वासन दे रहे थे "ठहरो, ठहरो, डरो मत!" साथ ही यह नवीन सृष्टि के भावी निवासियों की प्रार्थनायें सुन रहे थे। सिवा इसके ऊपर से त्रिशंकु की पुकार सुनकर नीचे एकत्रित लोगों में भी भगदड़ पड़ जाती। लोग यह सोचकर इधर उधर भाग जाते थे कि कहीं यह हमारे ऊपर आ गिरा तो हम न नई सृष्टि के ही रहेंगे और न पुरानी ही के। कहिये भला ऐसी गड़बड़ में किसके होश ठिकाने रह सकते हैं! इस गोलमाल को देख कर विश्वामित्र ने समझा कि यह जो काम मैंने अपने ऊपर लिया है वह कितना महान्, व्यापक और जिम्मेदारी का है। साथ ही उन्हें इस बात की आशंका हुई कि कहीं इस तरह अगणित ही रहनेवाली सूचनाओं और प्रार्थनाओं को सुनते सुनते ही अपनी प्रतिज्ञा के सब दिन निकल न जावें। क्योंकि प्रतिज्ञा के बाद का सातवां दिन आरम्भ हो गया था। ऐसी दशा में जब-तब उनके मन में यह भाव उठने लगा कि यदि मैंने यह प्रतिज्ञा न की होती तो ही अच्छा था। फिर सोचने लगे कि मैं इन सब लोगों की सूचनायें सुनने के झमेले में न फँसता तो ठीक था। परन्तु वह थे बड़े उदार अन्तःकरण के, इसी कारण उनके हाथ से ऐसा निर्दयी कार्य भी नहीं हो सकता था कि [illegible] की उपेक्षा करें। इस [illegible] में यह आने के कारण [illegible] उनके हृदय में यह [illegible] था कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए [illegible] के समय [illegible]।

इस प्रकार के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सम्बन्धी तथा ऐसे ही अन्य अनेक आधिभौतिक और आध्यात्मिक प्रश्नों के सम्बन्ध में बड़े गौर से विचार करनेवाले महात्माओं में से थे। वे *कणाद, गौतम, कपिल, जैमिनी, व्यास, याज्ञवल्क्य* इत्यादि दर्शनकार और शास्त्रकारों की योग्यता और टक्कर के थे। इतनी उच्चकोटि के लोगों को आते देखकर विश्वामित्र उनके स्वागत के लिए खड़े हो गये और साधारण कुशल-मंगल के बाद उनके आने का विशेष कारण पूछा। उन लोगों ने अपना तात्पर्य बतलाया कि हम इस बात की विवेचना करने आये हैं कि नवीन सृष्टि-रचना-प्रसंग में आध्यात्मिक शास्त्र की दृष्टि क्या अशक्यता उत्पन्न होगी? विश्वामित्र को इन बातों से कुछ आनन्द भी हुआ और कुछ उद्वेग भी। यद्यपि बीच बीच में त्रिशंकु की पुकार के कारण कभी कभी विश्वामित्र का मन व्यग्र हो जाता, तथापि विश्वामित्र ने उन आगत महर्षियों के साथ बहुत देर तक बड़ी शांति सहित बात-चीत की। उन लोगों का पारस्परिक सम्वाद बहुत गम्भीर था। उसका यथावत वर्णन करना तो सर्वथा असम्भव है, तथापि उसका सार जानने योग्य है। विश्वामित्र के पास आगन्तुक महात्माओं के कथन का सार यह था—उन्होंने विश्वामित्र से पूछा, महाराज! आपने जो नई सृष्टि-रचने की प्रतिज्ञा की है, उसे आप कैसे रचियेगा? इन लोगों के साधारण प्रश्नों का उत्तर देना बड़ा कठिन कार्य है। खैर, यह बात यदि पूरी हो भी जाय तो क्या आपको इसका अनुभव नहीं होता कि तात्विक दृष्टि से आपके इस मार्ग में बड़ी बड़ी आवश्यकतायें और अड़चनें पड़ेंगी। आप नई सृष्टि कैसे बनाइयेगा? क्या किसीको इस बात का पता है कि पुरानी सृष्टि कैसे निर्माण हुई थी? कम से कम आपको तो यह पता होगा, कि जिसके योग से पुरानी ही सृष्टि के ढंग पर तुम्हारी यह नवीन सृष्टि बन सकेगी? तुम अपनी जड़-सृष्टि के लिए इन पंच-महाभूतों के इतने असंख्य परमाणु कहां से लाओगे? और मान लिया जाय कि तुमने कहीं से पैदा भी कर लिये तो फिर तुम उनका करोगे क्या? यह तो बने बनाए जड़ ठहरे! अहदी की तरह एक स्थान पर *बिना हाथ-पैर हिलाए* बैठे रहेंगे—ज़रा भी हरकत नहीं करेंगे। फिर उन सूक्ष्म परमाणुओं का परस्पर संयोग कैसे होगा, और उनसे तुम्हारी स्थूल सृष्टि कैसे प्रकट होगी? एक अणु का यदि दूसरे अणु से योग न हुआ तो फिर उन दोनों अणुओं से तुम्हारा द्व्यणुक कैसे तयार होगा? और जहां द्व्यणुक का ठिकाना नहीं, वहां त्र्यणुक और चतुरणुक कहां से बनेंगे? हमारे कहने का सारांश यह है कि क्या तुम इस बात को नहीं सोचते हो कि पहले तो तुम्हें इन जड़ और अचेतन परमाणुओं के सम्मुख ही हाथ-पैर टेकने पड़ेंगे, और वहीं तुम्हारी गति रुक जायगी। तुम इन जड़ परमाणुओं में से प्रथमगति कैसे उत्पन्न करोगे? सृष्टि के विषय में सारे तत्ववेत्ता यहीं आकर उलझते हैं! तुम उससे कैसे निकलोगे? अथवा यदि कदाचित् तुमने सत्व, रज और तम इन गुणों के सहारे सृष्टि निर्माण करने की इच्छा भी की तो यह तीन गुण तुम कहां से लाओगे? उसके लिए तुम्हें त्रिगुणात्मिका प्रकृति की रचना करनी चाहिए परंतु यह कैसे करोगे? कदाचित् तुमने त्रिगुणों की साम्यावस्था में होनेवाली प्रकृति की रचना कर ली, यह मान लिया जाय, तो वह प्रकृति कब प्रवृत्त और कब निवृत्त होगी? फिर वह प्रवृत्त हो ही गी क्यों? यदि एक बार प्रवृत्त हुई तो फिर निवृत्त क्यों होगी? यदि तराजू के डंडी के बीच लटकनेवाले पलड़ों की (जो डंडी बिलकुल स्थिर है) भांति तुमने त्रिगुणों की स्थिरता की साम्यावस्था को प्राप्त प्रकृति को उत्पन्न किया तो उस आदि साम्यावस्था को [illegible] की प्रवृत्ति के लिए तुम कैसे भंग करोगे? तराजू की भांति प्रकृति की इस साम्यावस्था को आदि में तुम कैसे विचलित करोगे? लट्टू की भांति ही इस गुणत्रयात्मक प्रकृति में तुम आरम्भ से कैसे गति उत्पन्न करोगे? तुम कहोगे कि मैं आरम्भ में [illegible] धक्का देकर उसमें गति उत्पन्न करूंगा, लेकिन तब भी तो वह [illegible] नहीं होगी। क्योंकि, परमाणु स्वभाव से जड़ हैं। तुम [illegible] परमाणुओं को [illegible] कैसे [illegible] करोगे? मान लिया जाय कि किसी तरह तुम यह करने भी लगे तो इन परमाणुओं को एक दूसरे पर ढकेलने ढकेलते तुम्हारे हाथ दुखने लगेंगे; परन्तु [illegible] तुम्हारा कुछ असर इन जड़ परमाणुओं पर नहीं [illegible]

करने तक के लिये काफी न होगा। और यही बात प्रकृति की भी है।

सम्भव है तुम कहो कि मैं खरी जड़-सृष्टि न रचूंगा—केवल आभास मय सृष्टि रचूंगा, जिसमें इन परमाणुओं तथा प्रकृति की झंझट ही न रहेगी। पर इतना करने पर भी तो *तुम्हारा संसार नहीं चलेगा।* क्योंकि रज्जू में भास होनेवाले सर्प किंवा शुक्ति पर भान होनेवाले रजत के लिए किसी परमाणु की आवश्यकता नहीं हो सकती; पर सत्य-सृष्टि में लोगों को जो व्यवहार करने हैं वे ऐसे अज्ञान मूलक आभास पर नहीं चलते। उनके लिए सत्य, दृश्यमान और स्पृश्यमान सत्पदार्थों की आवश्यकता होती है, बिना सत्यता के यह नहीं चल सकता।

यह तो अचेतन सृष्टि के मार्ग की कुछ अड़चनें हुईं। अब सचेतन सृष्टि-रचना में जो अड़चनें पड़ेंगी वह इससे कम कठिन नहीं हैं। तुम परमात्मा और जीवात्मा के भेदाभेद की क्या तजवीज करोगे? तुम अपनी सृष्टि में जीवात्मा को परमात्मा का अंशभूत मान कर उसे परमात्मा से उत्पन्न करोगे अथवा परमात्मा और जीवात्मा का तुम कोई वास्ता ही न रखोगे? और सब से पहले यह बतलाओ कि तुम खुद क्या बनोगे, जीवात्मा या परमात्मा? अथवा इन दोनों से निराले कोई तीसरे ही? लेकिन तुम पहले ही एक जीवात्मा होने के कारण परमात्मा कैसे हो जाओगे?—और परमात्मा के बिना तुम्हारे हाथों से सृष्ट्युत्पत्ति कैसे सम्भव होगी? दूसरी बात, इन दोनों से कोई तीसरा होना सम्भव ही नहीं है। फिर तुम किस भूमिका पर आरूढ़ होकर यह सृष्टि रचने चले हो? खैर, अगर किसी तरह तुमने निज सम्बन्धी कठिनाई दूर भी कर ली तो शेष जीवात्माओं का क्या प्रबन्ध करोगे? उन्हें यदि तुमने नये सिरे से बनाया, तो जो उत्पन्न होगा, उसका नाश हो ही गा, इस न्यायानुसार तुम्हारे जीवात्मा नष्ट होने लगेंगे, और उसी प्रकार तुम्हारे जीवात्मा, मनुष्यों की मृत देहों के साथ, जलने लगेंगे, फिर भविष्य में तुम्हारी सृष्टि कैसे अखण्ड रहेगी? इसके सिवा अपने कर्मों के लिए उन्हें जो बुरा-भला फल भोगना चाहिये, वह एक *जन्म* में न मिला तो तुम्हारी सृष्टि में नाश हो जानेवाले जीवात्माओं को वह आगे कब मिलेगा? उसी प्रकार यह बात भी है कि तुम नवीन जीवात्माओं को उत्पन्न तो करने लगे, पर जब उनके पूर्व जन्म के कुछ कर्म हैं ही नहीं, तब फिर तुम उन्हें धनी बनाओगे या दरिद्री? सुखी बनाओगे या दुखी? दूसरे तुमने उन्हें कुछ बनाया भी, सो तुम उनके बनानेवाले कौन? तुम्हारे पास ऐसा क्या है जो उनका नियामक हो सके? यदि तुमने एकाध जीवात्मा को आरम्भ में ही दुखी या दरिद्री उत्पन्न किया तो अपनी निर्दयता के उदाहरण तुम आप ही होगे! अस्तु; यदि तुमने बराबर का जोड़-तोड़ बिठाने के लिए किसी पर दया करके उसे सुखी और धनवान बनाया तो इसका आधार क्या होगा, और बिना आधार यह करोगे कैसे? यदि तुम अकारण ही किसी पर क्रोध और किसी पर दया दिखाने लगे तो तुम्हारी सृष्टि सर्वथा अव्यवस्थित और बन्धन रहित होकर शीघ्र ही यह नाश की ओर अग्रसर होगी। *प्राकृतिक सृष्टि में ईश्वर* प्रत्येक को उसके पूर्व कर्मानुसार भला-बुरा फल देता है, और इसे मान कर तत्ववेत्तागण यथाशक्ति इस अव्यवस्था का ज्यों त्यों परिहार करते हैं। हम लोगों को यह न मालूम होने के कारण कि वह कर्म कब और कैसे उत्पन्न हुए, और यह समझ कर कि वे अनादि हैं, किसी प्रकार मन को समझा बुझा लेते हैं। अब हम लोग यही देखने के लिए तुम्हारे पास आए हैं कि देखें कर्म के सम्बन्ध में तुम्हारी नवीन सृष्टि में कोई समाधान कारक तत्व मिलता है या नहीं। पुरातन जग के आदि काल में जग का आरम्भ कैसे हुआ, यह देखने के लिए कोई तत्ववेत्ता विद्यमान न था, इसीसे किसी ही के मन में कितनी ही शंकायें और संशय रह गये हैं। अब हम लोग इन शंकाओं का सम्मुख निराकरण करने के लिए आये हैं, क्योंकि इसका यह बड़ा अच्छा अवसर है। अब हम लोगों को साफ़ साफ़ समझा कर कहो कि तुम कैसे क्या करोगे? [illegible] ही तुम जीवात्माओं को उत्पन्न करने में किस तत्त्व से काम लोगे? परमात्मा को आदिकारण मान कर उसके जीवात्मा को गुण परिणाम मान कर उत्पन्न करनेवाले हो, अथवा [illegible] परमात्मा के भिन्न भिन्न रूपों पर से भिन्न भिन्न प्रतिबिंब द्वारा [illegible]

उन्हींको तुम जीवात्मा साबित करनेवाले हो ? इन जीवात्माओं को तुम नियमित रखनेवाले हो अथवा अनियमित ? यदि तुम इन जीवात्माओं को भवसागर में छोड़नेवाले हो तो फिर उनका उद्धार किस उपाय से करोगे ? मृत्यु से या मोक्ष से ? फिर यदि तुम मोक्ष के द्राविड़ी प्राणायाम द्वारा ही उन्हें भवसागर से पार करना चाहते हो तो फिर उन विचारों को भवसागर में डालने से ही तुमने क्या फायदा समझ रक्खा है। जो जीवात्मा आदि से स्वतंत्र अथवा नवीन उत्पन्न होनेवाले हैं, उन विचारों को पहले तो संसार-सागर में गोते खिलाना, त्रिविध ताप से तपाना और फिर उससे उबारना; यह क्या बात है ? कर्म से हो, भक्ति से हो, ज्ञान से हो अथवा किसी प्रकार से हो, यह नाहक की उठक बैठक करने की अपेक्षा उन बिचारी स्वतंत्र आत्माओं को (वे सचमुच स्वतंत्र हों तो) तुम स्वतंत्र अवस्था में ही सुख से विचरने दो अथवा उन्हें अनुत्पन्न स्थिति में ही रहने दो तो इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा ? बेमतलब दूसरों को सव्यापसव्य करने से तुम्हारे पल्ले क्या पड़ेगा ? तुम त्रिशङ्कु को स्वर्ग में चढ़ाना चाहते हो, खुशी से चढ़ाओ। लेकिन अपने एक इस क्षुद्र अभिमान की पूर्ति के लिए तुम असंख्य जीवात्माओं को, चौरासी लाख योनियों में, अनेक यातनायें भोगते फिरने का मार्ग क्यों बनाते हो ? क्या दूसरों को दुःख में डाले बिना तुम्हारा यह कार्य सिद्ध नहीं होता ? जिस मनुष्य में सृष्टि उत्पन्न करने की योग्यता है क्या उसके लिए यह उचित है कि दूसरों को दुःख पहुंचा कर अपना सुख सिद्ध करे ? हमें तुम्हारी इस सृष्टि का तो यह मतलब दिखाई देता है कि तुम त्रिशंकु को ऊपर चढ़ाना चाहते हो। पर इस पुरानी सृष्टि के बनने का कोई हेतु तो किसीको मालूम नहीं होता। बहुत विचार करने पर भी इस प्राचीन सृष्टि के कर्ता का सृष्टि-बनाने में कोई कारण था, यह बात प्रगट नहीं होती। यदि हमें इस पहली सृष्टि के कर्ता का पता लग जाता तो हम उससे पूछते कि बिना अपने हेतु-सिद्धि के इन असंख्य जीवों को क्यों भवचक्र में फँसा कर फिरा रहे हो ? पर वह तो मिलता ही नहीं। वह मिले या न मिले, पर तुम तो खूब मिले हो। तुम्हारे पास हम लोग इसी लिए आए हैं कि हमारी इन शंकाओं का समाधान हो जाना चाहिए।

उन महात्माओं और ऋषियों के सम्भाषण का इतना ही सार था। उनकी बातें सुन कर विश्वामित्र को अपने हाथ में लिए हुए जगदुत्पत्ति कार्य की विकटता का पूरा पूरा अनुभव होगया। अब उनके मन में यह भाव उठने लगे कि यह सृष्टि बनाऊं या न बनाऊं। पर इसी बीच में ऊपर से त्रिशंकु की आवाज़ आई, "दौड़ियो, दौड़ियो महाराज, गिरा रे गिरा !" ये शब्द सुनते ही विश्वामित्र के मन की द्विविधा दूर हो गई, फिर क्रोध से आँखें लाल हुईं, ओंठ फड़कनेलगे और प्रतिज्ञाभिमान मस्तिष्क में व्याप्त हो गया। उनकी तपश्चर्या का तेज नेत्रों में चमकने लगा, और उन्होंने वहां एकत्रित उन सब तत्ववेत्ताओं को फटकार सुनाते हुए कहा ! " मैंने सुन ली तुम्हारी बातें। तुम अपने मन में निश्चय जानो कि मैं अपनी प्रतिज्ञा से कभी टलनेवाला नहीं हूं। मेरे मार्ग में चाहे जितनी कठिनाइयाँ क्यों न उपस्थित हों, पर मैं उनसे डर कर अपना अंगीकृत कार्य कभी न छोड़ूंगा। जिस राजा त्रिशंकु को मैंने सदेह स्वर्ग में भेजने का वचन दिया है, क्या उसे बीच में उलटा लटकते छोड़ कर, नपुंसक मनुष्य की भांति, मैं स्वस्थ बैठ जाऊं ? विश्वामित्र कभी ऐसा नहीं करने का ! चाहे जितनी कठिनाइयाँ मेरे मार्ग में क्यों न आवें, मैं दूसरी सृष्टि अवश्य रचूंगा। अब मैं समझ गया कि तुम मेरे सन्मुख उन कठिनाइयों के शाब्दिक जाल फैला कर मुझे सृष्टि-रचना से निरस्त करना चाहते हो। खास कर तुम लोग उन स्वर्गीय देवताओं के पृथ्वी पर के प्रतिनिधि हो ! मैं समझ गया। अपना स्थान नष्ट जाता देख कर उन देवताओं ने ही तुम्हें, मेरा तेजभंग करने की नियत से, भेजा है। लेकिन जाओ ! तुम जाकर अपने उन देवताओं से कह दो कि विश्वामित्र अपनी प्रतिज्ञा से पग भर भी हटने के लिए तयार नहीं है। मैंने सृष्टि-रचना आरम्भ कर ही दी है, अब उसे वैसे ही आगे बढ़ाऊँगा। उसमें त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग में ले जाकर बिठाऊंगा ! तुम इस काम में अड़चनें बतलाते हो ? पर अड़चनें होती क्या हैं ? तुम सरीखे पुरुषार्थ-हीनों को यह अड़चनें मालूम होती हैं, पर मैं ऐसी अड़चनों से नहीं डरा करता। तुम तत्ववेत्ता लोग सदैव के ऐसे ही हो ! व्याकरण में कुछ अकर्मक क्रियापद जैसे होते हैं, वैसे ही तुम भी सदा के अकर्मक हो। तुम्हारे अंगों में कुछ कर्तृत्व रह ही नहीं गया है। इसके सिवा तुम जिस ज्ञान का इतना घमंड करते हो, उसका भी तुम्हें पूरा पता नहीं है। तुम्हें जो अड़चनें और कठिनाइयाँ जान पड़ती हैं उन्हें मैं अपने प्रयत्न से और अपनी तपश्चर्या के बल से पार कर लूंगा। प्रयत्न और तपश्चर्या से सारे कार्य सिद्ध हो सकते हैं, उनके सामने कोई बात अशक्य नहीं है। पहले जो जो काम हुए हैं सब तप ही के प्रभाव से हुए हैं। और क्यों, यह पहली सृष्टि भी तप से ही हुई है। "सोकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किंच। " यह तैत्तिरीय श्रुति का वचन है। और उसी तप के बल से मैं भी जगदुत्पत्ति का कार्य करूंगा, लेकिन अपनी प्रतिज्ञानुसार नवीन जग निर्माण किये और उसमें त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग बिठाये बिना कभी न मानूंगा। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि विश्वामित्र के क्रोधपूर्ण प्रतिज्ञा के वचनों को सुन कर वहां आये हुए उन मानवी तत्ववेत्ताओं को भय मालूम हुआ होगा। क्योंकि, इस भाषण के भय से स्वर्ग में देवता भी कांपने लगे, यहां तक कि इन्द्रादि सबके सब स्वर्ग से विच्युत होकर पृथ्वी पर आ पड़े। उन्हें गिरे देख कर त्रिशंकु का थोड़ा समाधान हुआ। उसने विश्वामित्र के नाम की चिल्लाहट कुछ कम की। साथ ही वह यह भी सोचने लगा कि जब यह इतने नीचे गिर गये हैं, तब मैं इस समय जितने ऊंचे पर हूं उतने ही पर रहूं तो भी कोई हर्ज नहीं है। स्वर्ग से नीचे उतरे हुए देवता इन्द्र को अगुआ करके विश्वामित्र के सामने आये और उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम करके बोले:—" भगवन्, हम आपकी शरण में आये हुये हैं, हम लोग आपकी महिमा से भली भांति परिचित हैं। आपने जो मुंह से निकाल दिया है उसे तपोबल से किये बिना कदापि न मानेंगे, हम लोगों को इस बात का निश्चय है। इसीसे हम लोग आप से विनय करने आये हैं कि आप अपना यह प्रतिसृष्टि बनाने का अभिनिवेश त्याग दीजिये। जो काम आप करना चाहते हैं, वह यदि इसी सृष्टि में सफल हो जाय तो फिर आपको दूसरी सृष्टि बना कर क्या करना है, आपको त्रिशंकु को ऊपर चढ़ाने भर से ही मतलब है न ? इसमें हम लोगों का कोई हर्ज नहीं है। हम लोग आपकी बात मानते हैं। त्रिशंकु इस समय नक्षत्रमण्डल में वास कर ही रहा है। उसे वहीं टिका रहने दीजिये। हम उसके मार्ग से नहीं जायंगे। वहां वह स्वर्ग में रहने ही के समान है। वहां वह अपने तेज से सदा चमकता रहेगा। तथा आपने और जो नक्षत्र उसके लिये बनाये हैं वह भी सदा उसके साथ बने रहेंगे। " देवताओं की इस बात को त्रिशंकु के भी मान लेने के कारण विश्वामित्र ने अपना आग्रह छोड़ दिया और देवताओं को अभय-दान देकर अपने अपने स्थान पर लौट जाने की आज्ञा दी। उस समय सबको बड़ा आनन्द हुआ। स्वर्ग में नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। गंधर्व गान करने लगे। अप्सराओं ने नृत्य करना आरम्भ किया। और विश्वामित्र पर स्वर्गंगा के शीतल तुषारों से एवं सुवासित मंदमरुत के मंदार पुष्पों के पुष्पों की वृष्टि होने लगी। अनुवादक—श्री [illegible]।

विनोद।

पिता (क्रोध से):—रामेश्वर ! अरे, कमीटी के पास से उठ, रखा हुआ टेंटा नहीं है।

रामेश्वर:—मैं हवा को नहीं गरम करता हूं; किन्तु अपने हाथों को गरम करता हूं।

• • •

हिसाब की ठीक व्यवस्था किस प्रकार रखनी चाहिये ? देना उधार न देना, यही हिसाब के ठीक रखने की सब से उत्तम व्यवस्था है।

• • •

रामप्रसाद:—हम व्यापार में पैसे लगाओ, ऐसा तुम सदा मुझसे कहते रहते हो। परन्तु इसके बारे में तो मुझे कुछ मालूम ही नहीं है !

हरप्रसाद:—अरे भाई, एक बार [illegible] व्यापार में पैसे नहीं लगाओगे तब तक इसके विषय में तुम समझोगे ही क्या ? [illegible] पहले पैसे लगाओ, फिर पीछे देखा जायगा।

[illegible] 'भारतीय आत्मा' [illegible] ...है, आशा है, पाठक इसे [illegible] ।

(सं॰ हि॰ चि॰ ज॰)

धीर हो, गम्भीर हो यह है गड़ा,
धीर होकर भी खड़ा मैदान में,
देखता है मैं जिसे तन-दान में,
जन-दान में, सानन्द जीवन दान में,
हट रहा है [illegible] प्यार से,
बढ़ रहा जो आप अपनों के लिए,
हट रहा है जो प्रहारों के लिए,
विश्व की भरपूर मारों के लिए,
देवताओं को वहीं पर बलि करो,
दानवों का छोड़ दो सब दुःख-भय,
"कौन है" ?—यह है महान मनुष्यता,
और, है संसार का सच्चा 'हृदय' ॥ १ ॥

क्यों पड़ीं परतन्त्रता की बेड़ियां ?
दासता की हाय ! हथकड़ियां पड़ीं,
क्यों क्षुद्रता की छाप छाती पर छपी ?
कंठ पर ज़ंजीर की लड़ियां पड़ीं,
दास्य भावों के हलाहल से हरे !
मर रहा प्यारा हमारा देश क्यों ?
यह पिशाची 'उच्च' शिक्षा सर्पिणी,
कर रही घर वीरता निःशेष क्यों ?
यह सुनो ! आकाशवाणी हो रही—
"नाश पाता जायगा तब तक विजय,"
वीर ?-"ना" धार्मिक ?-"नहीं" सत्कवि ?-"नहीं"—
"देश में पैदा न हो जब तक—'हृदय' ॥ २ ॥

देश में बलवान भी भरपूर हैं,
और पुस्तक-कीट भी थोड़े नहीं,
हैं यहां धार्मिक ढले टकसाल के,
पर किसीने भी हृदय जोड़े नहीं,
ठोकरें खातीं मनों की शक्तियां,
धाम-मूर्ति बने खुशामद कर रहे,
पूजते हैं,—देवता [illegible] नहीं,
दीन हम, बस करोड़ों मर रहे,
'हे हरे ! रक्षा करो '—यह सब कहें,
काश्मीर हो [illegible] पर जो विहार,
जो उठे, टूटे, जुदा होता नहीं,—
राष्ट्र का बलि, देश का ऊँचा 'हृदय' ॥ ३ ॥

पुष्प से कोमल, सुवासित नाम से,
वज्र से दृढ़, सुचि सुगन्धी धाम से,
अग्नि में आनन्द, हिम में शीत भी,
सूर्य से दिग्व्यापमान मनोज्ञ से,
वायु से चञ्चल, पहाड़ों से बड़ा,
भूमि से बढ़कर क्षमा की मूर्ति है,
धर्म का अवतार बन शरीर जो,
श्याम बना, संसार की यह स्फूर्ति है
मन महोदधि है, वचन [illegible] है,
कर्म गिरि-सा है बड़ा भारी सदय,
कौन है ? है देश का जीवन यही,
और है यह, जो कहाता है 'हृदय' ॥ ४ ॥

सृष्टि पर अति कष्ट जब होते रहे,
विश्व में फैलीं भयानक भ्रान्तियां,
दण्ड, अत्याचार, बढ़ते ही गये,
कट गये लाखों, मिलीं विश्रान्तियां।
गद्दियां टूटीं, असुर मारे गये,—
किस तरह ?-होकर करोड़ों क्रान्तियां,
तब कहीं है पा सकी माता मही,
मृदुल जीवन में मनोहर शान्तियां।
बज उठीं संसार भर की तालियां,
तालियां पलटीं,—हुई ध्वनि जयति जय,
पर हुआ यह कब ? जहां होता अहो !
विश्व का प्यारा कहीं कोई 'हृदय' ॥ ५ ॥

एक भारतीय आत्मा।

साधु पढ़ाये जायँगे ।

बाबू टहलराम गंगाराम ने हरद्वार में जाकर मेले के समय अच्छी तरह से जाँच की है कि वहां जितने साधु इकट्ठे होते हैं उनमें सैकड़ा पीछे पांच हिन्दू-शास्त्र के दर्शन आदि के पूर्ण ज्ञाता रहते हैं, दस हिन्दी-भाषा धर्मसम्बन्धी साधारण ज्ञातव्य विषय के जाननेवाले रहते हैं, दस गुरुमुखी जाननेवाले नानक शाही हैं। बाकी ७५ बिलकुल निरक्षर हैं। इस प्रकार के ५२ लाख साधु सन्यासी हैं। बाबू टहलराम का कथन है कि यदि इन ५२ लाख मनुष्यों को योग्य शिक्षा देकर देशोद्धार में स्वदेश की उन्नति के लिये इनसे सहायता ली जावे, यदि ये शिक्षा पाने पर भारतवर्ष के सुख-दुःख में हर्ष-विषाद प्रकाश करना सीखें तो संसार के और देशोद्धारकर्ता महाशयों को अतुल बल और सहायता मिल सकती है।

साधुओं को शिक्षा देकर उनसे परिश्रम लेना सहज नहीं है। यह बात बाबू टहलराम भी स्वीकार करते हैं कि मैंने स्वयं चेष्टा कर देखा है कि उनके प्रति सन्मान और सहानुभूति प्रकाशपूर्वक उद्देश्य उनसे कहने पर वे हिंदुस्तान की उन्नति के लिये [illegible] करने को बिना उज्र तय्यार होते हैं। इस प्रस्ताव के लि[illegible] मिष्टर टहलराम को धन्यवाद देते हैं। हमारा दल जितना [illegible] होगा, हमारे पक्ष में हमारे हित के लिये उपदेशक जितने [illegible] होंगे, हमारा पक्ष उतना ही बलवान होगा, उतनी ही अधिक [illegible] शीघ्र फलप्राप्ति की सम्भावना होगी। जातीय महासमि[illegible] कांग्रेस का एक महान् उद्देश्य यही है। भारत की जातीय [illegible] को मार्ग में बाबू टहलराम ने एक नया पन्थ दिखाया है। आ[illegible] कि प्रत्येक भारतहितैषी जननी जन्मभूमि के सेवक इस प्रस्त[illegible] अनुसार कार्य्य कर सब साधुओं को अपना उद्देश्य अति [illegible] और सरलभाव से समझाकर जातीय उन्नति की सहायता [illegible] विज्ञान कहता है, कि प्रयुक्त बल के परिमाण से कार्य्य का प[illegible] निश्चय किया जाता है।

लॉर्ड चेम्सफोर्ड—भारत के नये वाइसराय।

लेडी चेम्सफोर्ड।

लॉर्ड चेम्सफोर्ड।

अस्वस्थता के कारण लॉर्ड हार्डिंज ने अपने स्थान का इस्तीफा दे देने से उनके स्थान पर लॉर्ड चेम्सफोर्ड की आयोजना की गई है। लॉर्ड चेम्सफोर्ड क्वीन्सलैंड और न्यू साउथ वेल्स में गवर्नर रह चुके हैं। आपके पिता बड़े वीर थे, और उन्होंने भारत के ग़दर में बहुत कार्य किया था। आप आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के एम० ए० हैं और इस समय आपकी आयु ४८ वर्ष की है। आप लिबरल युनियनिस्ट दल के हैं। आप कुछ दिनों तक भारत में भी रह चुके हैं। परमात्मा करे, आपकी कार्यधारी भारत को सुखावह हो!

बम्बई की कांग्रेस कमेटी (बीच में कुर्सी पर [illegible] बैठे हैं)।

लॉर्ड चेम्सफोर्ड—भारत के नये वाइसराय।

लेडी चेम्सफोर्ड।

लॉर्ड चेम्सफोर्ड।

अस्वस्थता के कारण लॉर्ड हार्डिंज ने अपने स्थान का इस्तीफा दे देने से उनके स्थान पर लॉर्ड चेम्सफोर्ड की आयोजना की गई है। लॉर्ड [चे]म्सफोर्ड क्वीन्सलैंड और न्यू साउथ वेल्स में गवर्नर रह चुके हैं। आपके पिता बड़े वीर थे, और उन्होंने भारत के ग़दर में बहुत कार्य किया [था]। आप आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के एम० ए० हैं और इस समय आपकी आयु ४८ वर्ष की है। आप लिबरल युनिअनिस्ट पक्ष के हैं। [आ]प कुछ दिनों तक भारत में भी रह चुके हैं। परमात्मा करे, आपकी कार्यवाही भारत को सुखावह हो!

[illegible] की [illegible] कमेटी (बीच में कुर्सी पर [illegible] बैठे हैं)।

म० वाइसराय अभिनन्दन-पत्र का उत्तर दे रहे हैं।

दरभंगा के महाराज अभिनन्दन-पत्र पढ़ रहे हैं।

सेंट्रल हिन्दू कॉलेज के छात्रों का स्वयंसेवक समूह।

हि० वि० वि० की कोणशिला स्थापित करने के समारम्भ के सुअवसर पर सें० हि० का० के छात्रों ने प्रशंसनीय सेवा की है।

seen' (drista) is mentioned. (Ath. 11. 31. 2. VIII. 8 15.) In one passage Ath. V. 23. 6, 7) the Epithet 'seen' & 'unseen' are applied to the worm (krimi); their use being no doubt due to the widespread theory of diseases being due to worms, whether discernable by examination or not.

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में अदृष्ट शब्द एक प्रकार के कृमियों के लिये आया है। ऋग्वेद के कई मन्त्रों में सूर्य्य को ऐसे कृमियों का नाशक कहा है। फिर अथर्ववेद में तो दोनों शब्द दृष्ट तथा अदृष्ट कृमिवाचक हैं। निस्सन्देह यह कृमियों का सिद्धान्त इस कारण उत्पन्न हुआ कि, उस समय समझा जाता था कि रोग इन *आँखों से दीख पड़नेवाले या न दीख पड़नेवाले कृमियों से उत्पन्न* होते हैं।

कीटाणु-सिद्धान्त का मूल तो वेदों में है; पर सुश्रुत चरक, आदि वैद्यक के ग्रन्थों में निर्भ्रान्त तौर पर Germ Theory का कीटाणु-सिद्धान्त मिलता है—यह कोई नवीन आविष्कार नहीं—इस विषय को मेरे एक ग्रन्थ आर्यों की "वैज्ञानिक उन्नति" में आलोकन करने से आनन्द प्राप्त होगा।

इसी प्रकार रश्मिस्नान, वायुस्नान, विद्युत्स्नान मूल चिकित्सा आदि विषयों के सम्बन्ध में बहुत से मन्त्र हैं। अभिप्राय यह है, कि वैद्यक सम्बन्धी बड़ी बड़ी उच्च बातें वेदों में मिलती हैं। आज-कल की चमत्कारक बातें सूत्ररूप से यहां वर्णित हैं। और उससे भी अधिक चमत्कारक बातें मिलेंगी, यदि वेदों में पूरी पूरी खोज की जावे तो। किन्तु शोक है कि आर्यजनता ने अभी इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। आर्य भाइयो! स्वाध्याय का नियम बनाओ, और अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अवश्यमेव प्रतिदिन स्वाध्याय करके *अपना और दूसरों का भला करो। जिन्हें तुम म्लेच्छ कहते हो* वे तो प्रतिदिन अपनी अपनी धर्म-पुस्तकें—कुरान, बाइबल आदि—पढ़ कर आत्मशक्ति प्राप्त करते हैं।

पुरानी जन्म-पत्रियां।

(लेखकः—श्रीयुत मुन्शी देवीप्रसादजी मुन्सिफ।)

जन्मपत्रिया भी इतिहास की मुख्य मुख्य सामग्रियों में से हैं; इसलिये जहां तक हो सका, हमने उनका भी संग्रह किया है। और उनकी जांच के लिये ३०० बरस के पुराने पंचांग भी जमा किये हैं; जिनकी सहायता से संवत १६०५ के पीछे की सभी जन्म-पत्रियां जांच ली गयी हैं।

इन जन्मपत्रियों की सहायता से हिन्दुस्थान के बहुत से राजामहाराजाओं, बादशाहों, शाहजादों और हिन्दू-मुसलमान अमीरों के जन्म का ठीक ठीक समय जाना जाता है। और फिर इतिहास का, जो कुछ उनकी जीवन यात्रा की घटनाएं बताता है उनका, भी कुछ प्रमाण इन जन्मपत्रियों के ग्रहों के फल से मिल जाता है। बहुधा लोग यह कहा करते हैं कि ग्रहों का फल नहीं मिलता और फलित झूठा होता है, पर उस कथा का बहुत कुछ खंडन, ज्योतिषी लोग, इन जन्मपत्रियों से कर सकते हैं। इसी लिये हमारा विचार इन जन्म-पत्रियों के आधार पर उन महानुभावों के जीवन-चरित्र लिखने का जिनकी जन्म-पत्रियां हमें मिली हैं। इस कार्य में देशहितैषी और इतिहास-सज्जनों की सहायता की आवश्यकता है। इसी लिये हम उन प्राप्त जन्मपत्रियों की यह सूची चित्रमय-जगत् में प्रकाशित करते हैं। आशा है, इससे सर्वसाधारण को भी यह ज्ञात हो जायगा कि यह काम महत्व और उपकार का है।

नाम	मुकाम	संवत
१ रावजोधाजी	जोधपुर	१४७२
२ रावसूजाजी	जोधपुर	१४९६
३ रावदूदाजी	मेड़ता	१४९७
४ रावबीकाजी	बीकानेर	१४९७
५ कुंवर बाघाजी	जोधपुर	१५१४
६ रावलूणकरणजी	बीकानेर	१५१७
७ रावबीरमदेजी	मेड़ता	१५३४
८ रावसांगाजी	चित्तौड़	१५३८
९ रावगांगाजी	जोधपुर	१५४०
१० रावजैतसी	बीकानेर	१५४२
११ ज्योतिषी चंडूजी	जैसलमेर	१५५०
१२ राठौर कूंपाजी	जोधपुर	१५५६
१३ बहादुरशाह	गुजराती	१५६२
१४ राठौर जयमल	मेड़ता	१५६४
१५ रावमालदेवजी	जोधपुर	१५६८
१६ रावकल्याणमल	बीकानेर	१५७५
१७ राना उदयसिंह	उदेपुर	१५७८
१८ रावरायसिंहजी	सीरोही	१५८०
१९ हसन कुलीखां	सीरोही	१५८०
२० रावदूदा	सीरोही	१५८०
२१ रावराम	जोधपुर	१५८५
२२ कुंवर रतनसिंह	जोधपुर	१५८९
२३ कुंवर भोजराज	जोधपुर	१५९०
२४ मोटा राजा उदेसिंहजी	जोधपुर	१५९४
२५ महाराना प्रतापसिंहजी	उदेपुर	१५९७
२६ रावचंद्रसेन	जोधपुर	१५९८
२७ राजा रायसिंह	बीकानेर	१५९९
२८ अकबरबादशाह	दिल्ली	१५९९
२९ राव मानसिंह	सिरोही	१५९९
३० राजा मानसिंह	आमेर	१६०७
३१ राव रामसिंह	ग्वालियर	१६०७
३२ मिरजाशाहरख	बदख्शां	१६०९
३३ राजा जगन्नाथ कछवाहा	आमेर	१६०९
३४ माधोसिंह कछवाहा	आमेर	१६१०
३५ महाराना अमर	उदेपुर	१६१३
३६ यादूत खां	,,	१६१३
३७ नवाब खानखाना	,,	१६१३
३८ कुंवर भगवानदास	जोधपुर	१६१४
३९ कुंवर माहरदास	जोधपुर	१६१४
४० खानजहां	दिल्ली	१६१९
४१ महाराना अमरसिंह	उदेपुर	१६१९
४२ रावल भीम	जैसलमेर	१६१८
४३ राजा दलपत	बीकानेर	१६२१
४४ कुंवर शक्तिसिंह	जोधपुर	१६२४
४५ कुंवर दलपत	जोधपुर	१६२५
४६ कुंवर भोपत	जोधपुर	१६२५
४७ जहांगीर बादशाह	,,	१६२६
४८ राजा सूरसिंहजी	जोधपुर	१६२७
४९ राव आसकरण	जोधपुर	१६२७
५० राव रतन हाड़ा	बूंदी	१६२८
५१ खान आलम	दिल्ली	१६२८
५२ बाई मानमती	जोधपुर	१६२९
५३ नवाब महाबतखां	दिल्ली	१६२९
५४ जाम जस्साजी	जामनगर	१६२९
५५ अबदुल्लाहखां	दिल्ली	१६३१
५६ आसफखां	,,	१६३१
५७ हिम्मतखां	,,	१६३१
५८ राठौर कर्मसेन	भिणाय	१६३२
५९ राजा भावसिंह	आमेर	१६३३
६० कछवाहा कर्मचंद	आमेर	१६३३
६१ सादिकखां	दिल्ली	१६३५
६२ नूरजहांबेगम	,,	१६३८
६३ राजा विक्रमाजीत	बांधोगढ़	१६३९
६४ राजा किसनसिंहजी	किशनगढ़	१६३९
६५ कुंवर माधोसिंह	जोधपुर	१६३९
६६ बड़ गूजर अनोराय	अनूपनगर	१६४०
६७ राजा महासिंह	आमेर	१६४२
६८ राठौर राजसिंह	जोधपुर	१६४३
६९ खान खाना खान-मिरजाएरज	दिल्ली	१६४३
७० इसलामखां	,,	१६४४
७१ मिरजादाराब खान खानागुल	,,	१६४४
७२ मीरखां	,,	१६४४
७३ शहजादा खुसरो	,,	१६४४
७४ रावल पूंजा	डूंगरपुर	१६४५
७५ राजा झूंझारसिंह बुंदेला	उरछा	१६४७
७६ हमायूंखां	दिल्ली	१६४७
७७ शाहजादा परवेज़	,,	१६४६
७८ शाहजहां बादशाह	,,	१६४८
७९ कुतबुलखां	,,	१६४८

इनके समय समय पर उतारे हुए चित्र यहां दिये जाते हैं। इनकी ऊंचाई ५ फीट ६ इं० और आयु बत्तीस वर्ष की है।

१९१४ के अक्टूबर मास में उतारा हुआ चित्र।

घोड़े पर चढ़ने, तैरने, साइकल पर बैठने, कुश्ती लड़ने, लकड़ीपट्टा खेलने, निशाना मारने इत्यादि खेलों में ये बड़े निपुण हैं। ये १२ घंटे, बिना रुके, तैर सकते हैं।

भारतवर्ष में बहुत कसरती और सुंदर मनुष्य हैं। पर उन श्री पृथ्वीलाल के सदृश निराभिमानी और निर्व्यसनी बहुत ही क

१९१४ के दिसंबर मास में उतारा हुआ चित्र।

मिलेंगे। ये चाय और बीड़ी को छूते तक नहीं।

यदि श्रीयुत पृथ्वीलाल जर्मनी, जापान, अमेरिका, ग्रेट-ब्रिटन जैसे राष्ट्रों में जन्म लेते तो वहां पर इनकी बहुत प्रतिष्ठा होती।

"यंग मराठा युनिअन" क्रिकेट टीम, कराची १९१५।

बैंझाय दाय निपोन ।

(लेखक—श्रीयुत दा. वि. गोखले बी. ए. एल्. एल्. बी.)

जापानी साम्राज्य पर, अनंत काल से, जिस वंश के बादशाहों का अप्रतिहत अधिकार है, उसी वंश की 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ राज सत्ता रहेगी,' इस अर्थ के कुछ वाक्य जापानी साम्राज्य की राज्यपद्धति के कानूनों के पहले ही भाग में अंकित हैं; और उक्त वाक्य का तत्व, सारे जापानी लोगों को, ईश्वरवचन की तरह मान्य है। जापानी लोग अद्वितीय राजभक्त हैं। उसी अपूर्व राजनिष्ठा से प्रेरित होकर उन्होंने १० नवंबर १९१५ को अपने बादशाह का राज्यारोहण समारम्भ बड़े हर्ष से मनाया। समग्र जापानी साम्राज्य में, उक्त उत्सव के मनाने के लिये, दो वर्ष पूर्व से ही तयारियां हो रही थीं। और बड़े शूर, पराक्रमी तथा आधिभौतिक शास्त्र में यूरोपियन राष्ट्रों की बराबरी करनेवाले जापानी राष्ट्र ने नियत समय पर समारम्भ मनाया। यद्यपि वर्तमान समय की नीति राजनिष्ठा बतलाने के लिये बाध्य करती है और तदनुसार लोग प्रखरराजनिष्ठ हैं भी, तथापि उसकी पूर्वावस्था में, जब कि सारे जापानी जंगलियों में गिने जाते थे, वहां पर राजनिष्ठा का इतना प्रदर्शन (Show) नहीं बतलाया जाता था। और तो क्या, समर-भूमि पर पराक्रम बतलानेवाले वीरों से भी राजा को अधिक सम्मानित नहीं किया जाता था। उस अंधकारावस्था (Dark age) में [illegible]रोहण समारम्भ भी नहीं किया जाता था। यह समारम्भ तो [illegible] वर्ष पूर्व से किया जाने लगा, और उस समय को उत्सव प्रथा मालूम

मिकॅडो का सिंहासन।

राज्यारोहण के लिये मुख्य मुख्य जापानी कुमारियां बाजा बजाते आ रही हैं।

[illegible] के लिये जापानी बादशाहों को कमिशन दिखलाना पड़ा था। उस [illegible] ने बड़े परिश्रम से प्राचीन काल की एक प्रथा का पता लगाया [illegible] से जो समारम्भ किया गया, वह उस प्राचीन प्रथा का [illegible] मात्र था। इससे जापान जैसे उन्नतिशील राष्ट्र की प्राचीन [illegible] (orthodoxy) में अपूर्व निष्ठा देखकर बड़ा [illegible] होता है। यद्यपि सभी पुरानी प्रथायें अनुकरणीय नहीं [illegible] हैं, तथापि राजकीय विषयों में इस राजनिष्ठा का महत्व

उपयोग होता है। जापान की अपेक्षा जर्मनी बहुत सी बातों में श्रेष्ठ होने पर भी वह जापान के बादशाह का आदर करता है। जापान के मित्रराष्ट्रों में—जिसे जापान अधिक सम्माननीय दृष्टि से देखता है—इंग्लैंड भी जापान के नियंत्रित अधिकार को मानता है। जहां पर केवल लोक सत्तात्मक पद्धति ही प्रचलित है, उन राष्ट्रों से जापान का बहुत ही थोड़ा सम्बन्ध है। जापान और अमरीका का सम्बन्ध केवल शत्रुभाव का है। इससे उसके मन में अमरीका के विषय में बहुत ही कम आदर है। कारण यह है कि जापान पौर्वात्य राष्ट्र है और अमरीका पाश्चिमात्य।
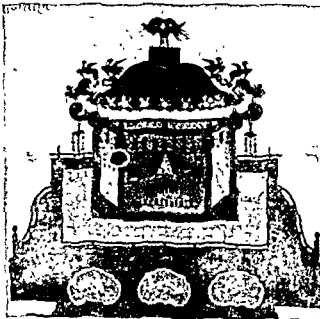
"नाविष्णुः पृथिवीपतिः", "राजा कालस्य कारणम्" आदि अनेक बातें पौर्वात्य-निवासी राजा के विषय में कहते हैं। कमकुवत, उद्योगहीन, भाग्य पर भरोसा रख कर जो कुछ मिल गया उसी पर संतोष मान कर आयु व्यतीत करने वाले अनेक निर्बल मनुष्यों की कल्पनायें, अधिकारयुक्त पराक्रमी और प्रतापी राजा के विषय में ऐसी ही होती हैं। पाश्चिमात्य देशों में भी "राजा को ईश्वरीय हक है," "राजा से अपराध होना अशक्य है," आदि मतों की हलचल गत वर्ष खूब मची थी। परन्तु अब पौर्वात्यों का क्या व पाश्चिमात्यों का क्या, इस कल्पना के विषय में ऐसा अनुभव होने पर कि "लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति ही उत्तम है," सब लोग ऐसी साक्षी देने लगे कि "प्रजा ही राजा" है। फ्रांस का छोड़ दिया हुआ "लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति" का स्वाध्याय,

राज्यारोहण-समारम्भ के लिये पवित्र धान कूटा जा रहा है।

अब योरोप में स्विट्ज़रलैंड, अमरीका, मेक्सिको, फ्रांस व अन्य छोटे मोटे राज्यों में तथा एशिया में चीन ने प्रारम्भ किया है। यह स्वाध्याय [illegible] पर प्रारंभ से ही रहा है, कहीं पर शिथिलता से [illegible] रहा है और कहीं पर तो बिलकुल नष्ट सा हो गया है। उदाहरणार्थ चीन को ही लीजिये। अभी कुछ दिनों से चीन में प्रजासत्तात्मक राज्य की स्थापना का प्रारम्भ हो गया था—वहां का राजा [illegible] दिया गया था। परन्तु अब पुनः प्रजासत्तात्मक राज्य के

और कुछ नहीं है। आधुनिक जापान नरेश का राज्यारोहणसमारम्भ बिलकुल पुरानी रीत्यानुसार किये जाने का कारण भी यह सूचित करता है कि जापान-प्रजा अपने राजा को ईश्वरतुल्य मानती है। और इसी लिये उसने मुत्सुहितो का राज्यतिलक जिस रीति से किया था, उसी रीति से युवराज को भी राजा बनाया।

जापानी भाषा में राज्य-तिलक के समारम्भ को "गो तैरी" कहते हैं। जापानी लोगों की ऐसी समझ है कि राजा के बिना एक क्षण भी राज्य नहीं टिक सकता। इसलिये राजा के मरते ही, राजतिलक होने के पहले ही, युवराज को राजा बना लेते हैं। और यही कारण है कि राजगद्दी पर बैठने के समय को—राज्यतिलक होने के समय को—वे लोग केवल यही कहते हैं कि राजा को इस समय राजा के नवीन चिन्ह दिये गये हैं। राज-चिन्ह में निम्नलिखित चीजें राजा को भेंट की जाती हैं—पवित्र आइना, पवित्र तलवार और पवित्र हीरा। ये राज-चिन्ह हजारों वर्षों से, राज्यतिलक होने के समय, राजा को भेंट किये जा रहे हैं। जापान में इसके बारे में ऐसी दन्तकथा प्रसिद्ध है कि जापान देश को स्वयं सूर्य भगवान् ने ही निर्माण किया था और सूर्यदेव ने ही ये राज-चिन्ह राजा को समर्पित किये थे। जापानियों का कहना है कि ये राज चिन्ह दिये बिना राजा में राज करने की पूर्णतया शक्ति नहीं होती। यह राज्यारोहण समारम्भ ता० ११ नवम्बर सन १९१५ को हुआ था। ता. ६ को जापान-नरेश और रानी ने टोकियो से क्योटो को प्रस्थान किया था। प्रस्थान करते समय राजा ने सेनापति का पोशाक पहना था। और रानी सादी पोशाक में ही थीं। जिस समय राजा व रानी चलने लगे, उस समय राजचिन्ह—पवित्र आइना, पवित्र तलवार और पवित्र हीरा—लिये हुए कुछ लोग आगे चल रहे थे, और बड़े बड़े पदवीधर लोग पीछे चलते थे। राज्य-चिन्ह क्योटो में 'शुंक्योदेन' नामक राजभवन में रक्खे गये। दूसरे दिन राजगद्दी का गुरूत्सव हुआ। उत्सव के समय की कुछ मनोरंजक बातों का, पाठकों के विनोदार्थ, यहां पर उल्लेख करते हैं।

दरबार और दीवानखाने के बीचोंबीच राज्यसिंहासन रक्खा था। इस सिंहासन पर चढ़ने के लिये तीन पायरी थीं। सिंहासन के पूर्व ओर रानी का सिंहासन था। दरबार भर जाने पर सिंहासन के सामने का परदा हटा दिया गया; और राजा-रानी के सबों ने दर्शन किये। पश्चिम की ओर एक और ऊँचा स्थान यथाविधि से सुसज्जित था, उस पर मुख्य मुख्य प्रधान लोग बैठे थे। परदा के उठते ही सब प्रधान लोग राजा और रानी के सामने आकर खड़े हुए। उनके खड़े होने के बाद राजा ने कुछ भाषण किया। अनन्तर उन प्रधानों ने प्रजा की ओर से राजा को अभिनंदन किया। इस समय राजा की पोशाक पुरानी चाल की थी। सब दरबारी भी पुराने ढंग की ही पोशाक पहने हुए थे। राजा के दाहनी ओर तीन और बाईं ओर तीन प्रधान खड़े थे। उन प्रधानों में किसीको पोशाक नीली, तो किसीकी लाल, और किसीकी काली, तो किसीकी हरे रंग की थी; इससे वहां की शोभा और भी विशेष बढ़ गई थी। राजा के पीछे चालीस बड़े बड़े फौजी आफिसर खड़े थे। जिनमें से आठ तलवार, आठ धनुष्यबाण और आठ ढालें धारण किये हुए थे। जिनके हाथ में तलवारें थीं वे काली पोशाक में और जिनके हाथ में धनुष्यबाण थे वे भगवे पोशाक में तथा जिनके हाथ में ढालें थीं वे नीली पोशाक में थे। नगाड़े के तीन ठोके बजते ही सब लोग अपनी अपनी जगह पर आकर बैठ गये। बाद को इष्ट देव व पितरों का पूजन आरम्भ हुआ। और कुछ देर बाद दरबार बरखास्त हुआ।

राज्यारोहण-समारम्भ के पश्चात् यदि कोई बड़ा समारम्भ होता है तो वह नृत्य का ही होता है। प्राचीन काल में नृत्य करने के लिये निरानिराले प्रान्तों के सरदारों की अविवाहित कुमारियाँ आती थीं; परन्तु अब की बार, क्योटो में, केवल क्योटो की दो कुमारियों ने नृत्य किया था। इन कुमारियों का नृत्य; और नृत्य करते समय उनके मुलायम मुलायम केशों की खुली हुई लटों की सुन्दरता (जो पीठ पर कटक कर काली नागिन का काम कर रही थीं); उनके सिर में हीरा जड़ित आभूषणों की सजावट (जिससे उनका चन्द्र मुख और खिल उठा था) और उनकी प्राचीन रीति से नृत्य करने में होनेवाली कवायद (कंटिंदेप) तथा हावभाव, जिन्होंने देख होंगे, उनको उसका विस्मरण कभी भी नहीं हो सकता।

१९ वें और २० वें शतक में आधिभौतिक शास्त्रीय सुधार होने के कारण इस युग को सुधारणा का युग कहते हैं। ऐसे ही शास्त्रीय खोज के कारण पुरानी बातों पर से, जोकि असभ्यता से पूरित समझी जाती हैं, विश्वास उठकर, शास्त्र-शुद्ध और न्याय की कसौटी पर कसने में योग्य सिद्ध हुई बातों पर विश्वास किया जा रहा है। परन्तु तो भी, उक्त कथित समय में, जोकि सुधारकों से भरा हुआ है, बहुधा अयोग्य कार्यों को सुधारक-समाज करने लगते हैं। इस पर से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य स्वभावतः पुराण प्रिय है। ता० ११ को तमाम जापान में "जापान का जय जय कार हो" ऐसी ध्वनि गूंज रही थी। इसी राष्ट्रीय मंत्र को जापानी भाषा में "बंझाय दाय निपोन" कहते हैं।

त्रिचनापल्ली का किला।
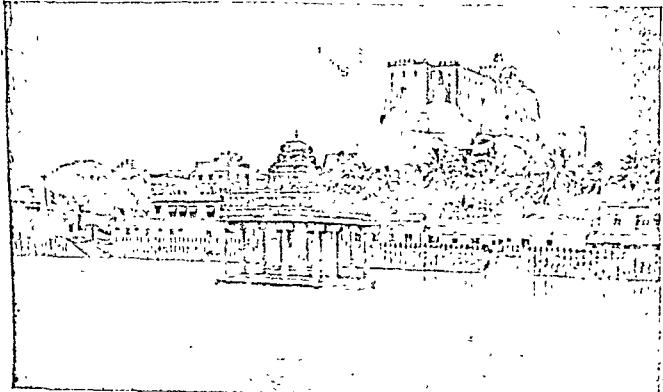
फरवरी मास का महायुद्ध।

(लेखकः—कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी. ए.।)

फरवरी मास से अर्थात् वसंतकाल के आरम्भ ही से महायुद्ध की भीषण अग्नि के प्रज्वलित होने के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। इस मास के युद्ध से उभय पक्ष में सुलह होने के सारे रंगढंग नष्ट हो गए और यह सिद्ध हो गया कि बिना किसी एक पक्ष के हारे सुलह होना असम्भवनीय है। इस समय पार्लिमेंट में कुछ सभासदों ने यह भी प्रस्ताव किया कि मध्यस्थ राष्ट्रों के परामर्श से यदि सुलह हो सके तो अंग्रेज़-सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये। पर, मि० एस्क्विथ ने उक्त प्रस्ताव का निषेध कर कहा कि जब तक बेलजियम और सार्विया जैसे राष्ट्रों को स्वतंत्रता नहीं मिलेगी और सैनिक बल से दुर्बलों के स्वत्व-भ्रष्ट करने की जर्मनी की बुरी टेव का अच्छा बदला नहीं लिया जायगा, तब तक इंग्लैंड सुलह करने के लिये कदापि तैयार नहीं होगा। रशिया की ड्यूमा सभा में रशिया के मुख्य प्रधान ने भी उक्त उद्गार ही निकाले। रशिया ने घोषित किया है कि 'हम न तो जर्मनराष्ट्र ही को ताबे में करना चाहते हैं और न जर्मनों ही को; वरन हमने, जर्मनों से, अपनी प्रजा की रक्षा करने के लिये ही युद्ध में योग दिया है; अतएव अब वसंतऋतु अर्थात् मई-जून मास के हमलों के पूर्व सुलह होना असम्भवनीय है।

अर्जरूम और तुर्कीय युद्ध।

फरवरी मास के पहिले और दूसरे सप्ताह में अर्जरूम और वरडून के दो महत्वपूर्ण हमले हुए। वरडून का हमला पेरिस के ईशान दिशा में १२५ मील की दूरी पर हुआ और उसने मार्च के प्रथम सप्ताह में भयंकर रूप धारण किया। जनवरी मास के अन्तिम सप्ताह से अर्जरूम का हमला शुरू हुआ और फरवरी के दूसरे सप्ताह ही में रशियन सेना ने तुर्कों का पराभव कर अर्जरूम पर अपना दखल जमा लिया। कालासमुद्र और ईरान की वायव्य सीमा ही अर्जरूम प्रदेश कहलाता है। कालासमुद्र और वेन सरोवर के बीच के पहाड़ी प्रदेश में अर्जरूम का किला है और उस किले के उत्तर में, रशिया की ओर, बड़ी बड़ी पहाड़ियों का सिलसिला है, जिससे अर्जरूम अभेद्य समझा जाता है। अर्जरूम की तुर्कीय सेना उत्तर में रशिया के काकेशियस प्रदेश तथा पश्चिम में ईरान के वायव्य कोने को बहुत कुछ हानि पहुंचा सकती है। यदि इस स्थान को तुर्क-सेना अपने अधिकार में कर लेगी तो ईरान में रशिया का महत्व घट जायगा। रशियन सेना को ईरान में घुसने के भी केवल दो मार्ग हैं, यानी काकेशियस प्रदेश की रशियन सेना ईरान की वायव्य दिशा से ईरान में घुस कर काजवीन शहर तक के रेलमार्ग को लेकर तेहरान को ले सकती है तथा कास्पियन सागर और अफगानिस्थान के बीच के रशिया के रेलमार्ग के द्वारा रशियन सेना तेहरान की वायव्य दिशा से तेहरान पर चढ़ाई कर सकती है। पर, उक्त दोनों मार्गों में वायव्य-मार्ग ही रशिया को अधिक लाभदायक है और ईशान-मार्ग अर्थात् कास्पियन सागर के पूर्व दिशा की ओर का मार्ग हानिकारक है। क्योंकि इस ओर के रेलमार्ग मुसलमानों के ... ही से व्याप्त हैं। अतएव वे मार्ग रशियन सेना के केन्द्रस्थानों बहुत दूर पर हैं। सन १९१२ ई० की रशियन सेना की पिछा- ... का ... है और तुर्कों की ... और कुछ ... मुसलमानों के ... ... है। ... रशिया ... ईरान के ... मार्ग

युफ्रेटीस और टाइग्रीस नदी का दर्शनी नक़्शा।

से ईरान या उसकी राजधानी पर अधिकार प्रस्थापित करने की इच्छा धोखे की है। प्रायः इसी बात को सोचकर रशियन ने तुर्कीय युद्ध के आरम्भ ही से ईरान के वायव्य प्रदेश को तु... से अछूत रखने का प्रबन्ध कर रखा है। उसने क... की सफलता के अनन्तर अर्जरूम प्रदेश और वेन सरोवर के ... पास के प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित करने का ... किया था; पर यूरोपीय युद्ध की ओर अधिक ध्यान आकर्षित ... से, उसे अपने कार्य में यथायोग्य सफलता नहीं मिली और स... दिनों के आरम्भ ही में वेन सरोवर के पूर्वीय ईरान के प्रदे...

तुर्कों का महत्व बढ़ गया! दुष्ट जर्मनों का यह भविष्य कि रशिया ... की पिछाड़ी होने से ईरान में तुर्क और जर्मनों का महत्व बढ़ेगा ... ईरान-सरकार तुर्कों से सम्मिलित होगी और महायुद्ध की ... मध्यएशिया, बुखारा, अफगानिस्थान, बिलोचिस्थान आदि प्रदे... में भी धधक उठेगी, रशिया खूब समझता था। ... की पिछाड़ी के अन्त में, रशिया के ज़ार ने, रशियन सेनापति ग्रैं... ड्यूक निकोलस से गालीशियन सेना का सेनापतित्व का ... लेकर उन्हें काकेशियस की ओर भेज दिया। ऐसी दशा में ... प्रश्न उपस्थित होता है कि वे उस ओर क्यों नियत किये गये ... उन्हें काकेशियस की ओर भेजने में ज़ार का कौन सा हेतु ... हुआ! रशियन सेना की पिछाड़ी के कारण रशियन ...

ग्रैंड ड्यूक निकोलस की कीर्ति कम हुई है और इसीसे स्वयं ज़ार उसके सेनापति हुए हैं। यूरोपीय युद्ध की बाज़ी रखने के साथ ही ईरान और मध्य एशिया के मुसलमानों पर यूरोपीय युद्ध का कोई बुरा परिणाम न होने देने की भी रशिया को चेष्टा करनी चाहिये। यद्यपि रशियन सेनापति ग्रैंड ड्यूक निकोलस जर्मनी से लड़ने में यथायोग्य सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं, तथापि काकेशियस की ओर आयोजित होने का उन्हें ऐसा अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है, कि जिससे वे ईरान को महायुद्ध की आग से अछूत रख कर पुनर्वार अपना नाम रख सकते हैं। जब उन्होंने नवम्बर दिसम्बर मास में काकेशियस के प्रदेश का सूक्ष्मावलोकन किया तब उन्हें तुर्कों की सफलता और ईरान के मुसलमानों की स्वप्नतुल्य बातों के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं दिया। साथ ही इसके गेलीपोली से अंग्रेजी और फ्रेंच सेना हटाई गई थी और बगदाद तक पहुंचे हुए जनरल टाउनशेंड के सपैन्य पिछड़ने पर जनवरी मास के आरम्भ ही से तुर्की सेना कुतुला-ग्रामार प्रदेश में भी घुस गयी थी। ईरान में तुर्क और जर्मनों की इज्जत बढ़ने लगी तथा उस ओर खुल्लमखुल्ला गदर मचकर यह अंदेशा होने लगी कि जर्मनी की रिश्वत के वशीभूत होकर गदर करनेवाले ईरान की सरकार को भी कहीं भड़का न दें! जर्मनी का कापट्याभिनय सारे ईरान में अभिनयित होने लगा और कुछ कापट्याभिनय-निपुण अफगानिस्थान में भी दाखिल हुए। तब मित्रदल उक्त षड्यंत्र-जाल को नष्ट करने के उपाय सोचने लगा।

और शीघ्र ही रशियन सेना ने ईरान की राजधानी तेहरान पर अपना अधिकार प्रस्थापित कर लिया और दाक्षिणीय अमदान कर्मनशाह कुमादिक, स्थानों के बागियों को मार भगाया तथा पूर्वीय ईरान और बिलोचिस्थान के परे कुछ अंग्रेज़ी सेना के पहुंच जाने से उस ओर के बागी बिलकुल कमज़ोर हो गये। यद्यपि अफगानिस्थान और बिलोचिस्थान जैसे प्रदेशों में जर्मनों की दाल गलना कठिन है, तथापि उस ओर वे अपना अड्डा जमाने का यथाशक्य प्रयत्न कर रहे हैं। पर, जर्मनी की धूर्तता के जहां कहीं कुछ चिन्ह दिखाई देने लगते हैं,

वहां शीघ्र ही उसका प्रतिकार करने के लिये योग्य उपायों की अयोजना की जाती है। वास्तव में देखा जाय तो सारा जगत् जर्मनी की धूर्तता से पूर्णतया परिचित है। और प्रायः इसी कारण कहीं पर भी उसकी दाल गलना कठिन है। पर रशिया की पिछाहट, टाउनशेंड की पिछाहट तथा गेलीपोली का परित्याग करने के कारण मुसलमानों का मन खराब हो गया है। अतएव जब तक तुर्कों को अच्छा मज़ा नहीं चखाया जावेगा तब तक मुसलमानों की अकल ठिकाने पर लाना कठिन है। इसीसे काकेशियस प्रान्तीय रशियन सेनापति तुर्कों का पराभव करने में पूरी तरह व्यग्र हैं। तुर्कों का अर्जरूम प्रदेश तुर्क-राजधानी से बहुत दूरी पर पूर्वीय ईरान की सीमा पर है और वहां तक सैनिक सामग्री पहुंचाने के केवल दो मार्ग हैं। पहिला मार्ग है कालासमुद्र में ट्रेबिजोंड के किले के पास सैनिक सामग्री पहुंचाकर वहां से उसे पहुंचाना तथा दूसरा अर्जरूम के दक्षिण में ४-५ सौ मील की दूरी पर बगदाद रेलमार्ग की शाखा के द्वारा सैनिक सामग्री पहुंचाना। पर, यह दूसरा मार्ग सुगम नहीं है। और पहिला मार्ग अर्थात् कालासमुद्र भी पूर्णतया रशिया के अधिकार में नहीं है। इसलिये ग्रैंड ड्यूक निकोलस ने कालासमुद्र के [illegible] में युद्ध जलयुद्ध सेना लेकर तुर्क-जर्मन जलयुद्ध सेना को वहां पर कड़ा रखा और पूर्व भाग के ट्रेबिजोंड के किनारे पर तुर्कों के [illegible] जलयुद्ध सेना की सामग्री को नष्ट करने का काम आरम्भ किया। [illegible] किनारे से, ट्रेबिजोंड को [illegible] सामग्री ले जाने [illegible] को नष्ट कर अर्जरूम पर चढ़ाई की तैयारियाँ की गईं। तुर्कों का यह ख्याल था कि ठंढ के मौसम में रशिया बिलकुल मौन रहेगा और वास्तव में काकेशियस पर्वत और अर्जरूम के आसपास के प्रदेश, सर्दी के दिनों में, बिलकुल बर्फमय होते हैं॥ पर ग्रैंड ड्यूक निकोलस ने उक्त प्रदेश पर चढ़ाई करने की एक नई युक्ति निकाली। रशियन प्रदेश सैबेरिया बारहों मास बर्फ से आच्छादित रहता है, अतएव वहां के लोग बर्फ के आदी होने से अर्जरूम पर चढ़ाई करने के लिये उनकी अयोजना की गई। तुर्क सेनापति तो अपने ख्याली पुलाव पकाने ही में मस्त रहते थे और सैबेरियन कट्टर सैनिक, यकायक, उनपर चढ़ाई कर तुर्कसेना को तितर-बितर कर देते थे। अन्त में जब तुर्कों को रशियन के आगे अपनी दाल गलना असम्भवनीय जान पड़ा तब तुर्कसेना पिछड़ने लगी, और अर्जरूम के उत्तर की ओर का ४०-५० मील दूरी तक का प्रदेश रशियन सेना के हस्तगत हो गया। अन्त में, फरवरी के दूसरे सप्ताह में अर्जरूम का मुख्य किला भी रशियन सेना के अधिकार में चला गया और तुर्कसेना को अर्जरूम के पश्चिम और वायव्य दिशा की ओर ४०-५० मील तक पिछड़ना पड़ा। इस युद्ध में रशियन-सेना ने १३ हजार तुर्कसेना को कैद किया। अर्जरूम के किले की सारी सैनिक सामग्री रशिया के हस्तगत हो जाने से चारों ओर रशियन सेनापति ग्रैंड ड्यूक निकोलस का जय जयकार हुआ।

अर्जरूम की सफलता बड़े महत्व की है, और ईरान की दृष्टि से यह विशेष फलदायक है। यदि अर्जरूम तथा वेन सरोवर के प्रदेश में तुर्कों की बन आती तो तुर्कसेना ईरान का वायव्य कोना व्याप्त कर लेती तथा काजविन के रशियन प्रदेश पर चढ़ाई कर तेहरान का काकेशियस पर्वत से बिलकुल सम्बन्ध तोड़ देती। पर, अब तेहरान पर रशिया का अटल अधिकार हो गया है। अब तुर्कसेना बगदाद के द्वारा तेहरान को हानि पहुंचा सकती है। बगदाद की तुर्क-जर्मन सेना ने ईरान में घुसकर कर्मनशाह-अमदान तक बड़ी हलचल मचा रखी थी, पर रशियन सेना ने अमदान पर अपना अधिकार कर, फरवरी में, कर्मनशाह के पास की तुर्क-सेना का पराभव किया। रशियन सेना की अर्जरूम पर विजय पाने के कारण अब ईरान में उसका महत्व बढ़ चला है। अब अर्जरूम की रशियन सेना के अर्जरूम के ४००-५०० मील दूरी के दक्षिण बगदाद रेलमार्ग पर चढ़ाई करने की आशंका है, जिससे युफ्रेटीज-टाइग्रीज नदियों पर की तुर्क और अंग्रेज़ी सेना के सामनों पर भी कुछ न कुछ परिणाम होने की सम्भावना है। वर्तमानऋतु या वसन्त ऋतु की लड़ाइयों तक अर्थात् ५-७ मास तक रशिया उससे आगे नहीं बढ़ेगा। इस समय रशियन सेना अपने रेलमार्ग के आधार से २०० मील आगे को बढ़ गई है। अतएव यदि वह बिना रेलमार्ग के और भी ४००-५०० मील आगे बढ़कर तुर्कों से लड़ने का यत्न करेगी तो उसे धोखा खाने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त अर्जरूम के प्रदेश में रशिया की [illegible] और अर्जरूम के किले से निकली हुई तुर्क-सेना अद्यावधि जीवित है। इसलिये रशिया को अब तो पहिले उक्त सेना का यथायोग्य प्रबन्ध करना ठीक है। यदि रशिया बगदाद पर [illegible] से चढ़ाई नहीं करेगा तो अर्जरूम की [illegible] का [illegible] कोई परिणाम [illegible] नहीं हो सकता। तुर्क-सेना अर्जरूम की हार का बदला लिये बिना ईरान में बढ़ी हुई रशिया की इज्जत को नष्ट करने का उद्योग करेगी, पर जब तक वह [illegible] पर अपना अधिकार स्थापित नहीं करेगी तब तक उसकी इच्छा पूर्ण होना असम्भव है। अब तुर्कों की [illegible] ईरान पर है। [illegible] बगदाद के आधार पर [illegible] करने के लिये ईरान की तुर्क-सेना की सहायता के लिये [illegible] सेना वहां पहुंचेगी।

हरों में तुर्कों को फरवरी मास ही में स्वेज़ पर चढ़ाई ना आवश्यक था; पर मालूम नहीं तुर्क-सेना ने उस ओर क्यों ना ध्यान आकर्षित नहीं किया। इधर अर्ज़रूम की असफलता कारण ईरान में तुर्कों का बड़ा अपमान हुआ है। इसलिये अब ज पर चढ़ाई न कर केवल गीदड़-भभकियों से बहुत सी ग्रेज़ी सेना को ईजिप्त में रोक कर तुर्क बगदाद की ओर अधिक ान देंगे। ऐसी दशा में अमदान-कर्मनशहा-प्रदेश में तुर्क था रशियन सेना में भीषण युद्ध होगा और युफ्रेटीस-टाईग्रीज दियों के किनारे कुतुल-आमार के प्रदेशों में भी अंग्रेज़ी सेना को पना पूरा शौर्य बतलाना पड़ेगा। फरवरी के आरम्भ ही में तुर्कों घेरे में कुतुल-आमार के जनरल टाउनशेंड की जो दशा थी, ही दशा मार्च के आरम्भ में भी है। जनरल टाउनशेंड के पास थेष्ट सैनिक सामग्री है और उन्होंने कुतुल-आमार के पास सैनिक प्रबन्ध भी अच्छा कर रखा है। सी दशा में उन्हें उस ओर कुछ भी भय नहीं है। फरवरी मास की विचित्र परिस्थिति तथा जनरल टाउनशेंड की युक्तियाँ अच्छी तरह न समझने से अरब लोगों को विश्वास होगया था कि अंग्रेज़ी तलवारें मोच खा गई हैं; पर बसरा से कुतुल-आमार तक के प्रदेशों में २-४ हमलों में अच्छी सफलता मिलने से उक्त अनुमान असत्य ठहरा। अब मार्च मास में नई अंग्रेज़ी सेना कुतुल-आमार तक पहुंचेगी और जनरल टाउनशेंड आगे बढ़ेंगे, ऐसी आशा है।

एँड्रियाटिक समुद्र और सेलोनिका।

बगदाद की ओर तुर्क-सेना एकत्रित हो रही है; इससे ईजिप्त की ओर की तुर्क सेना बिलकुल मौन है और अंग्रेज़ी सेना ने स्वेज़ नहर की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर रखा है। तुर्क-सेना स्वेज़ नहर पर चढ़ाई करने के लिये सिनाई द्वीपकल्प में लाइट-रेलवे तैयार कर रही है; पर इससे उन्हें कुछ भी लाभ होने की आशा नहीं है। इस लाइट-रेलवे के साथ ही भूमध्य समुद्र के किनारे से स्वेज़ नहर तक जर्मनी भी एक रेलमार्ग तैयार कर रहा है। यह मार्ग अद्यावधि ईजिप्त की सीमा तक अर्थात् नहर के पूर्वीय सौ मील की दूर पर के सीनाय प्रदेश की सीमा तक नहीं पहुंचा है। अंग्रेज़ी सेना की अपूर्व तैयारी, हवों के नये रेल मार्ग का जाल और तुर्कीय युद्ध का बगदाद की ओर के केन्द्रस्थान के देखते तुर्क-सेना का स्वेज़ नहर को लांघकर स्वेज़ नहर पर चढ़ाई करना असम्भवनीय है। यूरोप में, अप्रैल और मई मास में, रणाग्नि भीषण स्वरूप धारण करेगी, उस समय स्वेज़ नहर की ओर अंग्रेजी सेना का ध्यान आकर्षित करने के लिये और सेलोनिका की सेना ईजिप्त की ओर भेजने को बाध्य करने के लिये जर्मन-सेना ईजिप्त पर चढ़ाई करेगी। सेलोनिका की दो तीन लाख ऐंग्लो-फ्रेंच सेना को प्रत्यक्ष रूप से युद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है तथा जर्मनी या बलगेरिया भी सेलोनिका पर चढ़ाई नहीं कर सकता। सेलोनिका की सेना बलगेरिया पर चढ़ाई करना चाहे तो उसे आल्बेनिया या मांटिनिग्रो से सर्विया पर चढ़ाई करनी चाहिये। पर अब ऐसा होना असम्भवनीय है। क्योंकि सारे मांटिनिग्रो प्रदेश और आल्बेनिया पर आस्ट्रिया का अधिकार स्थापित हो गया है और केवल आल्बेनिया के दक्षिणीय किनारे का वैलोना बन्दर ही इटली के अधिकार में है, इससे यहां पर आस्ट्रिया और इटली में युद्ध छिड़ेगा। इटली की सीमा से वैलोना बन्दर ६०-७० मील की दूरी पर है। यदि आस्ट्रियन सेना बन्दर ले लेगी तो एड्रियाटिक समुद्र का अधिकार स्थापित । मांटिनिग्रो और आल्बेनिया प्रदेश आस्ट्रिया के हस्त-गत हो जाने से कैटेरो और डुराज़ो बन्दरों की आस्ट्रियन जलयुद्ध सेना तथा आस्ट्रो-जर्मन पनडुब्बियों का बहुत उपयोग हुआ है। ट्रिस्टी, कैटेरो और डुराज़ो पर आस्ट्रिया का अधिकार स्थापित होने से सारी शत्रुसेना किसी विशिष्ट स्थान पर एकत्रित होकर एड्रियाटिक समुद्र के इटेलियन जलयुद्धसेना पर सफलता पा सकती है। सिवा इसके मेडिटेरियन में संचार करनेवाली शत्रुओं की पनडुब्बियों को आल्बेनिया के तट का बड़ा भारी उपयोग होने जैसा है। इससे, मांटिनिग्रो और आल्बेनिया आस्ट्रिया के अधिकार में चले जाने से, एड्रियाटिक समुद्र में इटाली की जलयुद्ध सेना का अधिक जोर होने पर भी उसकी दशा विघ्नमय होगई है। ऐसी दशा में इटेलियन सेना मांटिनिग्रो और आल्बेनिया के द्वारा सर्विया पर चढ़ाई नहीं कर सकती। हाँ, मांटिनिग्रो-आल्बेनिया

एड्रियाटिक समुद्र का दर्शनी नक्शा।

की शत्रुसेना के इटाली की ओर आजाने की भी सम्भावना है। इससे सेलोनिका की सेना के, इटेलियन सेना सहित, बलगेरिया पर चढ़ाई करने के कुछ भी चिन्ह नहीं दिखाई देते। यदि रोमेनिया रशिया से मिल जायगा तो सेलोनिका की सेना उत्तर की ओर बढ़ेगी। रोमेनिया की मनःस्थिति रशिया के अनुकूल ही है, पर रोमेनिया की राजधानी और रोमेनिया के पश्चिमीय भाग से आस्ट्रिया और बलगेरिया बिलकुल निकट होने से जब तक रशिया को सफलता मिलने के पूर्ण चिन्ह नहीं दिखाई देते, तब तक यह मित्रदल में सम्मिलित नहीं होगा। रशियन सेना ने, जनवरी-फरवरी मास में, बुकोविना और गेलीशिया प्रदेशों पर चढ़ाई की, पर उस ओर शत्रुपक्ष की दृढ़ खाइयों के तैयार होने से यह यहां सफलता नहीं पा सकी। फरवरी और मार्च मास

रशिया की ओर बर्फ पिघलने लगती है। इससे, अप्रेल और मई मास में उस ओर की युद्धाग्नि भीषण स्वरूप धारण करेगी और उसी समय रोमेनिया मित्रपक्ष में मिल जायगा और तब कहीं सेलोनिका की सेना उत्तर की ओर चढ़ाई करेगी, तब तक या तो उक्त सेना वहीं पर पड़ी रहेगी या आवश्यकता पड़ने पर वह ईजिप्त या फ्रांस की ओर भेजी जा सकेगी।

वरडून का युद्ध।

जनवरी तथा फरवरी मास में, रशियन सेना ने, रोमेनिया पर अपना प्रभाव जमाने के लिये ब्यूकोविना और गेलीशिया की शत्रु-सेना को बुरी तरह से धर दबाया; पर अन्त में, उस ओर के शत्रुओं की खाइयों का रहस्य उसे मालूम हो गया। तब कहीं यह प्रकट हुआ कि खाइयों के चक्रव्यूह को भेद कर शत्रुदल को धर दबाने के लिये जितनी सैनिक सामग्री की आवश्यकता थी, उतनी सामग्री रशिया के पास न होने से वह अप्रेल या मई मास में भी आस्ट्रो-जर्मनों को धर दबा सकेगा या नहीं, यह अभी नहीं कहा जा सकता। इससे जर्मनसेना ही महायुद्ध की आग में सनाहुति डालेगी। जर्मनी की उस चढ़ाई के समय रशिया को शांत रखने के लिये मित्रसेना भी शत्रुसेना को अच्छी तरह से धर दबायेगी। मित्रसेना ने गत ३, ४ मास में अपनी दशा सुधार ली है। इससे यदि जर्मनी रशिया पर चढ़ाई भी करे तो भी मित्रसेना शत्रुओं को धर दबाने का यथासाध्य प्रयत्न करेगी। जर्मनी यह स्वप्न-सुख देख रहा है कि अप्रेल या मई मास में यदि रशिया को अच्छी तरह धर दबायेंगे तो कदाचित् वह सुलह करने के लिये तैयार हो जायगा; पर यह उसका भ्रम है। वास्तव में शत्रुपक्ष ही की अन्तःस्थिति बहुत गिरी हुई है। उसके पास अनाज और द्रव्य का बहुत अभाव है। इससे यदि १९१६ में भी युद्ध की आग शान्त न हो सकेगी तो १९१७ में शत्रुपक्ष को ही सुलह करने के लिये निहोरे करने होंगे। इस समय जर्मनी अपने आडम्बर पर लोगों को भुलाकर शीघ्र ही सुलह करने के प्रयत्न कर रहा है। जब तक मित्रदल शत्रुदल से अपनी हानि की भरपाई नहीं कर लेगा तब तक वह सुलह करने के लिये कदापि तैयार नहीं होगा। फ्रांस के उमराव बड़े ही विचारी हैं। उन्होंने जर्मनी की सब स्थिति का पता पा लिया है, अतएव उनका विश्वास है कि

यदि १,२ वर्ष तक और भी जर्मनी की युद्ध-जाल से मुक्ति नहीं की जायगी तो वह अपने आप ही नष्टप्राय हो जायगा। इस समय इंग्लैंड और फ्रांस की सेना में लड़ने का पूरा दम है। हां, यदि १९१५ साल की तरह १९१६ में भी रशिया को पिछाहट ही होगी तो वह हिम्मतपस्त हो जायगी। रशिया को हिम्मतपस्त या सुलह करने को बाध्य करने के लिये जर्मनी ने फरवरी मास के आरम्भ ही में इसर केनाल, ईप्रेस, लेन्स, सोमनदी इत्यादि स्थानों पर चढ़ाई की। पर, फ्रांस की ओर ऐसी छोटी मोटी लड़ाइयाँ नित्य नैमित्तिक होने से इनका कुछ भी स्थायी परिणाम नहीं हो सकता है। जर्मनसेना ने ता० २० फरवरी से पेरिस के ईशान दिशा की ओर के वरडून किले के आसपास के टीलों पर चढ़ाइयाँ कीं, और उस ओर खूब सैनिक सामग्री एकत्रित हो जाने से वरडून के उत्तरीय म्यूज नदी के आस-पास लगभग एक सप्ताह तक घनघोर युद्ध होता रहा। वहां के युद्ध ने 'न भूतो न भविष्यति' रूप धारण किया; पर उससे जर्मनसेना केवल ३ मील ही आगे को बढ़ सकी और वरडून के किले के उत्तरीय चार मील दूरी पर की १२०० फीट ऊंची डवूनमानकी का टीला अंशतः जर्मनी के हस्तगत होगया। फरवरी के अन्तिम सप्ताह में युद्ध कुछ कम सा हो गया; पर मार्च के प्रथम सप्ताह में युद्धाग्नि पुनः प्रदीप्त हो उठी। अब यदि मित्र सेना को वरडून के किले का त्याग भी करना पड़े, तथापि शत्रुओं के हाथ में कुछ भी वस्तु न लगने का प्रबन्ध कर दिया है। यदि जर्मनी युद्धाग्नि में सैनिकों की बलि देता रहेगा तो वह शीघ्र ही वरडून का किला हस्तगत कर सकेगा। पर, वरडून के ले लेने से जर्मनी का कोई उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकेगा। वरडून के आगे खाइयों के जाल भी खूब फैलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त मित्रदल की अर्वाचीन तोपों के सामने शत्रुओं की दाल गलना जरा टेढ़ी खीर है। सारांश, जर्मनी बहुत प्रयत्न करने पर भी फ्रेंचों को पीछे नहीं हटा सकता। फिर मालूम नहीं, जर्मनी ने किस उद्देश से वरडून के आसपास की रणभूमि प्रज्वलित की है। यदि इसमें उसको अपना बड़प्पन ही दिखलाने का उद्देश्य होगा तो रशिया शीघ्र ही उसका गर्वहरण कर सकेगा। पर, अप्रेल या मई मास के युद्ध से, जर्मनी का वरडून पर चढ़ाई करने का उद्देश्य, भली प्रकार मालूम हो जायगा।

गुप्त मन्त्र।

(प्रहसन)

लेखकः—विष्णु प्रसाद गुप्त (प्रसाद)।

क्या करें, कोई धंधा ही नहीं सूझता। पिता ने मजिस्टरी की नौकरी बड़ी खुशामद करके दिला दी थी, वह भी आज गई। पिताजी घर आने पर मेरी क्या क्या गति करेंगे, यह सोचते ही रोमांच होता है।

भैय्या शुकदेव! आज मैं एक आफत में फँस गया था। उसका कारण मेरे आलसीपन के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता। महीने भर से मैं आमद रजिस्टर नहीं खोला था। उसमें आमदनी का हिसाब जो मुझे हर दिन लिख देना चाहिये—नहीं लिखा था। मेरी कम नसीबी तो देखो, आज ही साहब बहादुर जांच करने चले आये। फिर वह तो यह, कि वे मुझे लाल हुए पाये। यह मेरी बेवकूफी नहीं तो क्या! साहब बहादुर के चिल्लाने पर भी मेरी कुम्भकर्णीय नींद नहीं खुली। बिचारा रामचरण चपरासी मुझ पर बड़ा उपकार किया। यदि वह आलमारी न खोलता, और उसका किवाड़ यदि मेरे सिर से न टकराता तो शायद मैं सिर खुजाते हुए साहब बहादुर को सलाम करने भी न उठता। पहिले तो मैं अपनी बहादुरी दिखाने के लिये रामचरण पर बिगड़ा, परन्तु ज्यों ही साहब बहादुर से मेरी आंख लड़ी तो मेरा पंचतत्व होना रह गया।

भाई! लोगों का यह कहना कि साहब लोग बिगड़ने पर गाली देते हैं, मिथ्या है, क्योंकि उस बिचारे ने मुझे कुछ भी कड़ा-बेढ़ा नहीं कहा। अन्य मनुष्यों की तरह उसने अंग्रेजी भाषा में दो ही वाक्य कहे जो कि किसी तरह सभ्यता से बाहर नहीं हैं।

You fool I don't want you. Submit your resignation

मैं मन में उस समय बड़ा खुश हुआ। इस्तीफा दाखिल करने से मुझे छुट्टी मिलती है। और साहब बहादुर के रजिस्टर जांच करने के समय तक गरक सीताराम होने का सुअवसर हाथ आता है। परन्तु मन में यह भी डरता था कि पिताजी बड़े नाराज़ होवेंगे और मेरी हजामत करने के लिये कोई बात उठा न रखेंगे। क्योंकि सरकारी नौकरी दिलवाने के लिये उन्हें बड़ी बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ी थीं। उनका यह ख्याल है कि सरकारी नौकरी के समान मान, धन और प्रतिष्ठा कहीं नहीं है।

साहब बहादुर से पीछा छुड़ाने के लिये मुझे इस्तीफा देना ही ठीक जँचा। झट मैंने कागज़ का एक टुकड़ा लिया, और इस्तीफा लिख साहब बहादुर के करकमलों में अर्पण किया। भैय्या! यहां भी मेरी बेवकूफी ने पीछा नहीं छोड़ा। अंग्रेजी भाषा में अच्छी योग्यता न होने के कारण रेज़िगनेशन शब्द के बदले रेजि-स्ट्रेशन लिख मारा।

इस्तफा की चिन्ता अब मुझे नहीं है। साहब बहादुर गलती निकालने पर भी मेरा कुछ कर नहीं सकते। परन्तु चिन्ता यही है कि पिताजी साहब बहादुर के मुँह से ऐसा सुनकर घर आवेंगे और मुझे मेरी ... ... न पहनावेंगे। इस तरह ... ... सुनाई देगा। परन्तु मेरा चित्त-... दिन ... ... न रहेगा।

भाई शुकदेव! एक तुम ही मेरे विपत्ति के साथी हो। क्या तुम मुझे कोई अच्छी सलाह नहीं बता सकते। जिसमें नौकरी न करनी पड़े और बेकार भी न रहूं; परन्तु उसके साथ साथ मेरी इज्ज़त भी बढ़े और मूर्ख न कहाऊं?

जगन्नारायण—सचमुच तुम्हारी दुःख भरी बातें सुन कर मुझे कष्ट होता है। मैं तुम्हें अच्छा उपाय और सलाह बताने में किसी तरह कसर न करूंगा। और वही उपाय बताऊंगा कि जिसमें तुम्हारा नाम बढ़े और दादा भी खुश रहें।

जगन्नारायण—तो वह कौनसा कारखाना है?

शुकदेव—उसका मार्ग सुगम है। सुनो मैं तुमसे खुलासा कह देता हूं। तुम हिंदी-लेखक बनो, नाम कमा या और अपनी मातृभाषा की सेवा करो। इससे तुम्हारा और देश (दोनों) का कल्याण होगा।

तुम यह जानते हो कि बंगाल-साहित्य बड़े ऊंचे दर्जे का है। उस भाषा में बड़े बड़े ग्रंथ हैं। बड़े बड़े उद्भट विद्वान् उक्त भाषा के लेखक हैं। यही नहीं; किन्तु जो अंग्रेजी के बड़े बड़े ज्ञाता और लेखक हैं, वे भी तन-मन से अपनी भाषा के सेवक हैं। यही हाल मराठी का भी है। प्रत्येक मासिकपत्र में B. A. और M. A. के ही लेख मिलेंगे। वहां तुम्हारे ऐसे मिडिलची अफीमचीं के लेख नहीं पूछे जाते। परन्तु अभी हिन्दी-पत्रों में ऐसा अन्याय नहीं होने पाया है। तुम्हारे ऐसे विद्वानों के लेख अभी आदर से देखे जा सकते हैं। 'चित्र-मय-जगत्' और 'सरस्वती' को छोड़ अन्य हिन्दी-मासिकपत्रिकाओं में तुम अपना लेख बेखटके छपवा सकते हो। इसका गुप्त कारण जो कि गोपनीय है वह यह है कि उन्हें पेज भरने के लिये लेख नहीं मिलते। सम्पादक बिचारा अपना माथा कहां तक टकरावे। ऐसी दशा में तुम्हारे तुल्य विद्वानों के लेख आदर से देखे जाते हैं। इसी लिये मैं कहता हूँ कि हिंदी के सुलेखक बनने का तुम्हारे लिये अच्छा सुअवसर है। मातृभाषा के उद्धारक और सेवक बन जाने का मौका तुम्हें हाथ से नहीं जाने देना चाहिये।

भाई शुकदेव! तुमने बात तो अच्छी कही, परन्तु मुझमें कुछ योग्यता तो अवश्य होनी चाहिये। हां, कहो तो रीडर नंबर एक या दो के दस-पांच कुत्ते-बिल्ली की कहानियों का अनुवाद उर्दू मिली हुई खिचड़ी और मतलब रहित हिन्दी-भाषा में कर दूँ। परन्तु गांव गांव के लड़के तक जान जावेंगे कि यह लेख रीडर के अमुक नंबर का है। और मुझे वहां अड़चन झेलनी पड़ेगी, जो कि स्कूल के विद्यार्थी नकल करते हुए पाठक द्वारा पकड़े जाने पर, झेलते हैं, और मेरी दशा बूढ़े काजी की तरह हुए बिना न रहेगी। गये नाम कमाने और उठालाये बदनाम का बोरा।

शुकदेव—नहीं नहीं, ऐसा संकट सहने के लिये तुम्हें कौन कहता है। मैं तुम्हें लेखक बनने और सुन्दर लेख लिखने का सुगम उपाय बताता हूं। तुम ठकुरानी साहिबा के यहां हर दिन संध्या समय चले जाया करो। वह बच्चों को खुश करने के लिये नित्य नई कहानी कहा करती हैं। वही कहानी ध्यानपूर्वक सुन आया करो। और हिन्दी-भाषा में साफ साफ लिख कर अथवा न बनने पर किसीसे मदद लेकर या किसीसे लिखवा कर किसी पत्रिका के सम्पादक महाशय के पास भेज दिया करो। और लेख के सिरनामे पर "पुष्पांजली" या और कोई ऐसा ही भड़कीला शब्द लिख दिया करो। फिर देखो तुम्हारी कितनी प्रतिष्ठा होती है। दादा भी तुम्हारे ऊपर खुश रहेंगे। उन्हें संतोष तो रहेगा कि बेटा एक अच्छे काम में अपना काल व्यतीत कर रहा है। हां, एक बात बताने के लिये भूल गया। "भाषा की गलती पर ध्यान देना तुम्हारा काम नहीं, वह सम्पादक का कर्तव्य है।" व्याकरण-सम्बन्धी दोष विचारना ही नहीं चाहिये। क्योंकि हिन्दी व्याकरण अभी गोद का बच्चा बना बैठा है। उसे अभी कहां विठाम है।

जगन्नारायण—महाशय तो आपने ठीक बतलाई। लेखक होना कोई कठिन काम नहीं है। परन्तु मैं समझता हूं, कि गद्य लेख लिखने की अपेक्षा पद्य लेख लिखना बहुत अच्छा है। क्योंकि एक तो दस-पांच दोहे लिख देने में पिंड छूट जाता है। दूसरे गद्य की अपेक्षा दिक्कत कम पड़ती है। और तीसरी बात यह कि कवि का नाम लेखक से कहीं ज्यादा बढ़-चढ़ कर है।

मुझे तो कविता लिखना एक तरह आम पड़ता है कारण कि मैं शब्दरूप और दोहों का बार बार पढ़ी है। इसकी चौपाई और [illegible] हैं कि इस तरह के बैठ गया है, कि भाषा कम होते ही पद्य मेरे कान में खटकने लगता है। रही बात तुकान्त की, सो भी सहज है। श्रीधरकोष सामने रख कर समान अन्त वाले शब्दों की फेहरिस्त बना लेना मेरे लिये बिलकुल सहज है। अब मुझे कविता करने में इंगल-पिंगल की आवश्यकता निरा खेल सा मालूम होता है।

शुकदेव—यह तुम्हारी भूल है। गद्य लिखना जैसा सहज है वैसा पद्य नहीं। हां, जब तुम्हारे गद्य न छापे जांय तो बेशक तुम्हें पद्य लिखने का अधिकार है; और यदि पद्य लेख पसंद न हों और छापे भी न जांय तो तुम्हें उपन्यास लेखक बनने में देरी न करनी चाहिये। जब तुम्हें यह मालूम हो जाये कि तुम अपना असली नाम बता कर लेख नहीं छपा सकते; तो भी मत चूको। कविता बना कर और सुन्दर अक्षरों में लिख कर भेज दो; परन्तु यह ध्यान रखो, कि तुम्हारा असली नाम उन लोगों को विदित न होने पावे, और पद्य के नीचे कपिंजल, गरुड़, राहु, कलिकुसुम, कुसुम, सीपा, मधुप, रत्न और नाज, इनमें से कोई भी एक नाम, जो तुम्हें पसन्द होवे, लिख दो। ऐसे ऊट-पटांग शब्द लिखने में एक फायदा है। वह यह कि कोई न कोई पत्रिका तुम्हारा लेख, किसी अच्छे विद्वान् का समझ कर, अवश्य स्थान देवेगी।

जब तक तुम्हारे लेख किसी पत्रिका में लगातार छपते जावें तब तक अपना लेख उसी पत्रिका के सम्पादक महोदय के पास भेजते जावो; परन्तु जब तुम्हें मालूम हो जाय कि उस पत्रिका में तुम्हारे लेख (किसी कारण से) नहीं निकलते तो झट स्थानान्तर कर दो। कहने का सारांश यह, कि अपनी कविता किसी अन्य पत्रिका में छपने को भेज दो। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे लेख इधर उधर भटक-फिर कर जरूर किसी गगन या मंडल में चमकेगा; नहीं तो तरंगिणी में ज़रूर हिलोरें लगावेगा। "[illegible] की प्रतिष्ठा सर्वत्र समान नहीं होती।"

कविता करते समय मेरे ये नियम ध्यान में रखोः—(१) कविता सिर्फ छंद में हो, जिस छंद का पाठ तुम्हारे कंठ में बिलकुल बैठ गया हो; क्योंकि सरस्वती का घनिष्ठ सम्बन्ध कंठ से है। (२) ऐसा करने से फायदा यह होता है कि मात्रा सम्बन्धी दोष तुम्हारी कविता में न होने पावेगा। (३) जो विषय तुम कविता के लिये पसन्द करो वह आज-कल के ढंग का होना चाहिये। यथा ईश-वन्दना, होली, खेत, पुत्र-शोक, अधखिला फूल, जुगनू, बबूल आदि। (हां एक बात और है, कौवे की तारीफ़ तुम कविता में करना। क्योंकि यह बात आज तक किसीने नहीं की है। ऐसा करने से नूतन आविष्कार का क्रेडिट तुम्हारे हिस्से आवेगा)। (४) इसमें जो भाव रहें वह प्राकृतिक होने चाहिये। जैसे कि मेरे एक मित्र की कविता में भावभगवान ज्योतिमय हो रहे हैं। उदाहरण स्वरूप यहां पर तुम्हें बताता हूँ। मेरे मित्र एक श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी कविता में दोष निकालना मानो सांप के बिल में हाथ डालने का प्रायश्चित्त लेना है।

॥ १५ मात्रा का छंद ॥

हरी हरी लहराती घास। गौ माता जो करती ग्रास॥
कृषक-पुत्र खेलें वहुँ पास। बलिहारी है तेरी घास (या ग्रास)॥

ध्यान रखो! कविता और चित्र का परस्पर सम्बन्ध है। वह का जितना हिस्सा दिखाई देता है उतना ही चित्रकार कागज़ में खींच कर दिखावेगा। हमारे मित्र ने पारस्परिक सम्बन्ध नष्ट हो जावे इस भय से यही बात जो कि उनके नज़र के सामने है, अपनी धारा प्रवाहिणी लेखनी-द्वारा कविता-स्वरूप में लिख, आप लोगों के सामने प्रकाशित किया है।

भाई! देखो, लेख लिखते या कविता करते समय मेरे बताये हुए नियमों का तुम्हें अवश्य पालन करना चाहिये। ध्यान रखो, यदि तुमने इसकी तामील बराबर न की तो... "अफसोस दिल ही में" हिंदी-संसार को ओर (तुम्हारे ऐसे विद्वान्) न देख सकेंगे।

अपने गूढ़ और गोपनीय मंत्र की प्रथम धारा समाप्त करने के पहिले आप लोगों के मनोरंजनार्थ अपने नायब मित्र की एक कविता लिख देना जरूरी समझता हूं। भाव और अलंकार के विषय में भानुकवि ने इन्हें विशारद की पदवी दी है।

दमयंती-वियोग।

नल ने उठाया गोद में दमयन्ति को धीरे महा।
पुन चूम धीरे से धरा पर धर दिया दुख से कहा॥
नल के विचारों को यहां लिखना कठिन मुझसे सुनो।
अनुमान किसको है यहां! पाठक तुम्हीं मन में गुनो......॥

विविध-विचार।

सत्पुरुषों के स्मारक।

प्रायः कई लोग यह कहा करते हैं, कि हम (भारतवासी) अभी तक गुणग्राहकता नहीं सीखे हैं, यह अक्षर अक्षर सत्य है। वास्तव में देखा जाय तो गुणग्राहकता ही के आधार पर देश की उन्नति या अवनति अवलम्बित है। यदि हम अपने देश के गुणी जनों की कदर करना नहीं सीखेंगे तो उससे हमारे देश पर यह परिणाम होगा कि एक तो अन्यान्य लोग गुणियों का अनुकरण नहीं करेंगे और दूसरे उन गुणियों को उत्साह न मिलने से वे अपने गुणों को फैलाना तो दूर रहा, उनको छिपा रखने ही में अपनी इति कर्त्तव्यता समझेंगे। भारतवासियों में गुणग्राहकता का अभाव है। इसकी पुष्टि के लिये यहां कई उदाहरण लिखे जा सकते हैं। उनमें सब से अपूर्व उदाहरण है सुकवि रवीन्द्र की 'नोबुल प्राइज़' की प्राप्ति। कैसे आश्चर्य की बात है कि कविसम्राट् रवीन्द्र की प्रतिभा का आदर्श विदेशों में हो और हम में से कई विप्र सन्तोषी '*रोबिन्द्र कोबी नाथ*' (!) कहने ही में *स्वर्ग-सुख* समझें! पाश्चिमात्य देशों में गुणग्राहकता की अधिक मात्रा होने ही से वे आज उन्नति के शिखर पर विराजमान हैं। वे लोग मृत गुणी सत्पुरुषों तक की ऐसी पूजा और भक्ति करते हैं, जैसे किसी देवता की करते हों! वहां पर शेक्सपियर, होमर, मेकॉले आदि महत्पुरुषों के स्मारक बने हैं। पर, हमारे देश में काव्यकल्पद्रुम वाल्मीकि, कविकुलगुरु कालिदास, धर्मोद्धारक शंकराचार्यादिक भारत-सपूतों के कहां और कितने स्मारक बने हैं? क्या हमारे देश के लिये यह बड़ी लज्जा की बात नहीं है कि भारतीय जगत्पूज्य महात्माओं के स्मारक बनाने में भी हम देर करें? आज हम एक भारत-सपूत का स्मारक बनाने ही के अभिप्राय एक सज्जन की प्रार्थना नीचे प्रकाशित करते हैं। आशा है, हमारे भाई उनका हाथ बँटाने में कोई बात नहीं छोड़ रखेंगे।

गोस्वामी तुलसीदासजी का असली चित्र।

भारत में बहुत ही थोड़े लोग होंगे जो महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी के नाम से परिचित न हों। गोस्वामीजी का काशी से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। उन्होंने अपने जीवन के अधिक दिन काशी में ही बिताए थे। काशी में उनके प्रधानतः चार स्थान थे—१ असीघाट, २ गोपालमन्दिर के निकट, ३ प्रह्लादघाट और ४ संकटमोचन। इन्हीं स्थानों में प्रायः वे रहते थे। गोस्वामीजी पहले पहल जब काशी में आते तब प्रह्लादघाट पर पं० गंगाराम जोशी के घर ठहरते थे। यह वही स्थान है जहाँ स्वयं रामचन्द्रजी ने आकर चोरों से गोस्वामीजी के भण्डारे के धन की रक्षा की थी। पं० गंगारामजी से आपका बड़ा प्रेम-सम्बन्ध था और उनके अर्पण किए हुए धन से ही गुसांईजी ने शेष स्थान तथा महावीरजी के बारह मन्दिर बनवाए थे। पं० गंगारामजी को यह धन राजघाट के क्षत्रिय गहमार राजा से, प्रश्न बताने पर, मिला था और वह प्रश्न गोस्वामी जी ने दावात कलम के अभाव में काठे से लिखी हुई 'रामशलाका' से निकाला था। उसी समय अर्थात् सं० १६५५ में गोस्वामीजी की एक तसवीर जहाँगीर बादशाह ने जयपुर के चित्रकार से बनवाई थी। वह तसवीर और रामशलाका बराबर पं० गंगाराम जोशीजी के यहाँ थी।

ग्रियर्सन साहब ने तुलसीदासजी के विषय में लिखे हुए अपने १८९३ के इंडियन एंटिक्वारियन में और पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने अपनी रामायण के तिलक में इन बातों का उल्लेख किया है। परन्तु रामचरितमानस, (ना० प्र० सभा काशी से प्रकाशित) इण्डियन एंटिक्वेरियन, या पं० ज्वालाप्रसादजी के तिलक में, प्रह्लादघाट के सम्बन्ध में, केवल इतना ही लिखा है कि तसवीर और रामाज्ञा एक ब्राह्मण के पास थी, अब वह खो गई है। इससे मालूम होता है कि उस ब्राह्मण का पूरा हाल शायद उन्हें नहीं मिला। उस ब्राह्मण के घर ग्रियर्सन साहब स्वयं गये थे और उन्होंने जहाँगीर की बनवाई हुई गुसाईंजी की वह तसवीर प्रत्यक्ष देखी थी। गंगारामजी दो भाई थे। दूसरे भाई का नाम दौलतराम था। दोनों की मृत्यु १७ वीं सदी में हुई थी। उनके वंशजों में पं० गिरिधरव्यास हुए, जिनकी मृत्यु सं० १९५३ में हुई और उनके पास ही ग्रियर्सन साहब ने गुसाईंजी की तसवीर देखी थी। इनकी मृत्यु के पीछे उनका उत्तराधिकारी मैं हुआ हूँ। मैं उनका भांजा हूँ। उक्त ग्रन्थकारों ने ब्राह्मण के पास रामाज्ञा के होने का उल्लेख किया है, वह असल में "रामाज्ञा" नहीं, किन्तु "रामशलाका" थी, जो रामचन्द्र (मेरे बहनोई के भाई) और गंगाधर (मेरी मा की बुआ के पुत्र) के हाथ से सं० १९२०-२२ के करीब लुटेरों ने श्रीनाथजी की यात्रा के समय उदयपुर के निकट लूट ली थी। उक्त महाशयों की मृत्यु होगई है और उस रामशलाका की नकल मिरजापुरवासी पं० रामगुलामजी द्विवेदी के श्रोता मु० छगनलालजी के पास है। जहाँगीर की बनवाई गोस्वामीजी की तसवीर मेरे पास सुरक्षित है और उसे मैं जो देखना चाहें उन्हें दिखा सकता हूँ।

अब इस संसार में मेरा कोई नहीं है और मैं युवा होने पर भी विवाह कर गृहस्थी में फँसना नहीं चाहता। मेरा मन विरक्त सा बन गया है और राम-कथावार्त्ता में ही अपना समय बिताना चाहता हूँ। जीविका निर्वाह के लिए मैंने फोटोग्राफी का काम सीखा है और आवश्यकता से अधिक पैसे के लिए मैं हाय हाय नहीं करता।

मुझसे कितने लोगों ने यह तसवीर मांगी; पर मेरी इच्छा उस तसवीर को अपनी सब सम्पत्ति अर्पण कर देने की है; इसलिए मैंने वह किसीको नहीं दी। गोस्वामीजी के अन्य स्थान तो अच्छी दशा में हैं, पर प्रह्लादघाट जो मूलस्थान है, दूसरे की मिलकियत होने के कारण जैसे का तैसा पड़ा है। दूसरे की अर्थात् मेरी ही वह सम्पत्ति मैं तुलसीदासजी को अर्पण करना चाहता हूँ।

मैं पुष्करना ब्राह्मण हूँ और मेरी इच्छा है कि निज का संगीन मकान गोसाईंजी को अर्पण कर उसमें उनकी एक पाषाणमूर्त्ति की उस तसवीर के साथ स्थापना कर दूँ, जिससे प्रह्लादघाट पर तुलसीदासजी का एक स्थिर स्मारक बन जाय और उनकी कीर्ति अपना सर्वस्व खर्च कर शेष न होने पावे।

मैं निर्धन हूँ। मेरे पास जो कुछ था, सो मैंने गोसाईंजी के चरणों में अर्पण कर दिया है। पाषाणमूर्त्ति की स्थापना के लिए कम से कम एक या डेढ़ हज़ार रुपया चाहिए। उनके जुटाने में मैं किसीके पास याचना नहीं करता। इसके लिए मैंने एक ऐसा उपाय निकाला है जिससे लोगों को कष्ट न पहुँच कर लाभ भी हो और काम भी बन जाय।

मेरे एक विद्वान् मित्र ने गोस्वामीजी की सुन्दर जीवनी लिख कर तुलसीस्मारक की सहायता की है। उस जीवनी, शत पंच चौपाई और गोस्वामीजी की प्राचीन तसवीर को मैंने छपवा लिया है। इन्हीं तीनों वस्तुओं की बिक्री के लाभ से मैं तुलसीस्मारक बनवाऊँगा। तुलसीदासजी की असल मूर्त्ति और उत्तम चरित का संग्रह देश के हर एक व्यक्ति के निकट रहना अत्यावश्यक है। किसी जाति, धर्म अथवा समाज का मनुष्य क्यों न हो, तुलसीदासजी से सब का समान सम्बन्ध है। आशा है इस पुस्तक को मँगवा कर लोग परम पवित्र काशीक्षेत्र में राष्ट्र के मनयन्त्रक महापुरुष का स्थायीस्मारक बनवाने में मेरा हाथ बटावेंगे। मूल्य १॥) मात्र। केवल फोटो का मूल्य १) रु०।

विनीत—निवेदक

रणछोड़लाल व्यास,

मन्त्री—तुलसीस्मारक कार्यालय।

प्रह्लादघाट, बनारस सिटी।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

कृत्रिम हीरे।

पेरिस के एक प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता ने अनेक प्रयोग करके कृत्रिम हीरे बनाने की युक्ति साध्य की है। विज्ञानवेत्ता का नाम है ई० डी० कब्बामेन्यू। मि० कब्बामेन्यू ने बिजली की भट्टी तैयार कर उसमें हीरे तैयार किये हैं। ये बनावटी हीरे असली हीरों से कुछ छोटे होते हैं। कृत्रिम हीरों में सब से बड़ा हीरा एक इंच का ही बन सका है; किन्तु वे शीघ्र ही बड़े बड़े हीरे भी तैयार कर सकेंगे। अब तक कई विज्ञानवेत्ताओं ने कृत्रिम हीरे बनाने का प्रयत्न किया था किन्तु उन्हें उस कार्य में सफलता नहीं प्राप्त हुई। इससे कब्बामेन्यू का यह नूतन आविष्कार प्रगट होते ही होते इन कृत्रिम हीरों के विषय में कई तरह की शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं और बड़े बड़े विज्ञानवेत्ता अविश्वास भी प्रकट करने लगे। जब उन्हें विश्वास दिलाने के लिये, मि० कब्बामेन्यू ने, अपने आविष्कार के विषय में एक पुस्तिका प्रकाशित की, तब कहीं उनकी बातों पर लोगों का विश्वास बैठा। अमेरिका के एक सुप्रतिष्ठित सामायिक पत्र के प्रतिनिधि ने इन कृत्रिम हीरों तथा उनके बनाने की क्रिया की जांच की। सुना जाता है, वे प्रतिनिधि महाशय इन कृत्रिम हीरों के सम्बन्ध में एक सचित्र पुस्तक लिखनेवाले हैं। उस पुस्तक में कृत्रिम हीरों से सम्बन्ध रखनेवाली सारी प्रक्रियाओं के चित्र भी रखे जावेंगे, कालि अमर्फो-चाई नामक पदार्थ को बिजली की शक्ति से शुद्ध करने से उसमें कार्बन के कण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। उन कणों को ही हीरे कहते हैं। मि० कब्बामेन्यू के, अब तक के लिये हुए, प्रयोग (Experements) बिलकुल छोटे प्रमाण पर हैं; परन्तु अब वे शीघ्र ही बड़े प्रमाण के प्रयोग भी करनेवाले हैं। उनका कहना है कि उक्त कथित पृथक्करण को पूर्ण करने के लिये यदि बहुत सी अवधि दी जायगी तो बड़े बड़े हीरे भी तैयार हो सकेंगे। देखें यह कलि-युगी विश्वकर्मा अपने कार्य में कब और कहाँतक सफलता पाता है?

संयुक्तप्रदेश की शिक्षावस्था।

भारती प्रदेशों में बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रदेश बहुत उन्नति पर हैं। वहां पर शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है तथा लोगों में भी उसका अधिक भाव है। पर, उक्त प्रदेशों के देखते हम कह सकते हैं कि संयुक्तप्रदेश शिक्षा-व्यवस्था में बहुत पिछड़ा हुआ है। तथापि यहां शिक्षा-व्यवस्था की सन्तोष-जनक उन्नति देखने से हमें विश्वास होता है कि उक्त प्रदेश ने बहुत कुछ उन्नति कर ली है। दिनोंदिन वह उन्नतावस्था पर ही जा रहा है। सन १८८९ ई० में इलाहाबाद युनिवर्सिटी की स्थापना हुई। उस समय केवल ५ कॉलेजों में एम० ए० तथा ४ कॉलेजों में बी० ए० तक पढ़ाई होती थी। उस वर्ष परीक्षार्थियों की कुल संख्या १४१७ थी, जिनमें इन्ट्रेंस के ३२८, इन्टर मिजिएट के ७८ और कानून के १६ विद्यार्थी थे। जब सन १९०५ में इन्डियन युनिवर्सिटी ऐक्ट के अनुसार इलाहाबाद युनिवर्सिटी भी कॉन्स्टिट्यूटेड युनिवर्सिटियों में गिनी जाने लगी, तब उसने अपना कार्यक्षेत्र और भी बढ़ाया। उस समय एम० ए० तक की पढ़ाई के लिये १० कॉलेज और बी० ए० के लिये १२ कॉलेज थे। इनमें एक कॉलेज में एम० एस० सी० और ५ कॉलेजों में बी० एस० सी० की शिक्षा दी जाने लगी। उस वर्ष मॅट्रिक के ११०३, इन्टर मीजिएट के ७४१, बी० ए० के २२९, बी० एस० सी० के २४, एम० ए० के १९ और एम० एस० सी० के ७ तथा कानून के १३५ विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए। इस वर्ष परीक्षार्थियों की और भी अधिक उन्नति देख पड़ी। अब की बार इन्ट्रेंस के ४५२५, इन्टर मीजिएट के २१५०, बी० ए० और बी० एस० सी० के १०३१ और १६२, एम० ए० और एम० एस० सी० के ७४ और २३ कानून के ४५२ परीक्षार्थी परीक्षाओं में सम्मिलित हुए। इस वर्ष परीक्षार्थियों की कुल संख्या ८५०० थी, जो सर्वथा सन्तोषजनक है। इलाहाबाद युनिवर्सिटी में १३ एम० ए० के, ३ डी० एस० सी० के, ४ एम० एस० सी० के और १७ बी० ए० के लिये कॉलेज हैं। डॉक्टरी और कानून सीखने के लिये लखनऊ और इलाहाबाद में भी हैं। कॉलेज के प्रोफेसरों की इस वर्ष की संख्या ४१८ है। उक्त परीक्षार्थियों के अतिरिक्त प्रत्येक श्रेणी के कई ऐसे भी विद्यार्थी रह गये हैं, जिन्हें परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं मिली। केवल इन्ट्रेन्स की श्रेणी के ही १०० विद्यार्थियों को युनिवर्सिटी ने परीक्षा में सम्मिलित नहीं किया। इससे ज्ञात होता है कि इलाहाबाद युनिवर्सिटी के साथ ही संयुक्त प्रदेश और उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य प्रदेशों में शिक्षा-व्यवस्था का दिनों दिन सुधार हो रहा है। और आशा है, कुछ वर्षों के अनन्तर इसका अच्छा परिणाम दिखाई देगा।

राजनैतिक साहित्य।

भारत-सेवक-समिति की प्रयागवाली शाखा ने राजनैतिक विषयों पर सस्ते दामों की पुस्तिकाओं के शीघ्र निकालने का प्रबन्ध कर लिया है। माननीय पं० मदनमोहन मालवीय इन पुस्तिकाओं के लिए *प्रस्तावना लिखेंगे। इस प्रस्तावना के कारण इन पुस्तिकाओं* की उपयोगिता कितनी बढ़ जायगी, इसके लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इन पुस्तिकाओं में सोलह पेजी ५० से १०० पृष्ठ तक होंगे, और दाम दो और चार आना के *लगभग* होगा। इनके विषय होंगे:—(१) भारतवर्ष में राजनैतिक जागृति, (२) अपरि देशों में प्रजातंत्र, (३) भारतवर्ष में स्वराज्य, (४) हिंदुस्तान साम्पत्तिक दशा, (५) भूमि-कर और किसानों का बोझ, (६) सहयोग समितियाँ, (७) भारतीय व्यापार और उद्योग-धन्धे (८) भारतीय अर्थ-नीति, (९) प्रान्तिक आर्थिक स्थिति (१०) भारतवर्ष में शिक्षा, (११) भारतवासी और सरकारी नौकरियाँ (१२) स्थानिक स्वराज्य, (१३) न्याय-विभाग का (१४) पुलिस का सुधार, (१५) सरकार और आबकारी (१६) देशी रियासतें, (१७) साम्राज्य और हिन्दुस्थानी। इस सूची से पाठकों को पता लग जायगा कि जितने भारतवर्ष के मुख्य मुख्य राजनैतिक विषय हैं उन सब की विद्वत्ता-पूर्ण विवेचना इनमें की जायगी। हमें यह सूचना देते अत्यन्त हर्ष होता है कि इन पुस्तिकाओं के लिखने की प्रार्थना उन्हीं महानुभावों से की गई है, जिनको ऐसे मसलों पर बोलने और लिखने का पूरा अधिकार है; और कई एक महाशयों ने इस सदुद्योग में सहयोग देने का वचन भी दे दिया है। अभी हम इनके नाम नहीं प्रकाशित कर सकते हैं, परन्तु जब पाठकों को पुस्तिकाएँ पढ़ने का अवसर प्राप्त होगा तब वे, हमें पूर्ण आशा है, हमसे सहमत होंगे कि लेखकों की राजनैतिक संसार में कितनी प्रतिष्ठा है। आगामी मई से पुस्तिकाएँ निकलने लगेंगी, जो सज्जन चाहें वे अपना नाम ग्राहकों में पहिले से मैनेजर, प्रताप पुस्तकालय, कानपुर, को पत्र भेजकर लिखवा सकते हैं।

(अभ्युदय।)

सम्पादकीय—

हमारे पास कई पुस्तकें समालोचनार्थ आई हैं। स्थानाभाव से हम अभी तक उनकी समालोचना नहीं कर सके। आगामी अंक में हम उनकी आलोचनाएँ लिखने का प्रयत्न करेंगे।

जगत की सभ्य जातियों में हमारा स्थान।

लेखकः—श्रीयुत काशीप्रसाद वर्मा।

'संसार की सभ्य जातियों में हमारी दशा कैसी है' इस विषय में कुछ लिखने के पूर्व यह सोचना है कि 'जाति' किस को कहते हैं? जहां तक मेरा विचार है, जाति उन मनुष्यों के समूह को कहते हैं जो एक देश में रहते हैं, जिनकी सामाजिक रीति तथा आचरण एक से हैं और जो शिक्षा तथा व्यौपार में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। एक देश के रहने वालों की एक ही जाति होती है। बहुत से मनुष्यों का विचार है कि एक जाति का धर्म भी एक ही होना चाहिये। परन्तु यह बात मुझ को कुछ ठीक नहीं मालुम होती। क्योंकि इंग्लैंड का एक निवासी जिस का विश्वास ईसाई धर्म पर नहीं है अवश्य ही इंगलिश जाति का एक व्यक्ति है। क्या यहां के जैनी हिन्दुस्थानी या भारतीय नहीं? क्या इस देश के निवासी ईसाई और मुसलमान नहीं? चाहे बहुत से मुसलमान यह बात स्वीकृत न करें तो भी गावों में रहनेवाले मुसलमान जिनकी संख्या शहरवालों से कहीं अधिक है अपने को भारतीय ही बतलावेंगे। और बाहर के रहने वाले भी जबतक कि दूसरे देश की जाति उनको न लेवें और जब तक कि वे यहां हैं भारतीय ही हैं। जाति का देश से सम्बन्ध है, धर्म से नहीं।

प्राचीन इतिहासों से विदित है कि हमारी भारतीय जाति उन्नति के उच्चतर शिखर पर विराजमान थी। उस समय यहां चक्रवर्ती महाराजा राज्य किया करते थे। एक महाराजा के आधीन बहुत से राजा थे, जो उस महाराजा की सहायता व भलाई करने में सर्वदा उद्यत रहते थे। परन्तु जब से द्वैभाव हुआ, यहां के राज्यों की अधोगति होगई। ठीक इस ही प्रकार अपनी जाति की अवनति हुई है। वेदों में मनुष्य-जाति को चार भागों में विभक्त किया है इस से उसका अभिप्राय केवल Distribution of labaur अर्थात् कार्य को बांट कर प्रत्येक मनुष्य को दूसरे का सहायीभूत बना प्रत्येक व्यक्ति का भार व जिम्मेदारी कम कर देने का था। जब तक इन वर्ण विभागों का ठीक ठीक प्रयोग हुआ, तब तक ही अपनी दशा ठीक रही और जहां यह भेद छुटाई बड़ाई दिखलाने तथा स्वार्थ साधने में प्रयुक्त किया गया, सामाजिक दशा का बिगड़ना आरम्भ होगया।

प्रत्येक जाति की दशा उसकी (१) शिक्षा (२) सामाजिक रीतियां व आचरण (३) व्यौपार (४) धन और (५) देश की प्राकृतिक दशा पर निर्भर है। जब यहां के मनुष्य विद्याहीन हुए, तब सामाजिक दशा बिगड़ गई। इसके पश्चात् अशिक्षित व असभ्य विदेशियों के आक्रमण ने 'लुढ़कने के नौ लात' की कहावत के अनुसार अपनी दशा और भी शोचनीय कर दी। इस प्रकार दुःख और आपद से भरे हुए ३००० वर्ष काटते हुए भारतवर्ष ने ईसा की १९ वीं शताब्दि को पकड़ा। इस समय से सौभाग्य से ब्रिटिश राज की [illegible] किरणें यहां पर पड़ने लगीं। यहां के निवासियों को अपनी ज्ञान व मान बढ़ाने की शिक्षा से सुदृढ़ता और विद्योपार्जन करने का अवकाश मिला। अब मनुष्य भी विद्वान् हुए और इन्होंने अब यूरोपीय बान्धवों को दिखा दिया कि हमारी दशा कैसी शोचनीय है और हम कैसे अन्धकार में डूबे हुए हैं।

इस समय जब कभी हम संसार की अति सभ्य जातियों-इंगलिश, अमेरिकन, जर्मन और जापानी आदि-को देखते हैं, तो हमको ज्ञात होता है कि हम उनसे [illegible] वर्ष पीछे चल रहे हैं। [illegible] हमारे और उनके [illegible] जो जातियां इस दशा में हैं, वे [illegible] कि हम में [illegible] कमी है।

जैसा कि पहले कहा गया है, सबसे पहला हेतु [illegible] का है। अपने देश में केवल १०० मनुष्य प्रति १००० पढ़े [illegible] निकलेंगे और उनमें उच्च शिक्षा प्राप्त केवल ५ वा १० से अधिक न होंगे। स्त्रियां भी २००० में १५ वा २० से अधिक शिक्षित मिलेंगी। दूसरी ओर आदर्श उच्च जातियों में ९८० [illegible] २००० में शिक्षित होंगे, जिनमें से अधिकतर [illegible] की उच्च शिक्षा-प्राप्त होंगे।

भारतवर्ष में केवल ५ विश्वविद्यालय (University) हैं। इगलैंड में ४० के लगभग और ऐसे ही दूसरे सभ्य देशों में हैं।

यहां जो विषय पढ़ाए जाते हैं वे पूर्णरूप से नहीं पढ़ाते; इसही यहां के विद्यार्थी दूसरे देशों में शिल्प, पदार्थ व रासायनिकविद्या जन्तुविद्या, वनस्पतिशास्त्र, इतिहास, राजनीति, वैद्यक, सम्पत्ति व्यौपारिक शिक्षा, यहां तक कि दर्शनशास्त्र, जिसके लिए [illegible] देश प्रसिद्ध है और कृषिविद्या आदि सब विषयों के पूर्ण पण्डित बनने के लिए जाते हैं। नवीन आविष्कार वहां प्रतिदिन [illegible] करते हैं।

अन्य देशों में १२ वर्ष तक के बालक को प्राथमिक शिक्षा [illegible] दी जाती है। यहां पर इस का कोई प्रबन्ध नहीं। दो वर्ष [illegible] यहां की राजकीय सभा में इस का प्रस्ताव हुआ था, [illegible] उसकी स्वीकृति नहीं हुई। इस शिक्षा को प्रचलित करने [illegible] एक उपाय मैं भी निवेदन किए देता हूं। वह यह है कि जिन नगरों में रामलीला होती है, वहां के निवासी उस धन को [illegible] शिक्षादान में व्यय करें। कम से कम २५०) में एक नगर की [illegible] लीला होती होगी। यदि यह धन इस शिक्षा में नियुक्त हो तो [illegible] मासिक वेतन के दो अध्यापकों से दो ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार हो सकता है।

प्राथमिक शिक्षा न होने के कारण यहां के निवासियों को [illegible] कुछ दुःख सहने पड़ते हैं।

विद्यारहित होने के कारण यहां के निवासी मिथ्या विश्वासी और अनुदार होगए हैं और बहुतसी पुरानी बातों को जो [illegible] में पुरानी नहीं हैं किन्तु अन्धकारमय समय में ही कभी [illegible] लित हुई थीं नहीं छोड़ते। बहुत से मनुष्य यह कह कर ही [illegible] रहते हैं, कि "हमारा उद्यम केवल नौकरी करना ही है" और [illegible] विचार पर लज्जित नहीं होते।

व्यौपारी अपने लड़कों को पहाड़े व हिसाब पढ़वा कर दुकान पर बिठा देते हैं। उच्च शिक्षादि पढ़ कर अन्यदेशों में व्यौपार [illegible] काम सम्पत्तिशास्त्र व शिल्प सीखने को वे कोई [illegible] कता नहीं समझते। जैसा होता आया है वैसा ही वे [illegible]

व्यौपारिक शिक्षाओं के अभाव के कारण ही दो तीन वर्ष [illegible] अपने देश की १५० कपड़े बुनने की मिलों को बड़ी भारी [illegible] हुई। वे छ मास तक बन्द पड़ी रहीं। यह घटना इस प्रकार हुई। विलायत के प्रसिद्ध कपड़ों के कारखाने के मालिक "[illegible] ब्रादर्स" के कुछ कार्यकर्ता यहां से रुई आदि खरीद कर भेजा करते हैं। इन कार्यकर्ताओं ने फ़सल होने जाने के [illegible] ही पहले से यहां के वणिकों से अधिक रुपये दे [illegible] रुई के बहुत सारे खेत खरीद लिये। यहां के मिलों के [illegible] फ़सल के होने पर रुई खरीदने की ही सोचते रहे। [illegible] इन मिलों को रुई नहीं मिली और साहूकारों ने हानि उठाई। [illegible] प्रकार प्रत्येक उद्यमों में शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

[illegible] यदि यह जाति के [illegible] में इसको यहां छोड़ देता हूं [illegible] इतना और कहूंगा कि विद्या के न होने के कारण ही [illegible]

वक बन कर अपने देश में आते हैं और अपने यहां के निवासी बन कर दूसरे देशों में जाते हैं और वहां वर्षों व्यतीत ऊभी न तो ज़मीन खरीद सकते और न वहां कुछ अधिकार ही सकते हैं। जहां जाते हैं वहां अशिक्षित व असभ्य आदि शब्दों रस्कृत होते हैं !

रा हेतु सामाजिक रीतियां तथा मनुष्यों के आचरण हैं। जिक रीतियां हमारे यहां अब भी बहुत कुछ अच्छी हैं। जो कुछ शोचनीय हैं, वे निम्न हैं—

१) विवाह बहुत जल्दी और कम उम्र में होजाते हैं।

२) विवाहों में अधिक धन व्यय किया जाता है। नाच, आतशबाज़ी आदि सब व्यर्थ क्रियाएं हैं।

३) रुपये ले कर विवाह किये जाते हैं यह भी एक ा है।

४) गालियें गाना और नीच हँसी मजाक़ करना।

५) बाल विधवाविवाह। मेरी सम्मति में बाल विधवावि· में कोई हर्ज़ नहीं है। इत्यादि

हां के मनुष्यों के आचार बहुत कुछ बिगड़ रहे हैं। गाली बक तो यहां श्वास की तरह है। आपस में मेल जोल भी कुल नहीं। अलग २ क़ौमों ने अपनी २ कौनफ़्रेंसें बना कर भी नीचता प्रदर्शित कर दी है। इन से सहानुभूति का तो अवश्य नष्ट हो जायगा। मेरा और तेरा का भाव तो इन फ़्रेंसों के नाम से झलकता है यह सब अनुदार विचारकों सभाएं हैं। इन सभाओं से मनुष्यों का मेल जोल कम होजाना य फल प्रतीत होता है। आदर्श सभा Royal Asiatic ciety, Society for Promoting scientific knowledge ज्ञान उन्नति कर सभा) आदि हैं, जिनसे मनुष्य विद्वान उदारहृदयी बन सकते हैं। हम लोगों को चाहिये कि वैसी ही एं स्थापित करें।

बहुत सी क़ौमों को इतना नीच समझ रक्खा है कि उनके छूने से भी घृणा है। यह भी एक अनुचित व्यवहार है। सी देश के निवासी अपने स्वदेशी भाइयों से इस तरह घृणा करते होंगे। यह एक बड़ा भारी पाप है।

इस देश में और भी बहुत से दुराचरण हैं, जिनके विषय में भी कुछ ना अनुचित समझता हूं। व्यौपारिक दशा भी हमारी बहुत बुरी है। पत्तिशास्त्र का अध्ययन करने से विदित होगा कि जिस देश से का माल, अर्थात् वह माल जिस से अन्य उपयोगी वस्तुएं बनाई जाती हैं बिकता हो उसको उस देश की अपेक्षा कम लाभ होगा जहां कि वस्तुएं बनाई जाती हों। अब हिन्दुस्थान से केवल रुई, अलसी, नाज आदि बाहर जाते हैं। इस व्यौपार से लाभ अधिक नहीं होता; यहां के मनुष्य केवल भूखों मरते हैं। दूसरे देश इस विषय में बहुत चतुर हैं। इस ही लिए उनका व्यौपार अपने से सैकड़ों गुना अधिक है। यहां के व्यौपारी अपने देश में अधिक रुई, अलसी आदि के होने पर भी कपड़े बुनने, तेल निकालने लकड़ी चीरने के यंत्रालय नहीं खोलते हैं; क्योंकि उनका विचार है कि कपड़ा बुनना, लकड़ी काटना काम नहीं हैं। बस इस ही कारण नित्यशः दरिद्रता बढ़ती जाती है। क्योंकि देश की आर्थिक दशा कृषक और व्यौपारियों पर ही निर्भर है। कृषक दरिद्री होने के कारण वणिकों से धन उधार लेते हैं और जब नाज हो जाता है तो व्यौपारी नाज बहुत सस्ता ले लेते हैं। इस प्रकार कृषक समाज तो यों ही भूखा रहा। अब व्यौपारियों को लीजिए। वे व्यौपार न होने के कारण व्यवसायरहित रहे। बस सारा देश इस ही प्रकार निर्धन होगया है। यहां पर करोड़ पति गिने चुने ही निकलेंगे परन्तु अमरीका या यूरोप में सैकड़ों हैं। यहां के बहुत से व्यौपारियों की आय १५) एक सैकिंड की है। आर्थिक दशा उसी देश की अच्छी कही जाती है जहां के अधिक तर मनुष्य अपना निर्वाह अच्छी तरह करते हों। एक बात और भी है, जिस से यहां धन की त्रुटि है। यहां के धनिक अपने धन व्यौपार में लगाने की अपेक्षा ताले में अधिक बन्द कर देते हैं। अति सभ्य देशों के व्यौपारी तथा सम्पत्तिशास्त्र विशारदों का मत है कि धन कार्य में नियुक्त होने से बढ़ता है। मेरी इस छोटी सी उक्ति से विदित हुआ होगा कि हमारी दशा कैसी शोचनीय है। इन त्रुटियों में से कुछ की पूर्ति करने के लिये जो उपाय मैंने सोचे हैं उनको कह कर मैं अपने निबन्ध को समाप्त करता हूं।

(१) प्राथमिक शिक्षा का प्रचार करने के लिये रामलीला आदि में नियुक्त होने वाला धन व्यय किया जावे व सरकार से भी आर्थिक सहायता ली जावे।

(२) कृषकों की दशा सुधारने के लिये कोष खोले जावें जिनमें से उनको थोड़े ब्याज पर रुपया उधार दिया जावे।

(३) गौ आदि उपयोगी जीवों की रक्षा करनी चाहिये और अनाथालय खोलने चाहिये। जो धन रामलीला, नाच, रास, विवाहों में वृथा धन लगाया जाता है उस को बचा कर इस कार्य में लगाया जावे।

(४) वैज्ञानिक विषयों पर ध्यान दिया जावे और (५) व्यौपार, शिल्पादि विद्या सीखने के लिये मनुष्यों को दूसरे देशों में भेजें और फिर उनको अपने कार्यालयों में रखें।

गवैयों का सम्मेलन, बड़ौदा।

जयदेव।

२
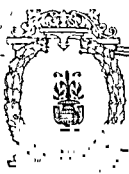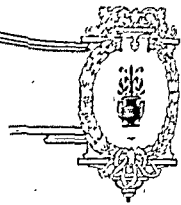
प्रसन्नराघव और चन्द्रलोक के कर्त्ता जयदेव के काल के विषय में अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उनके ग्रंथों में भी उनके विषय में कुछ भी हाल नहीं लिखा गया है। प्रसन्न राघव के प्रथमांक में, कविता के वर्णन में, उन्होंने पूर्वकालीन महाकवि कालिदास, भास, मयूर, चोर, हर्ष और बाण का उल्लेख किया है, इस से अनुमानतः वे बाण के अनन्तर हुए हैं। पर, बाण के अनन्तर वे किस शताब्दि में हुए, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस कवि का काल-निर्णय करने के लिये हनुमन्नाटक (महानाटक) बहुत उपयोगी है, अतः उसके विषय में भी कुछ लिखना आवश्यक है। भारतीय साम्राज्य के १० वें पुस्तक भारतीय नाट्यशास्त्र में उस नाटक के विषय में लिखा गया है कि--'भारतीय नाट्यशास्त्र की अपकृष्ट दशा का स्वरूप इसमें (महानाटक में) भलीभांति दिखाई देता है। क्योंकि इसमें पूर्व रंग के सुमनोहर प्रकार का निरा अभाव है। प्रवेश, निष्काम, नाट्यवैचित्र्य, स्वभावलीला, प्रकृति विपाक इत्यादि अनेक मोहक बातों से अपूर्व मनोरंजन न होने से नाटक की दृष्टि से यह किसी काम का नहीं है। हाँ, इसे काव्य कह सकते हैं। महानाटक प्रदर्शनार्थ नहीं है अर्थात् इसमें नाटककार की नैसर्गिक निपुणता किसी प्रकार से नहीं दिखाई देती। इससे यदि इसे नौ अंकों का या नौ सर्गों का महाकाव्य कहा जाय तो अयुक्ति नहीं होगी। उदाहरणार्थ, प्रथमांक में 'अथ जनक वाक्यम्' नामक--

" असुरसुरभुजंगवानराणा—
मथ नरकिन्नरसिद्धचारणाना ॥
नमयति यदि कोपि चापमेनं।
मम दुहितु. स परिग्रहं करोतु ॥ "

उक्ति लिखी है। पर, रंगभूमि पर जनक राजा के प्रवेश करने के पूर्व राज-प्रवेश-सूचक कोई भी नेपथ्य संज्ञा व्यक्त नहीं की गई है। इसके अनंतर जनक के अतिरिक्त अन्य किसी पात्र के रंगभूमि पर आने या जानेवाले का बिलकुल उल्लेख न करने पर एकदम "रावणदूतः शौष्कलः सकोपम्।" कह कर "सार्धं हरेण हरवल्लभया गिरीशम्" वाक्य कहा है। सारांश, प्रत्येक पात्र को रंगभूमि पर लाना और उसका कार्य हो जाने पर वहां से उसका निष्क्रमण भी होना आवश्यक है और यह भारतीय नाट्यशास्त्र का मूलतत्व है। पर, इसमें उस तत्व का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन किया गया है। क्योंकि इसके विषय में भरत का वचन है कि—

" रंगे तु ये प्रविष्टा स्तेषां भवति तत्र निष्कामः।
यं अर्थयुक्तिमुक्तं कृत्वा कार्यं यथार्थरसम् ॥ "

[अध्याय १८ वां।]

इसी प्रकार रंगभूमि पर युद्ध न करने के विषय में शास्त्र-नियम होने पर भी यह भरत वाक्य है-

" युद्धं राज्यभ्रंशो मरणं नगरस्य रोधनं चैव ॥
प्रत्यक्षाणि तु नांके प्रवेशकैः संविधेयानि ॥ १९ ॥ "

[अ० १८ वां।]

पर, महानाटक में उक्त नियम का उल्लंघन कर 'अथ युद्धम्' लिख कर जटायु और रावण के परस्पर युद्ध के अर्थ की उक्ति भी लिखी है। इसके अनन्तर तो केवल असंबद्ध तरह से "पुनश्च रामं प्रति।", "दूतः समेत्य।", "इत्युक्त्वा गते दूते।", "ततो जनपाठ्यम्।" इत्यादि उक्तियों की मनसोक्त [illegible] की गई है।

प्रथमांक या द्वितीयांक के अन्तमें और बहुधा सभी अंकों के अन्तमें रंगभूमि पर प्रविष्ट किये हुए पात्रों के निष्काम हो जाने के विषय के कहीं पर कुछ भी नहीं लिखा गया है। केवल इतना ही नहीं वरन पात्रों के रंगभूमि पर प्रवेश करने के विषय में भी कहीं भी नहीं लिखा गया है। तीसरे अंक में किसी पात्र व वैतालिक की उक्ति का कुछ भी उल्लेख न होने पर आरंभ ही में निम्न वाक्य लिख दिया है।

" भुक्ता भोगान् सुरम्यान् कतिपयदिवसान् राघवो धर्मपत्न्या।
सार्धं वर्धिष्णुकामः श्रवणमुनिपितुः शाप हा शापकालम् ॥ "

[महानाटके तृतीयांकः।]

आरंभिक वाक्य—

" अक्षं विक्षिपति ध्वजं विभजते मथ्नाति नद्धं युग।
चक्रं चूर्णयति क्षिणोति तुरगान् रक्षःपतेः पक्षिराट् ॥
रूक्षं गर्जति तर्जयत्यभिभवत्यालंबते ताडय—
त्याकर्षत्यपकर्षति प्रचलति न्यंचत्युदवल्गति ॥ ८७ ॥ "

[महा० तृतीयांकः]

इस प्रकार जटायु के रावण को व्यथित करने पर रावण ने भी उसका बदला ले लिया।

सारांश, महानाटक में सर्वसंमत विधियों और शास्त्रविहित नियमों का इद्भुत उल्लंघन किया गया है। इससे अनुमानतः इसी समय से भारतीय नाट्यकला की अपकृष्ट दशा का आरंभ हुआ होगा। इसके अतिरिक्त उत्तम नाटक रचने के लिये जितनी रचनाशक्ति तथा उदात्तविचार और हृदयंगमत्व प्रकट करने के लिये जितनी विलक्षण बुद्धिमत्ता की विशेष आवश्यकता है, उतनी इस नाटक में नहीं दिखाई देती। यदि यह कहें कि अनेक चित्रविचित्र पद्यरत्न और सुश्लोक में एकत्र कर उनकी यह एक वाग्भरणमाला गूँथी गई है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि इसमें स्थान २ पर कवियों के अवतरण दिखाई देते हैं, इससे यदि इसे विविध की सिली हुई गुदड़ी कहा जाय तो भी ठीक होगा।

उक्त कथन की पुष्टि के लिये इस ग्रंथ में जहां कहीं अन्य कवि की कृति का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, उन्हें यहां पर उधृत हैं। सीताजी को रावण अपनी नगरी में ले गया। तब शोकित हो कहा—

" इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्ती नयनयो—
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं कंठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥ १८ ॥ "

[महानाटक, अंक ४ था।]

उक्त अवतरण भवभूति कृत उत्तर रामचरित्र का है, इसमें कुल सन्देह नहीं है।

[उत्तररामचरित, अंक ४ था देखिये।

निम्न श्लोकों के प्रतिबिम्ब भी पंचतंत्रादि में दिखाई देते हैं।—

" एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं
गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ ४४ ॥ "

[महानाटक, अंक ४ था।]

" लब्धव्यमर्थं लभते मनुष्यो
देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे
ललाटलेखो न पुनः प्रयाति ॥ ४८ ॥ "

[महानाटक, अंक ४ था।]

महानाटक के कई पद्य खुद हनुमान के ही बनाये हुए हैं और भोजप्रबन्ध में तद्विषयक कुछ आख्यायिकाएं भी लिखी हैं। इस विषय में यह भी एक कहानी प्रचलित है कि प्राचीनकाल में, भोज राजा के राजत्वकाल में, किसी व्यापारी को समुद्र के तट पर एक शिलालेख मिला। उस शिला पर कई श्लोक अंकित थे। जब उसे मालूम हुआ कि वे श्लोक हनुमान के रचे हुए थे, तब उसने उन श्लोकों में से एक श्लोक की निम्न दो पंक्तियां राजा भोज को सुनाई—

" शिवशिरसि शिरांसि यानि रेजुः
शिव! शिव! तानि लुठन्ति गृध्रपादे।

इन पंक्तियों के सुनते ही भोज को बड़ा आश्चर्य हुआ और उस श्लोक की शेष दो पंक्तियों को ढूंढने की इच्छा से वह, उस वणिक्पुत्र के साथ, समुद्र तट पर गया। तब उसे निम्न दो पंक्तियां देखाई दीं—

' अयि खलु विषमः
पुराकृतानां।
विलसति जन्तुषु कर्मणां
विपाकः ॥ "

उक्त चारों पंक्तियां महानाटक के ६ वें अंक में, मंदोदरी-विलाप में हैं। इससे मालूम होता है कि उक्त नाटक अनेक कवि-कृत काव्यसंग्रह ही है अथवा उनके विकीर्ण भागों का यह एक संकलित मात्र है।

इस महानाटक के विषय में और भी बहुत कुछ बातें जानी जा सकती हैं। मधुसूदन कवि ने भी इस ग्रंथ के अन्त में लिखा है कि—

" एष श्रीमद्धनूमता विरचिते
श्रीमन्महानाटके
वीरश्रीयुतरामचन्द्र चरिते प्रत्युद्धृते विक्रमैः।
मिश्रश्रीमधुसूदनेन कविना सन्दर्भ्य सज्जीकृते
स्वर्गारोहणनामकोऽत्र नवमो यातोऽङ्क एवान्वगौ ॥ १४९ ॥ "

[महानाटक, अंक ९ वां।]

(भारतीय नाट्यशास्त्र २१७-२२६।)

इसके अतिरिक्त 'भारतीय साम्राज्य' के १० वें खंड में महानाटक के विषय में लिखा गया है कि—

" हनुमान नाटक या महानाटक के विषय में यह आख्यायिका प्रचलित है, कि यह नाटक एक शिला पर अंकित किया हुआ वाल्मीकि को मिला। वे उस नाटक के माधुर्य और रस पर अत्यन्त मोहित होगये और उन्हें विश्वास होगया कि उस काव्य के सामने उनका रामायण बिलकुल फीका पड़ जायगा। तब उन्होंने शिलालेख मिलने की तथा उसकी उत्तमता की बात हनुमानजी से कही। हनुमानजी ने श्रीरामायणजी के गौरवार्थ तथा ऋषिवर के सम्मानार्थ वह शिला समुद्र में डाल दी। बहुत काल तक वह शिला समुद्र में ही पड़ी रही। भोजराजा के समय कहीं उसकी उपस्थिति का हाल आया। उसी समय उस शिला के कुछ टुकड़े पाये गये। भोज ने अपने पंडित दामोदर मिश्र को उन शिलाखंडों को सुसंपादित कर ग्रंथ में रखने की आज्ञा प्रदान की। दामोदर मिश्र के, उस शिलालेख में, कुछ हेर-फेर करने से उसका महत्व जाता रहा। "

महानाटक का लेखक कौन है ?

उक्त अवतरण से महानाटक के दो लेखक पाये जाते हैं। महानाटक के उक्त अन्तिम श्लोक से यह नाटक मिश्र मधुसूदन का ही रचा हुआ है, यह सिद्ध होता है। निम्न आख्यायिका से भी इस कथन की पुष्टि होती है। श्रीयुत पावगी के कथनानुसार महानाटक के नौ अंक हैं, और यही बात उक्त अंतिम श्लोक से भी पाई जाती है। पर, महानाटक के चौदह अंक हैं। उक्त नाटक की एक प्रति मेरे पास भी है। उसके अन्तिम श्लोक निम्न हैं—

" चतुर्दशभिरेवाङ्कैर्भुवनानि चतुर्दश।
श्रीमहानाटकं धत्ते केवलं ब्रह्म निर्मलम् ॥ ९५ ॥
रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ।
निहितममृतबुद्ध्या प्राङ्महानाटकं यत् ॥
सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं तत्क्रमेण।
ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण ॥ "

[महानाटक। बापू सदाशिव श्रीवर्धनकर ने शाके १७९२ में बंबई में मुद्रित किया।]

ऊपर लिखी हुई दंतकथा इसी श्लोक से प्रचलित हुई होगी, ऐसा अनुमान है। मेरे पास के ग्रंथ में कुल ५७२ श्लोक हैं। महानाटक के कर्ता के विषय में मुझे कुछ भी नहीं कहना है, वरन ग्रंथ के बनने के काल का निर्णय करना है। दोनों प्रतियों के देखने से मालूम होता है कि यह नाटक भोज राजा के राजत्वकाल ही में बना होगा। भोजराजा का काल ११-१२ वीं शताब्दि है।

[भा० सा० ३०२]

भोजराजा उस वणिक् पुत्र के साथ समुद्र तट पर पहुंचे। तब उन्हें वहां शेष दो पंक्तियां भी दिखाई दीं।

श्रीयुत पावगी ने महानाटक को अनेक कविकृत सुभाषित भांडार कहा है और यह यथार्थ भी है, क्योंकि अनेक कवियों के ग्रंथों के सैकड़ों अवतरण इसमें दिखाई देते हैं। प्रसन्नराघव नाटक के तो कई पद्य ज्यों के त्यों महानाटक में उद्धृत कर लिये गये हैं। यथा—

प्रसन्नराघव।	महानाटक।
(१) आक्षीपारस्तोऽवमीनृपतय॰ प्र० अं० १ श्लो० ३२	अं० १ श्लो० १०
(२) हारः कंठे विहार प्र० अं० ४.२३	अं० १ ,, ४६
(३) भो ब्रह्मन् भवता समे प्र० ४. ३५	अं० १ ,, ४२
(४) मातस्तातः क्व यात प्र० अं० ५. ११	अं० ३ ,, ८
(५) रामे प्राप्ते वनान्ते प्र० अं० ५. ११	अं० ३ ,, ११
(६) हा राम हा रमण॰ प्र० अं० ५. ४५	अं० ४ ,, १४
(७) नीतिर्नि मनु संस्थनां प्र० अं० ६. १	अं० ५ ,, १८

इसके अतिरिक्त अन्यान्य कवियों के बनाये हुए भी कई श्लोक इसमें यत्र तत्र दिखाई देते हैं। यथा—

शाकुं०।	महानाटक।
ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति॰ शा० अं० श्लो०	अं० ४ ,, ३
दंताग्रैर्विकासदन्तकिसा॰ उत्तररामचरित। ४. २४.	अं० १४ ,, २२

जयदेव कृत प्रसन्नराघव के भी कुछ श्लोक महानाटक में उधृत किये गये हैं। इससे अनुमानतः प्रसन्नराघव महानाटक के कुछ काल पूर्व रचा गया होगा या दामोदर शास्त्री के समय वह बहुत प्रसिद्ध होगा। भोजराजा के अपने आश्रित कवियों से महानाटक की यथावत् रचना करने के लिये कहने पर ही मिश्रदामोदर ने यह नाटक रचा होगा, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। तत्कालीन कवियों को भी उक्त लिखित राजाज्ञा का हाल मालुम हुआ ही होगा। उसी प्रकार जयदेव को भी यह हाल मालुम होगा; क्योंकि प्रसन्नराघव के प्रथमांक में, सूत्रधार और नट के सम्वाद में, कवि ने 'अपने नाटकों का चोरों से बचाव करने के विषय में कहा है'। उक्त अर्थद्योतक निम्न नटवाक्य है—

नटः—" तेन हि मम हस्ते निजनाटकमर्पयित्वेदमुक्तोऽस्मि—रक्षणीयमिदं सूक्तिरत्नं चौरेभ्यः " इति।

इससे अनुमानतः जयदेव कवि भोजराजा के ही समकालीन था।

महानाटक के उक्त वाक्य का अवलोकन करने से यह मालुम हो जायगा कि जयदेव ने १० वीं वा ११ वीं शताब्दि में प्रसन्नराघव नाटक बनाया था। जयदेव ने कवि-प्रथा के अनुसार प्रसन्नराघव में अपनी कविता की प्रशंसा करती वार पूर्व कालीन महाकवियों का भी उल्लेख किया है। यथा—

" यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलास।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ "

जिस कवितावधू का (चोर) चिकुरनिकर (केशकलाप), (मयूर) कर्णपूर (कर्णभूषण), (भास) हास (हास्य), कविश्रेष्ठ (कालिदास) विलास, (हर्ष) हर्ष (चित्त का उल्हास) और (बाण) हृदय में संचार करनेवाला साक्षात् पंचबाण (मदन) है, वह किसके मन को नहीं रिझा सकती? इस कविता से सिद्ध है कि बाण के अनन्तर जयदेव हुए और उन्होंने प्रसन्नराघव लिखा। डॉ० हॉल के मत से बाण कवि ७ वीं शताब्दि में हुए; अतएव ७ वीं और १० वीं शताब्दि के बीच का जयदेव कवि का काल-निर्णय माना जा सकता है। चंद्रालोकालंकार में मृच्छकटिक का 'लिपतीव तमोंगानि वर्षती वांजनं नभ' श्लोकार्ध उदाहरणार्थ लिया गया है। तथा—

" लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥ "

[a badly printed, partly legible quotation in the original:]

" ... लिंपु ... प्रतिबिम्बनैर्गुणैः।
... समस्तं न हतो कलियुगेन ॥

यह हर्ष कवि का भी श्लोक उधृत किया गया है। इससे भी उक्त अनुमान की यथार्थता सिद्ध होती है।

जयदेव और उनके माता पिता के नामों के देखते, ये अनुमानतः दाक्षिणात्य थे (प्र० रा० अं० १)। इसी प्रकार उन्होंने चौथे अंक में परशुराम और रामचन्द्र के संभाषण में "कोंकन" शब्द का उपयोग किया है। उन्होंने अपना गोत्र भी कौंडिन्य लिखा है। प्रसन्नराघव नाटक का प्रयोग 'दाक्षिणात्यानां प्रभुणां सदसि' अर्थात् दाक्षिणात्य राजाओं के सम्मुख नाटक किये जाने का उल्लेख भूमिका में भी पाया जाता है। इससे यह दाक्षिणात्य ही था। जयदेव उत्तम कवि और अलंकारशास्त्रज्ञ तो था ही, पर यह प्रसिद्ध नैयायिक भी था।

(प्र० अं० १ देखिये)

अप्पय्या दीक्षित ने चन्द्रालोक के आधार पर ही कुवलयानंद लिखा है, यह कुवलयानंद के आरम्भ श्लोकों से स्पष्ट है। एक दिन अप्पय्या दीक्षित ने जगन्नाथराय पंडितराय को काशी में गंगाजी के तट पर [illegible] हुए देखा। तब उन्होंने पंडितराय से कहा—

" [illegible] "

" [illegible] कर क्यों [illegible] हुआ है? " इस वाक्य के सुनते ही जगन्नाथराय उठे। तब [illegible] हुए कहा—

" [illegible] "

" [illegible] ' इस [illegible] से मालूम होता है कि अप्पय्या [illegible] में हैं।

[illegible] के चन्द्रालोक की [illegible] अर्थात् [illegible] है। चन्द्रालोक के [illegible] मयूख हैं और उनमें

कुल १०६ श्लोक हैं। उसका पांचवां मयूख अलंकारानुक्रमणिका है और उसमें कुल १०० अलंकारों के नाम लिखे हैं। पर, लक्षण और उदाहरण नहीं लिखे गये। इससे मालूम हो[illegible] देव चन्द्रालोक ग्रन्थ अधूरा ही छोड़कर मरा था, अतः उसकी अप्पया दीक्षित ने कुवलयानंद में उन अलंकारों और [illegible] सहित की। पर, यह बात ठीक नहीं है। जयदेव ने चन्[illegible] संपूर्ण लिखा है। कुवलयानंद के आरम्भिक १६[illegible] चन्द्रालोक के ५ वें मयूख के हैं। निम्न श्लोक के आगे के श्लोक तो चन्द्रालोक ही में हैं और न कुवलयानंद में ही।

चंद्रालोकाभिधानोयं जयदेवविनिर्मितः।
विराजितो मुदे भूयादलंकारस्य संग्रह ॥

(चं० मयूख. ५ श्लोक १७१)

निर्णयसागरवाले संस्करण में चन्द्रालोक के कुल १०६ श्लोक हैं। मूल ग्रन्थ में वास्तविक ३५६ श्लोक हैं। इन पांच मयूखों के अन्तर और भी निम्न पांच मयूख हैं, वे निर्णयसागर के संस्करण नहीं छपे हैं।

मयूख	नाम	श्लोक संख्या
६	रसादिनिरूपणं	२४
७	ध्वनिनिरूपणं	१८
८	गुणीभूतव्यंग्यनिरूपणं	१०
९	लक्षणनिरूपणं	१५
१०	अभिधानिरूपणं	४

(संपूर्ण चंद्रालोक अर्थात् १० मयूखों का ग्रंथ कलकत्ते के श्रीयुत चन्द्रपाल के 'संवादज्ञान रत्नाकर' प्रेस में छपा है।)

चन्द्रालोक अत्यन्त सरल और सुबोध अलंकारिक ग्रंथ है। उसके उदाहरण भी अत्यन्त सरल हैं। संक्षेप में अलंकारों के लक्षण उनके उदाहरणों सहित लिखने से ग्रन्थ की उपयोगिता बहुत ही बढ़ गई है। उस ग्रन्थ के पद्यों का अवलोकन करने से जयदेव की प्रतिभा का पता चल सकता है। उदाहरणार्थ, कुछ पद्य यहां पर उधृत किये हैं।

उपमा—उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः
हंसीव कृष्ण ते कीर्तिः स्वर्गंगामवगाहते ॥ चं म. ५१

निदर्शना—उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम्।
विभावयन् समृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहः ॥

अर्थान्तरन्यास—उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात् सामान्यविशेषयोः।
हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम् ॥
गुणवद्वस्तुसंसर्गाद् याति स्वल्पोपि गौरवम्।
पुष्पमालानुषंगेण सूत्रं शिरसि धार्यते ॥
अनिलेषु विहंगेषु हंत स्वच्छंदचारिषु।
शुक पंजरबंधस्ते मधुराणां गिरां फलम् ॥

जयदेव कवि न्याय, अलंकार और व्याकरण शास्त्रों में बड़ा निष्णात था। प्रसन्नराघव के भरतवाक्य से भी इस कथन की पुष्टि होती है। यथा—

" आकल्पद्रुमलापुत्रे [illegible] [ ] [illegible]
देवे [illegible]] [[illegible]] [illegible]
[illegible] गुणैः [illegible]
[[illegible]] [illegible] ॥

उक्त श्लोक के "हारकमल, कौस्तुभ, चंद्र, मुकुट और [illegible] (पतंजलि) पद यथार्थसूचक हैं और उनसे उन नामों के [illegible] निर्देश होता है। श्लोक के अन्तिम चरण से मल्लिनाथ [illegible] लाती गुरा' का स्मरण होता है। अस्तु। जब तक जयदेव [illegible] न्याय और व्याकरण के ग्रंथ प्रसिद्ध नहीं होंगे, तब तक [illegible] बातों का तर्क के द्वारा ही पता चलता रहेगा। महानाटक, [illegible] प्रसन्नराघव, उत्तर रामचरित, मालती माधव आदि नाटक [illegible] की मार्यादिपति के ही हैं, अनर्घ्य राघव के नहीं। [illegible] नाटक पर से ही नाटक की अनर्घ्य रचना का अनुमान [illegible] किया जा सकता, क्योंकि भवभूति कृत वाल्मीकि नाटक [illegible] रामचरित भी इसी समय में बना था। अस्तु।

जयदेव कवि के विषय में जहां तक पता लगा, उसके [illegible] बातों का इसमें समावेश कर दिया गया है। आशा है, [illegible] पाठक इसमें कुछ भाग बढ़ाने की चेष्टा करेंगे।

अमेरिका की युद्ध की तैयारी।

लेखक—श्रीयुत दा० वि० गोखले बी० ए० एल० एल० बी०

प्रचलित महायुद्ध की अग्नि ने यूरोप के प्रायः सभी देशों को व्याप लिया है। युद्ध के भीषण स्वरूप के देखते मालूम होता है कि इस अग्नि की ज्वालाएं यूरोप के अतिरिक्त अन्यान्य राष्ट्रों को भी दाहित करेंगी। इस समय जगत में जो राष्ट्र विद्या, वैभव, सुधारादि बातों से संपन्न और प्रभावशाली हैं, उनमें अमेरिका की प्रमुखता से गणना की जाती है। केवल इतना ही नहीं वरन कई बातों में वह यूरोपीय महाराष्ट्र से भी बढ़ चढ़ कर है। अमेरिका का इतिहास बड़ा ही अभिमानास्पद है। वर्तमान अमरीकनों के पूर्वजों धर्मांतर करने के बदले अपने प्राणों की तक परवाह नहीं की थी। पर, व्यक्तिस्वातंत्र्य का झंडा फहराते हुए वे अपनी मातृभूमि को त्याग कर अमेरिका के जंगली लोगों के समाज में रहने गये थे। अमेरिकनों ने समता, व्यक्तिस्वातंत्र्य और राष्ट्रस्वातंत्र्य की रक्षा करने के लिये इंग्लैंड से अलग रह कर स्वतंत्र अमरीकन संस्कृति निर्मित की और, १९ वीं तथा बीसवीं शताब्दि में उन्होंने व्यापार, शास्त्रीयशोध, तत्वज्ञान, लोकसत्ताक-राज्यपद्धति में इतनी उन्नति कर ली कि उसे देख कर सारे जगत को चकित हो जाना पड़ा, तथा वह एक आदर्श राष्ट्र समझा जाने लगा।

प्रो० रॉबर्ट जॉनसन।

वर्तमान महायुद्ध के राजकीय कारणों से अमेरिका का कुछ भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने से अभी तक वह एक तटस्थ राष्ट्र बना रहा है। पर, अब अमेरिका के व्यौपार पर युद्ध का बड़ा आश्चर्यकारक परिणाम हुआ और अब युद्धग्रस्त राष्ट्रों से अमेरिका तथा अमेरिकन प्रजा के स्वार्थों को धक्का भी पहुंचने लगा है। यदि अमेरिका अपने देश का बना हुआ कोई माल जहाज़ के द्वारा किसी दूसरे देश को भेजे तो भी हमारा मना किया हुआ माल हम नहीं आने देंगे, इसकी घोषणा युद्ध-ग्रस्त राष्ट्रों के करते ही अमेरिका के सामने बड़ा कूट प्रश्न उपस्थित हुआ। जर्मनी ने भी कुछ आगा पीछा न सोच कर घोषणा की कि विशिष्ट सीमा में अमेरिकन जहाज़ के आते ही हम उसे डुबो देंगे; और, उसने अमेरिकन जहाजों को डुबोना आरंभ भी कर दिया। अमेरिका से 'लुसिटेनिया' नामक जहाज़ के निकलते ही उस जहाज को बिना किसी योग्य सूचना दिये जर्मन-पनडुब्बियों ने नष्ट कर दिया, इस घटना से लोगों को अमेरिका के भी युद्ध में सम्मिलित होने की आशंका होने लगी। पर, अध्यक्ष विलसन ने यह प्रसिद्ध किया कि अमेरिकन राष्ट्र जर्मनी के साथ लड़ कर अपना महत्व नहीं घटाना चाहता। जर्मन-कैसर ने तो खुल्लम-खुल्ला यह कहा कि जिस राष्ट्र के पास स्थलयुद्ध और जल युद्ध सेना नहीं है, उसकी कौन परवाह करे? पर, जब उसने पुनः 'अरेबिया' नामक जहाज डुबो दिया, तब अमेरिका ने उसके कान खींचते ही उसने अमेरिका के नुकसान की भरपाई करने की प्रतिज्ञा की।

अमेरिका के पास युद्ध की कितनी सामग्री है और यदा कदाचित वह युद्ध में भाग भी ले तो वह कहां तक सफलता प्राप्त कर सकेगा, इसके विषय में कुछ विचार करना आवश्यक है। पर, इस के विषय में अमेरिकन लोगों का कहना ही अधिक ग्राह्य होने से हम अमेरिका की प्रसिद्ध हारवर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर रॉबर्ट जॉनसन और प्रसिद्ध शास्त्रीय शोधक एडीसन के मत यहां पर उधृत करते हैं। आशा है, इससे पाठकों को अमेरिका की युद्ध की तैयारी का पता चल जायगा।

प्रो० राबर्टसन

का कहना है कि वर्तमान शास्त्रीय युग में जर्मनी और यूरोप के तीन राष्ट्रों के अतिरिक्त समग्र जगत में युद्धशास्त्र विषयक पूर्ण अज्ञान है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। पहले प्राचीन शिक्षापद्धति में युद्धशास्त्र का समावेश नहीं किया गया था। पर, अब उसमें तत्वज्ञान, धर्मशास्त्र, कानून और वैद्यशास्त्र का समावेश होजाने से ही, यूरोप, जंगली अवस्था से सुधार के उच्च तर शिखर पर चढ़ बैठा है। उस समय युद्धशास्त्र अल्पसंख्यक लोगों के ही अभ्यास करने का शास्त्र बन बैठा था और सांपत्तिक दृष्टि से भी वह शास्त्र अत्यन्त व्यय का होने से बुद्धिमानों का भी ध्यान इस शास्त्र की ओर अधिक आकर्षित नहीं हुआ था। पर, गत शताब्दि में बड़ा विचित्र परिवर्तन होगया। सांपत्तिक प्रगति, सहकारिता तत्व का प्रचार और राष्ट्रीय सैनिक तैयार हो जाने से राष्ट्र के कई लोगों का युद्धशास्त्र से प्रत्यक्ष और सारे राष्ट्रनिवासियों का अप्रत्यक्ष संबंध होगया। और, यह विषय अधिक महत्व का होने से अन्यान्य विषयों की अपेक्षा इसमें बुद्धिबल भी अधिक खर्च होने लगा।

मि० एडीसन।

युद्ध विषय का यथावत् ज्ञान बहुत ही कम राष्ट्रों को होने से अल्पसंख्यक राष्ट्रों ने शास्त्रीय विषयों का अध्ययन किया। जिस प्रकार रसायनशास्त्र तात्विक और व्यौहारिक होता है अतः कई विश्व-विद्यालयों में उस विषय का अच्छी तरह से अभ्यास कराया जाता है, उसी प्रकार युद्धशास्त्र ने भी तात्विक और व्यौहारिक स्वरूप धारण कर लेने से उसका अभ्यास करने के लिये अधिक बुद्धिसामर्थ्य की आवश्यकता हुई। पर, अभी तक अमेरिका इस शास्त्र के महत्व को नहीं जान सका है। हमारा यह दृढ़ विश्वास होगया है कि बीस वर्ष की उमर के लड़के युद्धीय पाठशालाओं में से पास हो जाने से ही योद्धा बन जाते हैं। हमें युद्धशास्त्र के लिये आवश्यक बुद्धिसामर्थ्य की कल्पना तक नहीं है। वर्तमान समय में सारे जगत में युद्धाग्नि प्रदीप्त होगई है, तथापि हमें युद्ध की शक्यता का तक पता नहीं! हम अपने व्यौपार में इतने अन्धे बन गये हैं कि इस जीवन कलहार्थ प्रयत्न के आगे जगत की हलचलें हमें दिखाई भी नहीं देती! हम इस समय भी केवल अपने व्यौपार ही में मग्न हैं। पर, जिस बात पर हमारे राष्ट्र का अस्तित्व अवलम्बित है, उस युद्धशास्त्र के महत्व से हम निरे अनभिज्ञ हैं।

अमेरिका में यथायत् पद्धति से युद्ध का अभ्यास नहीं कराया जाता। वर्तमान युग में मुख्यतः युद्ध ही सांपत्तिक प्रश्न बन बैठा है; अतः जिस प्रकार हम व्यौपारिक कूट प्रश्नों को हल करते हैं,

उसी प्रकार हमें युद्धीय प्रश्न को भी हल करना चाहिये। इस समय सेना और युद्धीय सामग्री सिद्ध रखना अत्यावश्यक है, अतः उसके लिये शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिये। यह शास्त्रीय कौशल अतएव बौद्धिक प्रश्न है।

जिस प्रकार हानि लाभ का कोष्टक लिखते हैं, उसी प्रकार का कोष्टक लिख कर राष्ट्रीय युद्धीय प्रश्नों का प्रमाण देखने का प्रयत्न करना चाहिये। निम्न कोष्टक अपूर्ण है, तो भी द्रव्य और युद्धीय तैयारी के महत्वपूर्ण प्रश्नों के देखते उसका बहुत उपयोग होगा।

युद्ध की तैयारी का कोष्टक।

	शास्त्र में निष्णात	अर्ध निष्णात	अशिक्षित
प्रति यार्ड के लिये			
आवश्यक मनुष्यबल।			
रक्षा करने के लिये	३	१०	२०
चढ़ाई करने के लिये	६	३०	असंभवनीय
प्रतिदिन का व्यय	-		
प्रति सैनिक के लिये	रु० ४॥	रु० १५	रु० १८
प्रति यार्ड ,, (रक्षा)	रु० १२॥	रु० १५०	रु० ३६०
,, ,, ,, (चढ़ाई)	रु० ३१॥	रु० ४५०	अशक्य
१० लाख सैनिक			
प्रति दिन के लिये व्यय	४५००००० रु०	१५०००००० रु०	१८००००००
व्याप्त प्रदेश (रक्षा)	१६० मील	- ५७ मील	२८ मील
,, (चढ़ाई)	६३ ,,	१६ ,,	०
रु० ३०००००० प्रति दिन			
मनुष्यबल	६६६६६६६	२०००००	१६६६६६६
व्याप्त प्रदेश (रक्षा)	१२६ मी०	११½ मील	५½ मी०
(चढ़ाई)	४२ मी०	४ मी०	०

उक्त कोष्टक से सत्य स्थिति का ज्ञान हो जाता है। इसीलिये ‍नुरोध करने पर भी मैं किसी भी युद्धीय संस्था का समासद ‍हीं बना; क्योंकि प्रायः वे सभी संस्थाएं अशिक्षितों का अर्धशि‍क्षितों के द्वारा स्थापित की जाती हैं और वर्तमान युग में अर्ध ‍शिक्षित वा अशिक्षितों की दाल गलना अत्यन्त कठिन है। यह ‍ास्त्रीय प्रगति का युग है; अतः अपनी शक्ति का अन्य कार्यों में ‍यय न कर निष्णात लोगों के उत्पन्न करने में उसका व्यय करना ‍त्यावश्यक है।

पहले जमाने में युद्धीय प्रश्न भिन्न प्रकार के थे। उस समय जहां ‍हां खूब अन्नादिक सामग्री एकत्रित की जाती थी, वहीं पर सेना ‍ा डेरा लगता था; क्योंकि उस समय में बहुत थोड़ी सेना ‍ी और उनके लिये अन्नादिक सामग्री भी यथेष्ट रहा करती थी। ‍ब के युद्धों का स्वरूप भी कुछ भिन्न प्रकार का था। वे ‍ुद्ध वर्तमान युद्धों की अपेक्षा मंदगति के अतएव अधिक हानिकर ‍हीं थे। पहले तोपखाने का भी अधिक महत्व नहीं था, क्योंकि ‍स समय के मार्ग खराब थे और तोपखाने के लिये यथेष्ट बारूद ‍गैरह सामग्री का भी अभाव था। पर, इस युग में वह दशा बिल‍कुल पलट गई है। इस समय यदि यह कहा जाय कि युद्ध का ‍यशापयश तोपों पर ही अवलम्बित है, तो भी अत्युक्ति नहीं होगी।

युद्धीय सामग्री एकत्रित करने का शास्त्र।

पहले ज़माने में दो सौ कदमों पर शत्रु को घेर कर बंदूक के फेर करना ही महत्व का समझा जाता था। और, उसी पद्धति का व्यवस्थित रीति से अवलम्बन करने से शत्रुओं का नाश भी होता था। ३०००० सैनिक ३००० यार्ड मैदान में खड़े रह कर लड़ते थे और एक ही सेनानायक को केवल झंडियों से सैनिक हलचलें करनी पड़ती थीं। उस समय शास्त्रीय शिक्षा का निरा अभाव था, और न लोगों को यह अधिक महत्वप्रद ही मालूम होता था। पहले केवल सेनापति की कुशलता पर ही सारी बातें निर्भर रहती थीं, पर अब वैसी स्थिति नहीं है। अब सैनिक-व्यवस्था, सैनिक शिक्षा और शास्त्रीय साधन ही सफलता के मुख्य साधन हैं। गत शताब्दि में सड़कें और नहरें बनाई गईं, जिससे युद्धीय सामग्री के तैयार करने के मार्ग खुल गये। तोपों में भी बहुत कुछ सुधार किये गये। सम्पत्ति की भी आवश्यकता हुई। मार्लबरो का एक धनिक ज्यू दोस्त युद्धभूमि पर ही सदा सर्वदा उपस्थित रहता था और नेपोलियन के युद्ध के कारण रायर्सचाइल्ड्स

बड़ा हुआ, शास्त्रीय शोधों की प्रगति हुई तथा युद्ध बौद्धिक होगया। शास्त्रीय शोधों के कारण निष्णात लोगों की भी बूझ होने लगी। पर, नेपोलियन के समय बिलकुल ‍दशा थी।

प्रशिया की युद्धीय प्रगति।

जिस बात को नेपोलियन भी नहीं कर सका, वही ‍के पराभव से कर सका है। शॉर्नहर्स्ट और मोलट्के ‍श्रम से युद्धीय यंत्र तैयार किये, जिससे सारा जगत एकदम सागर में डूब गया। वर्तमान युद्धीय यंत्र गत १०० वर्षों ‍के फल हैं। इस सेना में सेनापति से लेकर आकाशयान, मशीनगन चलानेवाले भी चतुर हैं। अब आवश्यक सेना करना राष्ट्र की संपत्ति तथा राष्ट्रनिवासियों की ‍लम्बित है। लाखों स्वयंसेवक सैनिक बुलवा कर उनसे युद्ध की प्रथा मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है; क्योंकि यह जमाना का नहीं बरन शास्त्र-निष्णात लोगों का है। वर्तमान ‍सेना जितने अल्प संख्यक मनुष्यों के द्वारा २५०० मील रक्षा कर सकती है, फ्रेडरिक उतने ही लोगों की सहायता से यार्ड के प्रदेश की भी रक्षा नहीं कर सकता था। इसका कारण यह है कि फ्रेडरिक के समय युद्ध-कला की इतनी उन्नति नहीं हुई थी।

प्रजासत्ताकराजपद्धति आधुनिक युद्धपद्धति के लिये नहीं है, इससे मैं सहमत नहीं हूं। मुख्यतः सभी राष्ट्रीय बातें की सामाजिक स्थिति और भौगोलिक रचना पर निर्भर होतीं इसके लिये अमेरिका का उदाहरण ही पर्याप्त है। द्रव्य और प्राप्ति के प्रयत्न भी युद्ध की शक्याशक्यता मर्यादित नहीं कर सक

प्रो० राबर्टसन के उक्त कथन से अमेरिका में किस बात ‍है, इसका ज्ञान हो सकता है। इसी विषय में प्रसिद्ध और शोधक एडीसन के मत के विषय में भी कुछ लिखना आ‍है, जिससे अमेरिका के युद्ध की वर्तमान और भावी ‍पता चल सकेगा।

मि० एडीसन।

का मत है कि "अमेरिका का शत्रुओं से बचाव करने की ‍एकत्रित कर रहा हूं। जिस प्रकार क्षणिक काल में बैटरी से ‍उत्पन्न होता है, उसी प्रकार युद्ध की सारी शक्ति एकत्रित ‍प्रत्यक्ष रूप ही में दृगोचर होगी।" एडीसन बड़े भारी विज्ञानवेत्ता ‍अमेरिका में ऐसा विरला ही पुरुष होगा, जो एडीसन का ‍जानता हो। उनके वैज्ञानिक आविष्कार बहुत प्रसिद्ध हैं ‍जगत के सारे वैज्ञानिक आविष्कर्ताओं से बढ़े चढ़े हैं। ‍कभी अपने प्रयोग शाला से बाहर नहीं निकलते, तथापि ‍युद्ध ने उनका मन उससे हटा दिया है।

उनके मत से सारा जगत अभी जंगली अवस्था ही में है ‍एक व्यौपार का प्रश्न है। इन्हीं दो बातों को सामने रखकर ‍कार्यवाही कर रहे हैं। उनका विश्वास है कि यदि उन ‍शीघ्र ही नहीं सँभलेगा, तो उसके पादाक्रांत होने में ‍लगेगी। युद्ध केवल शाब्दिक झगड़ों से नहीं बन्द हो सकता ‍इस समय स्वयं एडीसन ही योद्धा बन गये हैं और उन्होंने ‍रिका की रक्षा के कई साधन ढूंढ निकाले हैं।

हाल ही में उन्हों ने कहा—"युद्ध होगा या नहीं, इसके ‍कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सभी मनुष्य अभीतक ‍उन्होंने अभीतक अपना जंगलीपन केवल सुधार के घूंघट ही ‍में छिपा रखा है। रणभूमि पर २० लाख लोगों के आहत ‍पर भी मानवी प्रगति की गप्पें मारना ठीक नहीं। एकाध ‍पागल हो जाने पर पुलिस उसका प्रबन्ध करती है। ‍समाज हलचल मचावे तो राष्ट्र उसे बन्द करने का प्रयत्न ‍पर, जब एकाध राष्ट्र या राष्ट्र संघ कोई विशिष्ट हलचल ‍है, तब उसे बन्द करने के लिये कोई साधन नहीं। हां, संघ ‍नष्ट करने के लिये पर्याप्त है। पर, उसके भी अभाव में ‍निज की ही रक्षा करनी चाहिये।"

"यदि जगत का सूक्ष्मावलोकन किया जाय, तो मालूम ‍प्रत्येक राष्ट्र जंगली दशा में ही है। हम अमरीकन भी ‍में इतने गड़ गये हैं कि हमें दूसरों पर चढ़ाई करने के लिये ‍नहीं है और न उसमें हम कुछ पुरुषार्थ ही समझते हैं।

यहां द्रव्य की भी विपुलता है, अतः इस राष्ट्र की ओर जंगली राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित होना बहुत कुछ संभवनीय है। इसलिये यदि अमेरिका को अन्य जंगली राष्ट्रों से अपनी रक्षा कर लेना इष्ट हो तो उसे अभी से युद्ध-सामग्री की तैयारी करने की चेष्टा करनी चाहिये।"

"वर्तमान युद्ध को यदि युद्ध सामग्री का शास्त्र कहा जायगा तो अत्युक्ति नहीं होगी। महायुद्ध तोपखाना और बारूद गोलों पर तथा आधा सिविल एंजीनियर्स पर अवलम्बित है अतः यह आधा मेकेनिकल एंजीनियर्स ही का प्रश्न है। इससे जो राष्ट्र अधिक युद्ध सामग्री सिद्ध करेगा, उसी की जीत रहेगी। सैनिक शिक्षा अत्यन्त महत्व की है पर तोपखाना और बारूद, गोला वगैरह सामग्री सिद्ध करना उससे भी अधिक महत्वप्रद है।"

"मैं सबसे पहले धनिकों से काम कराऊंगा; क्योंकि एकमात्र वे ही मजदूरों से काम करा सकते हैं। मजदूरों के द्वारा राष्ट्रीययुद्ध-सामग्री का प्रबन्ध कर लूंगा और सैनिकों को प्रत्यक्ष रूप से युद्ध करने की शिक्षा दूंगा। मुझे सिपाहियों का अभाव नहीं मालूम देता। मैं जबरदस्ती सैनिक भर्ती के कायदे से बिलकुल विरुद्ध हूं। मुझे इस बात का भी विश्वास है कि वक्त आने पर अमेरिकन अपने कुटुंबियों को त्याग कर राष्ट्र का उद्धार करने के निमित्त लड़ाई करने के लिये तैयार होजावेंगे।"

"यों तो असंख्य सैनिक तैयार हो सकेंगे, पर उन्हें सब से पहले सैनिकशिक्षा दिलानी चाहिये और उनके अधिकारी भी शास्त्र-निष्णात होने चाहिये। उन्हें यथेष्ट शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करने के लिये दो विद्यालय स्थापित करने चाहिये। वहां पर उन्हें पढ़ाकर दो वर्ष तक उनका अनुभव मालूम कर कुछ वेतन नियत कर उन्हें स्वतंत्र व्यवसाय करने की आज्ञा देनी चाहिये, जिससे वे आवश्यक समय पर आ सकें। पर, उन्हें बिना युद्धसामग्री के समरांगण भेजने से कुछ भी लाभ नहीं है। मैं समुद्र-तट पर तोपें रख दूंगा और अपने संग्रह में भी बहुत सी तोपें रखा करूंगा, जिससे आवश्यक समय पर उनसे भी काम बनता रहेगा। उन तोपों के लिये जितनी सामग्री की आवश्यकता रहेगी, उससे दूनी सामग्री मैं अपने पास रखूंगा। सारे राष्ट्र में कई स्थानों पर पॅलिट तथा गोले बारूद-तैयार करने के कारखाने स्थापित करने से भी बहुत लाभ होगा।"

"बेतार की तारबर्की और साधारण तारबर्की के यंत्र लगा कर सारे मार्ग और रेलमार्ग को सरकार के कब्ज़ों में ले लेने की भी व्यवस्था की जायगी। युद्धशास्त्र में रेलमार्ग का सबसे अधिक महत्व है, अतएव रेलमार्ग और मोटरें सरकार के ही अधिकार में रहनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जिस किसी वस्तु की सरकार को आवश्यकता हो, वह उसे ले सके; इसका भी नियम होजाना आवश्यक है।"

"मेरी समझ में जलयुद्ध सेना ही अपनी संरक्षक पद्धति का सब से पहला साधन है, अतः उसका सामर्थ्य बढ़ाने के लिये दुनिया के बड़ाहू जहाज़ों को मैं अधिक एकत्रित करूंगा। तथा अनेक पनडुब्बियां और तोपों का अधिक से अधिक मारा करने वाले जहाज़ भी अपने संग्रह में रखूंगा।"

"मेरी पद्धति केवल युद्धीय सामग्री के एकत्रित करने ही की है। सदावर्तेदार सेना के तैयार रखने की आवश्यकता नहीं है। केवल शस्त्रास्त्रों तथा निष्णात लोगों की अधिकता होने से ही चाहे जिस समय सेना एकत्रित हो सकेगी।"

सारांश, वर्तमान सारब युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। इस समय अमेरिका के बुद्धिमानों का लक्ष्य युद्धोपयोगी शस्त्र तथा निष्णात लोगों के एकत्रित करने की ओर बहुत है। इस प्रकार से अमेरिका में युद्ध की तैयारी हो रही है।

नर-काया पाके अति उत्तम कभी नहीं चित भंग हुआ।
जन्म उसीका हुआ सुफल जिसका जग में सत्संग हुआ॥

[१]

इसके ही प्रभाव से पूरा सुधार शठ का होता है।
दुर्जन से सज्जन बन जाता कुमति कसाहन खोता है॥
शुद्ध हृदय हो सदाचार से दुराचार तन धोता है।
सुखी रहे सब भांति इसीसे दुख में कभी न रोता है॥
मस्त रहे व्यापे नहिं चिन्ता स्वयं पाप इक रंग हुआ।
जन्म उसी का हुआ सफल जिसका जग में सत्संग हुआ॥

[२]

व्यभिचारी, इसकी महिमा से बुरे कर्म करना छोड़ें।
पापी भी बन जायँ सुकर्मी पाप प्रथा से मुख मोड़ें॥
निन्दक छोड़ पराई निन्दा करैं प्रशंसा सुन तोड़ें।
कृपण बने दानी सुदान कर आगे अधिक न धन जोड़ें॥
बिगड़ी बने कीर्ति अति फैले ऐसा यदि कुछ ढंग हुआ।
जन्म उसी का हुआ सफल जिसका जग में सत्संग हुआ॥

[३]

इसके ही उपाय से साधु महापुरुष दर्शन मिलता।
मुरझाया हो चित्त सदा से ज्ञानशक्ति पाके खिलता॥
अटल रहे फिर टले न टाले किसी तरह से नहिं हिलता।
विषय वासना में नहिं फँसता माया मोह में नहिं मिलता॥
रग रग में रम गया रूप नारायण के मन चंग हुआ।
जन्म उसीका हुआ सफल जिसका जग में सत्संग हुआ॥

[४]

इस धुन में जो लगे रहें वे कभी न गोता खाते हैं।
हृदयान्तर सुख मिले यहां पर अन्त परम पद पाते हैं॥
आवागमन न होता फिर फिर स्वर्ग-लोक वह जाते हैं।
राम नाम की लगी सुमरणी संतगति गुण गाते हैं।
जगत कभी सन्तप्त होय नहिं मग भी कभी न तंग हुआ।
जन्म उसीका हुआ सफल जिसका जग में सत्संग हुआ॥

[५]

दाम न कौड़ी लगे ध्यान की सत्संगति चित से कीजे।
बुद्धिमान की सेवा करके अमूल्य विद्या धन लीजे॥
विद्या से फिर ज्ञान प्राप्त हो ज्ञानी बन रस में भीजे।
सुजन लोग मन हो कर करते दया दीन पर कर जीजे॥
अरे मूढ़ क्यों फँस कुमार्ग के बीच विषय में दंग हुआ।
जन्म उसी का हुआ सफल जिसका जग में सत्संग हुआ॥

कुमति दूर कर सुमति धर जो चाहो सुख भ्रम।
विश्वनाथ मन फँसो करो नित सत्संग॥

बनारसीनाथ गुप्त, 'सर्वेन्दु'।

डाक्टर और कीटाणु।

लेखकः—श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी

आजकल के डाक्टर मक्खी, मच्छर और कीटाणुओं के बड़े शत्रु होते हैं। वे बाघ या सिंह से उतना नहीं डरते हैं जितना इन छोटे छोटे जंतुओं से। वे चाहते हैं कि इन बेचारों की सृष्टि ही नष्ट हो जाय। कहीं बीमारी फैलती है तो वे कीटाणु ही को दोषी ठहराते हैं। जल, स्थल, वायु, आकाश, मिट्टी यहाँ तक कि रोटी, ···त, दूध और छाछ में भी कीटाणुओं का कुटुम्ब बसा हुआ नको देख पड़ता है। इन डाक्टरों के मारे कीट-कीटाणुओं के ाक में दम आ गया है।

एक हास्पिटल में एक नये डाक्टर आये। डाक्टर साहब कीटाणु-शास्त्र के बड़े पंडित थे। हास्पिटल में आते ही उन्होंने कम्पांडरों और नौकरों को आज्ञा दी कि तुम लोग मोछ मुड़ा डालो। क्योंकि मोछ के बालों से कीटाणु लटके रहते हैं, और वे साँस के द्वारा तुम्हारे फेफड़े में घुस कर वस्ती कर लेते हैं।

एक नौकर मंदबुद्धि था। उसने डाक्टर की बात का अर्थ अच्छी तरह नहीं समझा। इसलिये वह बोल उठा—कीटाणु क्या चीज़ है साहब?

डाक्टर ने कहा—कीटाणु का अर्थ है कीड़ा। अपनी मोछ के बालों में कीड़े लटके रहने की बात सुनकर कई नौकरों को भी बहुत बुरा लगा। परंतु वे डाक्टर के सामने कुछ बोल न सके।

हास्पिटल के पहले डाक्टर वृद्ध थे। तब वे मेडिकल कालिज में पढ़ते थे तब कीटाणु शास्त्र में इतनी उन्नति नहीं हुई थी। इसीसे उनका कीटाणुओं के साथ विशेष वैर भाव नहीं था। और इसी कारण से उनके समय में कम्पौडरों ीकरों को यह नहीं मालूम हो या कि ये कीटाणु ही सृष्टि में ι के बीज हैं। अब नये डाक्टर के ι पर नये विचारों ने जब उनके ाग़ में धक्का मारा तब वे बहुत स्मित हुए।

सबेरे एक नौकर ने डाक्टर के कमरे में पीने का घड़ा भर कर ख दिया था। घड़े का मुँह ढपा नहीं था। नौकर के हाथों में ज़रा ज़रा सी तेल की चिकनाहट लगी थी। घड़ा रखते समय उसका हाथ कहीं पानी से छू गया। और तेल की अत्यंत कम चिकनाहट पानी पर फैल गयी। घड़ा रखकर नौकर चला गया। उसके दो ही तीन मिनट बाद डाक्टर घड़े के पास पहुँचे। घड़े का मुँह खुला देखकर उन्होंने नौकर को पुकारा और कहा—'तू बड़ा मूर्ख है। क्या तू मुझे मारना चाहता है?'

नौकर बेचारा आँखें फाड़ कर आश्चर्य के मारे डाक्टर की ओर देखता रह गया। "क्या तू मुझे मारना चाहता है?" इसका अर्थ उसकी समझ में नहीं आया। उसने क्या अपराध किया है? यह भयभीत होकर यही सोचने लगा।

डाक्टर क्रोध से व्याकुल होकर और भौं सिकोड़ कर बोले—··· घड़े का मुँह खुला क्यों छोड़ गया? देख

नौकर की दृष्टि में पानी बिलकुल साफ था। उसने कहा ··· तो बिलकुल साफ है।

डाक्टर झुँझला कर बोले—अंधे, देख तो पानी पर ···णुओं ने कितने अंडे दिये हैं। एक मिनट में साठ हज़ार ···ं इतनी देर में उन्होंने तीन लाख अंडे दिये हैं। क्या यह ··· से भला कोई भी जी सकता है?

नौकर ने कहा—साहब, पहले जो डाक्टर साहब थे ··· तो मैं रोज़ ऐसा ही खुला पानी रखता था।

डाक्टर ने कहा—उनको कुछ समझ नहीं थी। आज ··· पीने के लिये रोज़ पानी ··· रखा करो।

डाक्टर साहब सभा छोड़ भागे। वे यही चिल्ला रहे थे, "यह किटाणु आया!" [पृ० १२३

नौकर ने कहा—आप··· होगा, मैं वैसाही करूंग··· पानी बिलकुल साफ़ है ··· कुछ भी मैलापन नहीं दि···

डाक्टर ने झट नौकर··· ली और उसका सिर··· पास ले जाकर कहा—··· पानी के ऊपर कुछ दि··· नहीं?

नौकर ने कहा—··· की चिकनाहट झलक···

डाक्टर ने कहा—··· की बस्तियाँ हैं। ··· जायँ तो अनर्थ हो ···

नौकर ने ज़रा··· साहब, यह तो ते··· कीटाणु तो यहाँ ···

डाक्टर ने बह··· बहस करने की··· हुक्म दिया जा···

नौकर चला···

डाक्टर पानी··· नाहट देख क··· से वे उस क··· करने लगे। ··· एक कोने में ··· यह मलेरिया का था। उसे देखते ही ··· देर में वह कीटाणु उड़ गया तब डा···

२

कई दिनों की लगातार परीक्षा के ब··· पक्का निश्चय कर लिया कि इस हास्··· का बड़ा ज़ोर है। इसलिये वे बहुत···

गर्मी के दिन हैं। आग की ल··· पृथिवी-आकाश जल रहे हैं। तो ··· से स्नान कर रहे हैं।

एक दिन बड़ी दिल्लगी हुई। स्न··· सामने चाँवल, दाल और शाक ··· दिन डाक्टर के मन में कीटाणुओं ··· लिये वे सूक्ष्मदर्शक यंत्र आँख पर ··· कोई कीटाणु थाली के पास न ··· में न चला जाय। इसी आशंका···

परंतु जब उन्होंने चाँवलों को मुँह में रखने के लिये हाथ ऊपर
ा तब वे बहुत घबराये। एक एक चाँवल सफ़ेद कबूतर के
र दिखाई पड़ा। डाक्टर सोचने लगे कि इतने बड़े बड़े चाँवल
ुँह में कैसे समायेंगे। परंतु जब उनको ख़याल आया कि
ो सूक्ष्मदर्शक यंत्र की करामात है तब उन्होंने उसे आँखों
ार कर रख दिया। परंतु फिर कीटाणु कैसे दिखेगा, इस·
उस दिन उन्होंने भोजन करना ही छोड़ दिया। खाली दूध
उदर-पूर्ति की।

क दिन शाम को वे हवा खाने निकले। जब शहर से बाहर
ुर गये, तब जेब में से सूक्ष्मदर्शक यंत्र निकाल कर उन्होंने आँख
ा लिया। शाम के वक्त मच्छरों का एक झुंड हवा में उड़ता
संयोग से डाक्टर साहब की दृष्टि में पड़ गया। वे चौंक
ौर तत्काल जेब में से तोप निकाल कर दाग दी। कुछ मच्छर
र गिर पड़े, कुछ बेहोश होगये और कुछ उड़ गये। डाक्टर
ब की जान बच गई। तोप क्या थी, फिनाइल से भरी हुई
पिचकारी थी, ज़िसको वे ऐसे मौक़ों पर काम में लाने के
भर कर जेब में रखते थे।

सरे दिन हास्पिटल के समय में उन्होंने कम्पौंडरों से कहा—
कल शाम को मैं हवा खाने गया था। मच्छरों के एक झुंड ने
पर आक्रमण किया। हास्पिटल में तो वे मुझ से डरते हैं
कि दवा पास ही रहती है, परंतु बाहर मुझे अकेला और दवा
र पाकर वे मेरे सिर पर मँडराने लगे। मैंने झट जेब में फिना·
की पिचकारी निकाल कर सब को मार डाला। कल बड़े
ाग्य से बच आया हूं।"

ाक्टर की बातों से कम्पौंडर मन ही मन हँस रहे थे।

३

र्मी का अंत और वर्षा का प्रारंभ था। ऋतु के बदलने से
टर साहब को कुछ सरदी लग गई। नाक से पानी बहने लगा।
देख कर वे बहुत डरे, क्योंकि कीटाणु पानी पर बहुत जल्दी
े दे देते हैं। कहीं नाक के पानी पर अंडे दे दिये तो ग़ज़ब ही
जायगा, यह सोच कर उन्होंने फिनाइल में खूब तर कर के
का एक फोआ नाक के सामने रख लिया। हास्पिटल के सब
रों को उन्होंने आज्ञा दे दी कि जब कोई पेशाब करने या पाखाने जावे
फिनाइल की शीशी साथ ले जावे, और बिना देर किये मलमूत्र
फिनाइल छिड़क दे। नहीं तो कीटाणु उस पर अंडे दे देंगे। नौकर
ारे क्या करते, मालिक का हुक्म न मानें तो निकाले जायँ। तब
पाखाना और पेशाब के साथ एक आफ़त और लग गई।

डाक्टर साहब फिनाइल का बहुत प्रयोग करने लगे। उनके
रे में फिनाइल ही की गंध आती थी। रोज़ शाम को उनके
छौने पर फिनाइल छिड़का जाता था। कोट पतलून पर फिनाइल
डा जाता था। रूमाल में लवेंडर की जगह फिनाइल ही काम
लाया जाता था। मच्छरों के डर से वे खटिया को फिनाइल
भिगोकर उसके नीचे सोते थे। उनके कमरे में कीटाणु तो क्या,
के सिवाय किसी दूसरे मनुष्य के जाने में नाक फटती थी।
ों ओर से फिनाइल ही फिनाइल की लपट आती थी। उसी
ंधि के बीच में यह डाक्टर नामधारी जीव बड़े आनंद से
हता था।

डाक्टर साहब की एक मारवाड़ी सेठ से अच्छी जान पहचान
ी। सेठजी ने एक दिन डाक्टर साहब को अपने घर जीमने के
ये बुलाया। सेठजी और डाक्टर साहब दोनों पास ही
स बैठे। भोजन के अन्यान्य पदार्थों के सिवा दोनों के सामने
कटोरी में अच्छा जमा हुआ दही भी रखा गया। सेठजी को
ही खाने की बड़ी रुचि थी। खाना आरंभ हुआ। दही देखकर
ाक्टर साहब बोले—कीटाणुओं ने दही अच्छा जमाया है।

सेठजी आश्चर्य में आकर बोले—कीटाणु क्या, डाक्टर साहब?

डाक्टर साहब ने कहा—यह दही छोटे छोटे कीड़ों का समूह है। ये कीड़े ही दूध से दही बनाते हैं। दही कीड़ों का समूह है। यह सुनते ही सेठजी को बड़ी घृणा आई। उन्होंने जो खाया पिया था सब डाक्टर साहब के सामने ही उलटी कर दिया। सेठजी की तबियत ख़राब होगई। और डाक्टर साहब यह कह कर भाग खड़े हुए कि उलटी पर फिनाइल डालो नहीं तो हैज़े के कीड़े अंडे दे देंगे। खाना अधूरा ही रह गया। उसी दिन से सेठजी की डाक्टर से मित्रता भी टूट गई।

एक दिन एक गंधी बहुत बढ़िया इतर लेकर डाक्टर साहब के पास आया। उसे देखते ही डाक्टर साहब चिल्ला कर बोले—जलदी बाहर जाओ! जलदी बाहर जाओ!! निकलो!!!

गंधी अवाक् रह गया। उसने पूछा—डाक्टर साहब, मामला क्या है। मैं तो आपको नज़र करने के लिये एक इतर का फोआ देने लाया हूँ।

डाक्टर साहब कम्पौंडर से बोले—निकालो इस पागल को यहाँ से। सुगंधि पर कीटाणु अधिक आते हैं, फूल में कीटाणु बहुत रहते हैं। उन्हीं का रस खींच कर यह लाया है। इसे भगाओ, नहीं तो बीमारी फैल जायगी। डाक्टर साहब को सुगंध से भी बड़ी नफ़रत होगई।

४

एक दिन डाक्टर साहब एक बीमार को देखने गये। जिस घर में बीमार था, उसीके पड़ोस में श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी। पंडितजी कह रहे थे कि परीक्षित ने फूल सूंघा। फूल में तक्षक था उसने नाक में डस लिया, और परीक्षित मर गये। यह कथा सुनकर डाक्टर साहब हास्पिटल में आये और अपने सब नौकरों को बुलाकर कहने लगे देखो, भागवत में कीटाणुओं का वर्णन है, फूल में कीटाणु होते हैं। राजा परीक्षित ने फूल सूँघा, और वे सूँघते ही मर गये। मालूम होता है कि कोई बड़ा ज़हरीला कीटाणु फूल में बैठा था। इसलिये फूल कभी नहीं सूँघना चाहिये। और न इतर लगाना चाहिये। क्योंकि इतर में न जाने कितने कीटाणुओं का निचोड़ मिला है। डाक्टर साहब अपनी इस नई खोज से बहुत प्रसन्न हुए। उनके पास कोई भी बाहर का आदमी आता तो उसे वे परीक्षित की कथा सुनाकर अपनी नई खोज की बड़ाई किया करते थे। डाक्टर साहब जिस राह से चलते थे, ऐसा मालूम होता था कि फिनाइल का फौआरा छूटता जा रहा है।

अब आगे दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि कीटाणुओं ने एक दिन डाक्टर साहब को बहुत तंग किया। बरसात में मच्छर बहुत पैदा हो जाते हैं। एक दिन डाक्टर साहब किसी धर्मार्थ सभा में गये। अकस्मात् वहाँ पर एक कीटाणुओं का झुंड चला आया। तब उन्होंने आँख में सूक्ष्मदर्शक यंत्र लगा कर देखा तो वायु में बहुत से छोटे छोटे मच्छर उड़ते हुए दिखाई दिये। डाक्टर साहब की समझ में उसमें कुछ तो हैज़े के, कुछ प्लेग के, कुछ मलेरिया के और कुछ दूसरे भयानक रोगों के थे। उन्हें देखते ही डाक्टर साहब ने फिनाइल की तोप चलाई, परंतु वे कीटाणु कुछ कम न हुए। उन्होंने कई बार तोप चलाई, पर कीटाणुओं का दल बढ़ता ही गया। यह देख कर डाक्टर साहब सभा छोड़ भागे। संयोगवश वे जहाँ जाते थे वहीं कीटाणुओं की मण्डली उन्हें अपने चारों ओर दिखाई पड़ती थी। वे पागलों की तरह चिल्ला कर यह कहते हुए भागने लगे—यह हैज़े का कीटाणु आया, यह प्लेग का कीटाणु आया, और यह मलेरिया का कीटाणु आया इत्यादि। दिन भर भागते भागते वे बेदम होगये। हास्पिटल के कर्मचारियों ने उन्हें कमरे में ले जाकर सुलाया, परंतु नींद में भी वे चौंक उठते और चिल्लाया करते थे कि "यह कीटाणु आया!"

अंकों से शुभाशुभ दिन जानना।

लेखकः—श्रीयुत एम० के देशपांडे, मॉडर्न ऍस्ट्रॉलॉजिकल ब्यूरो, सितारा।

२

चित्रमय जगत के पाठकों को 'अंकों से शुभाशुभ दिन जानना' वाले प्रथम लेखांक से सन १९१६ ई० का कोष्टक बनाना चाहिये और वह प्रातःकाल के ६ बजे के समय का होना चाहिये, यह हमने पहले लेख में सूचित किया ही था। इसीलिये हम निम्न कोष्टक लिखते हैं।

पहला कोष्टक।

(सायन रवि) सन १९१६ समय (प्रातःकाल ६ बजे)

ता०	महीना०	अंश० मि० सि०	राशि
ता० १	जनवरी।	९°–११′–६″	मकर
,,	फरवरी।	१०°–४४′–७″	कुंभ
,,	मार्च।	१०°–०–२३″	मीन
,,	अप्रैल।	११°–१′–१४″	मेष
,,	मई।	१०°–२१′–४१″	वृषभ
,,	जून।	१०°–१४′–१३″	मिथुन
,,	जुलाई।	८°–४३′–१७″	कर्क
,,	अगस्ट।	९°–२८′–२६″	सिंह
,,	सितंबर।	८°–१७′–३१″	कन्या
,,	अक्टूबर।	७°–३३′–४३″	तुला
,,	नवम्बर।	८°–११′–४१″	वृश्चिक
,,	दिसम्बर।	८°–३४′–१६″	धन

चित्रमय-जगत के पाठकों को प्रति वर्ष नया कोष्टक लिखने की आवश्यकता न पड़े, इसलिये इस लेख में स्थायी (Perpetual) कोष्टक लिखा जाता है। इसका समय भी प्रातःकाल के ६ बजे का ही है।

स्थायी कोष्टक।

प्रतिमास की पहली तारीख के प्रातःकाल के ६ बजे का सायन रवि

ता०	महीना	सन १९१६ अथवा नं० ०	सन १९१७ नं० १	सन १९१८ नं० २	सन १९१९ नं० ३
			अंश मि०	अंश मि०	अंश मि०
१	जनवरी।	ऊपर लिखा जा चुका है	१०° मकर ६′	९° मकर ४६′	९° मकर १७′
,,	फरवरी।		११° कुंभ ४१′	११° कुंभ २५′	११° कुंभ ११′
,,	मार्च।		९° मीन ५१′	९° मीन ४२′	९° मीन ०७′
,,	अप्रैल।		१०° मेष ४८′	१०° मेष २४′	१०° मेष ११′
,,	मई।		१०° वृषभ ८′	९° वृषभ ५०′	९° वृषभ ४०′
,,	जून।		१०° मिथुन १′	९° मिथुन ४८′	९° मिथुन ३८′
,,	जुलाई।		८° कर्क ३०′	८° कर्क २०′	८° कर्क ११′
,,	अगस्ट।		८° सिंह १५′	८° सिंह १′	७° सिंह ४७′
,,	सितंबर।		८° कन्या ४′	७° कन्या ५०′	७° कन्या ३६′
,,	अक्टूबर।		७° तुला ३०′	७° तुला ५′	६° तुला ५२′
,,	नवम्बर।		८° वृश्चिक ६′	७° वृश्चिक ५१′	७° वृश्चिक ३७′
,,	दिसम्बर।		८° धन १०′	८° धन ०५′	७° धन ५०′

इसका उपयोग निम्न रीति पर करना चाहिये।

यदि किसी वर्ष के सायन रवि के जानने की इच्छा हो तो उस वर्ष में से १९१९ घटाना चाहिये। यदि सन १९१९ के पूर्व के किसी साल के सायन रवि के जानने की इच्छा हो तो उस को १९१६ में से घटाना चाहिये। जो संख्या शेष रहेगी, चार से भागना चाहिये। जो संख्या बचेगी, उसका उपयोग चाहिये और जो भागाकार आवेगा उसके तिगुने मिनट रवि में मिलाने चाहिये, जिससे उस वर्ष का कोष्टक तैयार यगा। यदि सन १९१६ के पूर्व का कोई साल लिया हो भागाकार के तिगुने मिनट सायन रवि में से घटाने चाहिये।

यथा—हमें सन १९२९ ई० का सायन रवि जानना हो तो—

१९२९–१९१६ = १३

१३ ÷ ४ = ३¼

अब शेष १ रहा; अतएव नं १ के कोष्टक का उपयोग चाहिये। और भागाकार की संख्या ३ है, अतएव उसे तिगुने अर्थात्—

३ × ३ = ९

इतने मिनट सायन रवि में मिलाने चाहिये। यदि जनवरी की पहली तारीख का हिसाब देखा जाय तो—

१ जा० १०° – ६′ मकर
                ९′

१ जा० १०° – १५′ मकर

का रवि ता० १ जनवरी सन १९२९ को होगा। इस कोष्टक का उपयोग करने में किसी छोटे बच्चे को भी कष्ट नहीं होगा। अस्तु।

विशेष सूक्ष्म रीति से देखने पर प्रातःकाल के ६ बजे के बाद प्रत्येक घंटे के सायन रवि में २॥ मिनट मिलाने चाहिये। पहली तारीख की रात को १० बजे के सायन रवि के जानने की इच्छा हो तो प्रातःकाल के ६ बजे से लगाकर संध्या के १० बजे तक १६ घंटे होते हैं; अतएव १६ × २॥ = ४० मिनट प्रातःकाल के ६ बजे के सायन रवि में मिलाने चाहिये, जिससे रात के १० बजे का सायन रवि मालूम हो जायगा।

१०°–१५′ मकर (प्रातःकाल ६)
      ४०

१०°–५५′ मकर (रात को १० बजे)

ता० १ जानवरी सन १९२९ ई० रविवार के रात को १० बजे १०°–५५′ (मकर) होगा।

रवि जिस पूर्ण अंश पर होगा, उसीके शुभाशुभ की जांच करनी चाहिये। ऊपर १०–५५ का रवि है; अतः १० मकर ही रवि समझना चाहिये।

इससे कुछ अधिक बातें जानने की इच्छा होने पर वे बातें पत्र भेजने से, मालूम कराई जा सकती हैं।

बम्बई की अठारहवीं प्रान्तिक परिषद।

सभापति श्री० खापर्डे, लो० तिलक और कुछ स्वयंसेवक।
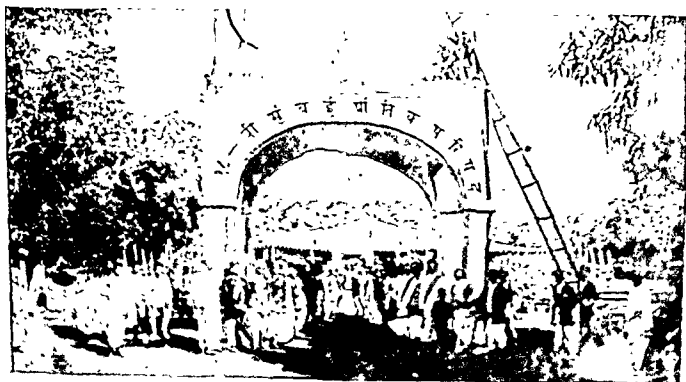
सभापति का स्वागत करने के लिये स्वयंसेवक खड़े हैं।

अध्यक्ष की सवारी का जुलूस।

पण्डाल के बाहर अध्यक्ष और अन्यान्य सम्माननीय प्रतिनिधि।

स्वयंसेवक-समूह।
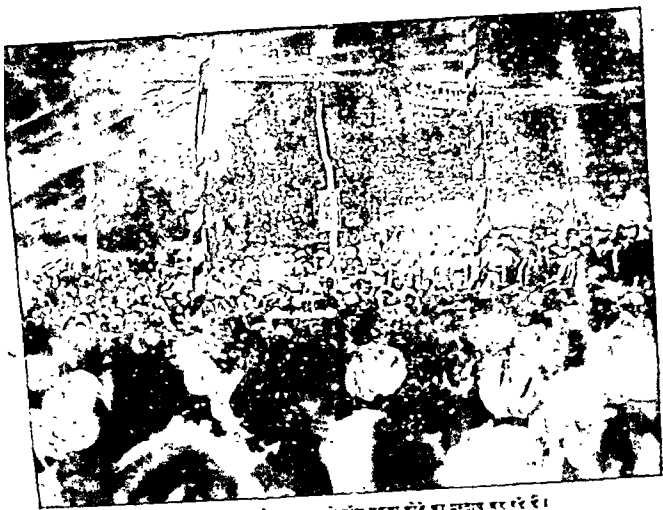
लो० तिलक महाराज और महात्मा के बीच समझौता होने का प्रस्ताव कर रहे हैं।
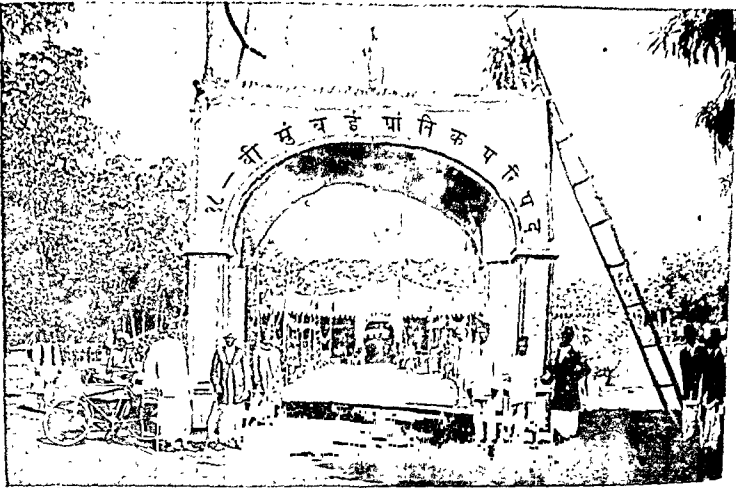
परिषद के लिये बनाया हुआ पण्डाल।

पूना की वसन्त-व्याख्यान-माला में विदुषी वसन्ती "हमें स्वराज्य क्यों चाहिये" पर व्याख्यान दे रही है।

महाराजा ग्वालियर और कृषि-सुधार।

[M]ost important point of excellence which any for[m] of government should possess is to promote the condition of the people themselves. The government which does this the best, has every likelihood of being the best in all other respects.

John Stuart Mill.

बड़े बड़े राजनीतिज्ञों का कथन है कि प्रत्येक साम्राज्य या राज्य की पूर्णोन्नति उसके Internal prosperity (आन्तरिक अभ्युदय) और External protection (बाहरी रक्षा) इन दो बातों पर ही अवलम्बित है। इस समय, जिस प्रकार अतुलनीय बलशाली अंग्रेज़ों के भारतीय-साम्राज्य की बाहरी रक्षा सुव्यवस्थित रीति से हो रही है, ठीक ऐसी ही दशा उनकी छत्र-छाया में रहनेवाले भारतीय देशी राज्यों की है। भारत में, अंग्रेज़ों के पदार्पण करने के पूर्व सर्वत्र अशान्ति थी। उस समय केवल छोटे २ राज्यों को ही नहीं वरन साम्राज्य को भी सदा बाहरी आक्रमणों का डर बना रहता था। फलतः उस समय बाहरी रक्षा (External protection) का पूर्णतया प्रबन्ध नहीं था और बाहरी रक्षा का अच्छा प्रबन्ध न होने से जनता के आन्तरिक अभ्युदय में भी बाधा पहुँचती थी। पर, जब से शान्तिप्रिय अंग्रेज़ों ने भारत को अपनाया है, तब से यहांपर पूर्ण शान्ति विराजमान है। जिससे भारत के देशी नरेश भी, शान्तिप्रिय अंग्रेज़ों के बल पर, External protection के विषय में, बिलकुल निर्भीक हैं। अब किसी की दम नहीं जो वे वक्र दृष्टि से देशी राज्यों की ओर देख सकें। कहा जा सकता है कि देश का आन्तरिक अभ्युदय उसकी बाहरी रक्षा के सुव्यवस्था पर ही अवलम्बित है। अतः अब देशी नरेशों को, अपना आन्तरिक सुधार करने में बहुत कुछ सुभीता होगा है। [औ]र वे अपना सारा द्रव्य और शक्ति अपने देश [औ]र प्रजा की आन्तरिक दशा के सुधारने में व्यय [क]र सकते हैं। अब यही निर्णय करना है कि [आ]न्तरिक सुधार कहते किसे हैं और उसका शासक से कितना [स]म्बन्ध है? यदि आन्तरिक अभ्युदय का सत्य व संक्षेप रूप देखाया जाय तो प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ जॉन स्टुअर्ट मिल के उपर्युक्त कथनानुसार के To promote the condition of the people (लोगों [क]ी स्थिति को सुधारना) इस सारगर्भित वाक्य को बतला [स]कते हैं और शासक का इसके साथ क्या सम्बन्ध है, यह बत[ला]ने के लिये the government which does this the best यही वाक्य पर्याप्त है। अर्थात् जो शासक अपनी प्रजा की स्थिति को सुधारता हो उसी की शासन पद्धति आदर्श समझी जानी चाहिये। अब केवल प्रजा की किस स्थिति को सुधारने से शासक की शासन पद्धति आदर्श समझी जाती है, इसका विचार करना है। प्रजा की स्थिति सुधारना यह शब्द बड़ा सार गर्भित है। इस शब्द के अन्तर्गत कई बातों का समावेश हुआ है। अपनी प्रजा के आचार और विचार सुधारना ही उसका सच्चा आन्तरिक अभ्युदय करना है। इसके लिये पहिले यही देखा जाता है कि प्रजा स्वतंत्र विचार रखती है या नहीं और यदि नहीं रखती तो उसमें उनका आविर्भाव करने के लिये कोई उपाय सोचे गये हैं या नहीं। दूसरे उसका आचार सुधारने के लिये उसके सामने कोई आदर्श कार्य रखे गये हैं या नहीं। पाठक सोच सकते हैं कि इन उत्तम बातों से शासक का कितना निकटतर सम्बन्ध है। अतः प्रत्येक शासक को, अपनी प्रजा के सुविचारों को चालना देने के प्रीत्यर्थ, उसको शिक्षित बनाना पड़ता है और उसका आचार सुधारने के लिये विविध संस्थाएं स्थापित कर उनका आदर्श प्रजा के सामने रखना पड़ता है। कौन कह सकता है कि इस समय भी भारत में उक्त गुण-युक्त शासनप्रणाली के उत्कृष्ट उदाहरण नहीं हैं? अपनी सुशासन प्रणाली के ही कारण मैसूर ने इतनी अधिक उन्नति कर ली है, बड़ौदा ने इतना अधिक नाम पाया है, और ग्वालियर राज्य आदर्श राज्य तथा ग्वालियर नरेश आदर्श नरेश समझे जाते हैं। जो राजा निशिदिन प्रजा-हित-साधन में ही तत्पर हो, जो इहलौकिक और पारलौकिक निर्भीक कार्यक्षेत्र को तैयार करने के लिये कर्तव्यासक्त रहता हो; जिसे अपनी प्रजा तथा अपने राज्य की उन्नति करने के अतिरिक्त अन्य किसी बात का ख़याल न हो; अपने अवसर के समय में अपने ही राज्य के सीपरी जैसे ग्राम में रह कर राजकीय कूट प्रश्नों के हल करने के अतिरिक्त गर्मी के दिनों की मंसूरी, लैंधौरा, शिमला आदि स्थानों की हवा खाने में जिसका चित्त न लगता हो, जिसे बात २ पर विदेश की सैर करने तथा केवल सुखसाधन के एकत्रित करने से घृणा हो; जिसे सतत अपने राष्ट्र तथा जाति का ख़याल रहता हो, क्या उसके राज्य को सुराज्य नहीं कहेंगे? ऐसे राजा के लिये उपमाओं का जितना ख़ज़ाना ख़ाली कर दिया जाय, उतना ही कम होगा। हमारे पास इतने शब्द नहीं, जिनका हम उस आदर्श नृपति के लिये यथायोग्य उपयोग कर सकें। जिन्होंने 'मैं साफ़ कह सकता हूं कि मेरी कुल रियासत, मेरी जान और दिल हज़रत मलिक मोअज़्ज़म के लिये हरवक्त मौजूद है (रॉयल केवलरी, लन्दन १।६।०२)' वाली प्रतिज्ञानुसार अपना प्रण निभाकर राजभक्ति का आदर्श बतलाया है, जिनका अपनी प्रजा से कथन है कि "मैं भी रियासत का एक मुला-ज़िम हूं जैसे कि आप (५० अगस्त ११)।" जो "जहां तक मुमकिन है मेरी कोशिश हमेशा से ही रही कि सब को हर सूरत में आसायश और आराम पहुंचे (१० नवम्बर १९१७) ज़मीन आबाद हो, रियाया दौलतमंद हो, लोग व्यवहार में रहें और सब काम सहूलियत के साथ चलें" जैसे विचार रखते हों। ऐसे, देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि विषयों में पूरी योग्यता रखनेवाले नराधिप देश के अन्यान्य राजाओं के ही लिये नहीं वरन बड़े २ देश-नेताओं के लिये भी आदर्शवत् हैं। उनकी योग्यता तथा उनकी सुशासन-प्रणाली के विषय में इतना और भी कहना पर्याप्त है कि जिनके विषय में कई वेजुर्ग "ऐसे देशी राज्य में रहने की अपेक्षा अंग्रेज़ी राज्य में रहना कहीं अधिक अच्छा है" जैसे धृष्टता के पोषक वचनाद निकालते थे भी, अब उन-महाराजा ग्वालियर-की भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे हैं! क्या यही उदाहरण उनके [illegible] का नमूना नहीं है! तभी तो हम कहते हैं कि ऐसे सुयोग्य [illegible] की [illegible] शैली से सुशासित [illegible] का सर्वोत्तम नमूना भारत में आज भी वर्तमान है। अस्तु।

महाराजा माधवराव सिंधिया, ग्वालियर।

महाराजा ग्वालियर की सर्वगुणसम्पन्न [illegible] प्रजा [illegible] पर [illegible] है, और इस छोटे लेख के द्वारा उनके संपूर्ण [illegible] का [illegible] भी नहीं किया जा सकता। इस लेख के द्वारा तो

हमें केवल उनके एक परोपकारी कार्य पर ही दृष्टिपात करना है। श्रीमत् [illegible] विराजमान महाराजा ग्वालियर के अनुपमेय कृपाप्रसाद के ही कारण हमें, उन्हीं के द्वारा संस्थित और संवर्धित, श्रीज़मींदार हितकारिणी सभा, ग्वालियर, का वार्षिक रिपोर्ट, समालोचनार्थ, प्राप्त हुआ है, जिसके अवलोकन से महाराजा साहिब के एक विशिष्ट गुण पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यद्यपि महाराजा साहिब सुशासन पद्धति के लिये आवश्यकीय सभी गुणों में पूरा २ दखल रखते हैं, पर इससे मालूम होगा कि उन्हें देश के सच्चे जीवन-स्वरूप कृषि-सुधार-शैली का अधिक ध्यान है। महाराजा साहब ने कृषि सुधार-शैली अच्छा मनन किया है, और इन दिनों तो आपका 'कृषि' ही मुख्य विषय बन बैठा है। महाराजा साहिब ने 'ज़मींदार हितकारी' जैसा सुवृहत् ग्रंथ, जिसका पूर्ण परिचय हमारे पाठकों को हो चुका है, रचकर कृषकों तथा उनके प्राणस्वरूप ज़मींदारों पर बड़ा उपकार किया है, 'पशु चिकित्सा' जैसा अपने ढंग का अनूठा ग्रंथ लिखकर कृषि व्यवसाय को साध्य करने का उत्तम मार्ग बतलाया है और ज़मींदार हितकारी जैसी परोपकारिणी संस्था स्थापित कर अपने राज्य की कृषि को पूर्णोन्नति करने का ज़रिया निकाल दिया है। इसके अतिरिक्त कृषि की उन्नति के प्रीत्यर्थ बैंक का मुहकमा खोला है, जिसके द्वारा निर्धन कृषकों को बहुत ही कम सूद पर धन उधार दिया जाता है, बीज भंडार नामक संस्था की स्थापना की है, जिसके द्वारा कृषकों को फसलों का उत्तम बीज दिया जाता है; और कृषकों को खेती करने के योग्य मार्ग सुझाने के लिये उपदेशक-वर्ग खोला है, जिसके उपदेशक राज में घूमकर राज की कृषि सुधारने का अपूर्व काम करते हैं। उक्त कई प्रकारों से कृषि की उन्नति करने के प्रीत्यर्थ, ग्वालियर में उनके केन्द्ररूप 'ज़मींदार हितकारिणी सभा' स्थापित की गई है, और उसी संस्था का यह वार्षिक रिपोर्ट है। सभा के स्थापित करने और उसके उद्देश्य साधने में महाराजा साहिब ने कितना अविश्रान्त श्रम किया है, यह केवल एक इसी रिपोर्ट के अवलोकन से जाना जा सकता है। परमहर्ष की बात तो यह है कि महाराजा साहिब को इस सुकार्य के साधने में एक ऐसे सहकारी की प्राप्ति हुई है जो अपने कुल, योग्यता, बहुश्रुतता आदि गुणों के कारण राज में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वे ही महोदय इस अपूर्व संस्था के सभापति हैं, और उनका शुभ नाम है ले० क० सरदार आपाजीराव सितोले। आज जो ज़मींदार हितकारी सभा का ग्वालियर राज में इतना अधिक सम्मान हो रहा है, उस सफलता का अधिकांश श्रेय श्रीमंत सितोले साहब को ही दिया जा सकता है। ग्वालियर के आधुनिक राजकीय इतिहास में भी सरदार शितोले का बहुत अधिक महत्व है। कहा जा सकता है कि महाराजा साहब को श्रीमंत शितोले साहब के सदृश सहकारी मिलना राज के परम सौभाग्य का लक्षण है। राज का ऐसा कोई काम नहीं, जिसमें आप भाग न लेते हों। आप बड़े चतुर और कार्यदक्ष हैं। आप बड़े शिक्षा-प्रेमी भी हैं। जहाँ कहीं आप जाते हैं, पहले वहां की पाठशालाओं में जाकर बड़ी युक्ति के साथ वहां के पाठक की योग्यता और पाठ्य-शैली का अनुभव कर लेते हैं। अस्तु।

जिस संस्था का यह वार्षिक रिपोर्ट हमारे सामने है, उसकी स्थापना ता० १४ अप्रैल सन १९१४ ई० को हुई। ज़मींदार हितकारिणी सभा के स्थापित करने का एकमात्र उद्देश्य, देश की आवश्यकता के अनुसार, ज़मींदार और काश्यकारों की हालत सुधारना ही है। अवश्य ही भारत के जीवन-स्वरूप कृषि की वर्तमान दुःस्थिति के देखते सहृदय जनों को शोक होना सम्भवनीय है। पहले भारत जितना गौरवशाली समझा जाता था, वह एकमात्र कृषि की सुसंपन्न दशा के ही कारण। भारत का प्राचीनतर काल से लेकर अबतक का इतिहास हमें यही बतलाता है कि भारत की ज़मीन उपजाऊ होने से-भारत एक कृषिप्राय प्रदेश होने से-ही उसका अधिक महत्व रहा है। भारत की इसी संपन्नता के कारण, समग्र भूतल पर वह अत्यन्त गौरवशाली गिना जाता है। कहां तक कहें, एकमात्र इसी गुण के कारण भारतभूमि 'सोने की चिड़िया' से भी अधिक-मूल्य की समझी जाती है। यदि भारत में यह गुण न होता तो मालूम नहीं पश्चिमीय देश भी इतने वैभवसंपन्न होते या नहीं। यद्यपि भारत की वर्तमान दशा बड़ी खराब है, लोग दुर्भिक्ष से घबराते हैं, तथापि बहुत ही थोड़े यह अनुभव है कि [illegible] वर्षों का जीवन भारत की उपज पर ही अवलंबित है। यह भी यदि भारत की कृषि की दशा सुधार दी जाय तो उसके [illegible] पूर्ववत् वैभवशाली बन सकता है। भारत की लोक संख्या में से लगभग ७२ करोड़ मनुष्य काश्तकारी, और [illegible] इसीसे [illegible] व्यापार उद्योग, धंधों में लगे हैं। [illegible] सुधारने की ओर, आकर्षित नहीं हुआ! भारत के [illegible] मालवा और बरार ये तीन प्रदेश बड़े ही उपजाऊ हैं। [illegible] कपास और गेहूं के उपज की अपूर्व खान समझी जाती है। [illegible] का अधिकांश भाग ग्वालियर राज में है और इसी राज में [illegible] मालवा ज़िले इतने अधिक उपजाऊ हैं कि जितना अधिक इन ज़िलों में पैदा होता है, उतना पृथ्वी के अन्य किसी प्रदेश में नहीं होता! अतः जिस राज की ज़मीन इतनी उपजाऊ है, वहां के शासक का ध्यान कृषि की उन्नति करने और आकर्षित होना सर्वथा योग्य है। उन्होंने [illegible] 'ज़मींदार हितकारिणी सभा' ग्वालियर में स्थापित की गई। सभा के जन्म दिन के उत्सव में जो वृहत् सम्मिलन हुआ, उस समय महाराजा ग्वालियर तथा उक्त स्थायी सभा के सभापति श्रीमंत सितोले साहब के बड़े ही महत्व के और प्रभावशाली व्याख्यान हुए थे। श्रीमान् शितोले साहब ने "[illegible] देश कृषिप्रधान देश है। इस देश की ज़मीन सालों में करोड़ों लाखों की पैदावार करती है। जिन काश्तकारों पर प्राणिमात्र की ज़िंदगी और माल का सवाल है, जिसकी बदौलत हमेशा से नंदनवन हो सकता है, जिसकी सहायता से हम पूर्णोन्नति को प्राप्त कर सकते हैं उसी की हालत दिन बदिन कमज़ोर होती जाती है। अतः उसका सुधार करने के लिये ही, यह सभा स्थापित की जाती है' इस आशय की सारगर्भित वक्तृता दी थी। उस समय महाराजा साहब का जो प्रभावशाली व्याख्यान हुआ, वह पढ़ने ही योग्य है। स्थानाभाव से हम उसे यहां पूरा उद्धृत नहीं कर सकते। पर संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि आपने इस सभा का मकसद', "जमींदारान के ख़यालात", "सब के अव्वल काश्तकारान का रुतबा," "काश्तकारान की हालत में बेहतरी" आदि महत्वपूर्ण विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला। सभा को महाराजा साहब ने जो अन्तिम उपदेश दिया, वह भी देखने के योग्य है। आपने सभा के संचालकों से कहा कि "मकान को सफ़ेदी से पोत दिया या चाँवल खाकर कह दिया कि आज बन्दे ने पुलाव खाया है जैसी कार्रवाई न की जावे। मैं तवज्जुह दिलाता हूँ कि सभा की असली गरज नज़र से न गिर जावे," तदुपरान्त आपने सभा के संचालन के लिये १२ हज़ार रुपये साल देना मंज़ूर किया। सब से अधिक हर्ष की बात यह हुई कि महाराजा साहिब के इस सुकार्य में रायबहादुर पं० प्राणनाथजी, रा० ब० श्यामसुन्दर लालजी, पं० भानुप्रसादजी, लाला रामचन्द्र गुमाजी जैसे राज के कई सुप्रतिष्ठित पुरुषों ने भी भाग लिया है। सभा का कार्य सुचारु रूप से संपन्न होने के लिये महाराजा साहिब ने एक ऐसा उपाय ढूंढ निकाला है, जिसका अनुकरण केवल देशी रियासतों को ही नहीं वरन ब्रिटिश सरकार को भी करना चाहिये। वह उत्तम उपाय है उपदेशक ट्रेनिंग क्लास का स्थापित करना। इस क्लास का एकमात्र उद्देश्य है राज के काश्यकारों को उपदेशों के द्वारा खेती करने में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के मार्ग सुझाना। इसके लिये पंडित गणेशदत्तजी शास्त्री विद्यानिधि व्याख्यानवाचस्पति जैसे सुयोग्य विद्वान की महोपदेशक के स्थान पर आयोजना की गई है। पंडित गणेशदत्तजी एक प्रतिभासंपन्न पुरुष हैं। इन पंक्तियों के लेखक को शास्त्रीजी के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे यह कह सकता है कि शास्त्रीजी अच्छे वक्ता हैं। आपके व्याख्यान विद्वत्तापूर्ण, प्रभावशाली और सामयिक विषयों को लिये हुए होते हैं। अत ऐसे योग्य पुरुष को ऐसे स्थान पर नियत करना सचमुच ही महाराजा साहिब की गुणग्राहकता का द्योतक है। शास्त्रीजी, ज़मींदार-हितकारिणी सभा के उद्देश्यों के प्रचारार्थ प्रायः ग्वालियर राज के २ प्रधान

कामों में भ्रमण करते हैं; अतः शिक्षा-प्रेमी तथा प्रभावशाली लोग वक्ता होने से उनसे हमारा अनुरोध है कि यदि वे यहां के शिवालयों में नैतिक शिक्षा पर भी उपदेश किया करें तो उससे ग्वालियर राज की भावी प्रजा पर बड़ा उपकार होगा। अस्तु।

जिस उपदेशक क्लास की ऊपर चर्चा की गई है, उसकी पढ़ाई तथा व्याख्यान देने का ढंग सिखाने का कुल भार शास्त्रीजी पर ही रक्खा गया है। गत वर्ष उपदेशक क्लास में १८ विद्यार्थी भर्ती किये गये और प्रति विद्यार्थी को ७) रु० मासिक के हिसाब से वज़ीफ़ा भी दिया गया। क्लास के लिये ज़मींदारहितकारी, सनातनधर्मरीडर्स, कृषिविचाररीडर्स, तुलसी रामायण का कुछ भाग और व्याख्यानशैली पाठ्य-विषय नियत किये गये। श्रीयुत डोंगरे जैसे कृषि-शास्त्र-निपुण सज्जन ने भी इसमें बहुत दिलचस्पी ली। जिसका परिणाम यह हुआ कि २३ उपदेशक-परीक्षार्थियों में से १८ उपदेशक उत्तीर्ण हुए! वे १८ उपदेशक राज के भिन्न ज़िलों में व्याख्यान देने के लिये भेजे गये, जिससे कई गांवों में कृषिविषयक अच्छी जागृति हुई। ज़मींदार हितकारी सभा की वर्तमान स्थिति के देखते हम कह सकते हैं उसके इतनी अधिक लोकप्रिय होने का एवम् उसके कार्य में आशातीत सफलता प्राप्त होने का सारा श्रेय इन उपदेशकों को ही दिया जा सकता है। ज़मींदार हितकारिणी सभा के उद्देश्य, क्षणिक काल ही में, राज की प्रजा को मालूम हो गये, जिसका यह फल हुआ कि लोग सभा के साथ पूरी सहानुभूति करने लगे। इसकी सफलता इसी एक उदाहरण से सिद्ध हो सकती है, कि इस थोड़े से समय ही में अर्थात् ता० ११ अप्रैल सन १९१४ ई० से ता० ३० जून १९१५ तक, महाराजा साहिब के दान किये १२००० वार्षिक के अतिरिक्त, सभा के शुभचिन्तकों की ओर से मंज़ूर शुदा एकमुश्त चन्दा बमुजिब प्रबन्ध के १७८०१ रुपये, प्रबन्ध से कम २१९९॥) तथा जुमला २००००॥) एकत्रित हुआ! आशा है इस भारी रकम से ग्वालियर राज की कृषि का सुधार करने में कोई बात उठा न रक्खी जायगी। यह तो हुई एकमुश्त चन्दे की बात। इसके अतिरिक्त कई सज्जनों ने सभा को मासिक सहायता देने का भी प्रण किया है। *जिससे आशा है कि सभा के उद्देश्य फैलाने* में बहुत कुछ सुभीता होगी। ता० ११ अप्रैल सन १९१४ ई० से ता० ३० जून सन १९१५ तक सभा की कुल आमदनी २७७०५ रु० १२ आ० हुई और कुल खर्चा २०६९२।-) हुआ। सभा की आय के देखते व्यय अधिक हुआ है; अतः सभा से सहानुभूति रखने वाली ग्वालियर की प्रजा को सभा की साम्पत्तिक दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। सभा के उद्देश्यों की सिद्धि के अर्थ एक मैनेजिंग कमेटी, एक रूल्स एण्ड रेगुलेशन्स सब कमेटी, एक आर-गेनिजेशन सब कमेटी और एक फाइनेनशियल सब कमिटी स्थापित की गई है, और इनके निरीक्षण में सभा का कार्य सुस्थिति में चल रहा है। सभा की सांपत्तिक स्थिति सुधारने के लिये स्वयं ग्वालियर नरेश उसके संरक्षक बने हैं और हर कोई कृषि-प्रेमी ५०००) एकमुश्त देकर उपसंरक्षक, ५००) एकमुश्त देकर सहायक और १००) एकमुश्त देकर लाइफ मेंबर बन सकते हैं। ज़मींदार केवल २५) एकमुश्त देने पर लाइफ मेंबर बनाए जाते हैं और ॥) या इससे अधिक माहवारी चन्दा देने पर सभा के मामूली मेम्बरों में उनका नाम लिखा जाता है। सेक्रेटरी इसके पं० लक्ष्मण भास्कर मुले बी० ए० बनाए गये हैं; अतएव जिन्हें सभा के विषय में अधिक जानकारी मालूम करनी हो, वे उक्त पते पर पत्र भेजकर यथावश्यक बातें मालूम कर सकते हैं। अस्तु।

ज़मींदारहितकारिणी सभा के वार्षिक विवरण से हमें महाराजा साहब की कृषि विषयक शुभचिन्तकता के विषय में बहुत कुछ बातें मालूम होगई. इसीसे हमने, महाराजा साहब के कृषिसुधार जैसे शुभ कार्य पर, इस लेख के द्वारा, बहुत कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। आशा है, इसके अवलोकन से हमारे पाठकों को महाराजा ग्वालियर की कर्तव्यनिष्ठता का पूरा पता चल जायगा। यों तो भारत में सैकड़ों देशी नरेश हैं और वे सभी स्वशक्त्यनुसार अपनी प्रजा का हित साधन करने में रत रहते हैं, पर, महाराजा ग्वालियर एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके सभी कार्य एकदेशीयत्व को लिये नहीं रहते अथच वे अन्यान्य देशी नरेशों के लिये भी आदर्शनीय और अनुकरणीय होते हैं। साथ ही महाराजा साहब के अपनाये हुए कार्यों में यह एक विशेषता रहती है, कि वे कार्य मूलभूत सिद्धान्तों पर परिचालित—अर्थात् केवल उन्हींका अवलम्बन करने से प्रजा की उन्नति हो सकती है—होते हैं। प्रमाण के लिये महाराजा साहब का कृषि-सुधार का कार्य ही पर्याप्त है। आशा है, महाराजा साहब के आदर्श सिद्धान्तों का अन्यान्य देशी नरेश भी अनुकरण कर, महाराजा ग्वालियर की तरह, अपने आदर्श स्थापित करने की चेष्टा करेंगे। महाराजा ग्वालियर की देश हित-तत्परता को देखकर राजनीतिज्ञ मिल का उक्त सिद्धान्त बार २ हमें याद आता है। अतएव हम अपने पाठकों से उपर्युक्त अवतरण तथा महाराजा ग्वालियर के शुभ कार्यों के विषय में विचार करने का अनुरोध कर इस लेख को समाप्त करते हैं, और इसीके आकांक्षी हैं कि परमसहायक जगदीश्वर महाराजा साहिब को स्वदेश हित साधने के अर्थ दीर्घायु और खूब शक्ति प्रदान करें!

विविध-विचार।

शुल्क रहित शिक्षा का प्रचार।

देश की सभ्यता उसकी शिक्षा पर अवलम्बित है। जो राष्ट्र जितना अधिक सुशिक्षित होगा, संसार में उसका स्थान भी उतना ही अधिक ऊंचा गिना जायगा। किसी राष्ट्र का वर्तमानकालीन इतिहास चाहे कितना ही मलिन एवम् गिरा हुआ क्यों न हो, यदि वह अपनी वर्तमान स्थिति में शिक्षा में उन्नति कर लेगा तो वही राष्ट्र जगत की दृष्टि में सम्माननीय अथवा अनुकरणीय समझा जायगा। जो राष्ट्र निरे जंगली थे, जिनके पूर्वज "पुच्छ विहीन पशु" की नाईं अपना आचरण रखते थे, वे ही राष्ट्र—उन्हीं वर्तमानकालीन जंगली पुरुषों की सन्तान—इस समय उस शिक्षा से मंडित होने के कारण सुधरे हुए कहलाते हैं। सारे पश्चिमीय राष्ट्रों की बिलकुल यही दशा है। जिस समय हमारा देश—भारतवर्ष—शिक्षा में आगे बढ़ा हुआ था, उस समय सारे पश्चिमीय राष्ट्र जंगली अवस्था में थे। छोटा सा जापान देश जो एक शताब्दि के पहले बिलकुल ही अज्ञानान्धकार में डूबा हुआ था, लेकिन थोड़े काल ही में, शिक्षा-उन्नति में अपूर्व सफलता प्राप्त कर लेने से, आदर्श राष्ट्रों में गिना जाने लगा। इससे यह सिद्ध है कि देश को अवनति रूपी रोग से मुक्त करने के लिये शिक्षा-प्रचार ही उत्तम औषधि है। भारत की वर्तमान स्थिति, प्राचीन काल की अपेक्षा, गिरी हुई है; अतः कहना नहीं होगा कि इसे पूर्व स्थान पर आसीन करने के लिये यहां शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता है। यही कारण है कि आज देश की एक छोर से लेकर दूसरी छोर तक शिक्षा विषयक घोर आन्दोलन मच रहा है। पर, भारतीय सरकार की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में सब से भारी अवगुण यह है कि वह बेची जाती है। खेद, [illegible], भारत में इतना सामर्थ्य नहीं कि वह उसे क्रय कर सके; इसीलिये गोखले जैसे देश-हितचिन्तक को शुल्क रहित शिक्षा प्रचार करने का बीड़ा उठाना पड़ा था। पृथ्वी के अधिकांश देशों में शुल्क रहित शिक्षा का प्रचार होते हुए भी भारत में उसका प्रचार न होना नितान्त आश्चर्य की बात है। इस समय अमेरिका में प्राथमिक और उच्च शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। विलायत में भी प्राथमिक शिक्षा शुल्क रहित है। [illegible], डिनमार्क, आस्ट्रिया में प्रारम्भिक शिक्षा शुल्क रहित है। कनाडा में और ब्रिटिश कोलम्बिया में मुफ्त शिक्षा का प्रचार है। जमैका द्वीप के सरकारी विद्यालय भी फीस नहीं लेते। आस्ट्रेलिया और न्यू साउथ वेल्स में प्रारम्भिक और उच्च शिक्षा कम्पल्सरी दी जाती है। स्विटज़रलैंड, [illegible], [illegible] तथा [illegible] अमेरिका में शुल्करहित शिक्षा का प्रचार है। बेल्जियम में भी कम्पल्सरी शिक्षा का प्रचार था। [illegible]

अमेरिका के छोटे २ उपनिवेशों में भी इसीका प्रचार है। चिली, ब्रेज़िल और बलगेरिया में अवैतनिक शिक्षा का महत्व है। डेनमार्क में भी यही दशा है। फ्रान्स के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अवैतनिक शिक्षा दी जाती है। जर्मनी में उसका प्रचार है ही। हाइटी द्वीप में नीग्रो जाति का बाहुल्य होने पर भी वे मुफ्त पढ़ाए जाते हैं। इटाली में प्राथमिक और उच्च शिक्षा शुल्करहित है। जापान में तो बिलकुल ही फीस नहीं ली जाती। मेक्सिको, मांटिनिग्रो, पेरू, रोमेनिया का भी यही हाल है। सर्विया में भी मुफ्त शिक्षा का ही प्रचार था। स्पेन, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड में शिक्षा के बदले फूटी कौड़ी तक लेना महापाप समझते हैं। इन प्रदेशों में लड़कों को पढ़ाया तो मुफ्त जाता ही है, पर उन्हें पढ़ने की सामग्री–यथा पुस्तकें, कागज़, कलमें आदि-भी मुफ्त दी जाती है। अन्यान्य कई देशों का भी यही हाल है। इससे यह भलीभांति ज्ञात हो जायगा कि पृथिवी के प्रायः सभी देशों में अवैतनिक शिक्षा का प्रचार है। सेंतमेंत शिक्षा प्रचार करनेवाले राष्ट्रों में न तो सभी धनवान ही हैं और न दरिद्री ही। पर भारत में, इने गिने देशी राज्यों को छोड़कर, किन प्रदेशों में शुल्क-रहित शिक्षा प्रदान की जाती है? क्या भारत सरकार भारत में शुल्करहित शिक्षा के प्रचार न करने का कोई योग्य कारण बतला सकती है?

कवियों की आय ।

साहित्य-सेवा धनोपार्जन का व्यवसाय नहीं है, और न कोई धनोपार्जन के उद्देश्य से ही साहित्य-सेवा करता है। साहित्य सेवा के लिये आत्मसमर्पण करने का उद्देश्य सर्वदा अपने सम्मुख रखना पड़ता है और जो पेट भरने के लिये ही यह व्यवसाय करता है, उसकी सच्चे साहित्य सेवी के नाते कदापि प्रसिद्धि नहीं हो सकती। यद्यपि यह सर्वथोचित है कि किसी साहित्य सेवी को साहित्य-सेवा का पलटा–उसके उदर-पोषणार्थ, मिलना आवश्यक है, तथापि पलटा मांगने के उद्देश्य से ही साहित्य-सेवा करनेवाला हेय दृष्टि से देखा जाता है। ऐसे स्वार्थी साहित्य-सेवी की न तो कोई इच्छा पूर्ति करने का प्रयत्न ही करता है और यदि एकाध के करने पर भी स्वार्थसागर में डूबा हुआ साहित्य-सेवी कभी उससे संतोष नहीं मान सकता। पर, यह भी बात नहीं कि जनता में गुणग्राहकता का निरा अभाव ही है। जनता गुणी पुरुष का आदर, उसके गुणों को देख कर, करती है। कोई झुकानेवाला हो तभी दुनिया झुकती है; वैसे नहीं। जनता का भी, साहित्य-सेवी की सेवा को देख कर, उसका प्रतिफल उसे चुकाने का प्रथमोद्देश्य होना चाहिये; क्योंकि जबकि साहित्य-सेवी जनता के उपकारार्थ ही अपनी शक्ति नष्ट करता है तब क्या जनता का भी यह कर्तव्य नहीं है कि वह उसका–जो अपनी भलाई के हेतु आत्मसमर्पण कर रहा हो–आदर करना न सीखे? इसीलिये एक पश्चिमीय निःस्वार्थी साहित्य-सेवी का यह कथन, कि "I am for the public and the public is for me" अक्षर अक्षर सत्य है। पर, किसी साहित्य-सेवी के ऐसे भाग्य कहां जो वह अपने किये का फल पा सके। कोई लेखक तो अनेक ग्रन्थ लिखकर, उनके उपहार स्वरूप द्रव्य पा जाने से, श्रीमान् बन भी सकता है, पर इधर उधर से शब्द और भाव बटोरनेवाले (!) कवियों को उनके परिश्रम के पलटे द्रव्य मिलना सचमुच ही उनके अहोभाग्य की बात है। पर, सच्चे कवियों का आदर पाना–उन्हें विपुल द्रव्यादि मिलना–कई पौर्वात्य और पाश्चिमात्य उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है। जहां कीर्ति गान-लोलुप राजा अपने कीर्ति पलटा चुकाते थे, वहां कई 'पुनि प्रत्यच्छर लक्ष धन दीन' जैसे कई निःस्वार्थी राजाओं के भी उ हैं। ठीक यही बात पश्चिमीय राष्ट्रों की भी है। में गुणग्राहकता की कितनी अधिक मात्रा है, यह रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'नोबुल प्राइज़' मिलने के ज्ञात हो सकती है। पहले इंग्लैंड के कई बड़े इसी प्रकार आदर किया जा चुका है। असंख्य प को अपने काव्यों के पलटे अपूर्व द्रव्य-प्राप्ति हुई थी को 'चाइल्ड हैरोल्ड' नामक काव्य लिखने के हज़ार पौंड मिले थे तथा 'डॅन जुआन' काव्य लि पौंड मिले थे। थॉमस मूर को 'लालारुख' काव्य ४००० पौंड और "आइरिश मेलॉडिज़" के बद छः सौ पौंड प्राप्त हुए थे! थॉमस कॅम्बेल को "प्ले काव्य के बदले पौने चार हज़ार पौंड मिले तथा उनके कवित्व के उपलक्ष्य में, दश बारह हज़ार पं नियत किया गया था। क्या इन उदाहरणों को देख भारतीय धनिक और देशी नरेश कवियों का आदर

चीन देश की विचित्रता ।

प्रायः सभी देशों में कुछ न कुछ विचित्र आचार है। जो राष्ट्र जितने अधिक प्राचीन होते हैं, उनके भी उतने ही अधिक पुराने रहते हैं। चीन देश प्राचीनतर राष्ट्रों में गिना जाता है; अतएव आचार बड़े ही आश्चर्यजनक हैं। कहा जाता नाटी स्त्रियों की बड़ी कदर की जाती है। जो स्त्री नाटी होगी, सुन्दरता में भी उसका उतना ही नम्बर होगा। विशेष कर वहां की जिस स्त्री पांवों की अंगुलियां अत्यन्त छोटी होती है उसे अधिक रूपवती समझते हैं! प्रत्येक स्त्री में उक्त गु छोटी अवस्था ही से पैरों में लोहे के या अन्य किस बूट पहनाते हैं, जिससे उनकी अंगुलियों की बाढ़ है और उनकी यौवनावस्था के पूर्ण हो जाने पर वे की खानि समझी जाने लगती हैं। उस देश में और भी कई विलक्षण रस्में हैं। यह भी कहा जा पर किसी मनुष्य या स्त्री के मरने पर न तो वे दफ़न और न जलाये ही जाते हैं। वरन ज्यों ही कोई म हैं, त्यों ही उसका अचार बना दिया जाता है! आश्चर्य की बात तो यह है कि उस सारे मुर्दे का, बि किये, अचार बनाया जाता है। यदि किसी चं कोई बड़ा आदमी भोजन करने जाये तो उसे यही परोसते हैं। यदि चीन में कभी बड़ा भोज हो पकवान उस भोज में परोसे जाते हैं, उनमें मुर्दों प्रमुखता से गणना की जाती है। तिस पर भी उ पता होनी चाहिये कि यह आचार मुर्दे के हाथ की हो, अन्य किसी अवयव का नहीं! हमारी ओर भी, इसी प्रकार की एक प्रथा प्रचलित है। पारसी गाड़ते और न जलाते ही हैं, वरन गीदड़ों के द्वारा है। पर, अखिल जगत में मुर्दों का उपयोग क कहीं भी प्रचलित नहीं है। इससे चीन देश की उक्त रस्म बड़ी विचित्र है!

अमेरिका के छोटे २ उपनिवेशों में भी इसीका प्रचार है। चिली, ब्रेज़िल और बलगेरिया में अवैतनिक शिक्षा का महत्व है। डेनमार्क में भी यही दशा है। फ्रान्स के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अवैतनिक शिक्षा दी जाती है। जर्मनी में उसका प्रचार है ही। हाइटी द्वीप में नीग्रो जाति का वास्तव्य होने पर भी वे मुफ्त पढ़ाए जाते हैं। इटाली में प्राथमिक और उच्च शिक्षा शुल्करहित है। जापान में तो बिलकुल ही फीस नहीं ली जाती। मेक्सिको, मांटिनिग्रो, पेरू, रोमेनिया का भी यही हाल है। सर्विया में भी मुफ्त शिक्षा का ही प्रचार था। स्पेन, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड में शिक्षा के बदले फूटी कौड़ी तक लेना महापाप समझते हैं। इन प्रदेशों में लड़कों को पढ़ाया तो मुफ्त जाता ही है, पर उन्हें पढ़ने की सामग्री—यथा पुस्तकें, काग़ज़, कलमें आदि भी मुफ्त दी जाती है। अन्यान्य कई देशों का भी यही हाल है। इससे यह भलीभांति ज्ञात हो जायगा कि पृथिवी के प्रायः सभी देशों में अवैतनिक शिक्षा का प्रचार है। सेंतमेंत शिक्षा प्रचार करनेवाले राष्ट्रों में न तो सभी धनवान् ही हैं और न दरिद्री ही। पर भारत में, इने गिने देशी राज्यों को छोड़कर, किन प्रदेशों में शुल्क-रहित शिक्षा प्रदान की जाती है? क्या भारत सरकार भारत में शुल्करहित शिक्षा के प्रचार न करने का कोई योग्य कारण बतला सकती है?

कवियों की आय।

साहित्य-सेवा धनोपार्जन का व्यवसाय नहीं है, और न कोई धनोपार्जन के उद्देश्य से ही साहित्य-सेवा करता है। साहित्य सेवा के लिये आत्मसमर्पण करने का उद्देश्य सर्वदा अपने सम्मुख रखना पड़ता है और जो पेट भरने के लिये ही यह व्यवसाय करता है, उसकी सच्चे साहित्य सेवी के नाते कदापि प्रसिद्धि नहीं हो सकती। यद्यपि यह सर्वथोचित है कि किसी साहित्य सेवी को साहित्य सेवा का पलटा—उसके उदर-पोषणार्थ, मिलना आवश्यक है, तथापि पलटा मांगने के उद्देश्य से ही साहित्य-सेवा करनेवाला हेय दृष्टि से देखा जाता है। ऐसे स्वार्थी साहित्य-सेवी की न तो कोई इच्छा पूर्ति करने का प्रयत्न ही करता है और यदि एकाध के करने पर भी स्वार्थसागर में डूबा हुआ साहित्य-सेवी कभी उससे संतोष नहीं मान सकता। पर, यह भी बात नहीं कि जनता में गुणग्राहकता का नितान्त अभाव ही है। जनता गुणी पुरुष का आदर, उसके गुणों को देख कर, करती है। कोई गुणग्राहक हो या न हो [illegible] नहीं। जनता का भी, साहित्य-सेवी की सेवा को देख कर, उसका प्रतिफल उसे चुकाने का प्रथमोद्देश्य होना चाहिये। क्योंकि जबकि साहित्य सेवी जनता के उपकारार्थ ही अपनी शक्ति नष्ट करता है तब क्या जनता का भी यह कर्तव्य नहीं है कि वह उसका—जो उसकी भलाई के हेतु आत्मसमर्पण कर रहा हो—[illegible] करना न सीखे? इसीलिये एक पश्चिमीय [illegible] साहित्य-सेवी का यह कथन, कि "I am for the [illegible]" [illegible] है। पर, [illegible] [illegible]

[illegible]

प्रायः ही है। जहाँ कीर्ति-गान-लोलुप राजा अपने कीर्तिगायक को पलटा चुकाते थे, वहाँ कई 'पुनि प्रत्याच्छुर लच्छ सौं लच्छ धन दीन' जैसे कई निःस्वार्थी राजाओं के भी उदाहरण हैं। ठीक यही बात पश्चिमीय राष्ट्रों की भी है। पश्चिमीय राष्ट्रों में गुणग्राहकता की कितनी अधिक मात्रा है, यह बात कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'नोबुल प्राइज़' मिलने के उदाहरण से ही ज्ञात हो सकती है। पहले इंग्लैंड के कई बड़े २ कवियों का इसी प्रकार आदर किया जा चुका है। असंख्य पश्चिमीय कवियों को अपने काव्यों के पलटे अपूर्व द्रव्य-प्राप्ति हुई थी। [illegible] को 'चाइल्ड हॅरोल्ड' नामक काव्य लिखने के उपलक्ष्य में [illegible] हज़ार पौंड मिले थे तथा 'डॅन जुआन' काव्य लिखने पर [illegible] पौंड मिले थे। थॅामस मूर को 'लालारुख' काव्य लिखने के बदले ४००० पौंड और "आइरिश मेलडिज" के बदले तेरह [illegible] छ सौ पौंड प्राप्त हुए थे! थॅामस कॅम्पबेल को "प्लेज़र्स ऑफ [illegible]" काव्य के बदले पौने चार हज़ार पौंड मिले तथा लॉर्ड टेनिसन को उनके कवित्व के उपलक्ष्य में, दश बारह हज़ार पौंड वार्षिक [illegible] नियत किया गया था। क्या इन उदाहरणों को देखकर भी [illegible] भारतीय धनिक और देशी नरेश कवियों का आदर करना सीखेंगे?

चीन देश की विचित्रता।

प्रायः सभी देशों में कुछ न कुछ विचित्र आचार विचार होते हैं। जो राष्ट्र जितने अधिक प्राचीन होते हैं, उनके आचार विचार भी उतने ही अधिक पुराने रहते हैं। चीन देश पृथ्वी के प्राचीनतर राष्ट्रों में गिना जाता है, अतएव वहां के आचार बड़े ही आश्चर्यजनक हैं। कहा जाता है कि वहां नाटी स्त्रियों की बड़ी क़दर की जाती है। जो स्त्री जितनी ही नाटी होगी, सुन्दरता में भी उसका उतना ही अधिक [illegible] नम्बर होगा। विशेष कर वहां की जिस स्त्री के पांव [illegible] पांवों की अंगुलियां अत्यन्त छोटी होती हैं उसको [illegible] अधिक रूपवती समझते हैं! प्रत्येक स्त्री में उक्त गुण लाने के लिये छोटी अवस्था ही से पैरों में लोहे के या अन्य किसी तरह के बूट पहनाते हैं, जिससे उनकी अँगुलियों की बाढ़ [illegible] है और उनकी यौवनावस्था के पूर्ण हो जाने पर वे आदर्श [illegible] की खानि समझी जाने लगती हैं। उस देश में इसी प्रकार की और भी कई विलक्षण रस्में हैं। यह भी कहा जाता है कि वहां पर किसी मनुष्य या स्त्री के मरने पर न तो वे दफ़नाए [illegible] और न जलाये ही जाते हैं। वरन ज्यों ही कोई आदमी [illegible] है, त्यों ही उसका अचार बना दिया जाता है! [illegible] आश्चर्य की बात तो यह है कि उस सारे मुर्दे का, बिना [illegible] किये, अचार बनाया जाता है। यदि किसी धनी [illegible] कोई बड़ा आदमी भोजन करने जाये तो उसे यही मुर्दे [illegible] परोसते हैं। यदि चीन में कभी बड़ा भोज हो, तो [illegible] पकवान उस भोज में परोसे जाते हैं, उनमें मुर्दों के [illegible] प्रमुखता से गणना की जाती है। [illegible] पर भी उनके [illegible] पता होनी चाहिये कि यह अचार मुर्दे के [illegible] हो, अन्य किसी अवयव का नहीं! हमारी ओर भी, [illegible] इसी प्रकार की एक प्रथा प्रचलित है। पारसी अपने मुर्दे गाड़ते और न जलाते ही हैं, वरन गीदड़ों के द्वारा [illegible] हैं। पर, अखिल जगत में मुर्दों का उपयोग करने [illegible] कहीं भी प्रचलित नहीं है। इससे चीन देश की [illegible] और बड़ी विचित्र है!

ने ११ से २३ प्रतिशत हो गया है, किन्तु युद्ध की भयानकता के बढ़ जाने से ४० प्रतिशत नाश का अनुमान बोजिहर साहब बतलाते हैं। उनके विचार में सब कारणों से इस युद्ध में एक करोड़ तीन लाख आदमी युद्ध-देव की भेंट होंगे। यदि एक आदमी का मध्यम मूल्य २१३३ डालर्ज़ लगाया जावे तो इन वीरों की मृत्यु से जातियों को ३५,१६,६०,००,००० डालर्ज़ की अधिक हानि होगी। पूर्व की हानि के साथ मिलाकर हम कह सकते हैं, कि ११ भारतवर्ष भस्मीभूत हो जावेंगे! साथ ही जातियों में युवकों, वीरों और योद्धाओं के मर जाने से वृद्धों, बालकों तथा स्त्रियों का बाहुल्य हो जावेगा। आगामी वर्षों में धन कमाने के लिये नहीं, बरन किसी नयी रक्त-रसिक जाति से अपनी रक्षा करने के लिये भी वीरों की पर्याप्त संख्या, न जातियों के पास, न रहेगी। तब वाममार्ग के प्रचार का भी बहुत भय है। युद्ध के पूर्व भी यूरोपीय देशों में स्त्रियों की संख्या अधिक थी। अब तो अपूर्व विषमता हो जावेगी। यथा—

१९१०—११ में नारियों की अधिकता।

ग्रेटब्रिटन	...	१३,२८,६२५
फ्रांस	...	६,३४,०००
जर्मनी	...	८,५१,८००
आस्ट्रिया हंगरी		६,११७११
रूस	...	१३,४४,४००
इटाली	...	६२७११७
बेलजियम	...	६२,२०६
		५५,३८,७३१

पुरुषों की अपेक्षा, उक्त ७ देशों में, नारियों की संख्या लगभग ५६ लाख अधिक थी! हम ऊपर कह चुके हैं, कि इस द्विवार्षिक युद्ध में एक करोड़ बीस लाख आदमी मरेंगे, अतः युद्ध के अनन्तर यूरोप के उक्त ७ देशों में ही एक करोड़ ७६ लाख नारियों की संख्या अधिक हो जावेगी। नेपोलियनीय युद्ध में फ्रांस के लाखों पुरुष मारे गये थे। फिर भी १८१६ में युद्ध का अन्त होने पर वहां पर १००० नारियों के प्रति ९५० ही पुरुष रह गये थे। जिस विषमता को वह देश एक सौ वर्षों के बीतने पर भी पूरा न कर सका। देखें, इस युद्ध से जो विषमता उत्पन्न होगी-जो १०२० नारियों के प्रति ९१४ पुरुष ही केवल ७ देशों में रहेंगी-तो क्या भयानक परिणाम निकलते हैं? परमात्मा की लीला अपार है। भारत की अवनति का आरम्भ वाममार्ग के ही प्रचार से महाभारत युद्ध की समाप्ति पर हुआ; क्या वैसे ही घोर परिणाम यूरोप में होंगे?

वीर पुरुषों की मृत्यु की हानि का पूर्ण अनुभव तभी हो सकेगा, जब पाठकों को पता हो, कि योद्धा जातियां कुल कितने वीर युद्धक्षेत्र में ला सकती हैं। १९१५ में १५ से ५० वर्षों की आयु वाले नरों की संख्या भिन्न देशों में यों थी—

आस्ट्रिया	९१,१८,०००
हंगरी	५८,१६,०००
जर्मनी	१५६५८१७८
	२८३९२५७८
बेलजियम	२०८९६५०
फ्रांस	१००३४५००
इटाली	७४९६८०७
रूस	२८६६१५००
इंग्लैंड	८९१७५७१
स्काटलैंड	११४६७३१
आयर्लैंड	१०१४३६१
	५७२७१३७८

परन्तु इनमें से सभी युद्धक्षेत्र में नहीं जा सकते। अयोग्यों की संख्या कई लेखकों ने १८-२४ प्रतिशत लगाई है। उक्त संख्या १९११ की है। १९१४ तक उसमें वृद्धि हुई होगी। अतः यदि १० प्रतिशत अयोग्यों की कमी कर दी जावे तो युद्ध क्षेत्र में जर्मन पक्ष २, ५५, ५३, ३२० आदमी भेज सकता है, पर फ्रैंको-आंग्ल पक्ष ५, १५, ४१, २४० आदमी भेज सकता है। अर्थात् जर्मन पक्ष के पास लड़ने के लिये केवल आधे आदमी हैं। फ्रैंको-आंग्ल पक्ष में भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया, कनाडा और अफ़रीका के जो लाखों वीर जा रहे हैं, अभी उनकी गिनती इसमें नहीं की गई है। प्रत्यक्ष तौर पर देखते हुए हम यही कह सकते हैं, कि जो दल अधिक आदमी और अधिक धन युद्ध में लगा सकता है, उसकी ही जीत होगी। धन भी जर्मनपक्ष के पास १५०८३०००००० डालर्ज़ हैं और इंग्लैंड के पास २२७१२०००००० डालर्ज़। परन्तु पूर्व इसके कि हम इस सुगम परिणाम पर पहुंचें, हमें देखना होगा कि जर्मन सिपाही, जनरल सैनिक प्रबन्ध, अस्त्रशस्त्र, लड़ने की विधि, देशहितैषिता, उत्साह और युद्धरसिकता दूसरे दल की अपेक्षा कैसे हैं। दूसरे, देशीय सम्पत्ति की तुलना करना लाभदायक नहीं, परंच देखना यही है कि दोनों दल कितनी चल पूंजी—सोना-चाँदी—युद्धार्थ ला सकते हैं। इसमें से बहुत सी बातें अदृष्ट हैं। किसी अर्थशास्त्र की आँख इन्हें देख कर गणनाओं में माप नहीं सकती। युद्ध के परिणाम पर ही उनका महत्व दृष्टिगोचर हो सकेगा। हम उक्त गणनाओं के आधार पर युद्ध के परिणाम पर कुछ भी नहीं कह सकते।

अभी इस प्रश्न का उत्तर देना रह गया है, कि हर एक जाति अपरिमित धन और वीरतम युवकों की आहुति क्यों देती जाती है? इतने राष्ट्रों के मिलने पर भी क्या जर्मनी को अभी कुछ प्राप्त हुआ है? क्या वह उस भूमि के टुकड़ों के लिये लड़ रही है जो उसे प्राप्त हो चुके हैं? जैसे—

बेल्जियम	११३७३
सर्विया	१८६५०
मान्टेनिगरो	३५०१
फ्रांस	७०००
रूस	

क्या उक्त देशों के लोग अपनी भूमि की रक्षा के लिये लड़ रहे हैं? सर्वथा नहीं, क्योंकि ये देश तो इन लोगों के पास ही रहेंगे। क्या सारे सर्वियन, बेलजियन तथा फ्रेंच—यदि जर्मनी का असम्भव अन्ततः जीत लेना भी सम्भव मान लिया जावे—काले पानी भेज दिये जावेंगे? क्या जहाजों पर लाद कर ये देश से निकाल दिये जावेंगे? कदापि नहीं। क्या मुसलमानी और आंग्ल विजय से हिन्दु लोग देश से निकाल दिये गए थे? नहीं। अत स्पष्ट है, कि भूमि के लिये ये लोग अपने वीरों और तन से प्यारे धन को स्वाहा नहीं करते। बल्कि किसी अन्य अधिकतमप्रिय वस्तु के लिये लड़ रहे हैं। हर एक जाति चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, जीवित रहने-अपनी स्वतंत्र स्थिति को कायम रखने-का नैसर्गिक और अटल अधिकार रखती है। हर एक जाति को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये, कि जिससे वह अपनी जातीयता की वृद्धि बिना रोक टोक करे। पर, शर्त यह है, कि वह इस कर्म में अन्य जातियों के इसी अधिकार को न कुचल डाले। ज़र, ज़मीन और ज़न इस युद्ध के कारण नहीं, परंच जातियों की आत्म-सत्ता, आत्म-रक्षा और आत्म-वृद्धि करने के उच्चतम, पवित्रतम, स्वाभाविक और अच्छिन्न अधिकार ही हैं, कि हर एक जाति देशोत्तेजना से प्रेरित होकर सर्वस्व स्वाहा करने को तत्पर हो रही है। यूरोप में हर एक का यह नियम मंत्र है, कि देशहितैषिता का किंचित भी अंश रखनेवाला मनुष्य कभी यह स्वीकार नहीं करेगा कि उसके देश का प्रत्येक व्यक्ति भोइपति हो जावे, पर साथ ही उसकी जाति दासों की जाति बन जावे! बस, इसी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये प्राण से प्यारे युवक और तन से प्यारा धन युद्ध देव के समर्पण किया जा रहा है।

पेरिस का घेरा।

(सन १८७० ई० में जर्मन सेना ने पेरिस को घेरा लगाया था। उस समय का, थाट एर्स्ट नाम के लेखक का लिखा हुआ, वर्णन।)

ता० २१ दिसम्बर सन १८७१ ई० की तोपें, यद्यपि नियमित रूप से, दागी जा रही हैं, तो भी केवल दो ही दिन में फ्रेंचों के लगभग १५० मनुष्य घायल और खेत रहे ! प्रचंड सेना के देखते अधिकारियों को अधिक हानि के होने की आशंका होती है। पॅथ्रान के पास बहुत हानि हुई और चार कर्मचारी भी आहत हुए। पहले दिन तोपें दागते ही एक भयंकर हृदयद्रावक घटना हुई। कर्नल हीज़लर और उनकी स्त्री, अपने कुछ मित्रोंसहित, पॅथ्रान में, एक प्रातःकाल को चाय पी रहे थे तथा उनका दास घर में था। मित्रों में से एक ने हँसकर श्रीमती हीज़लर से कहा कि 'आज माखन के गोले के बदले तोप का गोला आयगा, और '—इतने में एक गोला घर में आ गिरा। उसी समय ६ मनुष्य, उसी स्थान पर, आहत हो गये। श्रीयुत हीज़लर और श्रीमती हीज़लर बुरी तरह से घायल हुईं। हाँ, डॉक्टर और नौकर पूर्णतया सुरक्षित रहे। सभी लाशें दवाखाने में भेज दी गईं। पर, वे इतनी छिन्न-विछिन्न हो गई थीं कि उनमें से किसी को भी पहचानना अत्यन्त कठिन था। प्रशियन्स ८० तोपें दाग रहे हैं। और, उनमें से कई ऐसी भी तोपें हैं, कि वे साढ़े तीन या चार मील तक दागी जा सकती हैं।

घेरे के विषय में अन्यान्य भी कई आश्चर्यकारक बातें हैं। धर्म और परोपकार विषयक बातों के कारण प्रसिद्धि पाया हुआ मि० गौरिंलग नाम का एक प्रख्यात खल्लासी 'सौन' पलटन में है। क्रिसमस के एक दिन पहले, सायंकाल को, ५००-६०० गज की दूरी से दोनों सेनाओं में बन्दूकें दागने की सलामी शुरू हो जाने पर वह भी अपने कार्य में मग्न हुआ। मध्यरात्रि में वह प्रशियन सेना में गया और उसके क्रिसमस के गाने का राग छेड़ने ही प्रशियन सेना ने बन्दूकें दागना बन्द कर दिया। पर, उसके गाना बंद कर, वहां से अपनी सेना में चले जाने पर, फिर से प्रशियन सेना ने बन्दूकें दागना शुरू किया !

पेरिस में अन्न की कमी।

कल एक मनुष्य ने अपनी लाड़िली बिल्ली के लिये मांस के टुकड़े मोल लेने के लिये अपने नौकर को बाज़ार में भेजा। तब उसे दूकानदारों से यह उत्तर मिला, कि 'अब बिल्लियों के लिये मांस नहीं बेचते, वरन मांस बेचने के लिये ही हम बिल्लियां मोल लेते हैं।' डिबूज नाम के एक स्टॉक ने, हाल ही में, एक हज़ार अस्सी पौंड में तीन हाथी मोल लिये हैं। वह उनका मांस चौबीस पेन्स प्रति पौंड के हिसाब से 'घेरे का मांस' कह कर बेचनेवाला है, जिससे बहुत होगा तो श्रीमानों के खानसामों (रसोइयों) को ८।१० दिन के लिये काम मिल जायेगा। पर, गरीबों को उससे कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त यदि यथायोग्य सरकार होती तो भले-बुरे सभी प्रकार के मांस को अपने अधिकार में लेकर सभी को बराबर बाँट देती। पर, वैसा न होने ही से किसी बात का पता नहीं चलता। यदि सचमुच ही हम लोगों के लिये हाथी और घोड़े चीर कर खाने का प्रसंग उपस्थित होगया है तो, अन्यान्य साधनों के अभाव से, अब शरण जाने का मौका आया है या नहीं ? सरकार को जिस मार्ग को मार्ग की पहली दशा को करना है, वही उनको जनवरी के पहली तारीख को ही करना होगा। जिससे कम से कम और भी दो मास तक होने वाला भयंकर संहार तो टले।

पेरिस नगर में जर्मनों का प्रवेश।

(ता. १ मार्च सन १८७१ ई.)

जर्मन सेना प्रातःकाल के १० बजे पेरिस में घुसने को थी, पर प्रातःकाल के ८-३० बजे ही उहलाण सवारों में से पांच आदमी प्रसिद्ध 'विजय महराब' के पास गये। और, उनका अगुआ अपनी तलवार को घुमाकर अपने साथियों सहित अंदर घुसा तथा उसने अपने हाथ से दरवाज़े की सांकल तोड़कर पेरिस हस्तगत कर लिया। फिर कुछ देर के बाद ३० हज़ार सैनिक शहर में घुसे और उन्होंने शहर की सभी बड़ी बड़ी इमारतें व्याप लीं। कुछ बदमाश लोगों ने शहर के पुतलों* के मुँह पर जली हुई रोटियां रख दीं। तब उन्हें मानो विधवाओं का स्वरूप प्राप्त हुआ था ! अवश्य ही यह दशा देखकर देवताओं को भी अश्रु बहाने पड़ते। उक्त बात के सुनते ही एक प्रशियन से, अपने शरीर पर डॉक्टर के शस्त्रक्रिया करते हुए भी, बिना हँसे नहीं रहा गया।

" जीते गये लोगों को धिक्कार है ! "

उसके अनन्तर कुछ देर तक, बिना किसी उद्देश से ही, उपद्रव किये गये। तब लोगों को अपने २ घरों के न छोड़ने का अनुरोध करने पर भी कई लोग वहां से चल दिये। प्रशियन लोगों को मालूम हो गया था, कि पेरिस के उच्छृंखल लोग युद्ध की अपार अतएव निरुपयोगी इच्छा से पागल हो गये हैं। उसी प्रकार उन्हें—प्रशियन लोगों को—पूर्ण जय प्राप्त हो जाने पर, चिढ़ कर, पागलों को खिझाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। पर, उन्होंने 'जीते गये लोगों को धिक्कार है !' जैसे शब्दों से अंकित झंडे सारे शहर में घुमाए। इसके अतिरिक्त फ्रेंचों को मालूम कराने के लिये, विशिष्ट स्थानों पर, कुछ कर्मचारी भी रखे गये। विजय गर्व से फूले हुए उहलाण अथवा हुसार सवार उन अधिकारियों को ऐंठ कर बार बार सलाम करते थे।

पेरिस के गिरते ही मुझे कम से कम बड़ा आनन्द तो भी होना चाहिये था अथवा खूब दुखग्रसित हो जाना था। पर, मैं उभय विकारों से अछूता रहा। जिसे युद्ध की चाह है, उसे फौजी दृश्य भव्य दिखाई देता है। मेरी प्रकृति वैसी ही थी, अतः मुझे भी वैसा ही दिखाई दिया। जब सॅडोवा की विजयी सेना जर्मन सुलतान के आगे की ओर चल रही थी, तब उस भव्य दृश्य को देखकर मैं चकरा गया। उसके बाद मुझे आज तक वैसा दृश्य नहीं दिखाई दिया। यहां तुम्हारी यह स्वतंत्रता और स्वावलम्ब कुछ भी काम का नहीं है !

* राजक्रांति के समय व्यक्तियों के पुतले खड़े करना महापाप समझा जाता था। इससे पुतले देश के प्रसिद्ध शहरों के नामों से पुकारे जाते थे।

---

(१) सदा सर्वदा अच्छे कार्य करने ही में अपना समय और शक्ति खर्च करो।

(२) अच्छा बर्ताव ही संसाररूपी गाड़ी की कील है। अतः हमें उस गाड़ी की रक्षा के लिये कील मजबूत रखनी चाहिये।

(३) अपने आश्रित जनों और सेवकों पर दया-भाव रखना चाहिये।

(४) 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' यह वाक्य सभी मनुष्यों का मूल-मंत्र रहना चाहिये।

(५) जिस मूर्ख को अपनी मूर्खता मालूम हो जाती है, उसे सदा बुद्धिमान समझना चाहिये। पर, जो मूर्ख होनेपर भी अपने को बड़ा बुद्धिमान मानता हो, उसके बराबर मूर्ख कोई है ही नहीं।

(६) क्रोध उत्पन्न हो जाने पर भी जो उसे रोक रखता है, वही देहरूपी रथ का सच्चा सारथी है।

(७) सर्वदा ऐसे ही कार्य करो, जिससे सभ्य और सदाचारी लोग तुम से मित्रता करने को ललचाते रहें।

बुद्ध.

मदन-दहन।

लेखक—प्रो. शिवराम महादेव परांजपे एम. ए.
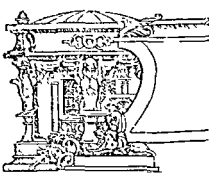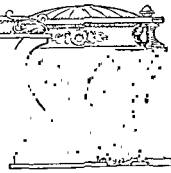
किसी समय एक गुरुभक्त शिष्य ने अपने परमपूज्य गुरूजी से पूछा, कि "महाराज, आप जैसे गुरुओं की संख्या, इस पृथिवी पर, बहुत ही कम होगी। और, यदि सचमुच सभी गुरू आप जैसे ही हो जायँगे तो मुझे किसी भी बात की आशंका नहीं रहेगी। पुण्यपावन महात्मा तो मुझे सर्वदा वंदनीय हैं ही। पर, मैं जब कभी आप के द्वारा ही असाधुता का बर्ताव करनेवाले साधु पुरुषों की बातें सुनता हूं, तब मुझे यही प्रश्न आकर दबाता है, कि ये लोग व्यर्थ के ढोंग क्यों रचते हैं? इस आशंका के आप से समर्थन करा लेने का सामर्थ्य मुझ में नहीं है, इसीसे मैं उक्त प्रश्न को अपने मन के मन ही में रखता हूं।

गुरूजी बोले, 'बिना किसी बात के पूछे भला आशंका कैसे निवृत्त हो सकती है? अतः तुझे चुपचाप रहना योग्य नहीं था। आशंकाओं का यथायोग्य रीति से समाधान होने से ही मन प्रफुल्लित और उदात्त होता है। और, इसीलिये गुरू अपने शिष्यों की शंकाएँ दूर करते रहते हैं। अतः तेरी इस आशंका का भी निरसन होना अतीव आवश्यक है। इसलिये मैं तुझे प्राचीन इतिहास कहता हूं। वह अत्यन्त महत्व का है, अत. तू उसे ध्यानपूर्वक सुन और फिर उसका मनन कर।

कदाचित यह तो तुझे मालूम ही होगा, कि मानवी राजाओं के युद्ध आरम्भ होने के पूर्व, प्राचीन काल में, देवता और दानवों के युद्ध हुआ करते थे। ऐसे ही एक युद्ध में तारकासुर नाम का दैत्य विजयी होकर इतना प्रबल हो गया कि उसने देवताओं को बन्दीगृह में कैद कर आप तीनों लोक का राज करने लगा। तब देवताओं को उसके जीतने की चिन्ता हुई। वहं मानी, मनुष्य-जन्म पाकर अच्छे योद्धा होते हुए भी, स्वराज्य-रक्षा के प्रीत्यर्थ शत्रुओं के साथ लड़ना छोड़कर, युद्ध में भाग लेने या न लेने के विषय में, कई बार आपस ही में लड़ा करते हैं। तदनुसार देवताओं के लिये तो उससे भी कठिनतर प्रसंग उपस्थित हुआ। उस समय जगत के सभी योद्धा हतवीर्य हो जाने से नया योद्धा पैदा कर उसके द्वारा शत्रु का पराभव कराने के लिये देवताओं को अनेक प्रयत्न करने पड़े। उन्हें उस समय एक अपूर्व योद्धा चाहिये था। और, असामान्य योद्धा सामान्य माता

मदन दहन।

पिता के वीर्य से कैसे उत्पन्न हो सकता था? अद्वितीय फल के प्र करने के लिये तो भूमि और बीज अद्वितीय ही चाहिये। भ्रष्ट आचर करनेवालों में उक्त सामग्री का सर्वदा अभाव ही होता है, पर ईश्वर यहाँ उसकी क्या कमी है? महादेव के पास तो इस अपेक्ष की पूर्ति के लिये चाहे जितना तपःसामर्थ्य था। अत देवता ने उनके द्वारा ही, जगतमाता श्रीपार्वतीजी की कोख से, पुत्रोत्पा कराने का निश्चय किया। विचार करना अधिक कठिन नहीं थ पर उस को कार्यरूप में परिणत करने की क्रिया कठिनतर थी श्रीमहादेव कैलाश पर्वतपर समाधि लगाए ध्यानस्थ बैठे थे और द के यज्ञ में अपमानित हो से, पहले क्रोध से औ फिर अग्नि से, दग्ध पा हुई दाक्षायणी पार्वती रूप में अपने पुनर्जन्म बाल्य-काल की परिसमा की अवस्था में हिमालय प र्वत के अरण्यमय प्रदेशों क्रीड़ा करती फिरती थीं अतः इस युगल का सम गम कराना असम्भवनी था। पर, तारकासुर व परतंत्रता से परित्रस्त दे ताओं को उक्त उद्देश्य क पूर्ति के लिये एक मा मिल ही गया। इन्द्र मद को बुला लाया और उसने शंकर के शरीर में घुसक उनकी समाधि का भं करने के लिये, उसे उस काया। मदन ने भी इन्द्र का कहना मान लिया और, शीघ्र ही उस हिमालय पर्वत की परि स्थिति में एकदम परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया बर्फ़ से जले हुए वृ पल्लवाच्छादित हुए, कोकि लाएँ मधुरगान करने लगीं भगवान शशलांछन के धवल ज्योत्स्ना का अमृत प्रवाह सब दूर बहने लग और हिमालय की नर्म वनराजियों में अप्सराओं का नृत्य और गायन शुरू हो गया। इस प्रकार हिमालय की परि स्थिति की कायापलट का धीरे २ शंकरजी की समाधि पर भी कुछ २ परिणाम होने लगा। उस अवसर पर देवताओं ने पार्वतीजी को भी परिचर्या के मिस से शंकरजी के पास पहुँचाने की व्यवस्था की। तब उक्त सुअवसर के देखते ही मदन ने अपना पुष्पबाण सज्जित किया।

बाह्य स्थिति की कृत्रिम पलट का शंकरजी के मन पर भी बहुत कुछ परिणाम हुआ। उनके चित्त की एकाग्रता नहीं हुई, समाधि

भंग हुआ, विषयों के मुद्रित द्वार धीरे २ खुलने लगे और
ाग्रता से, परावृत्त होकर बहिर्मुख दशा प्राप्त चित्तवृत्ति उन
ियेन्द्रियों के द्वारों से, बाहर भटकने लगी। तब शंकरजी को होश
या और उन्हें समाधि का भंग होने पर अत्यन्त क्रोध
आया। क्रोध से उनका शरीर सुर्ख़ हो गया, नेत्र आरक्त हो
और उनके जिस नेत्र में सदासर्वदा अग्नि रहा करती थी, उस—
ीय नेत्र-में से अत्यन्त उग्र और भयप्रद, शेष-जिव्हाओं की तरह,
ख़ों ज्वालाएँ प्रकट हुईं। उन्होंने समाधी का भंग करनेवाले
खोजने के लिये अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई, तब शरसन्धान
नेवाला मदन उन्हें सामने ही दिखाई दिया। इतने में शंकर के तृतीय
की ज्वालाओं ने उसे परिवेष्टित कर लिया, जिससे वह अल्प
ा ही में खाक हो गया।

यहां तक का कथाभाग तो सभी को मालूम है। अनेकानेक
ाणों और काव्यों में भी इसका वर्णन देख पड़ता है। पर, इस घटना
अनन्तर की दशा का वर्णन कहीं पर भी नहीं मिलता।
म्भवत· हमारे नष्टप्राय ग्रन्थों के साथ ही उस कथाभाग का भी
श हो गया होगा। तो भी जिन्होंने उन ग्रंथों का मनन किया
, उनके द्वारा, उस समय का हाल, कर्ण-परम्परा से
ा सुना है, वही मैं तुझे सुनाता हूं। इसे सुनती बार तू अपना
त्त व्यग्र न कर।

मदन के दग्ध होते ही सब दूर हाहाकार मच गया,
त की फैलाई हुई शृंगार विषयक सारी माया नष्ट
गई, रति शोक करने लगी, शंकरजी अरण्य में चले गये, पार्वती
का मनोभंग हुआ और देवताओं की आँखों से निराशा के
ाश्रु टपकने लगे। क्योंकि; अब उन्हें महादेव और पार्वती के
ागम की आशा ही नहीं रही! पर, महादेव और पार्वती
समागम के बदले मदनलोप के कारण जगत के अन्यान्य
ागमों की क्या दशा हुई होगी; इसका किसीने कभी
चार नहीं किया। उस समय हिमालय पर क्या गड़बड़ मच
ी थी, देवताओं ने कौनसा षड्मंत्र रचा था और वह कैसे
फल हो गया; इसकी लोगों को कल्पना तक नहीं थी। उन्हें
केवल तारकासुर के प्रबल होजाने तथा देवताओं के परतंत्र बन
ने की ही ख़बर थी। पर, देवताओं के उपरान्तिक प्रयत्न और काम-
 के दहन की ख़बर मृत्युलोक के लोगों को तो बिलकुल ही मालूम
हीं थी। वे बड़े आनन्द में थे और उनके सारे व्यवहार यथावत्
 रहे थे। मदन के अस्तित्व के निश्चय पर वे हवाई किले बनाने
 ही सर्वदा मशगूल रहा करते थे। कोई माता-पिता अपने पुत्र-
त्रियों की जन्मपत्रियां मिलाकर विवाह-तिथि का निश्चय कर रहे
। कोई वधू और वर स्वतः ही गांधर्व विवाह करने की गड़बड़
 लगे हुए थे। कोई किसी के विवाह बन्धनों के तोड़ने और
ोई उत्तम सम्बन्ध कराने का प्रयत्न करते थे; कोई स्वकीय
धू-समागम से उकता कर परकीय चौर्य समागम की आयोजना
ी [illegible] साधने की चिन्ता में थे; कोई अपनी वेश्याओं
ी धनतृष्णा शान्त करने की विवंचना में थे; किसी को मदनावेग
 [illegible] का ही ख़याल नहीं था; कोई हीन जातियों से संबंध करने
 नहीं हिचकते थे; किसी को लोकापवाद के लांछन की पर
वाह नहीं थी और कोई तो सदुपदेश सुनना तक पसन्द नहीं करते
। कोई स्त्रियां अपने प्रियवरों के चित्र खींचती थीं। कोई दूतियों
के हाथ सन्देशा भेजती थीं और कोई उन्हें पत्र लिख रही थीं। कोई
विरहिणी स्त्रियाँ अपने प्रियजनों के आगमन की राह देख रही थीं।
कोई कलहांतरिता अपने प्रियजनों का प्रसादन करने की युक्ति
सोच रही थी। कोई वासकसज्जा सभी तरह की तैयारियां कर,
अपने प्रिय जन के आगमन की देर हो जाने से, उत्कण्ठित हो रही
थी। कोई अभिसारिकाएं सूर्य के जल्दी अस्त न होने से, उसे दोष
दे रही थीं। कोई मुग्धा प्रथम प्रिय-संगम के समय [illegible] का बहाना
[illegible] रही थीं। कोई प्रौढ़ा अपने प्रिय जन के [illegible]
[illegible] की बात [illegible] रही थी। कोई [illegible]
[illegible] का निश्चय कर रही थीं। [illegible]
[illegible] किये जा रहे थे। [illegible]
[illegible] किया जा रहा था। [illegible]
[illegible] किये जा रहे थे।
[illegible] हो रही थी। [illegible]
[illegible]

फाड़ने के लिये मिहदी भिगोई जा रही थी। उत्तम वस्त्र, परिधान
करने के लिये, चुन रखे थे। अच्छे अच्छे बहुमूल्य अलंकार एकत्रित
किये गये थे। दर्पण स्वच्छ किये गये थे। गृहोद्यानों में फव्वारे छूट
रहे थे, जिससे हंसपक्षी किलोलें मार रहे थे। कमल पुष्पों के
आसपास भ्रमर गुंजारव कर रहे थे। कोयलों और वीणाओं का
पंचम स्वर सुन पड़ता था। राग बढ़ रहा था। मान घट रहा था।
विलास, माधुर्य, ललित, हाव और भाव समुल्लसित होने लगे थे।
व्रीडा लोपायमान हो रही थी। रोमांचादिक सात्त्विक विकार
उत्पन्न होने लगे थे। नृत्यगायनादि की तैयारी हो रही थी। और,
शृंगार विषयक काव्यवाचन की परिसमाप्ति की लालसा उत्पन्न हो
रही थी। सारांश, उस समय शृंगार रस अपना सच्चा-उग्रस्वरूप
धारण किये हुए था। इस प्रकार समग्र जगत प्रेमरस में आकंठ डूब
जाने पर, किसी को भी बिलकुल ख़बर न लगते हुए, जगत के एक
सिरे पर-हिमालय के शृंग पर-मदनदाह की ऐसी अपूर्व घटना हो
गई।। कि जिससे जगत के शृंगाररस के विस्तीर्ण प्रपंच में अकस्मात्
बड़ी विचित्र क्रांति हुई।

मदन ही समग्र जगत के प्रेम का आधार है। वही सारी काम-
वासनाओं का अधिष्ठाता है, इसीसे उसे कामदेव कहते हैं।
प्रेमरस के सभी सोतों का उगम उसीसे हुआ है। यद्यपि उसकी
बीजभूत मूर्ति का पौराणिक वास्तव्य स्वर्गलोक है, तथापि
प्रत्येक प्राणि का मन ही उसके रहने का यथार्थ स्थान होने से उसे
मनोभव कहते हैं। इस प्रकार उस व्यापकस्वरूप मदन का, हिमा-
लय पर, श्रीशंकर के क्रोधानल से निःशेष दाह हो जाते ही सारे जगत
के प्रेमरस के सोते बन्द हो जाने वा कामवासना के नष्ट हो जाने
से पृथिवी पर हाहाकार मच जाना सर्वथा सम्भवनीय था। यद्यपि
प्राण हृदय में रहता है, तथापि वह वहीं से सारे शरीर के व्यापार
करता रहता है। पर, उस के निकल जाते ही जिस प्रकार शरीर
के सभी व्यापार बन्द हो जाते हैं, उसी प्रकार देवलोक में रहकर
सभी मनुष्यों की कामवासनाओं का व्यापार करनेवाले मदन
का उच्छेद हो जाने से यदि जगत के शृंगार के सभी व्यापार बंद
हो गये हों तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। सारांश,
मदन का देह दग्ध होते ही पृथिवी पर बड़े अनर्थ होने लगे,
विलक्षण चमत्कार देख पड़े, व्यवहारों में चाहे जैसे फेर-फार होने
लगे और उन क्रांतियों के होने के मुख्य कारण से सभी मानव
अनभिज्ञ रहे।

जिन्हें कभी किसी ने नहीं देखा था, नहीं सुना था अथवा
जिनके होने की कभी किसी को कल्पना नहीं थी, ऐसे विविध
प्रकार, मदन की मृत्यु से, पृथिवी पर होने लगे। नये बंधनेवाले
विवाह-बन्धन टूटने लगे। जहाँ पुराने विवाहों के टिकने की
तक आशंका थी, वहाँ नये विवाह किस प्रकार से हो सकते थे! गुप्त
गांधर्व विवाह के जो युग्म, कुछ देर के पहले, प्रेम दिग्दर्शक अंगु-
लित्राण (अंगूठियाँ) का आपस में बदला करने के लिये उत्सुक
हो रहे थे, वे ही अब एक दूसरे से मुख मोड़ने लगे। जिस प्रकार
सूर्य को ग्रहण लगने से, उसका तेज-मंद होते ही, छोटे २ नक्षत्र दिन
में देख पड़ते हैं, उसी प्रकार वेश्यागमन, गर्भवती विवाह तथा
हीन जाति सम्बन्धादिक तत्त्व धुंधले दिखलाई देने लगे! और तो
क्या, अपने प्रिय जनों के खींचे हुए चित्र अधूरे ही पड़े रहे, लग-
लिख रखे हुए पत्र भी दूतों के हाथ नहीं भेजे गये। विरहिणी
की उत्कंठा नष्ट हो गई। जो कलहांतरिता रिस भरी बैठी रही
थी, उसकी समझावन करने के लिये कोई भी नहीं गया।
वासक सज्जाओं ने, अपने अलंकारों का भार न सम्हाल
सकने के कारण उन्हें, तिलांजलि दे दी। अभिसारिकाओं ने [illegible]
[illegible] का निश्चय रहित किया। मुग्धा, मध्यमा और प्रौढ़ा के
[illegible] के भेद का रहस्य नष्ट सा हो गया। पुष्पहार गूँथने बंद। [illegible]
[illegible] का सुवास जाता रहा। मानभूषण गुम गये। शरीर [illegible]
की सारी क्रियाएं बंद होगईं। लताओं ने वृक्षों का आलिंगन [illegible]
कर दिया। चक्रवाक-चकवी का रात में विरह होने [illegible]
[illegible] कर [illegible] हो गया। मयूर और मयूरी के नृत्य [illegible]
ही नहीं जमने पाया। उत्सुकता नष्ट हो गई। विलास [illegible]
हो गया। प्रेमरस का समुद्र सूख गया। संभोग और शृंगार नष्ट
हो गये। और, [illegible]

का भंग हुआ, विषयों के मुद्रित द्वार धीरे २ खुलने लगे और एकाग्रता से, परावृत्त होकर बहिर्मुख दशा प्राप्त चित्तवृत्ति उन विषयेन्द्रियों के द्वारों से, बाहर भटकने लगी। तब शंकरजी को होश आया और उन्हें समाधि का भंग होने पर अत्यन्त क्रोध चढ़ आया। क्रोध से उनका शरीर सुर्ख़ हो गया, नेत्र आरक्त हो गये और उनके जिस नेत्र में सदासर्वदा अग्नि रहा करती थी, उस— त्रितीय नेत्र-में से अत्यन्त उग्र और भयप्रद, शेष-जिह्वाओं की तरह, सहस्त्रों ज्वालाएँ प्रकट हुईं। उन्होंने समाधी का भंग करनेवाले को खोजने के लिये अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई, तब शरसन्धान करनेवाला मदन उन्हें सामने ही दिखाई दिया। इतने में शंकर के तृतीय नेत्र की ज्वालाओं ने उसे परिवेष्टित कर लिया, जिससे वह अल्प क्षण ही में खाक हो गया।

यहाँ तक का कथाभाग तो सभी को मालूम है। अनेकानेक पुराणों और काव्यों में भी इसका वर्णन देख पड़ता है। पर, इस घटना के अनन्तर की दशा का वर्णन कहीं पर भी नहीं मिलता। सम्भवतः हमारे नष्टप्राय ग्रन्थों के साथ ही उस कथाभाग का भी नाश हो गया होगा। तो भी जिन्होंने उन ग्रंथों का मनन किया था, उनके द्वारा, उस समय का हाल, कर्ण-परम्परा से मैंने सुना है, वही मैं तुझे सुनाता हूँ। इसे सुनती बार तू अपना चित्त व्यग्र न कर।

मदन के दग्ध होते ही सब दूर हाहाकार मच गया, उस की फैलाई हुई शृंगार विषयक सारी माया नष्ट होगई, रति शोक करने लगी, शंकरजी अरण्य में चले गये, पार्वती जी का मनोभंग हुआ और देवताओं की आँखों से निराशा के दुःखाश्रु टपकने लगे। क्योंकि; अब उन्हें महादेव और पार्वती के समागम की आशा ही नहीं रही! पर, महादेव और पार्वती के समागम के बदले मदनलोप के कारण जगत के अन्यान्य समागमों की क्या दशा हुई होगी; इसका किसीने कभी विचार नहीं किया। उस समय हिमालय पर क्या गड़बड़ मच रही थी, देवताओं ने कौनसा षड्मंत्र रचा था और वह कैसे निष्फल हो गया; इसकी लोगों को कल्पना तक नहीं थी। उन्हें तो केवल तारकासुर के प्रबल होजाने तथा देवताओं के परतंत्र बन जाने की ही ख़बर थी। पर, देवताओं के उपरान्तिक प्रयत्न और कामदेव के दहन की ख़बर मृत्युलोक के लोगों को तो बिलकुल ही मालूम नहीं थी। वे बड़े आनन्द में थे और उनके सारे व्यवहार यथावत् हो रहे थे। मदन के अस्तित्व के निश्चय पर वे हवाई किले बनाने में ही सर्वदा मशगूल रहा करते थे। कोई माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों की जन्मपत्रियाँ मिलाकर विवाह-तिथि का निश्चय कर रहे थे। कोई वधू और वर स्वतः ही गांधर्व विवाह करने की गड़बड़ में लगे हुए थे। कोई किसी के विवाह बन्धनों के तोड़ने और कोई उत्तम सम्बन्ध कराने का प्रयत्न करते थे; कोई स्वकीय वधू समागम से उकता कर परकीय चौर्य समागम की आयोजना की टिप्पस साधने की चिन्ता में थे; कोई अपनी वेश्याओं की धनतृष्णा शान्त करने की विवेचना में थे; किसी को मदनावेग से छुटकारा ही ख़याल नहीं था; कोई हीन जातियों से संबंध करने में नहीं हिचकते थे; किसी को लोकापवाद के लांछन की परवाह नहीं थी और कोई तो सदुपदेश सुनना तक पसन्द नहीं करते थे। कोई स्त्रियां अपने प्रियतमों के चित्र खींचती थीं। कोई दूतियों के हाथ सन्देशा भेजती थीं और कोई उन्हें पत्र लिख रही थीं। कोई विरहिणी स्त्रियाँ अपने प्रियजनों के आगमन की राह देख रही थीं। कोई कलहांतरिता अपने प्रियजनों का प्रसादन करने की युक्ति सोच रही थीं। कोई वासकसज्जा सभी तरह की तैयारियाँ कर, अपने प्रिय जन के आगमन की देर हो जाने से, उत्कण्ठित हो रही थीं। कोई अभिसारिकायें सूर्य के जल्दी अस्त न होने से, उसे दोष दे रही थीं। कोई मुग्धा प्रथम प्रिय-संगम के समय [illegible] बचाव करने की बातें समझ रही थीं। कोई प्रौढा अपने प्रिय जन के कुपित हो जाने की परवाह न करने का निश्चय कर रही थीं। शय्यामंदिर सुशोभित किये जा रहे थे। पुष्प हार गूँथे जा रहे थे। शरीरों में चन्दन और कस्तूरी का सुगंध लेपन किया जा रहा था। चंदन और पुष्पहार के सौरभ से युक्त मंदिर सुवासित किये जा रहे थे। केशकलापों को संवारने की तैयारी हो रही थी। कोमल हाथों पर बेलबूटे काढ़ने के लिये मिहदी मिगोई जा रही थी। उत्तम वस्त्र, धारण करने के लिये, चुन रखे थे। अच्छे अच्छे बहुमूल्य अलंकार पसंद किये गये थे। दर्पण स्वच्छ किये गये थे। गृहवाटिकाओं में फव्वारे [illegible] रहे थे, जिससे हंसपक्षी किलोलें मार रहे थे। कमल पुष्पों के आसपास भ्रमर गुंजारव कर रहे थे। कोयलों और [illegible] पंचम स्वर सुन पड़ता था। राग बढ़ रहा था। मान घट रहा था। विलास, माधुर्य, ललित, हाव और भाव समुल्लसित होने लगे। व्रीडा लोपायमान हो रही थी। रोमांचादिक सात्विक [illegible] उत्पन्न होने लगे थे। नृत्यगायनादि की तैयारी हो रही थी। [illegible] शृंगार विषयक काव्यवाचन की परिसमाप्ति की लालसा [illegible] रही थी। सारांश, उस समय शृंगार रस अपना सच्चा [illegible] धारण किये हुए था। इस प्रकार समग्र जगत प्रेमरस में आकंठ [illegible] जाने पर, किसी को भी बिलकुल ख़बर न लगते हुए, जगत के [illegible] सिरे पर—हिमालय के शृंग पर—मदनदाह की ऐसी अपूर्व घटना [illegible] गई। कि जिससे जगत के शृंगाररस के विस्तीर्ण प्रांत में अत्यन्त बड़ी विचित्र क्रांति हुई।

मदन ही समग्र जगत के प्रेम का आधार है। वही सारी [illegible] वासनाओं का अधिष्ठाता है, इसीसे उसे कामदेव कहते हैं। प्रेमरस के सभी स्रोतों का उगम उसीसे हुआ है। यद्यपि [illegible] बीजभूत मूर्ति का पौराणिक वास्तव्य स्वर्गलोक है, [illegible] प्रत्येक प्राणि का मन ही उसके रहने का यथार्थ स्थान होने [illegible] मनोभव कहते हैं। इस प्रकार उस व्यापकस्वरूप मदन का, [illegible] लय पर, श्रीशंकर के क्रोधानल से निःशेष दाह हो जाते ही सारे [illegible] के प्रेमरस के सोते बन्द हो जाने या कामवासना के नष्ट हो[illegible] से पृथिवी पर हाहाकार मच जाना सर्वथा सम्भवनीय था। [illegible] प्राण हृदय में रहता है, तथापि वह वहीं से सारे शरीर के [illegible] करता रहता है। पर, उस के निकल जाते ही जिस प्रकार [illegible] के सभी व्यापार बन्द हो जाते हैं, उसी प्रकार देवलोक में [illegible] सभी मनुष्यों की कामवासनाओं का व्यापार करनेवाले [illegible] का उच्छेद हो जाने से यदि जगत के शृंगार के सभी व्यापार [illegible] हो गये हों तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। [illegible] मदन का देह दग्ध होते ही पृथिवी पर बड़े अनर्थ होने [illegible] विलक्षण चमत्कार देख पड़े, व्यवहारों में चाहे जैसे फेर [illegible] लगे और उन क्रांतियों के होने के मुख्य कारण से सभी [illegible] अनभिज्ञ रहे।

जिन्हें कभी किसी ने नहीं देखा था, नहीं सुना था [illegible] जिनके होने की कभी किसी को कल्पना नहीं थी, ऐसे [illegible] प्रकार, मदन की मृत्यु से, पृथिवी पर होने लगे। नये [illegible] विवाह-बन्धन टूटने लगे। जहाँ पुराने विवाहों के [illegible] तक आशंका थी, वहाँ नये विवाह किस प्रकार से हो सकते [illegible] गांधर्व विवाह के जो युगम, कुछ देर के पहले, प्रेम [illegible] लिज्ञाण (अँगूठियाँ) का आपस में बदला करने के [illegible] हो रहे थे, वे ही अब एक दूसरे से मुख मोड़ने लगे। [illegible] सूर्य को ग्रहण लगने से, उसका तेज-मंद होते ही, छोटे २ [illegible] में देख पड़ते हैं, उसी प्रकार वेश्यागमन, गर्भवती [illegible] हीन जाति सम्बन्धादिक तत्व धुंधले दिखलाई देने लगे! [illegible] क्या, अपने प्रिय जनों के खींचे हुए चित्र अधूरे ही पड़े [illegible] लिख रखे हुए पत्र भी दूती के हाथ नहीं भेजे गये। [illegible] की उत्कण्ठा नष्ट हो गई। जो कलहांतरिता [illegible] थी, उसकी समझावन करने के लिये कोई भी [illegible] वासक सज्जाओं ने, अपने अलंकारों का भार [illegible] सकने के कारण उन्हें, तिलांजलि दे दी। अभिसारिकाओं [illegible] मरण का निश्चय दृढ़ किया। मुग्धा, मध्यमा और [illegible] बीच के भेद का रहस्य नष्ट सा होगया। पुष्पहार गूँथने [illegible] हलों का सुवास जाता रहा। ताम्बूल सूख गये। शरीर [illegible] की सारी क्रियायें बंद होगईं। लताओं ने वृक्षों का आलिंगन [illegible] कर दिया। चकवा-चकवी का रात में विरह होने [illegible] नित्य प्रति का मामूल बन्द हो गया। मयूर और मयूरी [illegible] ही नहीं जमने पाया। उत्सुकता नष्ट हो गई। [illegible] हो गया। प्रेमरस का समुद्र सूख गया। संयोग और [illegible] हो गये। और, निरन्तर उदासीनता का ही [illegible]

शास्त्र में भी कुछ परिवर्तन करने के लिये तत्कालीन बड़े २ वैय्याकरणियों की एक परिषद् संगठित हुई थी। उसमें, मदन-दहन के कारण जगत की परिवर्तित परिस्थिति के देखते व्याकरण के सूत्रों और लोगों के भाषा प्रचार में से पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का भेद ही नष्ट करने के विषय में कई प्रस्ताव किये जानेवाले थे। और, जिसकी कर्मण्यता के कारण भाषाशास्त्र में उक्त अपूर्व परिवर्तन करने को बाध्य होने की सुसंधि प्राप्त हुई, उस-शिवभाल स्थित तृतीय नेत्र-का अभिनंदन करने का भी एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जानेवाला था। अस्तु।

शंकरजी के क्रोधान्ध नेत्र के मदन के पुष्पमय शरीर पर चिनगारी डालने से केवल शृंगार रस का ही विध्वंस नहीं हुआ वरन वीर, रौद्र, भयानक, हास्य, करुण इत्यादिक रसों का भी, उसके साथ ही, विलय हो गया। क्योंकि, जहाँ प्रेम की भित्ति ही नहीं रही, वहाँ वीराद्भुत कृत्य भी कैसे हो सकते थे? और, अपनी प्रणयिनी के, एकांत में, धन्यवाद-भाजन बनने की आशा न होने पर कौन पुरुष भयानक कृत्यों के भय में व्यर्थ ही अपने को फँसा लेता? इन कारणों से जगत में भी तत्व नहीं रहा। जगत की दशा एकाध सुगंध-रहित पुष्प के सदृश हो गई। उसमें कुछ भी सार नहीं रहा। सरस और सप्रेम उपभोक्ताओं के अभाव से जगत के समग्र सुख व्यर्थ हो गये। यद्यपि शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की चाँदनी देख पड़ती थी, पर जड़ और अरसिक चकोर के अतिरिक्त उस धवल चन्द्रिका का उपभोग करने की वासना किसी में भी नहीं रही। मलयपर्वत पर की हवा चंदन की सुगंधि का भार अपनी पीठ पर लाद कर राह में उसे जहाँ कहीं नदी को पार करना पड़ता था वहाँ नदी के तरंगों के तुषारों से अपने सुगंध की शीतलता की अधिक वृद्धि कर, सभी पूर्व परिचित स्थानों पर घूमती हुई, प्रत्येक गवाक्ष में से अन्तरावलोकन करती थी। पर, उसके आगमन से हर्षित और रोमांचित होनेवाले पूर्व के विलासीजन कहीं पर भी नहीं पड़ते थे। बिचारी कोकिलायें चिल्ला २ कर अपना कंठशोष करती थीं, पर कोई भी विरहिणी पूर्व नियमानुसार उनका अभिनंदन नहीं करती थी। वसंतऋतु के आने और चले जाने का हाल सिवा ज्योतिषियों के और किसी को भी ज्ञात नहीं होता था। वर्षाऋतु में आसमान में मेघ उमड़ आया करते थे, पर उन्हें देखने से पथिकों और पथिक-वनिताओं के मन में अन्योन्य समागम के लिये जो उत्सुकता और आतुरता पहले उत्पन्न हुआ करती थी, उसका अब आविर्भाव नहीं होता था। पान्थस्थों की बाटें मरघट समान ही देख पड़ते थे। लताकुंज सूखते चले थे। जलयंत्रगृह सिवार के कारण निरुपयोगी हो गये थे। क्रीड़ा-सरोवरों में अरण्यस्थ पशु-पक्षी क्रीड़ा करते थे। शय्यागृह शून्यवत् देख पड़ते थे। सौध शिखरों पर पारावतों ने अपना अधिकार प्रस्थापित कर रखा था। दूती और दासी का व्यापार नष्ट हो गया। विट और वयस्य से कुछ प्रयोजन नहीं रहा। वेश्याओं का व्यवसाय नष्ट हो गया। युवक वृद्ध हो चले। संगीत, कलादि लुप्तप्राय हो गई। शृंगार रसप्रधान काव्यों का महत्व नहीं रहा। और, नये शृंगाररस प्रधान काव्य रचने के लिये किसी कवि की प्रतिभा उषःकाल को भी जागृत नहीं हुई। चन्द्रमा प्रतिदिन आसमान में उगता और अस्त होता था। पर, कोई [illegible] कवि भी अपनी कामिनी के सामान्य कपोलों से उस दिव्य चन्द्रबिम्ब की तुलना करने के लिये तैयार नहीं होता था।

सारांश, जिधर तिधर विराग उत्पन्न हो गया। काम वर्षों के होने की आशा न रहने से दूर, [illegible] आदि की किसी को भी फिकर नहीं रही, जिससे सभी सांसारिक घटनाओं में शिथिलता आ गई। [illegible] उमड़ आने से [illegible] हो गये। नई प्रजा का उत्पन्न होना बंद हो जाने से [illegible] जगत का [illegible] के लोगों को [illegible] दिखाई देने लगा। [illegible] [illegible] [illegible]

साध्य होनेवाला ब्रह्मचर्य व्रत आजन्म पालने का निश्चय किया। अब तक 'ब्रह्मचर्यादेव वा प्रव्रजेत' इस वैकल्पित श्रुति का लोप हो गया था। पर, अब कहीं उसका पता चला। श्रुति की आज्ञा के अनुसार गृहस्थाश्रम का झगड़ा न रहने और ब्रह्मचर्यावस्था में से एकदम संन्यासावस्था में प्रवेश करने का कार्य सरल हो जाने से इस साहस के करने के लिये कई लोग उद्युक्त हो गये। इस समय धर्मजागृति की बड़ी भारी लहर सारे जगत में उठ आई। प्रत्येक मनुष्य, अन्य किसी चित्तव्यग्रता का कारण न रहने से, साधु होने लगा। शृंगारादिक रस नष्ट हो गये और शान्त रस की प्रबलता हो गई। गायन-नर्तनादि के द्वारा जन-मनोरंजन करनेवाली मंडली के पास के वाद्य साधुओं के हाथ में चले गये। इस प्रकार मदन का खुला कर दिया हुआ मार्ग अत्यन्त मलीन होने लगा। यति, मुनि, संन्यासी, तापसी, जती, श्रमणक, भिक्षु, साधु, कीर्तनिया, भगवद्भक्त इत्यादिकों के इतने झुंड हो गये कि उनके स्वाँग रचने की सामग्री की पूर्ति करते २ विपुल सृष्टिसंपत्ति भी खुटती चली। वल्कलों के लिये वृक्षों पर छाल नहीं रही। भँगवे कपड़े इतने रँगे गये कि गेरुओं की खानों का नाम निशान तक नहीं रहा। रुद्राक्ष के फल नहीं रहे। तूंबे महँगे हो गये। व्याघ्रांबरों और मृगासनों का बिलकुल अभाव हो गया। और, ज्ञानवल्लि की तो बाढ़ ही एकाएक रुक गई। इस प्रकार जगत की एकाएक कायापलट होगई। नई प्रजा के उत्पन्न न होने और पुराने लोगों का संहार होने से जगत की गति के बंद हो जाने की भी आशंका सभी लोगों को होने लगी।

जगत की कायापलट का हाल ब्रह्मदेव तक पहुँचा। तब उन्हें अत्यन्त विस्मय हुआ और खेद भी। पर, भावी प्रबन्ध करने के पहले उक्त परिवर्तन से होने वाले हानि-लाभ का उन्होंने शांत चित्त से पर्यालोचन करने का विचार किया। तब उन्हें यह मालूम हो गया, कि शंकरजी के उक्त अविचारी कार्य से बहुत से लाभ भी हुए हैं। क्योंकि, उससे लोगों में धर्माचरण, इंद्रियदमन, मनोनिग्रह इत्यादिक विषयों की मात्रा बढ़ चली थी। इसके अतिरिक्त और भी कई लाभ हुए। पाप और अत्याचार कम हुए। अकालीन मृत्यु का रोग जाता रहा। बिना भस्म वा मात्राओं के लोगों की आयु बढ़ी। वैद्यशास्त्र की अधिक आवश्यकता नहीं रही। और, रोगियों के अभाव से स्थिति-स्थापकत्व कायम रखने के कार्य से छुटकारा पाये हुए वैद्यों को अन्य प्रागतिक कार्य करने के लिये अवसर मिल गया। क्षयरोग नष्ट हो गया। गर्भपात, बालहत्या इत्यादि दुराचारों का नामनिशान नहीं रहा। वेश्यागमन जाता रहा। कुकर्मकारी कारणों की जोड़ी कनक और कान्ता का अर्ध सामर्थ्य नष्ट हो गया। और, मनुष्यों को अब केवल पांच शत्रुओं के जीतने की ही चिन्ता हुई। उक्त लिखित जो लाभ हुए, वे निर्विवाद हैं और ब्रह्मदेव को भी इसे मान लेना पड़ा था। तो भी एक यह शंका भी उत्पन्न हुई, कि यदि प्रजोत्पत्ति न होने से जगत की गति ही बंद हो जाने पर उससे लाभ ही कौन उठावेगा? इस विचार से ब्रह्मदेव जगत को पुनः पूर्वस्वरूप दिलाने की चिन्ता में लगे। पहले अनेक युगों तक अनेक प्रयत्नों के प्रयोग कर लेने पर कहीं मदन की युक्ति ब्रह्मदेव के हाथ लगी थी। और इस युक्ति से उन्होंने जगतरूपी शकट को अब तक चलाया था। पर, उसमें शंकरजी के अविवेक से विघ्न के उपस्थित होते ही ब्रह्मदेव को बहुत ही दुःख लगा। "मैंने कितने कष्ट उठाकर जगतरूपी यंत्र की दुरुस्ती एक कूट निकाली थी पर शंकर ने अपने क्रोध से उस यंत्र की मिट्टी पलीत कर दी!" इस विचार से ब्रह्मदेव की आँखों से अश्रु आगये और उनके मुँह से निम्न उद्गार भी निकल गये। 'जगत के उत्पन्न करने का कार्य मुझे सौंप देने पर उसमें हस्तक्षेप करने की किसी को भी आवश्यकता नहीं है। और, यदि [illegible] हस्तक्षेप करेगा तो इस जगत को कैसे चला सकूँगा? यद्यपि [illegible] संहार का कार्य सौंपा गया है, तथापि मुझे पूछे बिना [illegible] करने का उन्हें क्या अधिकार है? अतः इस [illegible] कर के मदनसंजीवन का कार्य करना चाहिये।' इसके [illegible] कार्य में श्रीविष्णु का परामर्श लेने के लिये वैकुंठ को चले।

ब्रह्मदेव ने मदन को जीवित करने और [illegible] श्रीविष्णु का [illegible] लेने के लिये वैकुंठ की ओर [illegible]

पूर्व स्थिति के प्राप्त होने की भावी आशा से सभी लोक बड़े आनन्दित हुए। पूर्वपरिचित कामुक और कामिनी पुनः एक दूसरे की ओर साकांक्ष-दृष्टि से देखने लगे। 'मदन के पुनर्जीवित होने की खबर सर्व दूर फैल गई है और उसकी यथार्थता की सम्भावना भी है। अतः पुन अपने समागम का प्रसंग उपस्थित होने की आशा है। इससे उस समय तक चुपचाप क्यों रहें?" इस आशय के प्रेम पत्र कई भावुकों ने, गुप्त दासियों के हाथ, अपने दुरस्थ भावुकों के नाम भेजे। बूढ़े भी कहने लगे कि यदि हमारे देखते यह परिवर्तन हो जायगा तो हम भी अपने विवाह करेंगे। गरीब लोगों ने विवाहों के लिये रुपये उधार ले रखे। जिन्होंने देश का त्याग कर दिया था अथवा जो तीर्थयात्रा करने में लगे हुए थे, वे सभी अपने २ घर को लौट आये। जो लोग अपनी सम्पत्ति को धार्मिक कार्यों में खर्च करना चाहते थे वे, सन्तान होने की आशा से, अपने दान-पत्रों को नष्ट करने लगे। सारांश; सभी लोग आनन्द के सागर में गोते लगाने लगे। जिन्होंने संन्यासाश्रम की दीक्षा ले ली थी, उन्हें मदन के जीवित होने की खबर लगते ही बहुत पश्चात्ताप हुआ। तो भी आपत्तिकाल में ली हुई सन्यास-दीक्षा प्रतिबन्धक नहीं होती; इस सिद्धान्त को सिद्ध करने की वे यथाशक्ति चेष्टा कर रहे थे। एकबार जला हुआ मदन फिर से जीवित न हो सकने के निश्चय से, सब दूर फैली हुई मदन के जीवित होने की असम्भवनीय बातों पर विश्वास रखकर, चतुर्थाश्रम में से द्वितीयाश्रम में आकर लोगों में हँसी करा लेने की अपेक्षा साधुवृत्ति के बाह्य स्वरूप में फेर न कर, मदन के जीवित हो जाने पर, उससे होनेवाले लाभों को गुप्त रीति से ही लूटने की दोगली और दूरदर्शिता की बातें जिन्हें भाईं, वे साधुवृत्ति में ही अटल रहे।

इधर ब्रह्मदेव के वैकुंठ में, श्री विष्णु के दरबार में, जाने पर उन्हें वहांपर और भी कई देवता एकत्रित हुए दिखाई दिये। वे भी तारकासुर के उपस्थित किये हुए संकटों की बातें श्रीविष्णु से कह रहे थे। तब ब्रह्मदेव ने भी पृथिवी पर की प्रजा के प्रत्यासन्न उच्छेद की बात कही, जिससे श्रीविष्णु को मालूम हो गया, कि यदि मदन को पुनरुज्जीवित कर सृष्टि में प्रजोत्पत्ति का क्रम शुरू नहीं किया जायगा तो जिस प्रकार मर्त्यलोक का उच्छेद हो जायगा, उसी प्रकार, मदन के पुनरुज्जीवित न होने से शंकर और पार्वती के द्वारा किसी वीर के उत्पन्न न होने पर, देवलोक का भी उच्छेद होगा। अत उभयलोक का कल्याण करने के लिये मदन को पुनः जीवित करना आवश्यक है। सभी देवताओं के अनुमोदन से उक्त [illegible]ार के निश्चित हो जाने पर मदन के जीवित करने की युक्ति ढूंढ [illegible]ालने की ठानी। तब श्रीविष्णु ने कहा कि, 'ब्रह्मादिक देवताओ, [illegible]स कार्य का करना हम-तुम जैसों के लिये कठिन है, उसे महा[illegible]जी सरलता से कर सकते हैं। जिसमें मदनरूपी तत्व के जला[illegible]लने का सामर्थ्य है, क्या वे ही उसे पुन उत्पन्न नहीं कर सकते? [illegible]नरूपी तत्व सृष्टि की घटना का आदिमतत्व है। वह आदिपुरुष [illegible]र आदिमाया के समागम के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः [illegible], सब निश्चिन्त रहो। पार्वती ने अपने तप से शंकरजी [illegible] प्रसन्न कर लिया है। सप्तऋषि भी हिमालय के पास मँगनी के लिये गये हैं; अत. सम्भवत. शीघ्र ही शिव और पार्वती का विवाह हो जावेगा। जब विवाह के अनन्तर हिमालय के लताकुंज में शंकर और पार्वती का एकांत में समागम होगा, तब जिनके क्रोध से मदन दग्ध हो गया है, उन्हींके अनुराग से वह फिर से उत्पन्न होगा। इतना ही नहीं वरन उस समागम से देवताओं के भावी सेनापति स्कंद भी निश्चय ही उत्पन्न होंगे। अतः अब तुम्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

इस प्रकार श्रीविष्णु से आश्वासित हो जाने पर सभी देवता अपने २ स्थान पर चले गये। फिर यथासमय, श्रीविष्णु के कथनानुसार, शंकर और पार्वती का विवाह-महोत्सव हिमालय पर्वत पर बड़े आनंद से समाप्त हो गया। और, उसके अनन्तर की सभी क्रियाएँ भी हो गईं। जिस हिमालय पर मदन दग्ध हुआ था, वहीं उसके पुनर्जीवित हो जाने पर, नूतन आविर्भावित बिजली के समान, उसका सारे विश्व में संचार हो गया। मदन के जीवित हो जाने की खबर किसी को भी देने की आवश्यकता नहीं हुई। उसकी खबर प्रत्येक स्त्री पुरुष को अपनी अन्त स्फूर्ति से ही मालूम हो गई। जिस प्रकार बिजली के दीपक की बत्ती के जलाने को प्रत्यक्ष रूप से किसी प्रकार की क्रिया की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार मदन के पुनर्जन्म का आनंद सभी प्रणयिजनों के नेत्रकटाक्ष और मन्द मुसकान में दिखाई देने लगा। और, जगत के सभी व्यवहार पूर्ववत् होने लगे। रुके हुए विवाह होने लगे। और, आदिदेवी पार्वती के विवाह के कारण अपने विवाह की शक्यता जानकर उस समय की स्त्रियों ने बड़े भक्तिभाव से पार्वती का पूजन किया और उनके समान ही शूरवीर पुत्र के होने की प्रार्थना ईश्वर से करने लगीं। उसी समय से विवाह के समय शिव-पार्वती के पूजन की प्रथा प्रचलित हो गई है। हाँ, शुद्ध भूमि के सात्विक बीज से शूर पुत्र के होने की प्रार्थना करने की प्रथा कब से बन्द हुई, इसका अभी तक किसी को भी पता नहीं लगा है। सारांश, मदन के पुनर्जीवित हो जाने से जगत के सभी व्यवहार पूर्ववत् प्रचलित हो गये और स्वर्ग में भी तारकासुर के वध के कारण आनन्द के बाजे बजने लगे।

हे प्रिय शिष्य! जो अपूर्व अभिनव-रसात्मक उक्त कथा मैंने कर्ण-परम्परा से सुनी है, वही तुझ से कही है। गुरुजी की कही हुई कथा को सुनकर शिष्य को परमानंद हुआ। तो भी उसने पुनः कहा कि इस कथा से अभी तक मेरी आशंका की निवृत्ति नहीं हुई है; तब गुरुजी ने कहा कि, 'मैंने तो तेरे प्रश्न का कभी का उत्तर दे दिया है। पर, तू उसे अभीतक नहीं समझ सका, अत मैं पुन कहता हूं। जिन्होंने मदन के दग्ध हो जाने की गड़बड़ में साधु का भेष धारण कर लिया था, और उसके जीवित हो जाने पर भी साधुता की किफायत पर का स्वार्थ न छोड़ने के गुप्त मार्गों के आधार पर अपना भेष नहीं बदला, उन्हीं लोगों की एक जाति बन गई। उसी जाति के कुछ बने हुए-लोग अभी तक यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। ये मदन की अनुपस्थिति के ही साधु हैं। अतः उनकी उपेक्षा कर उन्हें सुपथ पर आरूढ़ करा कर उनके द्वारा सब का भला करने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करना ही हम सब का पवित्र उद्देश्य होना चाहिये।

कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति।

(१) न?
बाजार में जाना है न! (हाटं प्रति गम्यतेनाम) अर्थात् नाम से न निकला है। नाम=नांव=नॉ=न।

(२) भीम
बिब=भिब (अर्ध मागधी)=भीत।

(३) ए
अयि=अइ=ए (संभावनायां) ए लड़के!

(४) रस्सी
रश्मि=रस्सि=रस्सी।

(५) भीतर
अभ्यंतर=अब्भिंतर=भीतर। आरंभिक अ का लोप हो जाता है।

(६) गवालियार
गोपालगोरि=गवालिरी=ग्वालिरी=ग्वालेर=ग्वालियर=गवालियार।

(७) कलाल
कल्लपाल (सोमडोगी शिलालेख)=कल्लवाल=कल्लआल=कलाल।

(८) मन
मनह (a Babylonian weight of 40 lbs avoirdupois)

(९) रत्ती
रत्ति=(१-३४ मन)

(१०) पिचकारी
पिचकारी=पिसकारी=पिचकारी=पिचकारी। स का च होगया।

(११) हिमान
हिमानं=हिमान=हिमान।

(१२) निहार
निभास्=निहास=निहार।

(१३) बाप (पिता)
पा=पालन करना। उणादि (उणादि सूत्र २४) की तरह वप्तु. पालक। वप्तु=वप्पु=बापु=बप्प=बाप।

(१३) सिकंदर
यह फारसी शब्द है और ग्रीक शब्द अलेक सेंडर से निकला है। अलेक सेंडर-अलेक सिंडर=कसिंदर=सिकंदर।

(१४) समुद्र
सामुद्रिक=सामुद्रिका=समुद्रा समुद्र-समुद्र।

[illegible]

नरदेह।

कवि—श्रीयुत महेश्वरप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य।

(१)

जगदीश्वर कोटि प्रणाम तुम्हें, तुमने यह जो नरदेह दिया।
यह रत्न अलौकिक लाभ हुआ, कितना बढ़के उपकार किया॥
इससे जब चारों पदार्थ मिले, तब क्या प्रभु ने हमको न दिया।
इस देह को पाकर के चहिये, करनी सब को अति उच्च क्रिया॥

(२)

जब पुण्य अनेकों इकट्ठे हुए, तब है नरदेह पवित्र मिला।
क्षिति, पावक, नीर, समीर, से है, उस व्योम में चेतन पुष्प खिला॥
इतना इसमें अनुभाव भरा इसके बल से ब्रह्माण्ड हिला।
मन इन्द्र निवास करे इसमें, उसका ही बना यह गूढ़ किला॥

(३)

विषयी नरदेह को पाकर के, सुख भोग का, साधन मान रहे।
सुख भोग सदैव रहेगा बना, अजरामर के सम आन रहे॥
यह आपका है अपने वशमें ? भ्रम में पड़के कर ध्यान रहे।
यश लाभ के हेतु विचार करो, यह देह रहे अथवा न रहे॥

(४)

इस देह से पातक घातक से, अह ! लोग अनेक किया करते।
वसुधा में उन्हें न सुधा की तृषा, विषयी विषपान किया करते॥
सब कैसे पड़े वह भूल में हैं, नहीं राम के नाम लिया करते।
भवसागर से तरने के लिये, वह कौन सी आज क्रिया करते॥

(५)

इस देह के रक्षण के हित ही, जगदीश ने दीं कितनी विधियाँ।
वसुधा तल में सब शोभित हैं, सब के हित को कितनी निधियाँ॥
सब रोग निवारण के हित ही, उसने विरचीं सुवनस्पतियाँ।
सुख स्वस्थता देतीं थीं नित्य हमें, बहुमूल्य सहस्रों थीं ओषधियाँ॥

(६)

इसकी अवहेलना भूल से भी न कभी करना तुम प्यारे ! सुनो।
नर देह को पाकर के जग में, परमार्थ विधायक योग चुनो॥
शुभ भाग्य से है मिलता दुख भी, उसके हित आप न शीश धुनो।
घनश्याम को प्रेम से ध्याते रहो, विषयानल में पड़के न भुनो॥

(७)

यह रत्न परीक्षा के हेतु मिला, इसको तुम काँच बनाना नहीं।
वह ईश्वर व्याप्त इसीमें तो है, इस तत्व को आप भुलाना नहीं।
यश-भाजन जो बनना है तुम्हें, नर जीवन व्यर्थ गवाँना नहीं।
सुकृती सुविचार करो मन में, इसका कुछ कोई ठिकाना नहीं॥

(८)

जब लौं नरजीवन जागृत है, तब लौं शुभमार्ग दिखाया करो।
जननी की समुन्नति हो जिसमें, वह सत्य उपाय सिखाया करो
फिर ईश कभी जो दया कर दें, मनोवाँछित वैभव पाया करो
उपकार करें नर जीवन से, उसका गुण-गौरव गाया करो॥

(९)

जिसके जल अन्न से पालित हो, सुखसाज अनेक विराज रहे।
उस शक्ति की भक्ति करो मन से, अपनी जिसमें कुछ लाज रहे
वह कार्य बने हित हो जिसमें, अनुपात मनुष्य समाज रहे।
यदि सुस्थिर कीर्ति मिलेगी तुम्हें, अमरत्व समन्वित साज रहे॥

(१०)

इस काल कला का विलासथली, करलो अपना कर्तव्य सभी।
सब भेद तजो शुभ प्रेम भजो, समदर्शन से सब सृष्टि लखे॥
तन से मन से धन से हित हो, जिसके फल चारु अनेक चखे।
नर जीवन से बनलो सुकृती, फिर लाभ वृथा न कदापि अखे॥

(११)

भव-वैभव भूरि विभूति भरि, सुख सम्पदा की वह चाह खरी।
अभिलाषलता नव पल्लव से, परिपूरित नित्य रहेगी हरी॥
यह मायिक जाल कराल बड़ा, इसमें सबकी सुविधा बिगरी।
यश, धर्म, यही शुभ सुस्थिर हैं, सुखसम्पदा सर्व रहेगी परी॥

(१२)

नव नेता अनेक उपस्थित हों, समयानुग कार्य विचार करें।
छल जाल विरोध विरागतजें, अपने हित देश सुधार करें॥
दुख दूर करें सुख पूर करें, जननी निज का उपकार करें।
जगदीश दया कर के वर दो, हम भारत-नौका को पार करें॥

श्रीमान् महाराजा सयाजीराव गायकवाड, बड़ौदा, के पोते (पौत्र)।

श्री राजपुत्र प्रतापसिंहराव की कन्या, [illegible]।   श्री राजपुत्र शिवाजीराव के पुत्र, उदयसिंहराव।

कृत्तिका।

(लेखक — प्रो॰ विश्वनाथ बलवंत नाईक, एम. ए.)
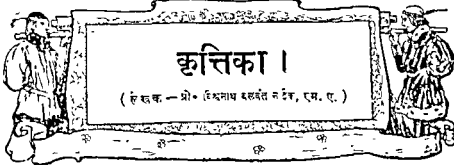
प्राचीन काल में, तीनों लोक का साम्राज्य-सुख भोगने के निमित्त, देवताओं और दानवों के बीच भीषण युद्ध हुआ। उस युद्ध में देवताओं की बारम्बार हार होने से उनका राजा इन्द्र बड़ा चिन्तित हुआ। देवसेना में कुशल और पराक्रमी सेनापति का अभाव ही देवताओं की असफलता का एकमात्र कारण है; इस विचार से वह सेनापति की खोज में मानस शैल पर गया।

उस स्थान पर एक दिन सूर्य अत्यन्त तेजस्विता धारण किये उदित हो रहा था और उसी में चन्द्र भी प्रवेश करता हुआ देवेन्द्र को दिखाई दिया। पूर्व दिशा के बादल और जलाशय में का पानी रक्तवर्ण दिखाई देने लगा, जिससे उदयगिरिपर देव और असुर का भीषण संग्राम शुरू होने का आभास हुआ। इतने में सूर्य पर देदीप्यमान अग्नि भी दिखाई देने लगा। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र और अग्नि का अद्भुत समागम देखकर इन्द्र ने मन में सोचा कि इस संगम से, अग्नि के द्वारा, जो पुत्र उत्पन्न होगा वह महापराक्रमी अतएव मेरी सेना के लिये योग्य नायक होगा। यह सोचकर इन्द्र देवर्षि की ओर गया। इन्द्र और उसके साथ आये हुए देवताओं को हविर्भाग अर्पण करने के लिये ऋषियों ने सूर्यमंडल परसे अग्नि को बुलाया। ऋषि की ओर से नाना प्रकार के हव्य लेकर देवताओं की ओर जाने के समय अग्नि को सुंदर ऋषि-पत्नियाँ दिखाई दीं। उन्हें देखकर अग्नि मोहित हो गया और मन ही में बोला कि 'ये ऋषि-पत्नियाँ निस्सन्देह बड़ी पतिव्रताएं हैं। इन्हें स्पर्श करना तो कठिन है ही, पर इनकी ओर देखना तक साहस का काम रखता है।' इस विचार से निराश होकर अग्नि, स्वदेह का त्याग करने के लिये, वन की ओर चल पड़ा। उस की मनःस्थिति उस पर पहले से ही प्रेम करनेवाली स्वाहा नाम की दक्षकन्या को मालूम हो गई। उसने सोचा कि अग्नि ऋषि-भार्याओं पर मोहित हो गया है; अतः इस समय मैं उनका सा स्वरूप धारण कर, उस को संतुष्ट कर, अपना मनोरथ क्यों न सिद्ध कर लूं! इस प्रकार उसने पहले अंगिरा ऋषि की पत्नि का भेष धारण किया और अग्नि से जाकर कहा कि सप्तर्षियों की स्त्रियाँ तुम पर मोहित होगई हैं, अतः उन्होंने मुझे तुम्हारी ओर भेजा है; पीछे से वे भी यहीं पर आवेंगी। कामपीड़ित अग्नि को दक्षकन्या की उक्त झूठ बात सत्य ही मालूम पड़ी। वहाँ से लौटती बार स्वाहा ने, अंगिरा ऋषि की पत्नि पर झूठा दोष न मढ़ने के विचार से, गरुड़ पक्षिणी का भेष धारण किया। इस प्रकार उसने वसिष्ठ-पत्नि अरुंधति के अतिरिक्त छहों ऋषिपत्नियों के भेष क्रम से धारण किये। अरुंधति का कठिनतर तपःप्रभाव और निःसीम भर्तृसेवा के कारण स्वाहा उसका भेष धारण नहीं कर सकी।

चित्र नं० १ नीचे की बाजू।

इस प्रकार स्वाहा छः बार अग्नि की ओर हो आने पर वह श्वेत पर्वत पर चली गई। वहाँपर उसे महा वीर्यवान् और उग्रकर्मा षण्मुख पुत्र उत्पन्न हुआ। वह शीघ्रता से बढ़ने लगा और उसके छोटे २ खेल खेलने से ही सारे जगत में अनर्थ हो गया। जिधर-तिधर उत्पात होने लगे। सभी ऋषि घबरा उठे। किसी ने कहा कि, यह सब अग्नि की लीला है। और, कोई तो गरुडपक्षिणी का भेष धारण करनेवाली स्वाहा को ही उक्त अनर्थ का मूल कारण बताने लगे। केवल विश्वामित्र ने ही अग्नि को काम-संतप्त होकर वन में जाते हुए देखा था अतः वह उसके पीछे २ छिप कर गया था। अतः विश्वामित्र के सत्य कथन से सभी वनवासी ऋषियों को अपनी पत्नियों का ही दोष देख पड़ा। तब उन्हों ने अरुंधति को छोड़कर शेष छहों पत्नियों का त्याग कर दिया।

अनन्तर कुमार के पराक्रम देखकर इंद्रादि देव उसकी शरण में गये। और, उन्होंने उसे अपनी सेना का सेनापति चुना। उस सम्मान से संतुष्ट होकर कुमार ने देव, ऋषि और स्वाहादिकों को अनेक वर दिये। तब ऋषिपत्नियाँ भी कुमार के पास गईं और उन्होंने उससे कहा कि कुछ भी दोष न होने पर हमारे पतियों ने हमारा त्याग कर दिया है; अतः तू ही हमें मातृभाव से देख और स्वर्ग में अक्षय स्थान दे। कुमार ने उनके वचन सुने और उनकी इच्छा पूर्ण करने का वचन दिया। इधर रोहिणी की छोटी बहिन अभिजित् कुपित होने से, उसके आकाश के अपने स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाने से, नक्षत्रमाला में खामी हुई। इन्द्र के द्वारा यह समाचार कुमार को मालूम होने पर वे छहों ऋषिपत्नियाँ आकाश में गईं। अतः अब वे ही कृत्तिका नक्षत्र के रूप में हमें देख पड़ती हैं। केवल अरुंधती ही सप्तर्षि-समुदाय में अपने पति के पास शाश्वत स्थान पाकर कृतकृत्य हो गई है।

चित्र नं० २ नीचे की बाजू।

सप्तर्षि और कृत्तिका का सम्बन्ध दर्शानेवाली कथायें केवल पुराणों ही में नहीं हैं, वरन शतपथब्राह्मण में भी हैं। "ऋक्षाणां ह वा एता अग्रे पत्न्य आसुः सप्तर्षीन्नु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते" अर्थात् कृत्तिका पहले ऋक्षों की स्त्रियां थीं और पहले ज़माने में सप्तर्षियों को ही ऋक्ष कहते थे। अस्तु।

पारसियों के ज़ेंदावस्ता में भी उक्त कल्पना का दिग्दर्शन किया गया है। जिस प्रकार उक्त कथा में कृत्तिका और अग्नि का सम्बन्ध दर्शाया है, उसी प्रकार अन्य कुछ देशों की कथाओं में भी इसका उल्लेख देख पड़ता है। कोई २ तो कृत्तिका को भुवन का मध्य और ईश्वर का निवासस्थान मानते हैं। कार्तिक मास के जिस दिन की मध्यरात्रि में कृत्तिका आकाश के बीचोबीच अर्थात् मनुष्य के सिर पर देख पड़ती है, वह दिन पर्शिया के बादशाह बड़ा पुण्यप्रद समझते हैं। उषःकाल में प्रथमतः कृत्तिका के देख पड़ते ही ग्रीक लोग समुद्र-यात्रा की तैयारी करते थे। इसीसे उनके देश में कृत्तिका को "नौका-प्रेरक तारे" (Pleiades or Sailing Stars) कहते हैं।

लगभग चार हज़ार वर्ष के पूर्व सूर्य के कृत्तिका नक्षत्र पर आने पर वसन्त-ऋतु का आरंभ होता था। उसी समय से नक्षत्र-मालिका में कृत्तिका को अग्रस्थान दिया गया है। तत्कालीन प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में कृत्तिका के उदयकाल की स्थिति का यथायोग्य वर्णन लिखा गया है। अन्यान्य नक्षत्रों में से कुछ नक्षत्र तो पूर्व बिंदु के उत्तर में और कुछ दक्षिण में उदित होते हैं। पर, केवल कृत्तिका ही ठीक पूर्व दिशा में उदित होते हैं। वे पूर्व बिंदु से कभी नहीं हटते। ठीक यही वर्णन शतपथब्राह्मण में है और यह तत्कालीन स्थिति को लागू भी होता है।

फरवरी मास में सूर्य के अस्त हो जाने के एक घंटे के अनन्तर आकाश की ओर देखने से एक छोटासा मनोहर तारकापुंज दिखाई देता है। यही कृत्तिका नक्षत्र है। लगभग बेंत या डेढ़ बेंत भर के आकार के इस पुंज में छः या सात तारे देख पड़ते हैं। सूक्ष्मावलोकन से अधिक भी होने का भी आभास होता है। अंधेरी रात में आकाश के स्वच्छ हो जाने पर ये तारे स्पष्ट की संख्या में दिखाई देते हैं। आकाश के जिस भाग में उक्त नक्षत्र हैं वहीं पर मृगशीर्ष, रोहिणी, व्याध, अग्नि इत्यादि नक्षत्र भी हैं। उनका भी उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। उनकी संख्या, आकार और प्रकाश पर दिखाई दिये हुए तत्सम्बन्धी चमत्कार के आधार पर ही अनेक कथाओं का उद्गम हुआ है। सप्तर्षि और कृत्तिका का अत्यन्त ही निकट सम्बन्ध बतलाया गया है। कृत्तिका के मुख्य २ सात तारों के नाम तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखे हैं। यथाः—१ दुला, २ नितत्नी, ३ अभ्रयंती, ४ मेघयंती, ५ वर्षा, ६ वर्षयंती और ७ चुपुणिका। इनके अंग्रेज़ी नाम ये हैं—1 Electra, 2 Taygeta, 3 Maia, 4 Merope, 5 Alcyone, 6 Atlas, and 7 Pleione. इन सभी नक्षत्रों को अंग्रेज़ी में Pleiades कहते हैं। सात तारों में से पहले छः तीन से पांच की श्रेणी के हैं और सातवाँ चुपुणिका छठे के समान है, जिससे वह बिना किसी यंत्र की सहायता के स्पष्ट नहीं देख पड़ता।
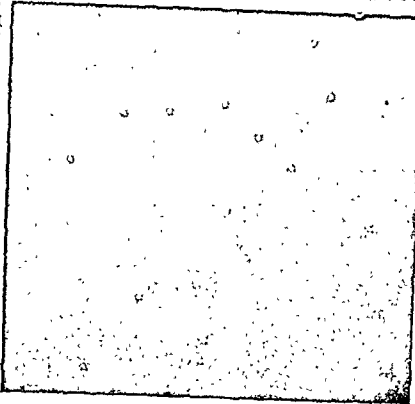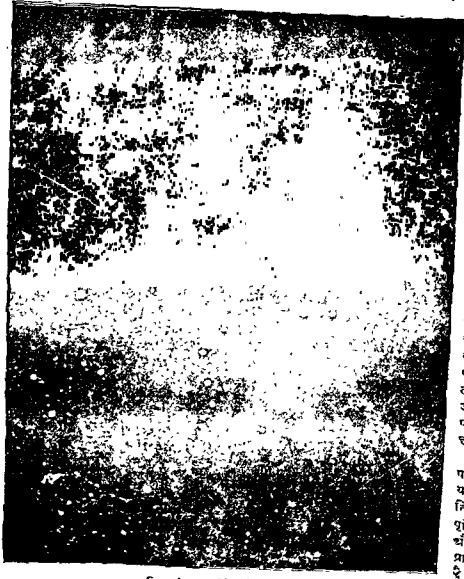
चित्र नं० ३ नीचे की बाजू।

चित्र नं० ४ नीचे की बाजू।

ऋषि सात हैं और उनकी पत्नियाँ भी सात हैं। इसीसे वैदिक युग में कृत्तिका में मुख्य सात तारे ही गिनते थे। बाद को किसी कारणवश सात के बदले छः तारे गिनने लगे। और, इस अन्तर की उपपत्ति के लिये सप्तर्षि में से छठे वसिष्ठ के-तारे के पास की पाँचवें प्रकार की छोटी तारका अरुंधति समझी जाकर शेष छः ऋषि पत्नियों की गणना कृत्तिका ही में की जाने लगी।

पहले कृत्तिका सात थे पर पीछे से छः रह गये यह कल्पना केवल भारतीयों में ही नहीं है वरन पृथियी के सभी सुधरे हुए और जंगली लोगों में भी प्राचीनकाल से प्रचलित है। इस सार्वत्रिक सन्देह का मूल कारण विचारणीय होगा, इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है। शायद

का तेज सर्वदा एकसा ही नहीं रहता, यह बात सहस्त्रों तारों के सूक्ष्म वेध से निश्चित की जा चुकी है। तारों की तेजस्विता के अनुसार उनकी श्रेणियाँ नियत कर बारम्बार सूची बनाने में जो परिश्रम उठाया जाता है, इसका भी एकमात्र उक्त कारण ही है। पहले के और अब के वेध की तुलना करने से अनेक तारों के रूपविकार स्पष्टतया प्रकट हो गए हैं, जिससे तारों की उत्पत्ति और नाश के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने में बहुत सहायता मिली है। इस समय कृत्तिका की पाँचवीं तारका अंबा सब से अधिक तेजस्वी है। अतः यह तीसरी श्रेणी की है। पर, टालेमी के समय के कृत्तिका के जो सब से अधिक तेजस्वी चार तारे हैं, उनमें इसकी गणना नहीं की गई है। दशवीं सदी में अलसफी नाम के पर्शियन ज्योतिषी को जो चार अत्यन्त तेजस्वी तारे दिखाई दिये थे, वे वर्तमान तेजस्वी तारों से भिन्न थे। इससे स्पष्ट है, कि कृत्तिका के सभी तारों के स्वरूप बदल गये हैं। कृत्तिका की सातवीं तारका चुपुणिका ४० वर्ष के पूर्व जितनी तेजस्वी दिखाई देती थी, उससे वही अब दूनी तेजस्वी देख पड़ती है। इससे यह सम्भव है कि प्राचीनकाल में यह तारका अत्यन्त तेजस्वी हो और बीच में वह तेजहीन हो गई हो। पर, अब पुनः उसमें तेजवृद्धि हो रही है। उसके दृष्टिगोचर न होने अथवा अस्पष्ट देख पड़ने से ही सात के बदले छः तारे मानने लगे हैं।

जिन लोगों की तेज दृष्टि है, वे अब भी कृत्तिका में सात से अधिक तारे देख सकते हैं। कुल १४ तारे आँखों से देखकर उनकी सापेक्ष स्थिति के चित्र खींचकर बतलाने के कई उदाहरण हैं। भिन्न २ समय पर केवल आँख से देखे हुए तारों की कुल संख्या २३ है। साधारण दुर्बीन से देखने पर तो उक्त संख्या से भी तिगुने चौगुने तारे देख पड़ते हैं। बढ़िया दुर्बीन के द्वारा उससे भी अधिक तारे दिखाई देते हैं। अम्बा को मध्यवर्ती मानकर डेढ़ अंश चौड़े और सवा दो अंश लम्बे चतुष्कोण प्रदेश में १४ वीं श्रेणी तक के कुल ६२५ तारे देख पड़ते हैं।

चौदहवीं श्रेणी से एक दो श्रेणियाँ नीचे उतरने पर दुर्बीन के द्वारा भी अधिक तारे नहीं दिखाई दे सकते। क्योंकि; उतने अस्पष्ट [illegible]तारों के प्रकाश के किरण हवा और दुर्बीन की काँच में से आने [illegible] उनके निर्बल हो जाने से वे चक्षुरिन्द्रिय को नहीं दिखाई दे [illegible]कते। तो भी इन तारों के देखने के लिये ज्योतिषियों ने एक [illegible] चक्षुरिन्द्रिय का उपयोग किया है। फोटू खींचने की काँच पर [illegible]काश के अत्यन्त मन्द किरण भी बहुत देर तक डालने से स्थायी [illegible]रिणाम होता है। अतः उससे, जो असंख्य तारे दुर्बीन के द्वारा भी [illegible] दिखाई दे सकते, उन के चित्रपटों की भी गणना की जा चुकी है।

सन १८८४ और १८८८ में हेनरी नाम के ज्योतिषी ने कृत्तिका [illegible] तारों के दो फोटू खींचे थे। उनमें से पहले चित्र में तीन घंटे के अनन्तर १४२१ तारे प्रतिबिम्बित हुए और दूसरे में ४ घंटे के अनंतर २३२६ [illegible]ारे दिखाई दिये। उनमें बहुधा १६ वीं श्रेणी तक के सभी तारों [illegible] अन्तर्भाव हो गया था। उसके अनन्तर प्रो० बेली, हार्वर्ड कॉलेज, ने कार्तिकेय का चित्र खींचा। उसमें, जिन तारों के मध्य में [illegible] है उस २ अंश लम्बी-चौड़ी जगह में, ६ घंटे में ३९७२ तारे [illegible] हो गये। इसके अनन्तर उससे भी अधिक समय तक [illegible] को तारका प्रकाश में रखने पर उस पर लगभग ४०० तारे प्रतिबिम्बित हुए। इससे यह सिद्ध हो चुका कि हमें जितने तारे आँखों से समग्र आकाश में देख पड़ते हैं, उसके दो तिहाई से भी अधिक तारे केवल एक इसी नक्षत्र में हैं।

अब यही एक प्रश्न है, कि आकाश के एक छोटे से भाग में [illegible] सहस्त्रों तारों का आपस में भी कुछ सम्बन्ध है या [illegible] ही दृष्टि मार्ग में आने से उनके एक स्थान पर ही होने का भास होता है? इस प्रश्न का उत्तर देना ज़रा कठिन है। तो [illegible] साधारण अटकल बाँधने के लिये कई साधन हैं। [illegible] में भौतिक सम्बन्ध मानने के लिये उनमें कुछ विशिष्ट सामान्य के देख पड़ने की आवश्यकता है। यों तो आकाश में अनेक [illegible], तारकायुग्म और तारकागुच्छ हैं। पर गति, स्थिति, [illegible] की भिन्नता के कारण उनका पारस्परिक निकट सम्बन्ध नहीं रहता। तारका अत्यन्त दूरी पर होने से स्थिर देख पड़ती हैं। [illegible] में उन्हें कुछ तो गति होती ही है। हाँ, भिन्न २ तारों [illegible] भिन्न २ दिशाओं और आवेगों से होती है। तारों के घटक पदार्थ अनेक तरह के होने से उनका प्रकाश भी भिन्न २ वर्णों का होता है। अतएव, आकाश में एकत्र दिखाई देनेवाली तारका एक ही आवेग से और एक ही दिशा से स्थानत्याग करती हैं और उनका प्रकाश भी एक ही प्रकार का है; इसके सिद्ध हो जाने पर उनके पारस्परिक निकटतर भौतिक सम्बन्ध के मानने में कोई आशंका नहीं होगी।

गत शताब्दि के तीस चालीस वर्ष के अन्तर से लिये गये वेधों से यह साफ मालूम हो चुका है, कि कृत्तिका प्रदेश की लगभग साठ सत्तर विशेष तेजस्वी तारकों की परस्पर सापेक्ष स्थिति यथावत् ही है। सौ वर्ष की अवधि में उसमें बिलकुल भी फर्क नहीं हुआ। जिस समय भिन्न २ पदार्थों की सापेक्ष स्थिति में कुछ भी फर्क नहीं देख पड़ता, उस समय वे सभी स्थिर या एक ही दिशा में प्रवास करते होंगे। कृत्तिका की अम्बा नाम की तारका प्रतिवर्ष ६ विकला के वेग से खगोल में स्थान त्याग कर रही है, यह बात सूक्ष्म वेध से सिद्ध हो चुकी है। अर्थात् यह कार्तिकेय संघ ही ६ विकला के वेग से किसी विशिष्ट दिशा की ओर जा रहा होगा।

इस संघ में की विशेष तेजस्वी तारका अन्योन्य हैं, यह मानने के लिये एक और संबद्ध कारण भी है। वर्णपटदर्शकयंत्र में से उनके प्रकाश के पृथक्करण से जो वर्णपट देखे गये, उससे मालूम हो गया कि वे सभी एक ही प्रकार के हैं। इससे यह सिद्ध है, कि इन सभी तारों के घटक द्रव्य भी एक ही तरह के होंगे। अर्थात् सारे संघ का जनकत्व और नियामकत्व किसी न किसी एक ही शक्ति की ओर होना आवश्यक है।

सूर्य ग्रहमाला के सहित ज्योतिर्भुवन में प्रति सिकंड १२ मील के वेग से अभिजित नक्षत्र की दिशा में प्रवास करता है, यह अनेक वेधों से सिद्ध हो चुका है। पर, कार्तिकेय संघ इससे बिलकुल उलटी दिशा को अर्थात् अभिजित नक्षत्र से दूरी पर जा रहा है। जिस प्रकार रेल पर सवार होने पर, पूर्व दिशा की ओर जाते हुए, हमें मार्ग के वृक्ष, खंभे वगैरह स्थिर पदार्थ, उनकी गति भासमान होने पर भी, पश्चिम की ओर जाते दिखाई देते हैं, उसी प्रकार यदि कृत्तिका संघ की गति भी केवल भासमान ही मानी जायगी तो सूर्य से इस संघ का अन्तर सरलता से जाना जा सकेगा। यह अन्तर लगभग १९० प्रकाश वर्ष है। इससे अर्थात् प्रति सिकंड १८६००० मील के आवेग से प्रकाश-लहरी को कृत्तिका से सूर्य तक पहुँचने के लिये १९० वर्ष लगेंगे। सूर्य से पृथिवी लगभग ९। करोड़ मील दूरी पर है। कृत्तिका तक ऐसे लगभग १। करोड़ अन्तर होंगे।

यदि कार्तिकेय तारकों का संघ इतनी दूरी पर होगा तो उसका बहुत विस्तार होना चाहिये। अंबा को मध्यवर्ती मान कर ३ प्रकाश वर्ष की त्रिज्या (Chord) से वृत्त खींचा जायगा तो उसके भीतर बहुधा सभी तारकाओं का समावेश होगा। इससे कार्तिकेय का विस्तार का अनुमान हो सकता है। पर, उसका इससे भी कई गुना अधिक विस्तार होना सम्भवनीय है। यदि सूर्य को वर्तमान स्थान से हटा कर उक्त संघ में रख दिया जाय तो हमें उसका प्रकाश ही नहीं दिखाई देगा। उस सूर्य की अपेक्षा १५० गुना तेज अंबा का है। तुला और अग्रयष्टी भी उक्त प्रकार के सूर्य से अधिक तेजस्वी हैं। अर्थात् इस छोटे से तारका गुच्छ में हमें प्रति दिन प्रकाश देनेवाले सूर्य की अपेक्षा बड़े और तेजस्वी कई सूर्य हैं। अतः यदि कार्तिकेय संघ को एक स्वतंत्र ज्योतिर्भुवन माना जायगा तो भी अनुचित नहीं होगा।

कृत्तिका नक्षत्र में और भी कई चमत्कार हैं। फोटूग्राफी की सहायता से उसकी कई चमत्कारपूर्ण बातों का पता चला है। हेनरी के खींचे हुए दूसरे चित्र में अग्रयष्टी के आसपास अस्पष्ट अभ्रावरण भी देख पड़ा, जिससे उसका पुराना नाम सार्थक हो गया। शीघ्र ही दुर्बीन के द्वारा वह आवरण प्रत्यक्ष देख पड़ा। उसके बाद फोटू खींचने का काँच अधिक देर तक प्रकाशाभिमुख रखने से तुला, अग्रयष्टी, मेघयष्टी और अम्बादि सभी मेघ-सदृश आवरण में उलझी हुई दिखाई दीं। केवल इतना ही नहीं वरन सारा संघ भी उस आवरण में उलझा हुआ दिखाई दिया। इससे संघ की भौतिक घटना और पारस्परिक सम्बन्ध का हाल मालूम हो सकता है।

आकाश में सहस्त्रों चमत्कार दिखाई देते हैं। उनसे हमारे प्राचीन पूर्वजों का चित्त आकर्षित होता था। इसलिये उन्होंने विस्मय, आनन्द, कौतुक वगैरह अपने मनोविकार बारम्बार गीत और इतिहास ग्रन्थों में व्यक्त किये हैं। उन्हीं की कल्पना के बल पर वैदिक और

दैविक बातों का साथ देकर उन्होंने अपना प्रत्यक्ष अनुभव चमत्कारिक कथाओं में संकलित किया है। मानवजाति की बाल्यावस्था में कल्पना का ही अधिक जोर होता है। पर, वर्तमानकाल में कल्पना का बुद्धि और शोधकता से साथ करने से वे और अधिक चमत्कारपूर्ण होती हैं। कृत्तिका नक्षत्र विषयक आधुनिक शोध इसका अच्छा दिग्दर्शक है।

प्रो० लक्ष्मणदास मुनीम।

(लेखक—श्रीयुत रमाशंकर अवस्थी।)

Music is ingrained in the human frame; it is the voice of the soul and gives utterance to its griefs and its joys, its scorns and its reverence, its antipathy and sypathy. × × × × × × ×

But music has far more important and useful qualities It refines, it elevates, it educates, it strengthens × × × × × × ×

It revives the careworn mind and imbues the careless one with greater life, it is the most potent and yet the cheapest of medicines. × × ×

—V. N. Bhatkhande.

संगीतविद्या यद्यपि अर्वाचीन समय में अधिकतर मनोरंजन की ही वस्तु मानी जाती है, परन्तु अब कहीं इसकी वास्तविकता भी स्वीकार की जाने लगी है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने अपने सदुद्योग से यह प्रमाणित कर दिया है, कि इस विद्या से नाना प्रकार के रोग तक अच्छे किये जा सकते हैं। इस विद्या के भारतीय विद्वद्रत्न सर सौरीन्द्रमोहन ठाकुर ने एक स्थान पर कहा है—

'Sages seek salvation by adopting the अनाहत नाद worship. The उपासना being impracticable to the ordinary man, he tries the आहतोनादोपासना-method which possesses the quality of pleasing mankind. As music comes within the purview of आहत नाद, the utilising of the art of music for the purposes of worship of the Diety by man is held to bring him salvation.'

अतः स्पष्ट है कि संगीत से हमें मनोरंजन के अतिरिक्त अन्य अनेक बड़े २ लाभ भी हैं और विशेष करके भारतीय संगीतविद्या से, जो कि अपने गुणों और अंगों में सम्पूर्ण है, अतीव लाभ हैं। संसार की सभी जातियां, विशेषकर संगीत विद्या में, भारत से अवश्य पिछड़ी हुई हैं। विदेशियों की संगीत विद्या अधूरी ही नहीं वरन भारतीय संगीत की शतांश भी नहीं है। स्वयं सर विलियम जोन्स ने भारतीय संगीत विद्या के सम्बन्ध में स्वीकार किया है, कि 'यह उत्तम एवं पूर्णांग विद्या है।' इससे प्रकट होता है कि हम लोग इस विद्या के लिये किसी के मुँह की ओर नहीं ताक सकते। अर्थात् हम लोग इसके सम्बन्ध में किसी से शिक्षा लेने के पात्र नहीं हैं। इस के अतिरिक्त हमें यह पूर्णावसर है कि इस विद्या में हम संसार से बाजी मार ले जांय। अस्तु।

हमारे चरित्रनायक प्रो० लक्ष्मणदास मुनीम भी इस विद्या के इने गिने विज्ञों में से एक प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। संगीत विद्या के अनुपयुक्त प्रचार के कारण इस विषय की ओर कोई विशेष रुचि एवं प्रवृत्ति से झुकता नहीं दिखाई देता। यह स्वयंसिद्ध बात है कि मानवजाति किसी श्रमसाध्य विषय की ओर ही झुकती है। इसलिये हमारे देश में संगीत विद्या के विद्वान् भी अंगुलियों पर ही गिने जाने योग्य हैं। मुनीमजी संगीत विद्या के एक अत्यन्त प्रेमी एवं अध्ययनशील पुरुष हैं।

आप अग्रवाल वैश्य जातीय हैं। प्रयाग ही में आपका निवास स्थान है। आपके पिता भी संगीत के प्रेमी और ज्ञाता थे। मुनीमजी का संगीत-जीवन मास्टर मदन की भांति ही आरम्भ हुआ था। एक दिन, जब आप अल्पायु थे तब एकान्त में पिताजी से सुने हुए कुछ गाने गा रहे थे, इनके पिताजी ने इन्हें गाते हुए फिर क्या था, वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और दूसरे दिन से ही उन्होंने इन्हें इस विषय की शिक्षा आरम्भ कर दी। कुछ दिनों के बाद आप एक संगीत प्रेमी सज्जन के पास भेजे गये, वहां इन्होंने गान-वाद्य की शिक्षा प्राप्त की। स्वर्गीय गोस्वामी श्रीप्रीतमलालजी से भी इन्होंने इस विद्या का विशेषकर राग रागिनियों का—अच्छा अध्ययन किया। गोस्वामीजी से शिक्षा प्राप्त कर आप उनके ही कथनानुसार करामतुल्ला खां के शिष्य से संगीत विद्या सीखने लगे। इनसे इन्होंने ८ वर्ष तक संगीत का अच्छा अध्ययन किया। धीरे २ आपकी भी प्रसिद्धि बढ़ चली। दूर २ से इस विद्या के प्रेमी आप से परामर्श लेने को आने लगे। मित्रों के कहने से आपने परोपकार तथा मनोरंजनार्थ 'सरस्वतीसंगीत समिति' स्थापित की। इससे संगीत का प्रचार हुआ और लोगों में इसके प्रति रुचि उत्पन्न हुई। लोगों के अनुरोध से आपको 'सरस्वती संगीत-विद्यालय' भी खोलना पड़ा। इसके खुलते ही मुनीमजी के कई अनन्य भक्त संगीत की शिक्षा के लिए इसमें सम्मिलित हो गये। 'लीडर' के उप-सम्पादक पं० सत्यानन्द जोशी ने भी इसमें अच्छी सहायता दी।

प्रो० लक्ष्मणदास मुनीम।

भारतीय संगीत विद्या विशारद श्रीयुत विष्णु नारायण भातखंडे बी. ए. एल. एल. बी. महोदय ने स्वयं इस विद्यालय का निरीक्षण किया था और अपनी प्रसन्नता प्रकाश कर मुनीमजी को इस सत्कार्य के लिए बधाई दी थी।

भातखंडे महोदय से विशेष प्रीति एवं उनकी स्वर लिपियां के सरल होने के कारण मुनीमजी ने उनकी ही लिपियों का अपने विद्यालय में प्रयोग किया। मुनीमजी संगीत विद्या के विज्ञ हैं ही, परन्तु उसकी सामयिक गति पर भी आप विशेष ध्यान रखते हैं। बंगाल और महाराष्ट्र में संगीत विद्या के सम्बन्ध में जो उन्नति और परिवर्तन हो रहे हैं उन्हें आप विशेष रूप से ध्यान करते हैं। नवीन प्रकाशित स्वर-लिपियों पर आप खूब विचार करते हैं और उनके प्राचीन लिपियों के भेद को भी विवेक से देखते हैं। बहुत प्रकार के देशी तथा विदेशी बाजे बजाने में आप दक्ष हैं। आपने स्वयं बहुत सी स्वर लिपियां शुद्ध की और निकाली हैं।

आपसे हमारा यही निवेदन है, कि आप इसी भांति कार्य कर इस को अग्रसर कर भारतीय संगीत विद्या की उन्नति कर उसका उद्धार करें।

जगत का इतिहास और उसका अध्ययन।

(३)

लेखक:—श्रीयुत सीताराम केशव दामले, बी. ए. एल. एल. बी.

पर, यदि कोई पूछे, कि मुसलमानों के अपार सामर्थ्य का वर्णन करने से हमारा क्या लाभ हो सकता है, तो उन्हें एक उत्तर दिया जा सकता है। हिन्दुजाति मुसलमानों के द्वारा परतंत्रता रूपी जाल में फँस जाने से कई हमारे ही लोग हमें नीचा बतलाने के लिये ताने मारा करते हैं। किन्तु मुसलमान-धर्म के ताज़े दम से न केवल भारत ही पादाक्रान्त हुआ, वरन यूरोपीय रोमन साम्राज्य के अवशिष्ट राज और स्पेन देश के क्रिश्चियन राज को भी मुसलमानों ने अपने पराक्रम बतलाये। मुसलमान-धर्म की स्थापना के अनन्तर केवल ४६ वर्षों के अनन्तर ही मुसलमानों ने कुस्तन्तुनिया पर चढ़ाई की। और, भारत पर महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाइयाँ होने के लगभग दो शताब्दियों के पूर्व ही रोमनसाम्राज्य के पूर्व भाग और स्पेन को इस्लामधर्मीयों ने पादाक्रांत किया था। भारत में मुसलमानों का स्थायी राज—सारे भारत में नहीं वरन केवल दिल्ली के आसपास के प्रदेशों में—सन १५२६ ई० के अनन्तर संस्थापित हुआ। पर, रशिया पर तो मुग़लों ने १३ वीं सदी में ही चढ़ाई की थी। उनके बाटो नाम के सेनापति ने रशिया की कीव और मास्को नाम की राजधानियों को हस्तगत कर लिया था। और, जर्मनी की सीमा तथा बाल्टिक सागर के तट तक तुर्क और मुग़लों की सेनाएँ फैल गई थीं। सैबीरिया के टोबोलस्की नाम के नगर में भी बाटू नाम के एक मुग़लवंश ने २०० वर्ष तक राज किया था। बाटू के भाई शैबाली खाँ ने १५००० मुग़ल-कुटुम्बों को साथ ले जाकर, साइबेरिया देश के भयावने प्रदेश में घुसकर, तोबोलस्क नगर में मुग़ल राज स्थापित किया था। और, बाटू ने पूर्वीय यूरोप के उत्तर भाग पर ५००० सैनिकों सहित चढ़ाई की थी। उस चढ़ाई का हाल गिबन ने अपने इतिहास में बड़े ही आश्चर्यमय शब्दों में लिखा है।

गिबन का इतिहास हमारे सुधारकों की दृष्टि में तुच्छ मत्स्यपुराण या स्कंदपुराण के सदृश नहीं है। उसमें तुर्कवीर बाटू के पराक्रमों का वर्णन उसने इतना रसभरा, वक्तृत्वपूर्ण और आश्चर्यमय लिखा है, कि वह एकाध पौराणिक कथा से भी कहीं अधिक बढ़िया हो गया है, जिससे वह घटना असम्भव मालूम होती है। इन दिनों जिन प्रदेशों में युद्ध हो रहा है, वहीं पर तुर्कवीर बाटू ने विलक्षण पराक्रम किये थे। अतः उसका परिचय लोगों को कराने के लिये हम गिबन के उस वक्तव्य का अनुवाद लिखते हैं।

"जिस समय तुर्कवीर बाटू ने अपने कास्पियन सागर के उत्तरीय प्रदेश को छोड़ा, उस समय उसके साथ ५००० सेना थी। उसने सन १२३५-१२४५ में यूरोप पर चढ़ाई की। बाटू की सेना इतनी जल्दी और उत्साह से यूरोप में घुसी, जिससे उसने छः वर्ष में ही पृथिवी की परिधि का ¼ भाग आक्रमण कर लिया। उसके वीरों ने अपने घोड़ों की सहायता से एशिया और यूरोप की बड़ी २ नदियां तैर की थीं। वे चमड़े की हलकी नौकाएँ बनाकर उनके द्वारा नदियों को तै करते थे अथवा नदियों का पानी बर्फ़ के रूप में परिवर्तित होजाने पर उस पर से वे अपना सामान घोड़ों पर अथवा गाड़ियों में लाद कर लिया ले जाते थे। तुर्कस्तान, अस्ट्राखान, कास्पियन का प्रदेश और सर्केशिया को हस्तगत करके बाटू ने रशिया में प्रवेश किया। रशिया के बड़े बड़े ड्यूक अर्थात् सरदार और राजाओं में आपस में फूट हो जाने से रशिया शीघ्र ही शत्रुओं के चंगुल में फँस गया। बाटू के सैनिक तुर्क लिथोनिया से काले समुद्र तक फैल गये। और, तुर्कसेना ने रशिया की पुरानी राजधानी कीव और नई राजधानी मास्को की ओर बहुत ही ख़राब की। यद्यपि राजधानियों की खेराबी क्षणिक और आकस्मिक थी, पर उस चढ़ाई के बाद से, लगभग दो सौ वर्ष तक रशिया पर तुर्क और मुग़लों का प्रभाव रहने से, रशिया की जनता में जित लोगों के अवगुणों का अक्षय प्रवेश होजाना ही रशिया की बड़ी हानि है। तुर्कों ने रशिया को पादाक्रांत कर के वहां पर अपनी राजसत्ता की दृढ़ स्थापना की। तदुपरांत बाटू ने पोलैंड पर भी चढ़ाई की और पोलैंड से आगे को बढ़कर जर्मनी की पूर्वीय सीमा तक अपने सैनिक भेजे। उसने लुब्लिन और क्रेको शहर नष्ट किये और लिगनील के युद्ध में साइलेशिया के ड्यूक और पोलैंड के पालेटाइन्स लोगों का सहार किया तथा उसमें असफलता पाये हुये सरदारों के दाहिने कान काटकर उसके बड़े २ बीस थैले भर लिये। बाद को बाटू हंगरी में गया। यद्यपि बाटू के उसकी सेना के साथ रहने या न रहने का कुछ भी पता नहीं चलता तथापि यह सिद्ध है, कि उसका पराक्रम उसके सैनिकों के रोम रोम में घुसा हुआ था। हंगेरियनों को बाटू के सैनिकों के कार्पेथियन को न लांघ सकने का पूर्ण विश्वास था। पर, वह सेना तो अल्पकाल ही में कार्पेथियन को लांघ गई। पहले तो हंगेरियनों को बाटू के हंगरी पर चढ़ आने की ख़बर ही झूठ मालूम दी। पर, जब बाटू के सैनिक हंगरी में घुसे तब कहीं हंगेरिया के राजा चौथे बेला ने अपने बिशप और ड्यूकों की सहायता से क्षणिक काल ही में स्वराज्यरक्षा के लिये स्वसेना सुसज्जित की। किन्तु बाटू की अजीत सेना के सम्मुख उस सेना की दाल नहीं गल सकी। बाटू की सेना ने डेन्यूब नदी के उत्तरीय हंगरी का सारा प्रदेश केवल एक ही दिन में हस्तगत कर लिया। और, ग्रीष्मऋतु में उस प्रदेश की प्रजा की बहुत ही बुरी गति की, कई नगर, देवालय और प्रार्थनामंदिर नष्ट किये और उनके स्थान पर मुर्दों के ढेर लगा दिये। हंगेरियनों का न केवल युद्ध ही में क़त्लेआम किया गया वरन उनके कई लोगों के शरण आ जाने पर भी उनसे खेतों की फसल कटवा कर फिर वे मार डाले गये।" यह वर्णन गिबन का ही लिखा हुआ है। अर्थात् इसमें हमने अपनी ओर से कुछ भी नहीं मिलाया है। उस चढ़ाई से हंगेरिया के केवल तीन नगर ही शेष रहे। और, हंगरी के दुर्दैवी राजा बेला को कुछ समयतक एड्रियाटिक समुद्र के द्वीपों में अपने अन्तिम अभाग्य के दिन बिताने पड़े।

लॅटिन वंश की बस्ती के सभी देशों पर उस हलचल का परिणाम हुआ। उस समय जो लोग स्वीडन भाग गये थे, उनके द्वारा शत्रु के क्रूर पराक्रमों की बातें सुनकर बाल्टिक सागर के तट पर के राष्ट्र भी भयभीत हो उठे। पर, बाटू की सेना वहांतक नहीं पहुंच सकी। वह सेना हंगेरिया के आसपास के सर्विया, बोस्निया और बलगेरियादिक प्रदेशों को नष्ट करती हुई, डेन्यूब नदी के तट का परित्याग कर के, पुनः वोल्गा नदी के तट की ओर विश्राम लेने के लिये चल दी। और, उसने एक भयावने और निर्जन प्रदेश में सराई नामक नगर बसाकर वहां के भव्य प्रासाद में अपने दिग्विजय के अनन्तर का विश्रांति का समय सुखोपभोग में बिताया।

तुर्कस्तान के पराक्रमी मुसलमानों ने पश्चिम की ओर जर्मनी और हंगेरी तक अपना विजय-ध्वज फहराया। और, पूर्व में चीन देश भी पादाक्रांत किया। चंगीज़खां ने उत्तरीय चीन का साम्राज्य नष्टभ्रष्ट किया और उसीके वंशज कुबलै खां ने समग्र चीन देश, कोचीन, चाइना, पीगू, टोंकिन, कोरिया और तिब्बत देश पादाक्रांत किये तथा बड़ी भारी जलयुद्धसेना की सहायता से जापान पर भी चढ़ाई करने का निश्चय किया। पर, उसकी लगभग एक लाख जलयुद्धसेना दो बार तूफ़ानों से नष्ट हो जाने के कारण वह जापान पर चढ़ाई नहीं कर सका।

जिन पराक्रमी तुर्क वीरों ने पूर्व में चीन के समुद्रीय तट और पश्चिम में बाल्टिक सागर के तट के बीच की विस्तीर्ण भूमि को

क्रोड़पत्र–हिन्दी-चित्रमय-जगत्, अगस्त १९१६।

लॉर्ड किचनर भारतीय वीरों से मिलने गये थे।

मीरदस्त नाम के एक घायल सूबेदार से लॉर्ड किचनर मिले।

भारतीय सैनिकों के लिये बनाये हुए अस्पताल के घायल सैनिकों के प्रति लॉर्ड किचनर सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं।

मरुस्थल के बालू से बचने के लिये ऊँट के पैरों में चमड़ा लपेट रहे हैं।

खंदान हस्तगत करने की युक्तियाँ।

जर्मन खन्दान

घु...

एक मज़बूत स्थान पर जिस युक्ति का व्यवहार किया जाता, इस चित्र में [illegible]

भाटिया स्वयंसेवक संघ, बम्बई।

अनाथ विद्यार्थीगृह, पूना, के विद्यार्थी श्रावणी कर रहे हैं।

अगस्त मास का महायुद्ध।

लेखकः—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर बी. ए.

रूमेनिया और कार्पेथियन पर्वत।

जुलाई मास की तरह अगस्त मास में भी मित्र राष्ट्रों की ही जीत रही। और, अगस्त मास के अन्तिम सप्ताह में मित्रराष्ट्रों में रोमेनिया के सम्मिलित हो जाने से तो उन की सेना में ७।= लाख सेना की अधिकता हुई, जिससे अन्तिम सफलता की आशंका निर्मूल हो गई। पर, रोमेनिया के मित्रराष्ट्रों में सम्मिलित होने के कारणों और उसके युद्ध में भाग ले लेने से बल्कान प्रदेश तथा महायुद्ध पर होनेवाले परिणामों का विचार करने के पूर्व अगस्त मास के प्रथम तीन सप्ताहों की महायुद्धीय परिस्थिति का अवलोकन करना आवश्यक है। जुलाई मास की तरह अगस्त में भी फ्रांस-और रशिया की रणभूमि पूर्णतया जागृतावस्था में थी, इटाली की रणभूमि पर चहल-पहल शुरू हो गई थी तथा तुर्कस्तान भी अपना सिर पटक रहा था। केवल मेसोपुटेमिया की ओर गहरी शान्ति थी। अगस्त के पहले यूफ्रेटीस और टैग्रीज नदियों के संगम के पास १२० अंश से भी अधिक गर्मी पड़ने से अंग्रेज़ी सेना अधिक हलचल नहीं कर सकी। और, तुर्कों के पास अधिक सैनिक बल न होने से वह भी उस ओर चढ़ाई नहीं कर सकता था। अतः उसने अरबों को अंग्रेज़ी सेना का नाश करने के लिये उसकाया, पर उसका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। रशियन सेना लेकवेन और अर्मीनिया के प्रदेश में अच्छी सफलता मिला सकी, तो भी उस ओर कोई विशेष महत्व की घटना नहीं हुई। अगस्त मास के आरंभ में तुर्क सेना ने स्वेज की नहर की ओर कुछ हलचलें कीं और प्रथम सप्ताह ही में लगभग १५-२० हज़ार सेना, काटिया प्रदेश की ओर से, स्वेज की नहर के १५-२० मील के फासिले पर पहुंचा दी। वहां पर अंग्रेजों तथा तुर्क सेना में दो दिन तक भीषण सामने हुए। यद्यपि तुर्कों के साथ बड़ी २ तोपें और जर्मन गोलंदाज़ थे, तथापि तुर्क सेना की खूब हार हुई, जिससे उसे २५-३० मील तक पिछड़ जाना पड़ा। तुर्क सेना के पिछड़ जाने से उसने अपनी बड़ी २ तोपें शीघ्र ही हटा दीं तो भी अंग्रेज़ी सेना ने ३-४ हज़ार तुर्कों को कैद कर लिया और सात-आठ हज़ार तुर्कों की ख़राबी की। तुर्क सैनिकों को वक्त पर पानी पीने को न मिलने से ही उनकी हार हुई। वास्तव में देखा जाय तो तुर्कों को अगस्त मास ही स्वेज नदी पर चढ़ाई करने को अनुकूल समय नहीं था। फिर उसने चढ़ाई क्यों की? इससे तो उसका यही उद्देश्य देख पड़ता है कि उस ओर अधिक हलचल करने से सम्भवतः अंग्रेज़ी सेना का ध्यान पश्चिमीय रणभूमि पर से हटकर इजिप्त की ओर आकर्षित हो जाय। पर, इस चढ़ाई से तुर्कसेना की ही

रूमानिया और कार्पेथियन पर्वत।

निर्बलता सिद्ध हो गई और स्वेज की सुरक्षितता के विषय में किसी बात की आशंका नहीं रही। महायुद्ध में रोमेनिया के सम्मिलित हो जाने के पूर्व ही, स्वेज की नहर के पास, तुर्कों के मनुष्यबल का रहस्य सभी पर भलीभाँति प्रकट हो गया था। इसीसे अगस्त मास में तुर्कों की रणभूमि पर अंग्रेज़ों को सफलता मिली। इटली की रणभूमि पर दृष्टिपात करने से भी ऐसा ही दृश्य दिखाई देता है। अगस्त के दूसरे सप्ताह में इटली की सेना ने इसांज़ो नदी को लांघकर गेरीज़िआ नाम के नगर को हस्तगत कर लिया। गत दस महिनों से गेरीज़िआ को हस्तगत करने के लिये अनेक युक्ति-प्रयुक्तियाँ सोची जा रही थीं; अत आस्ट्रिया ने यहां पर अच्छा सैनिक प्रबन्ध कर रखा था। पर, इटाली ने बड़ी बहादुरी से उक्त स्थान को जीत लिया, जिससे इटाली का, दो मास पूर्व की ट्रेंटिनो प्रदेश की पिछाहट का, कलंक धुल गया। गेरीज़िआ के पास इटाली की सेना को बड़ी भारी सफलता मिली। पर, अगस्त मास के तीसरे सप्ताह के अन्त तक गेरीज़िआ के पूर्व में वह आगे को नहीं बढ सकी। युद्धारम्भ से अभी तक इटाली को ऐसी सफलता नहीं मिली थी। इसके अतिरिक्त यह सफलता भी ट्रेंटिनो की आस्ट्रिया की चढ़ाई को पीछे हटाने के समय उसे मिली है। इससे यह सिद्ध हो चुका है, कि संकट के समय भी इटाली की सेना अपना सच्चा पराक्रम बतला सकती है। जब से इटाली ने ट्रिस्ट्री का प्रदेश आस्ट्रिया से छीन लिया है, तब से उसके मनोरथों को नया आवेग प्राप्त हुआ है। महायुद्ध में इटली के सम्मिलित हो जाने पर पांच छः महिनों के अनंतर सभी लोगों का यह दृढ़ ख़याल हो गया था कि उसने व्यर्थ ही युद्ध में योग दिया है। और, जब इटालीयन सेना ट्रिस्टी को खो बैठी तथा आस्ट्रिया ट्रेंटिनो प्रदेश में घुस गया, तब तो यह निश्चित हो चुका कि मित्रों को इटाली की सहायता मिलना तो दूर रहा, उल्टे उनको ही उसे सहायता करनी पड़ेगी। पर, शीघ्र ही इटाली सँभल गया और वह केवल अपने पैरों ही नहीं खड़ा रहा वरन उसने ईसांज़ो की ओर ऊंचा उठकर आस्ट्रिया को धर दबाकर गेरीज़िया को ले लिया, जिससे मित्रराष्ट्रों को इटाली का सामर्थ्य मालूम हो गया। इसीसे इटाली के ट्रिस्ट्री प्रदेश को आस्ट्रिया से छीनते हुए देखकर रोमेनिया को भी ट्रेन्सलावेनिया के प्रदेश को उस से छीन लेने की इच्छा उत्पन्न हुई।

सारांश, पश्चिमीय रणभूमि की रणकथाओं ने ही रोमेनिया को उत्तेजित किया। यद्यपि जुलाई मास में अंग्रेज़ी सेना बहुत कुछ आगे को ओर बढ़ी, पर अगस्त मास में उसकी गति अत्यंत मंद हो गई। जर्मन-सेना ने अंग्रेज़ी सेना पर खूब धावे किये, पर उसकी दाल कहीं पर भी नहीं गली। अगस्त मास में यद्यपि अंग्रेज़ी सेना थीमवाल को हस्तगत नहीं कर सकी, तथापि वह अब भी उसको पूर्व की ओर से घेरा लगाने का प्रयत्न कर रही है। फ्रेंच सेना भी पेरोनी ग्राम को अगस्त मास में नहीं ले सकी है। तो भी वह अंग्रेज़ी सेना की तरह आगे को बढ़ रही है। जुलाई और अगस्त मास की अंग्रेज़ों तथा फ्रेंचों की चढ़ाई की प्रगति को बतलाने के लिये अन्यत्र एक चित्र रखा गया है। उसका अवलोकन करने से मालूम हो जायगा कि पहले हमले में मित्र सेना जितने मील आगे को बढ़ सकी थी, अगस्त मास में वह केवल जीते हुए मुल्क की ही रक्षा करती रही। उसकी प्रगति हो रही है, पर उसकी गति यथायत् नहीं है। वर्डून के पास जर्मन सेना की जैसी दशा हो गई थी, ठीक वैसी ही दशा, अगस्त मास में, सोमनदी के तट पर अंग्रेज़ों और फ्रेंचों की हुई। अंग्रेज़ों की चढ़ाई शिथिल हो गई और सोम नदी की चढ़ाई को किले की लड़ाई का स्वरूप प्राप्त हुआ। पर, अंग्रेज़ों और फ्रेंचों की यह मंद गति रोमेनिया को कैसे उत्तेजक हुई? अंग्रेज़ी और फ्रेंच सेना लगभग डेढ़ वर्ष तक कोशिश करने पर भी जर्मनी की सेना को नहीं फोड़ सकी है, तो फिर रोमेनिया जैसा तटस्थ राष्ट्र उनके पराक्रम पर विश्वास रख कर महायुद्ध में कैसे सम्मिलित हुआ? यद्यपि अगस्त मास में अंग्रेज़ों और फ्रेंचों को जर्मनी का व्यूह भंग करने में सफलता नहीं मिली, तथापि गत दो मास के मामलों से यह भलीभाँति सिद्ध हो चुका है कि अब मित्रों में शत्रुओं से लड़कर उनका नाश करने की ताकत आ गई है। और, वे इस कार्य में नरेंदा बढ़े चढ़े ही रहेंगे। जुलाई मास में जर्मन सेना वर्डून पर खूब धावे कर रही थी, पर अगस्त मास में वह ढीली पड़ गई!

केवल इतना ही नहीं वरन उस की अपेक्षा फ्रेंच ही आगे को [illegible] छः मास तक वर्डून पर भीषण संग्राम होता रहा, तो भी जर्मनी [illegible] सफलता नहीं मिली, जिससे तोपों के मोर्चे लगाने में जर्मनी की [illegible] अक़ल वर्डून के पास ही मारी गई। यह इसी गुण के बल [illegible] सन १९१५ में रशिया में सफलता प्राप्त कर सकी थी। पर, ज्यों [illegible] उसका उक्त कौशल्य मारा गया त्यों ही तटस्थ राष्ट्रों की दृष्टि [illegible] जर्मनी नीचे गिर गया। इतने में रोमेनिया का मन भी, स्वार्थसिद्धि हेतु से, ललचाया। तब उसे यह विश्वास हो गया कि अंग्रेज़ी [illegible] फ्रेंच सेना जर्मनी के सैनिक व्यूह का छेद भले ही न कर सके, तो भी वे जर्मनी के मुख्य बल को फ्रांस ही में अटका कर, [illegible] की तरह, उसे धीरे २ नष्ट करने में भलीभाँति समर्थ हैं। सार [illegible] जर्मनी की तोपों के विशाल स्वरूप का महत्व वर्डून की चढ़ाई [illegible] घटाया और जर्मन-सेना का विस्तार अंग्रेजों और फ्रेंचों की च[illegible] ने मर्यादित किया, जिससे रोमेनिया निर्भीक हो गया। अब [illegible] यह है, कि उसके निर्भीक हो जाने पर भी उसे सफलता मि[illegible] की आशा कैसे हुई? वर्डून के पास की जर्मनी की असफलता [illegible] जिस कार्यरूपी वृक्ष का बीज बोया; एंग्लो-फ्रेंचों की चढ़ाई से जि[illegible] कार्यरूपी बीज को अंकुर उत्पन्न हुए; इटाली की सफलता ने जिस [illegible] को पल्लवित किया; वही-रोमेनिया को सम्मिलित करा लेने का [illegible] रशिया की कार्पेथियन की चढ़ाई से साध्य हो गया। रशि[illegible] सेना ने जून मास में, आस्ट्रिया पर चढ़ाई करने का आरम्भ किया [illegible] और, दो-अढ़ाई मास में सारे ब्यूकोविना को लेकर [illegible] कार्पेथियन तक पहुंच गई, ब्यूकोविना के उत्तरीय [illegible] प्रदेश को जीत कर उस ओर के कार्पेथियन के घाट भी उसने ह[illegible] गत कर लिये तथा उत्तरीय गेलीशिया के कोवेल और लेम्बर्ग [illegible] घेरा लगा कर दो-तीन मास में सात-आठ लाख आस्ट्रियन सैनि[illegible] को जर्जर कर डाला। उधर पश्चिमीय रणभूमि पर भी फ्रेंच औ[र] अंग्रेज़ी सेना ने जर्मनी को धर दबाया था और पूर्व रणभूमि में रशिया ने आस्ट्रिया का काम तमाम कर डालने का निश्चय कर लिया था, [illegible] स्थिति देखकर रोमेनिया का भी जी ललचा। अस्तु। आस्ट्रिया [illegible] जर्मनी के आसन को डिगाने का रशिया का यह चौथा प्रयत्न है। महायुद्ध का आरम्भ हो जाने पर, जब कि जर्मनी बड़े ज़ोर शोर से बेल्जियम और फ्रांस में घुस रहा था, उस ने पूर्व प्रशिया पर चढ़ाई कर जर्मनी की नाक में दम ला दिया था। उस समय सेनापति हिंडनबर्ग ने पूर्व प्रशिया की सीमा पर के मरुस्थल में रशिया को फँसा कर उस संकट का निवारण किया। दूसरी बार, जब जर्मन सेना यिप्रेस की चढ़ाई में जुटी हुई थी, उसने रशिया और पश्चिम पोलैंड को तै कर जर्मनी में घुसने का निश्चय किया था। तब जर्मनी को केले की आशा छोड़कर अपनी सेना को रशिया की ओर भेजना पड़ा था। इस बार सेनापति हिंडनबर्ग ने रशियन सेना को वार्सा तक पीछे हटाया। पर, रशिया ने वार्सा के आसपास जर्मनी की दाल नहीं गलने दी। जर्मन सेना को वार्सा के आसपास रोक रखने के अनंतर, सन १९१५ में, शीत [illegible] जाने पर, रशिया ने पुनः चढ़ाई करने की ठानी और उसने प्रिज़मिस्ल को हस्तगत कर, मार्च-अप्रेल मास में सारे गेलीशिया को व्याप्त कर, उत्तरीय कार्पेथियन को लाँघने का प्रयत्न किया। उस समय भी [illegible] तीसरी बार आस्ट्रो-जर्मनों का आसन डिगमिगाया। इसी समय इटली युद्ध में सम्मिलित हो गया। जनता का विश्वास हो गया कि, [illegible] हंगेरी के व्याप्त हो जाने से महायुद्ध की समाप्ति रशिया ही की ओर से एक दो मास में हो जायगी, पर जर्मनी को एक बात की अनुकूलता हो गई। एंग्लो-फ्रेंच वीरों ने रशिया को सहायता पहुंचाने के [illegible] जर्मनी के सैनिक व्यूह पर खूब धावे किये। और, इसमें अंग्रेज़ों को सफलता प्राप्त होने पर भी अंग्रेज़ों की युद्धीय सामग्री का अभाव जर्मनी को मालूम हो गया। यद्यपि अंग्रेज़ी सेना आगे को [illegible] पर उससे उसका रहस्य खुल गया। इसीसे जर्मनी ने पश्चिमीय रणभूमि की युद्धीय सामग्री पूर्व की ओर भेज दी और डुनाजे़ [illegible] के तट पर रशिया का पराभव कर उसे पीछे हटाया। [illegible] उस पिछाहट से न डर कर पुनः बहुतसी सेना एकत्रित कर [illegible] मास में चौथी बार आस्ट्रो-जर्मनों का आसन डिगाया, [illegible] रोमेनिया मित्रों में सम्मिलित हो गया। अतः अब पांचवीं [illegible] हिलाने वाले आसन का बिना स्थान त्याग किये [illegible] सकता। पहलों तीन बार यह आसन स्थिर रहा; क्योंकि [illegible]

मित्र राष्ट्रों के पास सैनिक सामग्री का अभाव था। पर, अब यह बात नहीं है। जर्मनी की सारी सामग्री वर्डून के पास नष्ट हो चुकी है; अतः अब उसके पास कुछ भी नहीं है। जुलाई और अगस्त मास की चढ़ाइयों से यद्यपि मित्रराष्ट्र मंदगति के देख पड़ते हैं; तथापि अब उनके पास युद्धीय सामग्री की विपुलता हो गई है। रशिया में भी जून-जुलाई मास की अपेक्षा अगस्त मास में कुछ अधिक थका-वट आ गई है, तो भी रोमेनिया की सात आठ लाख सेना की सहायता से वह हंगेरिया का पूर्ण पराभव कर सकेगा। वास्तव में रशिया अगस्त मास में ही शिथिल हो गया था, पर वह शिथिलता थोड़ी सहायता से दूर हो सकती थी। इसीसे उसे रोमेनिया की सहायता की आवश्यकता थी। रोमेनिया ने भी रशिया का उद्देश्य मालूम कर लिया और उसने मित्रराष्ट्रों का पक्ष सत्यसमर्थक समझ कर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी, जिससे जर्मनी, टर्की और बलगेरिया ने भी रोमेनिया से बदला लेने का निश्चय किया।

महायुद्ध में रोमेनिया के सम्मिलित हो जाने से उभय पक्ष की युद्धीय कार्रवाइयों में भारी अन्तर हो गया है। गत दो तीन मास से दोनों राष्ट्रों ने पश्चिमीय और पूर्वीय रणभूमि पर ही जर्मनी को धर दबाकर, उसके एक जाते ही सैनिक व्यूह का छेद कर, सेना-शकट को नष्ट कर डालने का निश्चय कर लिया था। पर, रोमेनिया के युद्ध में योग दे देने से उन्हें अपने पैंतरे बदल देने पड़े। अब जर्मनी का दम बिलकुल बंद कर डालने के लिये उसके तुर्क-साम्राज्य से, रेल के द्वारा होनेवाले, सम्बन्ध के तोड़ डालने की आवश्यकता है। क्योंकि, तुर्कों की मनुष्यबल और अस्त्रादि की सहायता पर ही उसके प्राण निर्भर हैं। अतः तुर्कीय सहायता का मिलना बन्द हो जाने पर जर्मनी के प्राण-पखेरू जल्दी से उड़ जायँगे। अतः रोमेनिया के मित्रराष्ट्रों में सम्मिलित हो जाने से यह कार्य करना अत्यन्त सरल हो गया है। तदनुसार यदि मित्र राष्ट्र, सितंबर या अक्टूबर मास के अर्थात् शीतकाल के पूर्व ही यह कार्य कर लेंगे, तो रोमेनिया के मिलने का ध्येय साध्य होगा। यदि बर्फ के पिघलने के पूर्व उक्त सम्बन्ध नहीं तोड़ डाला जायगा तो सात आठ लाख सेना के मिलने पर भी मित्रराष्ट्रों को कुछ भी लाभ नहीं होगा। जिससे उलटे जर्मनी और तुर्क ही उत्तेजित हो जायँगे और युद्ध की समाप्ति का समय और भी बढ़ जायगा। इससे आगामी तीन महिनों में जर्मनी और तुर्कों के बीच का सम्बन्ध तोड़ना आवश्यक है। अतः बेलग्रेड से कान्स्टेंटिनोपल तक के रेलमार्ग के किसी विशिष्ट स्थल पर मित्रराष्ट्रों की सत्ता प्रस्थापित करनी चाहिये। बेलग्रेड कान्स्टेंटिनोपल रेलवे तीन स्थलों पर से नष्ट की जा सकती है। पहला स्थान बेलग्रेड, नीश और सोफिया; दूसरा सोफिया-फिलिपोपोलीस,—आड्रियानोपल और तीसरा है [illegible]-[illegible] है। इन तीन स्थलों पर से किसी न किसी स्थान पर, शत्रु राष्ट्रों की सेना को, इस रेल का नष्ट करना चाहिये। इन रेलमार्गों को नष्ट करने के लिये पहले इन तीन स्थलों का विचार करें, जहाँ से इस कार्य की पूर्ति होने की सम्भावना है। बेलग्रेड-नीश और [illegible] प्रदेशों में रह कर पहले रोमेनिया की सेना घुस सकती है। [illegible]

है। यद्यपि उक्त ६०-७० मील का प्रदेश पहाड़ी है, तथापि वहाँ पर सर्बियनों की बस्ती होने से रोमेनिया को भावी मार्ग सुलभ हो जायगा। अतः यदि रोमेनियन सेना सर्बियन प्रदेश के उक्त स्थान पर पहुँच जायगी, तो सर्बिया में आस्ट्रिया के विरुद्ध खूब बलवा होगा। तथा देशत्याग करनेवाले सर्बियनों ने जिन २ स्थानों पर बन्दूकें और तोपें छिपा रखी हैं, उन सभी को गति प्राप्त होगी, जिससे सर्बियन प्रदेश की रक्षा करते करते आस्ट्रिया के नाक में दम आ जायगा। बेलग्रेड-नीश के प्रदेश पर रोमेनिया की चढ़ाई शुरू होते ही सेलोनिका की अंग्रेज़ी और फ्रेंच सेना, डोरेन के मार्ग से, मेसोडोनिया में घुस कर, वर्दार नदी के तट से नीश को लक्ष्य कर उत्तर की ओर जायगी, जिससे पहले प्रदेश में ईशान की ओर से रूमेनिया और दक्षिण की ओर से ऐंग्लो-फ्रेंच शत्रु पर अवश्य ही चढ़ाई कर देंगे। उस समय उक्त दोनों सेनाओं को सहायता पहुंचाने के लिये इटाली की सेना दक्षिणीय अलबेनिया में घुस गई है, और अब वह युस्कप को लक्ष्य कर दक्षिणीय मेसिडोनिया में घुसना चाहती है। इटाली की सेना को भी सहायता करने के लिये सेलोनिका के पास पड़ी हुई एक लाख सर्बियन सेना मोनास्टर के दक्षिण पश्चिम में चढ़ाई कर रही है। सारांश, युद्ध में रोमेनिया के सम्मिलित हो जाते ही अगस्त के अन्तिम सप्ताह से, तीनों दिशाओं से, बेलग्रेड-नीश के प्रदेश पर चढ़ाइयों का आरम्भ हो गया है। इटालियन सेना दक्षिण अलबेनिया में पहुंच गई है और अब वह, समुद्रीय तट का परित्याग करके, तीस मील के प्रदेश में घुस गई है। अलबेनिया का यह प्रदेश और युस्कप तक का मेसिडोनिया का प्रदेश इतना पहाड़ी और बेराह का है, कि उस तरफ से की जानेवाली चढ़ाई का युद्धीय दृष्टि से बिलकुल महत्व नहीं है। तो भी इटाली का यह प्रयत्न उसके स्वतः के लाभ के लिये नहीं बरन सेलोनिका की सर्बियन सेना पराक्रमशील मोनास्टर के दक्षिण पश्चिमीय प्रदेश में पहुंच जाय तो उसे सहायता पहुंचाने के लिये है। युद्ध में रोमेनिया के सम्मिलित होने के समय सर्बियन सेना मोनास्टर को लक्ष्य कर उत्तर की ओर जा रही थी। इस सेना को दक्षिणीय अलबेनिया की पूर्वीय सीमा पर से इटालियन सेना से [illegible] के लिये ही मोनास्टर के दक्षिण की बलगेरियन सेना ने [illegible] सीमा के [illegible] प्रदेश को [illegible] कर लिया और [illegible], दक्षिणीय अलबेनिया की पूर्व सीमा की ओर जाने का, सर्बिया का मार्ग बन्द कर दिया। [illegible]

लगेरिया की सेना उत्तर की ओर से नहीं धर दबाई जा सकेगी। और, बिना इसके सेलोनिका की ओर की बलगेरिया की सेना भी कम नहीं होगी, जिससे सर्बियन सेना मोनस्टर प्रदेश में नहीं घुस सकेगी। मोनस्टर प्रदेश में सर्बिया के घुस जाने पर वहां से, इटेलियन सेना से संलग्न होकर, एंग्लो-फ्रेंच सेना की बाईं बाजू निष्कंटक किये बिना वर्दार नदी के किनारे २ उत्तर में भीषण सामना करते हुए नीश तक पहुँच जाना अत्यन्त कठिन कार्य है। अतः यदि असोंवो और विडिन प्रदेशों में रोमेनियन सेना आस्ट्रो-जर्मनों का पराभव नहीं कर सकेगी, तो एंग्लो-फ्रेंच सेना के, वर्दार नदी के तट से, डोरेन से नीश तक पहुंच जाने पर भी युद्धीय दृष्टि से विशेष लाभ न होकर उसके शत्रु-जाल में फँस जाने की सम्भावना है। सारांश: रोमेनिया की डेन्यूब नदी पर की शत्रुसेना का व्यूह छेदने पर ही सेलोनिका की एंग्लो-फ्रेंच सेना की हलचल अवलम्बित है। अतः अगस्त के अन्तिम और सितम्बर के प्रथम सप्ताह से असोंवो और विडीन के प्रदेशों में आस्ट्रो-जर्मन और रोमेनिया के बीच भीषण सामने शुरू हो गये हैं, पर उन सामनों का परिणाम सितम्बर के पहले सप्ताह में कुछ भी नहीं दिखाई दिया। यदि इन सामनों में रोमेनिया को अच्छी सफलता मिलेगी तो उत्तर सर्बिया और दक्षिण सर्बिया के प्रदेश ही सितंबर-अक्टूबर मास के मुख्य रणक्षेत्र हो जावेंगे। और, यदि असोंवो और विडिन के प्रदेश में रोमेनिया को सफलता नहीं मिलेगी तथा उसे बेलग्रेड-नीश रेलमार्ग की शाखा के तोड़ डालने का प्रयत्न छोड़ देना पड़ेगा तो सर्बिया के बदले बलगेरिया का प्रदेश ही सितंबर-अक्टूबर का प्रधान रणक्षेत्र हो जायगा। अतः बलगेरिया का प्रदेश प्रधान रणक्षेत्र हो जाने पर रोमेनिया की सेना की कैसी दशा होगी, इसी का अब विचार करें।

यदि बेलग्रेड-नीश की शाखा को छोड़ कर दूसरी ओर अर्थात् सोफिया फिलिपोपोलीस-एड्रियानोपल के प्रदेशों पर रोमेनिया के चढ़ाई करने का मान लिया जाय तो उसे डेन्यूब नदी, विडिन और रश्चक के मध्य भाग में अर्थात् निकोपोली को लाँघकर इस्कर नदी की तराई से सोफिया पर चढ़ाई करनी चाहिये अथवा सेवना के मार्ग का अवलम्ब कर फिलिपोपोलीस पर चढ़ाई करनी चाहिये। अर्थात् डेन्यूब नदी को तैरकर जाने पर सोफिया और फिलिपोपोलिस को लक्ष्य के रोमेनिया की सेना आगे को बढ़ेगी, यह स्पष्ट है। डेन्यूब नदी को लाँघकर इस्कर नदी की तराई और सेवना प्रदेश को रोमेनिया के ले लेने पर भी सोफिया-फिलीपोलीस के रेलमार्ग पर आने के लिये बाल्कन पर्वत को लाँघना कठिन है। अतः बेलग्रेड-कान्स्टेन्टिनोपल के मार्ग को नष्ट करने के लिये विडिन-आर्सोवा के प्रदेश में आस्ट्रो-जर्मनों का पराभव करने में जितना लाभ होगा, उतना लाभ विडिन-रश्चक के प्रदेश की डेन्यूब को लाँघने से नहीं होगा। इसलिये रोमेनिया ने पहले हमले में ही विडिन-असोंवा के प्रदेश में आस्ट्रो-जर्मनों को धर दबाया; यह बहुत ही अच्छा किया। अब निकोपोली के पास भी बहुत सी बलगेरियन सेना एकत्रित हो गई है और वह रोमेनिया को दक्षिण की ओर से धर दबाने के लिये, आस्ट्रिया की सहायता से, डेन्यूब नदी को लाँघने का प्रयत्न कर रही है। पर, सितम्बर मास में रोमेनिया को रशिया से अच्छी सहायता मिलेगी, जिससे वह डेन्यूब नदी को लाँघकर बलगेरिया पर चढ़ाई कर देगा। रशियन सेना को चढ़ाई करने के लिये दो उत्तम मार्ग हैं; अर्थात् या तो वह रोमेनिया के मध्य में आकर सोफिया-फिलिपोलीस के प्रदेश में घुस सकती है या डेन्यूब नदी के मुख के पास के रोमेनिया के डोब्रुजा प्रदेश में पहुँच कर वहां से रश्चक और वार्ना के प्रदेश में से बलगेरिया में घुसकर काल समुद्र के तट से तुर्कों के एड्रियानोपल और कान्स्टेन्टिनोपल के प्रदेश में घुस सकती है। सारांश; रोमेनिया के शामिल हो जाने से रशियन सेना रोमेनिया में से बलगेरिया और वहां से इस्तंबूल प्रदेश पर, काले समुद्र के द्वारा, चढ़ाई कर सकती है। इसीसे अगस्त के अन्तिम सप्ताह में रशियन सेना रोमेनिया में से दक्षिण की ओर जाने लगी है। अतः उसे रोक रखने के लिये, रश्चक और वार्ना के आसपास की रोमेनिया की सीमा को लांघकर, डोब्रुजा के प्रदेश में, अगस्त के अन्त में, बलगेरियन सेना घुस गई है। सितम्बर के आरम्भ ही में रोमेनियन सेना ने अपनी सीमा से थोड़ी दूरी पर बलगेरियन सेना को रोक रखा है। उधर रशियन सेना के भी उधर से दक्षिण की ओर जाने पर रोमेनिया में घुसी हुई बलगेरियन सेना की दुर्गति होगी। जिस प्रकार रशियन सेना रोमेनिया की सहायता के द्रुत-गति से आ रही है, उसी प्रकार आस्ट्रो-जर्मन सेना भी डेन्यूब नदी के दक्षिणीय तट पर एकत्रित हो रही है। इंग्लैंड, फ्रांस, इटाली और रशिया की सीमाओं पर तद्देशीय सेना और शत्रुसेना के बीच भीषण सामने होने पर और किसी २ स्थान पर तो आस्ट्रिया के रशिया के धर दबाने पर भी आस्ट्रो-जर्मन डेन्यूब नदी की ओर अपनी सेना कहाँ से भेज सके? रोमेनिया के युद्ध में सम्मिलित होते ही जर्मन-सेना घबरा उठी; अतः अब उसने गत चार पाँच मास के दाँवपेंच लड़ाना छोड़ दिये हैं। जर्मनी ने गत शशमाही में पश्चिमीय रणभूमि पर चढ़ाई कर फ्रेंचों को हटाने का विचार किया था। पर, जर्मनी की इस भयंकर महत्त्वाकांक्षा से रशिया की बन पड़ी, आस्ट्रिया को पिछड़ना पड़ा और रोमेनिया के युद्ध में सम्मिलित हो जाने से बलकान प्रदेश के नष्ट हो जाने का अवसर उपस्थित हुआ। फ्रांस की छाती पर सवार होकर महायुद्ध की समाप्ति करने की इच्छा रखनेवाले पक्ष के जर्मन-सेना में अधिकारारूढ़ हो जाने से ही गत चार मास से जर्मनी की अधोगति होना आरम्भ हुई है। पर, रोमेनिया की ठोकर लगते ही कैसर की आँखें खुलीं, जिससे रशिया की ओर ही युद्ध की समाप्ति करने की इच्छा रखनेवाले पक्ष के अधिकारी जर्मन सेना के चले जाने से सेनापति हिंडनबर्ग आस्ट्रो-जर्मन सेना के प्रमुख अधिकारी हो गये हैं। अर्थात् पश्चिम रणभूमि, पूर्व रणभूमि और बाल्कन प्रदेश या दक्षिण रणभूमि की आस्ट्रो-जर्मन सेना के सेनापति हिंडनबर्ग नियत किये गये हैं। अतः अब उन्होंने अंग्रेज़ और फ्रेंचों की ओर केवल अपने स्थान पर ही दृढ़ रहने का और यथासमय कुछ पिछड़ने का भी संकल्प कर लिया है। इसलिये उस ओर की सेना रशिया की ओर भेजी जा रही है। रोमेनिया के सम्मिलित हो जाने से रशिया को अपना बल पूर्व कार्पेथियन के लाँघने तथा रोमेनिया के द्वारा बलगेरिया पर चढ़ाई करने में खर्च करना आवश्यक है। अर्थात् पूर्वीय कार्पेथिया और रोमेनिया की दक्षिणीय सीमा पर ही रशिया की सारी शक्ति रहनी चाहिये। अतः उत्तर की ओर के रीगा, मिन्स्क और विन्स्क के प्रदेश में रशिया का अधिक बल नहीं रहेगा। इस प्रकार रशिया की उत्तरीय रणभूमि पर रशिया का सैनिक बल न रहने से जर्मन सेना के पश्चिम रणभूमि पर स्थिर हो जाने अथवा यथासमय पिछड़ने पर भी विशेष हानि नहीं होगी। इसीसे उत्तर की ओर की बहुतसी जर्मन-सेना कोवेल प्रदेश में और दक्षिण में डेन्यूब के तट पर आने लगी है। रशिया को पूर्वीय कार्पेथियन में और रूमेनिया को ट्रान्सलोवेनिया की पश्चिमीय सीमा पर की पर्वत-श्रेणियों में अड़ाकर कार्पेथियन पहाड़ की मुख्य रणभूमि की दाहिनी ओर अर्थात् कोवेल-लैंबर्ग के प्रदेश में अथवा बाईं ओर अर्थात् डेन्यूब नदी के तट पर रशिया का पराभव करने का हिंडनबर्ग ने निश्चय कर लिया है। तदनुसार उन्होंने अपने ध्येयानुसार रोमेनिया को पहले ही हमले में उसकी सीमा पर के कार्पेथियन के घाटों को लाँघ कर ट्रान्सलवेनिया के दक्षिण और पूर्व भाग को एक सप्ताह ही में घेरा लगाने दिया है। और, सितंबर मास में रोमेनिया समग्र ट्रान्सलवेनिया को व्याप लेगा, ऐसा अनुमान है। अर्थात् जिस फल के प्राप्त होने की आशा में रोमेनिया महायुद्ध में सम्मिलित हुआ है, उस फल की प्राप्ति उसको सितम्बर मास ही में हो जावेगी और आस्ट्रिया को नीचे देखना पड़ेगा। पर, सेनापति हिंडनबर्ग आस्ट्रिया की हार की ओर ध्यान न देकर जहाँतक हो सकेगा रोमेनिया की सबसे कम सेना डेन्यूब नदी की ओर आवेगी, ऐसे पेंच लड़ायेंगे। अतः यदि रोमेनिया की सेना का मुख्य भाग ट्रान्सलवेनिया में ही अटका रहेगा तो फिर रशिया को कार्पेथियन और ट्रान्सलवेनिया के पर्वतों को लाँघ कर यथाशीघ्र हंगेरिया के मैदान पर उतरना पड़ेगा। और, यदि यह कार्य साध्य हो जावेगा तो कार्पेथियन में और ट्रान्सलवेनिया के पश्चिमीय पर्वतों में रशिया और रोमेनिया को थोड़ी सी शत्रु-सेना भी धर दबायगी। अर्थात् ट्रान्सलवेनिया को व्याप्त करने में रोमेनिया का अधिक बल खर्च होने पर उसे धर दबाने के लिये अधिक सेना की आवश्यकता नहीं रहेगी, जिससे हिंडनबर्ग बहुतसी सेना को डेन्यूब नदी पर भेज देंगे। यदि रोमेनिया ट्रान्सलवेनिया को व्याप लेगा तो उसका काम बन आवेगा और आस्ट्रिया को नी

मातृभाषा के द्वारा शिक्षा।

पूना में एक शिक्षा-प्रचारक-मंडल है। मंडल के द्वारा संचालित एक मराठी विद्यालय है और एक अंग्रेजी विद्यालय भी। मंडल के सभी कार्य जनता की सहायता पर ही अवलम्बित हैं। और, जनता की भी मंडल के कार्यों से पूर्ण सहानुभूति है। जनता की प्रगाढ़ सहानुभूति से ही उत्तेजित होकर इस वर्ष से, मंडल ने, न्यू पूना कॉलेज की नींव रखी है। यद्यपि अभी तक इस नूतन संस्थापित कॉलेज में सभी श्रेणियों की शिक्षा नहीं दी जाने लगी है, तथापि उसकी आरम्भिक कार्य की पूर्ण सफलता को देख लेने पर इसमें शेष श्रेणियों की भी शिक्षा दी जाने लगेगी; ऐसा विश्वास है। मंडल के द्वारा संस्थापित संस्थाएँ इस ओर बड़ी लोकप्रिय हो रही हैं। और, मंडल भी जनता का ध्यान शिक्षा की ओर प्रवृत्त करने के लिये प्रशंसनीय उद्योग कर रहा है। तदनुसार उसने हाल ही में लोकोपकारार्थ जो एक उपयोगी प्रस्ताव करने का निश्चय किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है और आशा है, कि मंडल की इच्छा-पूर्ति हो जाने पर इस ओर शिक्षा विस्तार होने में बहुत कुछ सहायता पहुँचेगी। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है, कि लड़कों को कठिनतर विषय भी उनकी मातृभाषा के द्वारा पढ़ाए जायँगे, तो वे उन-अधीत विषयों-में विशेष सफलता प्राप्त कर सकेंगे। उक्त शिक्षा-प्रचारक मंडल के मन में यह बात बहुत ही जँची, अतः वह बम्बई विश्वविद्यालय के संचालकों की ओर प्रार्थनापत्र भेजने वाला है, कि इन्ट्रेन्स के परीक्षार्थियों को अंग्रेज़ी भाषा के अतिरिक्त शेष विषयों के उत्तर उनकी मातृभाषा में ही लिखने की आज्ञा मिले। मंडल ने अपने-इष्ट कार्य की सिद्धि के प्रीत्यर्थ प्रचलित शिक्षा-पद्धति का हानि-दर्शक एक मसौदा (Draft) बन कर गण्यमान्य शिक्षा-प्रचार के इच्छुकों की ओर भेजा है। उनकी राय मिल जाने पर वह प्रार्थनापत्र विश्वविद्यालय के संचालकों की ओर भेजा जावेगा। मंडल के बतलाये हुए वर्तमान शिक्षापद्धति के कुछ दोष निम्न हैं।

(१) प्रत्येक विद्यार्थी अपने विचार अपनी मातृभाषा के द्वारा सरलता से प्रकट कर सकता है। पर, अंग्रेज़ी भाषा अनिवार्य होने से उसे अपने विचार अनुवाद के रूप में जनता पर प्रकट करने पड़ते हैं। अतः मातृभाषा और उससे निकटतर सम्बन्ध रखनेवाली संस्कृत भाषा अंग्रेज़ी के द्वारा पढ़ाना घातक है।

(२) यह प्रथा केवल हमारे ही देश में प्रचलित है। ५० वर्ष के पूर्व जापानी भाषा भी अत्यन्त पिछड़ी हुई थी तो भी वहाँ पर जापानी के द्वारा ही शिक्षा दी जाने लगी।

(३) आधुनिक शिक्षादान पद्धति से बहुत समय नष्ट होता है। इसका एकमात्र कारण विदेशीय भाषा की दुर्बोधता ही है। इसीसे विद्यार्थी अपनी कल्पनाशक्ति को बलिष्ट करने के बदले विदेशीय भाषा-प्राविण्य जैसे पोचे कार्य में ही अधिक समय लगाते हैं।

(४) वर्तमानपद्धति से विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति का विकास नहीं होता। विदेशीय भाषा की कठिनता से शिष्य अपने गुरु से शंका-समाधान नहीं करा सकता। प्रायः इसीसे रटन्त-शैली बढ़ती जाती है।

(५) विदेशीय भाषा माध्यम होने से-उसी के द्वारा शिक्षादान देने से-कई विद्यार्थी अपने चाहते विषयों का त्याग कर देते हैं। जिससे 'दोनों दीन से रहे न पांडे' जैसी उनकी दशा हो जाती है।

मंडल की बतलाई हुई उक्त मुख्य त्रुटियाँ सर्वथा योग्य हैं। इन से न केवल शिक्षाप्रचार ही रुकता है, वरन रोनापटन्त की प्रथा का अवलम्ब करने से विद्यार्थीगण अपने आरोग्य को नष्ट कर देश की बड़ी हानि करते हैं। अतः यदि इन्ट्रेन्स के विद्यार्थियों के प्रश्न पत्र उनकी मातृभाषा ही में हल करवाये जायँगे, तो सद्विद्या वृद्धि होगी, पुस्तकों में प्रतिपादित सिद्धान्त लड़कों को समझाना शिक्षकों को सरल हो जायगा तथा लड़के भी उन्हें सरलता से समझ सकेंगे और विदेशीय भाषा रूपी गले की फाँसी टूट जाने से विद्यार्थी बड़े चाव से विद्या पढ़ने लगेंगे, जिससे उनकी बुद्धि का विकास होता जायगा और अवसर के समय अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन करने से उनके स्वभाषा और परभाषा ज्ञान की भी वृद्धि होगी। सारांश; परोपकार और विद्याभिवृद्धि की दृष्टि से शिक्षा-प्रसारक-मंडल का यह उद्योग सर्वथा अभिनंदनीय है। हम मंडल के इस स्तुत्य कार्य में सफलता चाहते हैं।

शाक्य।

महाराष्ट्र में जो इने-गिने भाषाशास्त्रज्ञ हैं, उनमें प्रसिद्ध इतिहास संशोधक गुरुवर विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़ेजी सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं। इतना ही नहीं वरन अखिल भारत में जितने भाषाशास्त्रज्ञ हैं, अवश्य ही गुरुवर राजवाड़ेजी का आसन उनमें ऊँचा है। श्रीराजवाड़ेजी का इतिहास और भाषाशास्त्र के अगाध ज्ञान का परिचय 'जगत' के पाठकों को कराने के प्रीत्यर्थ हमने उनकी कृति को 'जगत' के द्वारा पाठकों के सामने रखने का निश्चय किया है। अन्यत्र इसी अंक में श्री राजवाड़ेजी की की हुई कुछ शब्दों की व्युत्पत्तियाँ रखी हैं। आशा है, इससे पाठकों में भाषा शास्त्रविषयक चाव बढ़ चलेगा। अस्तु। श्री राजवाड़े जी के ऐतिहासिक तत्वों के विवेचन भी देखने के योग्य होते हैं। शाक्य लोगों के विषय में आपका कहना है, कि जिन प्रान्तों में नट, लिच्छवि आदि व्रात्य क्षत्रिय रहा करते थे, वहीं शाक्य नाम के व्रात्य क्षत्रिय रहा करते थे। मनुसंहिता के दशवें अध्याय के ४४ वें श्लोक में लिखा है, कि,

> पौंड्रका श्चौड्द्रविडाः कांबोजा यवनाः शकाः।
> पारदाः पह्लवी वाल्हीकाः किराता दरदाः खशाः॥ ४४॥
> (वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणा दर्शनेन च॥ ४३॥)

वृषल का अर्थ है व्रात्य। सगर राजा के समय में ये शकादि क्षत्रिय-जातियाँ बदमाशियाँ करने लगीं। पर, शक क्षत्रियेतरत्र शाक्य क्षत्रियों में के कुछ बदमाश समानशील जातियाँ-नट, लिच्छवि आदि गौतम के प्रान्तों में जा बसे। इन्हीं व्रात्य शाक्य क्षत्रियों में उन्हें बुद्ध का जन्म हुआ। महावीर भी व्रात्य नट था। जिससे उन्हें गौणता प्राप्त हुई। अतः दोनों ने तच्छमनार्थ शुद्ध क्षत्रिय और शुद्ध ब्राह्मणों के विरुद्ध जैन और बौद्ध धर्म स्थापित किये। ये धर्म शकादि बदमाश जातियों में ही अधिक प्रिय हुए। शुद्ध चातुर्वर्णियों में इन वर्णसंकरकारक धर्मों का प्रवेश नहीं हुआ। शकोऽभिजनोऽस्य शाक्य (४-३-९२) शण्डिकादिभ्योऽण् (४-३-९२) इस सूत्र में जिन शाण्डिकादि का उल्लेख किया है, उनमें निम्न शब्द हैं-शाण्डिक, सर्वसेन, सर्वकेश, शक, शट, रक, शंख, और बोध। गर्गादिभ्यो यञ् (४-१-१०५)। के गर्गादि गणों में भी शक शब्द का उल्लेख है। इन दो सूत्रों में कहा है कि इनका अभिजनो अस्य और गोत्रापत्य शाक्य जैसा स्वरूप था। पाणिनी ने तद्राजार्थी रूप का उल्लेख नहीं किया है। गौतमबुद्ध या शाक्य मुनि राजपुत्र था यह इस सभी पर प्रकट है। अतः पाणिनी बुद्ध के पूर्व हुआ।

सुखोपभोग की परमावधि।

यह बात प्रसिद्ध है, कि भारत के ब्राह्मणों ने क्षमा का वर माँगा, राज माँगा; क्षत्रियों ने अहमहमिका में अपना नाम हुबाया

तथा वैश्यों और शूद्रों ने घरेलू झगड़ों से अपने राज की पड़ी हुई बुनियाद को हटाया। भारत पर आक्रमण करने वाले शेख, सैय्यद मुग़ल और पठान भी अपनी कुटिल राजनीति के ही कारण, भारत में, अपने राज की जड़, स्थायी रूप से, नहीं जमा सके। यदि इसके कारणों पर प्रकाश डाला जाय तो हमें मालूम होगा, कि उनमें से किसी ने पाशविक अत्याचार करने में ही अपने को धन्य समझा; कोई हिन्दुओं की बहू बेटियों से विवाह करने तथा राजविस्तार करने में लगा रहा; किसी ने स्वजनों को नष्ट कर अपनी खिचड़ी पकाई और कोई तो सिवा सुखोपभोग के अपना अन्य कर्तव्य ही नहीं समझता था। इसके बाद भारत को अपना साम्राज्य बनाने की इच्छा रखनेवालों में मराठों का नम्बर है। अवश्य ही मराठों ने अपने इष्ट कार्य की पूर्ति के लिये प्रशंसनीय उद्योग किये; पुण्यश्लोक श्री शिवाजी महाराज के हाथों महाराष्ट्र-साम्राज्य की नींव जमाई, पेशवा, सेंधिया, हुलकर, गाइकवाड़ आदि ने उस भित्ति पर गृह निर्माण करने की अतुलनीय चेष्टा की; पर उस अधूरी भित्ति पर ही गृह निर्माण करने तथा उस की योग्य सँभाल न रखने से वे-मराठे-कृतकार्य नहीं हुए। अन्त में महाराष्ट्र-राज को घुन लगी, और उसका विपर्यास मराठों की ऐयाशी में हुआ। सारांश; किसी भी राज या राष्ट्र के अस्त होने के मूल कारणों पर विचार करने से हमें उनमें 'ऐयाशी' का नाम अवश्य ही दिखाई देगा। वास्तव में 'ऐयाशी' कोई बुरी बात नहीं। जहाँ राज स्थापित करने जैसी बातें जीवन-कलहार्थ की जाती हैं, वहाँ उसका भी मूल सुखोपभोग ही है। सारांश; प्राणिमात्र अपने प्रत्येक कार्य सुखोपभोग के लिये ही करते रहते हैं। अतः सुख-प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना अयोग्य नहीं। पर, सुखोपभोग की मर्यादा का उल्लंघन करना भी योग्य नहीं है। देखा गया है, कि बहुधा मनुष्य सुखोपभोग के पीछे पड़कर अपने कर्तव्य भूल जाते हैं; अतः मुख्यतः यही हानिकर है। मध्यकालीन राजाओं की शासन प्रणाली में सब से भारी यही दोष देख पड़ता है, कि यदि उनमें से कोई सुखोपभोगादि साधनों के एकत्रित करने में लगा रहता तो वह अन्यान्य कार्यों को गौण समझने लगता था। अतः केवल मराठों के ही नहीं वरन अन्यान्य भी कई राज्यों के नष्ट होने का यही कारण हुआ। केवल वर्तमान शासकों की शासनप्रणाली सर्वथा उक्त दोष से हीन अतएव प्रशंसनीय समझी जाती है। इसीसे इन दिनों जितना महत्व सुखोपभोग की सामग्री जुटाने का है, उतना ही राजनैतिक समस्याओं के हल करने का भी है। यह बात हमें (Home & foreign politics) दैशिक और वैदेशिक राजनैतिक गूथों के देखने से मालूम हो सकता है। अतः जहाँ खुले (Free) व्यापारादि बातें महत्व की हैं, वहाँ रेल, तार, विमानादि सुख की सामग्री के एकत्रित करने में भी शासक पूर्णतया दत्तचित्त हैं। समाचार आये हैं कि, मेक्सालैंडर नाम का पेरिस निवासी एक प्रसिद्ध अभिनेता पहले पेथे नाम की कम्पनी में था। पर, हाल ही में उसने पर्सेन्सिव कम्पनी में अभिनय करने का ठीका लिया है। उसे अभिनय करने के उपलक्ष्य में वेतन मिलेगा २०० पौंड प्रति सप्ताह! अर्थात् आठ रोज के तीस हज़ार रुपये! सुखोपभोग के प्रीत्यर्थ इतने कम समय में इतनी भारी रकम नष्ट करने पर भारत जैसे दरिद्र राष्ट्र के निवासी अवश्य ही आश्चर्य करेंगे, पर वास्तव में उन्हें आश्चर्यान्वित होने का कोई कारण नहीं है। कहा जा चुका है, कि पश्चिमीय लोग सुख भोगने की सामग्री एकत्रित करने और सुख भोगने को बराबर महत्वपूर्ण समझते हैं। वे धनी राष्ट्र हैं; धनोपार्जन के उन्हें कई मार्ग हैं; अतः उनका द्रव्य इस प्रकार के सुखोपभोग में उड़ना सर्वथा स्वाभाविक ही है। पर, हाँ; इस प्रकार सुखोपभोग की मर्यादा को लाँघना भी ठीक नहीं और न भारत जैसे दरिद्री राष्ट्रों को उनके सुखोपभोग की अहमहमिका ही करना योग्य है। जिस प्रकार कौआ मोर के पंख लगाकर मोर नहीं बन सकता, ठीक वैसे ही भारत भी नाटक, खेल, तमाशे वगैरह में पाश्चिमात्यों का अनुकरण कर विलायत जैसा धनी मानी देश नहीं बन सकता। अतः अब हमारा पाठकों से यही प्रश्न है क्या कि सुधरे हुए राष्ट्र उक्त प्रकार के अनिष्टकारक कार्यों का अवलम्ब करके अपने सुधार के क्षेत्र को बढ़ा रहे हैं?

महात्मा गांधी का मातृभाषा-प्रेम।

कुछ दिनों के पूर्व संग्रामपुर-सूरत की एक सभा ने महात्मा गाँधी के द्वारा वहाँ एक पुस्तकालय खोला। और, इसके लिए एक सभा की गई। यद्यपि उस सभा में अधिकांश श्रोता अँगरेज़ी भाषा से अनभिज्ञ थे, तो भी कुछ विद्यार्थियों ने अपने विचार अँगरेज़ी में ही प्रकट करना उचित समझा। जब उनके अँगरेज़ी व्याख्यान हो चुके, तब महात्मा गाँधी ने मातृभाषा के विषय में निम्न उद्गार निकाले—

"यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है, कि अँगरेज़ी में व्याख्यान देनेवाले विद्यार्थी इतना भी विचार नहीं करते कि जिन के सन्मुख वे बोल रहे हैं, वे उनका व्याख्यान समझ सकेंगे या नहीं। वे नहीं सोचते कि यहाँ पर जो अँगरेज़ी समझनेवाले उपस्थित हैं वे इस अशुद्ध अँगरेज़ी-भाषा से आनन्द प्राप्त करेंगे या उनके हृदय में अरुचि उत्पन्न होगी। चढ़ती उमर के युवकों को मातृ-भाषा से पराङ्मुख होकर पर-भाषा पर इतना मुग्ध होना शोभा नहीं देता। यह बड़ी ही शोकजनक स्थिति है। विदेशी संसर्ग के कारण देश में नवीन युग उपस्थित अवश्य ही हुआ है। पर, इसका यह अर्थ नहीं है कि हमें अपनी भाषा को छोड़ कर विदेशी भाषा ही में अपने विचार प्रकट करना चाहिए। जिस भाषा को व्याख्यान देनेवालों के माता-पिता नहीं जानते, जिसको उनके भाई बहन नहीं समझ सकते और जिसको उनके स्त्री-पुत्र तथा नौकर-चाकर नहीं समझते, उसका सेवन करने से नवीन युग समीप आयगा या दूर चला जायगा, इस पर उनको अवश्य विचार करना चाहिए। कितने ही मनुष्यों का ख़याल है कि अँगरेज़ी अब हमारी मातृ-भाषा है; परन्तु यह ख़याल मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता। यदि अँगरेज़ी जाननेवाले मुट्ठीभर लोगोंको हम 'देश' मान लें तो यह कहना पड़ेगा कि 'देश' शब्द का ठीक अर्थ ही हमने नहीं समझा। मेरा तो यह सिद्धान्त है कि ३२ करोड़ मनुष्यों का अँगरेज़ी सीखना और अँगरेज़ी का देशभाषा हो जाना नितान्त असम्भव है। जिन नव-युवकों ने नई विद्या सीखी है और जिन्होंने नये विचारों से लाभ उठाया है, उनको अपने विचार अपने देशभाइयों पर अवश्य प्रकट करना चाहिए। यह बात अपनी ही भाषाद्वारा हो सकती है। जो युवक यह कहते हैं, कि हम अपने विचार मातृभाषा के द्वारा नहीं प्रकट कर सकते उनसे मैं यही निवेदन करूँगा कि आप मातृभूमि के लिए भाररूप हैं। मातृ-भाषा की अपूर्णता दूर करने के बदले उसका अनादर करना-उससे हाथ धो बैठना-किसी सच्चे सपूत को शोभादायक नहीं। वर्तमान जनसमुदाय मातृ-भाषा की उन्नति के विषय में चुप रहेगा तो भावी प्रजा को चिरकाल तक पछताना पड़ेगा। उलहने से वे कभी नहीं बचेंगे। मैं आशा करता हूँ कि यहाँ बैठे हुए समस्त विद्यार्थी प्रतिज्ञा करेंगे कि निरुपाय दशा के सिवा और कभी भी हम अपने घर पर अँगरेज़ी न बोलेंगे। विद्यार्थियों के माता-पिता भी समय की कठिन-धारा में बह जाने से सावधान रहें। अँगरेज़ी भाषा हमें अवश्य पढ़ना चाहिए, किन्तु मातृभाषा को भुला कर नहीं। हमारे जन-समाज का सुधार हमारी मातृभाषा के द्वारा ही होगा। मातृभाषा की उन्नति करना विद्यार्थियों और उनके माता पिताओं का भी कर्तव्य है। मैं प्रसन्न हूँ कि यह पुस्तकालय मेरे द्वारा खोला जा रहा है। पर, यदि यह अपनी भाषा की पुष्टि न करके उसे क्षीण करेगा तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा।"

मातृ-भाषा से मुँह मोड़नेवालों को लोकनायक गाँधी जी के उक्त महत्व के वाक्य एक बार तो अवश्य ही पढ़ लेना चाहिये।

जगत विज्ञानमय है!

जब जगत-कर्ता स्वयं ही विज्ञानमय है, तब जगत के वैज्ञानिक चमत्कारों का कहना ही क्या है! इसीसे जगत निवासियों की कृत्रिम आश्चर्यमय बातों की अपेक्षा प्राकृतिक आश्चर्यमय बातों की ओर मनों का ध्यान अधिकतर आकर्षित होता है और फिर वह उस परमब्रह्म की कर्तृत्वशैली पर आश्चर्य कर क्षणभर उसीकी गुणावलि गान में मग्न हो जाता है। नास्तिकवाद कहता है, कि ईश्वर नहीं है। वह, इस पंचमहाभूतों के मेल से बने हुए पुतले को स्वयंभूत समझता है। कई बड़े बड़े विज्ञानवेत्ता भी यही कहते हैं कि सृष्टि-

रचयिता कोई है ही नहीं। पर, जब वे ही जगत की आश्चर्यमय घटनाओं को देखते हैं, तब उन्हें निरुपाय से मान्य करना पड़ता है, कि उन घटनाओं को घटित करनेवाला व्यक्ति विशेष-ईश्वर न सही, पर Nature (प्रकृति) नामिनी कोई वस्तु अवश्य ही है, जिसकी अपार लीला से सारी घटनाएँ होती रहती हैं। अतः स्वभावतः ही यह प्रश्न मानवी मन को आकर दबाता है, कि वह Nature कौनसी वस्तु है, जिसके अगम्य कारणों से मनुष्य-जिन्हें अपनी बुद्धिमत्ता का खूब घमंड है-दांतों-तले अँगुलियां दबाने लगता है। इस प्रश्न के हल करने की उलझन में पड़ जाने पर कहीं उसकी आँखें खुलती हैं, भ्रमवश आविर्भावित नास्तिकवाद नष्ट हो जाता है और वह उसकी लीलाओं पर आश्चर्य और आदर के रूप से अभिमान प्रकट करने लगता है। सारांश; दैविकवाद में आशंकाएँ प्रकट करनेवाले चाहे कितने ही क्यों न हों और वे अपने २ मत की पुष्टि करने के लिये चाहे जितने दाँव-पेंच लड़ावें तथापि अन्तमें उनका वाद बे सिर-पैर का ही कहलायगा। वास्तव में देखा जाय तो यह वाद मनुष्यों की थोथी बुद्धि का दिग्दर्शक है। प्राय इसी कारण से अन्यान्य भी कई आश्चर्यमय बातें हम से छिपी पड़ी हैं। इसीसे छोटी-मोटी बातें देख लेने पर मनुष्य आश्चर्य करने लग जाता है। जगत में अनन्त चमत्कारपूर्ण बातें हैं और कोई भी उनका रहस्य नहीं जान सकता। महाराष्ट्र देश में भी एक ऐसा ही तीर्थ अथवा अद्भुत चमत्कार है और अभी तक किसी को भी उसके हेतु का पता नहीं चला है। महाराष्ट्र के अन्तर्गत राजापुर ग्राम में एक नदी है। वास्तव में देखा जाय तो यहाँ पर चुल्लू भर पानी तक नहीं मिल सकता। पर, आश्चर्य की बात है, कि यहाँ पर क्षणमात्र में ही पानी के फव्वारे छूटने लगते हैं, जिससे यहाँ के चौदह कुंड पानी से भर जाते हैं और पानी बहने लग जाता है। किन्तु, फिर एकदम वह सारा पानी लुप्त हो जाता है और उसके स्थान परिवर्तन हो जाने के कारण तक का पता नहीं चलता। तथा बाद को वहाँ एक जल का एक बूंद भी नहीं देख पड़ता! क्या यह कम आश्चर्य की बात है? जिन्हें अभी तक ऐसी आश्चर्यकारक घटनाओं के देखने का अवसर नहीं मिला है, वे अवश्य ही इन्हें काल्पनिक एवं असम्भवनीय समझेंगे। पर उनकी उस बेसमझ का रहस्य हमारे उक्त कथन में भलीभाँति प्रतिबिम्बित हो गया है। तभी हम कहते हैं, कि समग्र जगत पूर्णतया विज्ञानमय है।

साहित्य-चर्चा।

दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास:-लेखक, श्रीयुत भवानी दयाल। प्रकाशक, श्री द्वारिका प्रसाद सेवक, अध्यक्ष, सरस्वती सदन, इन्दौर। आकार 'सरस्वती' का। पृष्ठ संख्या १०० मूल्य १॥)

पुस्तक का विषय नाम से ही प्रकट है। अतः उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। सत्याग्रह-संग्राम के समय जो हलचल भारतीय समाचार पत्रों ने मचाई थी और अपने कालमों में उस संग्राम का ब्योरा प्रकाशित किया था, उसी का यह पुस्तक-रूप में वर्णन है। लेखक महाशय स्वयं उस संग्राम में सम्मिलित थे; अतः उन्होंने इस पुस्तक के लिखने में अच्छी चतुरता बतलाई है। वहाँ के 'इण्डियन ओपीनियन' नाम के सामयिक पत्र का 'गोल्डन नम्बर' नाम का एक सचित्र विशेषांक प्रकाशित हुआ था, उसी के चित्र इस पुस्तक में उधृत किये गये हैं। अतः चित्रों से भी वर्णित विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। अवश्य ही संग्राम-नायक श्रीगांधी जी का नैतिक साहस प्रशंसनीय एवं च अपूर्व रहा है। श्रीगांधी जी हमारे नेता हैं और उन का उक्त कार्य देवतातुल्य कार्य कहलाता है, जिससे प्रत्येक भारतीय की आँखें, सम्मान से, नीची हो जाती हैं। तो भी श्रीगांधी जी की इस प्रथा से केवल हमारा ही नहीं वरन बड़े बड़े देशनेताओं का भी मत-भेद है। श्री गांधी जी निश्चय ही विचारशील हैं, पर उनकी 'एक घूँसा खा लेने पर फिर दूसरा खाने के लिये अपनी पीठ मारनेवाले की ओर फेर देने की प्रथा' से, इस युग में, कोई भी सहमत नहीं हो सकता। अब तो आवश्यकता है, ईंट के बदले पत्थर मारने वालों की 'न कि 'एक घूँसा खा लेने पर पुनः दूसरा खाने वालों की।' अतः अब हम अधिक न लिखकर इसके विषय में और कभी अपने विचार प्रकट करेंगे। इतने पर भी पुस्तक अच्छी है और इससे एक अनूठे संग्राम का हाल मालूम हो सकता है।

गोपालन—लेखक, श्रीयुतभगवानदास वर्मा, मैनेजर गवर्मेंट मिलिटरी डेरी फार्म, करनाल। आकार डिमाई आठ पेजी, पृष्ठ संख्या लगभग १५० मूल्य १) रुपया।

इस पुस्तक को देखकर जी बड़ा खुश हुआ। हिन्दी भाषा में ऐसी उत्तम पुस्[illegible]
सौभाग्य का वि[illegible]
पर आसीन करा[illegible]
यहां, उस कार्य [illegible]
कोई विषय बाकी [illegible]
जाय। इस प्रकार हिन्दी के समग्र भागों को पुष्ट करने से ही हिन्दी भाषा अलंकृत बन कर पर-भाषाभाषी समाज में वह आदरणीय समझी जायगी। पुस्तक की विस्तृत भूमिका से उसके महत्त्व का पता चल सकता है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। फलतः भारत का जीवन जिन बैलों पर अवलम्बित है, उन्हीं के मूल-स्वरूप गौओं के स्वास्थ्य के विषय में हमारे देश निवासी अधिक उदासीन हैं। इसका फल यह होता है कि, गौओं के पुष्ट न होने तथा उन के स्वादिष्ट और पुष्टिकारक दूध न देने से हमारे देश निवासियों का भी स्वास्थ्य गिरता जाता है। अतः हमें गौओं के यथायोग्य रीति से पालन करने की बहुत आवश्यकता है। इस पुस्तक में भी यही बतलाया गया है। पुस्तक में वर्णित विषय दो खण्डों में विभाजित किया है। पहले भाग में गौओं के विषय की कई आवश्यकीय जानने योग्य बातें लिखी हैं तथा दूसरे भाग में उनकी चिकित्सा का वर्णन है। पुस्तक में, इसी विषय से सम्बन्ध रखनेवाले लगभग सत्ताईस चित्र हैं, जिनसे इस विषय का अच्छा बोध हो जाता है। पुस्तक का आवरण पृष्ठ सजिल्द और एक मनोहारी विविध रंगों के चित्र से अंकित है। पुस्तक के भीतर भी एक बड़ा ही अच्छा रंगीन चित्र रखा गया है। सारांश, पुस्तक के अन्तरंग और बाह्यांग के सजाने में लेखक महाशय ने किसी बात की कमी नहीं की है। लेखक महाशय एक डेरी (मिल्क सप्लाइंग कंपनी) के मैनेजर हैं; अतः गोपालन-विद्या आप का अधीत विषय है। यह कारण भी पुस्तक की उपयोगिता के लिये पर्याप्त है। सारांश; श्रीयुत भगवानदास जी ने ऐसे इस विषय के अधिकारी लेखक ने यह पुस्तक लिखकर हिन्दी भाषा और तद् भाषा-भाषियों पर बड़ा भारी उपकार किया है। तदर्थ आप सर्वथा प्रशंसा के भाजन हैं। हमारी आन्तरिक इच्छा है कि प्रत्येक गौ-प्रेमी इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ही अपने संग्रह में रखे। पुस्तक की उपयोगिता और छपाई के व्यय के देखते एक रुपया बिलकुल अधिक नहीं है।

भारतीय शासन—लेखक तथा प्रकाशक, श्रीयुत भगवानदास माहेश्वरी। आकार क्राउन सोलह पेजी। पृष्ठ संख्या लगभग पौने दो सौ। मूल्य सात आने। प्राप्तिस्थान-मैनेजर 'गृहलक्ष्मी' प्रयाग अथवा मैनेजर 'माहेश्वरी' अलीगढ़!

हिन्दी भाषा में इस विषय की २।४ पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, जिनमें से एक की चर्चा 'जगत' के किसी पिछले अंक में की जा चुकी है। निस्सन्देह ऐसे उपयोगी विषय पर अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखा जाना हिन्दी साहित्य के लिये गौरवप्रद है, और इनका मनन करना भी प्रत्येक पढ़े लिखे मनुष्य का मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। देश में रहनेवाले प्राणि मात्र को देश की व्यवस्था का ज्ञान जानना आवश्यक है। अतः उनकी दृष्टि में ऐसी पुस्तकों का बहुत महत्त्व होना चाहिये। तदनुसार यह पुस्तक देश की शासनपद्धति की मुख्य मुख्य बातों को बतलाने के लिये लिखी गई है, और हम कह सकते हैं कि लेखक को अपने कार्य में अच्छी सफलता मिली है। इस में अंग्रेजों के भारत में पदार्पण करने के दिन से आज तक शासन का यथाक्रम वर्णन लिखा गया है। अतः वर्तमान शासन प्रणाली का रहस्य, इस छोटी सी पुस्तक के द्वारा, भली भाँति मालूम हो सकता है। विषय विवेचन भी सरल भाषा में किया गया है जिससे साधारण पढ़ा लिखा मनुष्य भी इस को अच्छी तरह से समझ सकता है। सारांश, लेखक महाशय ने इस के लिखने में खासा परिश्रम किया है, इससे वे सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक का परिशिष्ट भी, जो चौदह पृष्ठों में समाप्त हुआ है, बड़े काम का है। पुस्तक के अन्त में ग्रन्थ कर्ता का एक निवेदन भी है जो अवलोकनीय है। उससे मालूम होता है, कि लेखक महाशय केवल भारतवर्ष सम्बन्धी एक सस्ती भारतीय ग्रन्थमाला निकालने वाले हैं और तदनुसार शायद आपकी एकाध पुस्तक भी छप चुकी है। लेखक महाशय का प्रयत्न प्रशंसनीय है और उसका पता इस पुस्तक से भी चल सकता है। इस उपयोगी साहित्य पुस्तक के दाम सात आना तो बहुत ही कम है।

चित्रमय जगत हिन्दी-पत्रों में बड़े ही गौरव का है। इसके चित्र बड़े ही मनोरञ्जक और लेख प्रशंसनीय होते हैं—(हिन्दी साहित्य का इतिहास ।)

हों जातीय विचार उन्नति कला, विज्ञान-धारा बहे । हिन्दी में अनिवार्य्य हिन्द मुख से, सर्वोच्च शिक्षा लहै ॥
सारे दोष, कुरीति, द्वेष विनसें औ स्वत्व जानें सभी । जागे भारत " चित्रमय-जगत " के उद्देश्य पूरें तभी ॥

Vo. 6.] सितम्बर १९१६. September, 1916. [No. 9.

कविवर सोहिरोबा ।

महाराष्ट्र में जितने प्रसिद्ध कवि हो गये हैं, उनमें श्रीसोहिरोबा आँबिये का भी नाम लिया जाता है। जहाँ सोहिरोबा की अपूर्व मराठी कविता है, वहाँ उनकी हिन्दी कविताएं भी कम प्रभावोत्पादक नहीं हैं। उनका जन्म सन १७१४ के लगभग हुआ था। उनके गुरू का नाम था गैबीनाथ। इसीसे उनके बनाए हुए कई पदों के अन्तिम चरण में 'गैबीनाथ' का नामोल्लेख पाया जाता है। सोहिरोबा बड़े योगी थे। उनके बनाए हुए योग विषयक कई ग्रन्थ भी हैं। उनकी अवस्था पचास वर्ष की हो जाने पर उन्होंने उत्तरीय भारत का प्रवास करने की ठानी। तदनुसार वे सन १७६० ई० में उत्तरीय भारत की ओर प्रस्थापित हुए। और, वहाँ काशी, प्रयाग, गया आदि स्थान देखते. सन १७७१ ई० के लगभग वे ग्वालियर गये। वहाँ से वे उज्जैन गये और वहीं पर मठ बना कर रहने लगे। सन १७९२ ई० में सोहिरोबा का उज्जैन ही में देहान्त हुआ। अब भी वहाँ पर उनका मठ है। वे हिन्दी के आशु-कवि थे। उनकी बनाई हुई बहुत सी हिन्दी कविता है। पर, 'हिन्दी के इतिहास' में कहीं पर भी इनका नाम नहीं पाया जाता। उनकी मधुर कविता में से एक कविता यहाँ पर उद्धृत की जाती है।
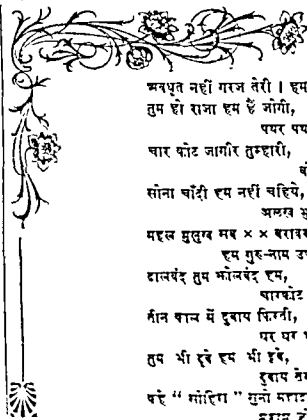
अवधूत नहीं गरज तेरी । हम बेपरवा फकीरी ॥ ध्रु० ॥
तुम हो राजा हम हैं जोगी,
पथर पथर क्या कूरा ।
चार कोट जागीर तुम्हारी,
वो ही पंथ हमारा ॥ १ ॥
सोना चाँदी हम नहीं चहिये,
अलख भुवन के वासी ।
महल मुलुख सब × × बराबर,
हम गुरु-नाम उपासी ॥ २ ॥
दालचंद तुम भोलचंद हम,
चारकोट जागीरी ।
तीन काल में दुकाप फिरनी,
घर घर अलख पुकारी ॥ ३ ॥
तुम भी रहे हम भी रहें,
दुकाप तेरा हम क्या लिया ।
कहे " सोहिरा " सुनो महाराजा,
नहान नेल मनाया ॥ ४ ॥

[विनोद-कथा ।]

लेखकः—श्रीयुत मनोहरदास चतुर्वेदी ।
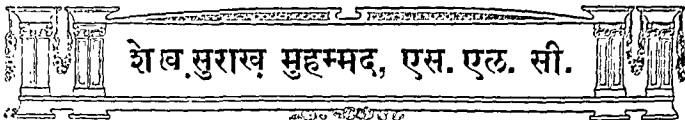
ऐसा कोई भारतवासी नहीं, जो काशी, प्रयाग, अयोध्या इत्यादि प्रसिद्ध नगरों से परिचित न हो। ठीक उसी प्रकार कदाचित बिरला ही ऐसा मनुष्य होगा, जो शिकारपुर को न जानता हो। आज वहीं का कुछ हाल सुनाया जाता है।

इस कहानी के नायक भाग्य से उसी शिकारपुर के रहनेवाले हैं, जो ऐसे लोगों के लिए प्रसिद्ध है, जिनकी अक़ल ने छुट्टी ही नहीं ली वरन् इस्तैफ़ा दे दिया है। शिकारपुर को आप एक प्रकार की Fools Colony (बेवक़ूफ़ों की दरगाह) ही समझिए। ज़िला बुलन्दशहर में यह बड़ा पुराना स्थान है। मुग़ल बादशाहों के शासनकाल में दूर दूर के, Distinguished Fools (प्रसिद्ध बेवक़ूफ़) यहाँ बसाए जाते थे। उन्हें रहने को मकान और जोतने को धरती मुफ़्त मिलती थी। मुफ़्तमाल की लालच में जब कभी शहर के क़ाज़ी को रिशवत दे अपने को बेवक़ूफ़ लिखा यहाँ पर कोई भला आदमी चला आता था, तो पृथिवी और यहाँ की अपूर्व संगति के प्रभाव से वह भी पूरे ढाई मन का शीघ्र ही हो जाता था। मगर शोक! अंग्रेज़ी राज, स्वाधीनता-प्रिय होने के कारण, यहाँ के भी ख़ुदा के बन्दों को स्वाधीन किये बिना न रहा। मिल (Mill) की तूती शिकारपुर तक में बज गई। शिकारपुरी अक़ल के ख़ारिज दिल चले जवान बाड़ा तोड़ भारत पर फाँद पड़े। मगर ख़ुदा की फटकार और अल्ला की मार ने कहीं भी पीछा नहीं छोड़ा। बेवक़ूफ़ी के रोग ने विशेष रूप धारण किया। भारत सरकार हमारे शिकारपुरी जवानों की बुद्धिमता का अपूर्व परिचय पाकर बड़ी चक्कर में आई। जब सब ओर से किश्त लगी तो लाचार होकर इन लोगों के लिए विशेष प्रबन्ध पहले तो बरेली में किया गया, और जब वहाँ भी पूर न पड़ी तो आगरे की आफ़त आई। क्या अच्छा होता, जो भारत-सरकार ने पहले ही से शिकारपुर का बाड़ा न तोड़ा होता, और वृथा ही आगरा-बरेली को बदनाम न किया होता। अस्तु।

हमारे नायक सुराख़ मुहम्मद वहीं के निकाले हुए गुनहगारों में से हैं। आप का जन्म सन १८८० के सितंबर महीने में सप्तमी के दिन सन्ध्या के समय सात बज कर सात मिनट, सात सही सात बटा सात सिकन्ड पर हुआ। बस; उसी समय से यह भूत भारत माता की छाती पर सवार है। धीरे धीरे यह गठरी शैतान की आँत और कम्बख़्त की तोंद की तरह बढ़ कर पुलन्दा हो गई। घर भर में आप ही अकेले चिराग़ दिखाई देने लगे।

पाठक, पहले मुझे अपनी लेखनी के द्वारा आपका चित्र खींचने की आज्ञा दीजिए। डीलडौल आपका बिलकुल Solid contentment (सॉलिड कन्टेन्टमेंट के विज्ञापन प्रत्येक बड़े स्टेशन पर होता है। उससे हमारे मित्र का सहज ही में अनुभव हो सकेगा), चेहरा शिकारपुरी, रंग बिलकुल Ink proof (ऐसा काला जिस पर स्याही का कोई असर न हो सके।) कुछ कुछ भद्द मैलापन लिए हुए है। स्पंज की तरह फूले गालों में काला पसीना स्टोर के रूप में सदा बना रहता है। गाल आप के मुहर के पाड का काम सहज ही में दे सकते हैं। माता देवी की अपूर्व कृपा से चेहरे पर (Uphills और Down hills) ऊंचाव निचाव बड़ी बुद्धिमता के साथ जड़े गए हैं। इस मैदान में पसीने की काली बून्द की गेंद Golf (एक गेंद का खेल) खेला करती है। नाक भी दुनाली बन्दूक की तरह चेहरे के ऊँचे-नीचे मैदानों पर सामना करने को चढ़ी रहती है। दिन में दो बार छींक कर सलामी दी जाती है। बन्दूक से निकली गोली अकसर नीचे ही की खाई में गिर जाती है। सिर की, खेती में मौसमी ओले पड़ जाने के कारण, ईस पड़ी है। मूँछें भी बन्दूक की दिन रात गोली पड़ने के कारण कहीं कहीं जल गई हैं। मगर हाँ; आप का गाढ़ा रंग बिचारी ज़ख़्मी मूछों को पूरा आश्रय देता है। यहां तक कि दूर से वे बिलकुल नहीं देख पड़तीं। नाक की दीवार रहते हुए भी आप की चन्चल आँखें आपस में लड़ मरी हैं। एक कुछ ज़ख़्मी और दूसरी कुछ काली है। आप के बाल, दुनिया के बेवक़ूफ़ आदमियों की तरह बेकार नहीं जाते। उनका ठीका John & Co. Brush Manufacturers (जोन नाम की ब्रश बनानेवाली कम्पनी) ने ले रखा है। अपनी टोपी इत्यादि तो अपने ही शरीर पर साफ़ कर लेते हैं, और अपने साथी लड़कों को भी आज्ञा दे रखी थी। मगर यह सुभीता हम लोगों को बहुत दिनों तक न रहा। उस Brush field (ब्रश का खेत) को हम लोगों ने बुरी तरह से इस्तैमाल में लाना आरम्भ यानी ... ... जूते भी ... ...। कहने की आवश्यकता नहीं है, कि तुरन्त ही हम लोगों पर डाट पड़ गई। मगर यार लोग कहाँ मानने थे। पीछे से एक बाक़ायदा डेयुटेशन ले कर गए, मगर कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ।

आप के जीवन का एक मात्र उद्देश्य था स्कूल लीविंग पास करना। बुद्धि आप की राजर्स के चाकू के समान तेज़ थी। इतिहास भूगोल से ख़ानदानी दुश्मनी होने के कारण उन्हें घोट डाला था। गणित में आप को सुधाकर द्विवेदी समझिए। आप को प्रत्येक दर्जा एक वर्ष में पास करने का ऐसा घमंड है कि यह बात हेड मास्टर के सरटीफ़िकट तक में लिखा लाए हैं। पर, शोक है, शिकारपुरी दिमाग़ अधिक भारी होने के कारण स्कूललीविंग के स्टेशन पर एक वर्ष के लिये रोक लिया गया। स्कूललीविंग के इम्तहान में आपके जीवन की नौका बहते बहते यूनीवरसिटी के समुद्रीय भँवर में पड़ गई। कारण भी बड़ा अपूर्व ही हुआ। ज़बानी इम्तहान में जब आपका नंबर आया तो आप बड़े घबड़ाए। कड़े कॉलर पर घर की बुनी हुई लाल टाई, आंखों में स्याही पड़ी हुई और ऊपर से रंगीन चश्मा आँख का ऐब छिपाने को आप पहने हुए थे। जाते ही Good Morning की और एक फ़र्शी सलाम भी झुकाया। अभाग्य से शिक्षक एक अंग्रेज़ था। आपकी सूरत को देख कर हँसी भी बिचारी मुसकराती और कुछ घबराती हुई परीक्षक के मुँह पर आ गई, और इधर हमारे नायक के भी बाएँ पर प्रसन्नता ने धूनी रमा कर चिमटा गाड़ दिया। मगर हाँ; थोड़ी देर तक 'साहब' के अचम्भे ने इस अपूर्व मिलाप में शान्ति रखी। अन्त में साहब ने साहस कर पूछा। your name please ? अर्थात् आपका नाम ?

अमरकोश की तरह हमारे मित्र ने इसका उत्तर कंठस्थ कर रखा था। तड़ से बोल पड़े:—

Sir, my most honorary Father has been pleased to call me by the most humblest—if two superlatives could English Grammar allow me—name Surakh Mohammad, out of sheer affetion which he has for me

अर्थात् महाराज, मेरे अवैतनिक पिता ने अत्यन्त गाढ़े प्रेम के कारण मेरा तुच्छ नाम सुराख़ मुहम्मद रखा है।

परीक्षक बिचारा इस शिकारपुरी अंग्रेज़ी को सुन कर चक्कर में पड़ा। तब आप अपने योग्य उत्तर पर फूले हुए चेहरे को और फुला कर कहने लगे Sir, I am specially interested in the English अर्थात् मैं अंग्रेज़ी भाषा में विशेष रूप से कुशल हूँ।

और कुछ कह रहे थे कि साहब ने इनकी बात काट कर पूछा— Where do you come from ? अर्थात् तुम कहाँ से आये हो?

उत्तर दिया—

I come from my house in the mohulla thathiri Gali adjacent to kaloo sweetmeats seller ... ...

अर्थात् मैं ठठेरी गली के कल्लू हलवाई के पास के अपने घर से आया हूं।

साहब पर आप की योग्यता का टप्पा खूब जम गया। और, लाचार हो फिर पूछा।

No, I mean you are resident of what place?

अर्थात् तुम रहनेवाले कहाँ के हो?

अब क्या था। तमाशा खतम पैसा हज़म। बस, एक आखिरी नकल और बाकी थी। बोलते बोलते मुँह पर परदा पड़ गया और चहरे पर ग्रहण पड़ने लगा। क्रोध से सुरखी भी चहरे पर दौड़ पड़ी और ओंठ थर्राने लगे। थोड़ी देर के पश्चात मुँह का ताला खुला और फिर बोले why do you do Jokes sir? अर्थात् आप मज़ाक़ क्यों करते हैं? फिर चुप रह गए। मन में सोचते रहे कि खुदा हम जुलाहों ही पर क्यों इतना बेरहम है। इस मज़ाक से बाज़ आया। साहब तक मज़ाक करते हैं। यह कहा इलाही मुझ ही पर गिरा। हा! किस कम्बख्त ने साहब के कान भर दिये कि मैं शिकारपुर का रहनेवाला हूं।

इधर साहब भौंचक्के बैठे थे। उनके चहरे पर क्रोध और हँसी का ज्वार भाटा सा आ रहा था। सुराख मुहम्मद धीरे धीरे दरवाज़े की ओर सरक रहे थे। मौक़ा पाते ही आप कमरे से भाग निकले। जल्दी अधिक करने के कारण आपके हिन्दुस्तानी चमड़ौदे उतर पड़े। मगर आप जान छुड़ा के ऐसे भागे कि पीछे की ओर देखा तक नहीं।

बाहर आते ही लड़कों पर बिगड़ने लगे। आप कहते थे, कि अगर बता देता कि मैं शिकारपुर का रहनेवाला हूं तो मैं बिलकुल ही फ़ेल हो जाता। ख़ैर, अब तो थोड़े ही नम्बरों से फ़ेल हूगा।

सारे स्कूल में आप ने इस दूरदेशी पर बड़ा नाम पाया। फिर भी गज़ट का आप ने बड़ी सरगर्मी से इन्तज़ार किया ही। पर शोक! गज़ट में आप का नाम छपने से रह गया। और, गज़ट के प्रबन्धकर्ता ऐसे अन्धे थे कि ऐसी भारी भूल का उन्हों ने संशोधन भी नहीं किया। इस बार आप के जीवन की नौका गज़ट की चट्टान से टकरा गई, जिससे वे अपने उद्देश्य के किनारे तक न पहुँच सके।

दूसरी वर्ष हिम्मत बाँध कर आप फिर परीक्षा में सम्मिलित हुए। दूध का जला छाछ फूंक फूंक कर पीता है। इस बार आप ने परीक्षक से जाते ही कह दिया कि मैं शिकारपुर का रहनेवाला हूं। परीक्षक चकराया तो अवश्य, मगर इस बार बिल्ली के भाग्य से छींका टूट पड़ा। मौक़ा पा कर इस बार आप का नाम गज़ट के ऊपर फाँद पड़ा।

स्कूल लीविंग पास होना क्या था, पुराने अन्धे के हाथ नई बटेर लगनी थी। तब से अपने नाम के आगे आपने एस० एल० भी लगाना आरम्भ कर दिया।

'हिम्मते मर्दां मददे खुदा' की नाईं और हिम्मत बढ़ी। आपने अब कॉलेज पर कृपा की। कॉलेज आप को लखनऊ ही का पसन्द आया। यहाँ लड़कों ने आप का बड़ा आदर किया। जब आप ने बोर्डिंग पर कृपा की, तब सब लड़कों ने मिल कर आप को एक सम्मानपत्र दिया। उस में आप की बड़ी प्रशंसा की गई। सब लड़कों ने आप को बोर्डिंग पर कृपा का हार्दिक धन्य वाद दिया। पीछे से एक लड़के ने खड़े हो कर शोक प्रकट किया कि यदि आप डार्विन के समय जीवित होते, तो उसको इतना परिश्रम कर अपना सिद्धांत सिद्ध करने में कष्ट न उठाना पड़ता। ऐसी Solid illustrations कल्पना से भी नहीं खींची जा सकती। एक लड़के ने आप के Biological laboratary में Preserve करने की सम्मति दी। सब के पश्चात् आप ने उठकर सब को बड़ा धन्य वाद दिया। कहने लगे मुझे बड़ा शोक है, कि मुझे यह न मालुम था, कि यहाँ मेरा इतना आदर होगा नहीं तो मैं किसी स्कूल में न जाता और सब से पहले ही कॉलिज में नाम लिखाता। लड़कों ने ने Cheers (तालियाँ) दीं।

बोर्डिंग का आप का कमरा प्रयाग प्रदर्शनी में भेजने योग्य था। चारपाई पर एक गुदड़ी, बाज़ार का ख़रीदा हुआ किरमिच का गद्दा- शायद किसी कोच इत्यादि का हो-ज़ख्मी दुशमन की तरह डटा रहता है। ओढ़ने का लिहाफ़ सम्भव है उमर में गद्दे से शर्त लगाये हुए है। आप कट्टर स्वदेशी हैं। जूतों में घर के ही फ़ीते-बहुधा पेनशन याफ़्ता धोतियों की कन्नियाँ रहती हैं। मौज़े पाजामे के नीचे झाँकते रहते हैं। पाजामे पर घुटनों के गहरे निशान, ऊपर से धारीदार लालकोट जिसमें रंग बिरंग बटन, खुर्जा-शिकारपुर के पास का ख़रीदा हुआ हिन्दुस्तानी चमड़ौदा, गले में घर का ही बुना हुआ हरी-लाल ऊन का गलेबन्द-जो गरमी में लू और जाड़ों में ठन्डी हवा से बचाता है-यही आपकी पोशाक है। बन्द कॉलर के कोट पर अकसर टाई बाँध कर आप अंग्रेज़ी फ़ेशन की भली प्रकार गत बनाते हैं। हाँ, एक बात और रह गई। आप के पास एक रुमाल भी है। क्या कहा जाय वह रुमाल है, कि अँगोछा, या दस्तरख्वान या हाफ़िज जी का मुसल्ला। सारांश, वह भी कोट की जेब में 'आईमिचौनी' खेला करता है।

कॉलिज के लड़के बड़े दिलचले होते हैं। धीरे धीरे आप पर हाथ साफ़ करना आरम्भ कर दिया। एक दफ़े की बात है कि आप ने एक गुमनाम शिकायत बोर्डिंग के सुप्रेनटेन्डेन्ट को कर दी कि लड़के बरेन्डा की लालटेन से पढ़ा करते हैं। बाहर अन्धेरा हो जाता है और उस से बड़ा कष्ट उठाना होता है। इसके ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिए। बात भी ठीक थी। वास्तव ही में एक लड़का बोर्डिंग के लेम्प से पढ़ा करता था। मगर यह बात कोई विशेष ध्यान देने योग्य न थी। सुप्रिन्टेन्डेन्ट साहब ने यह बात उड़ा दी। यह पता भी लड़कों को लग ही गया।

एक अपूर्व घटना लड़कों ने उस महाशय को दंड देने को रची। रात्रि के समय आप एक दिन अचेत निद्रा देवी की गोद में सो रहे थे। मौक़ा भी अच्छा था। आप के कमरे का लैंप, जो स्टूल पर जल रहा था, छिपा कर गुल कर दिया गया। और, बरेन्डा का लैंप उतार कर उसकी जगह रख दिया गया। उधर एक लड़के ने ज़ीने पर खड़े हो कर एक कुरसी को ठोकर मार के गिरा दी। कुरसी भड़ भड़ करती नीचे गिरी। बड़ा शोर हुआ। सुप्रिंटेंडेन्ट ऐसी अचानक आवाज़ को कुसमय सुन ऊपर आए। वही लड़का ज़ीने पर खड़ा हुआ था। कहने लगा कि मैं नीचे जा रहा था। किसी ने लालटेन उठा ली है। मैं बालबाल गिरने से बचा। सुप्रिन्टेन्डेंट के कान तो पहले ही से गरम थे। उन्हें बड़ा क्रोध आया। तुरन्त ही ढूंढ़ ढांढ़ होने लगी। सब कमरे देखे जाने लगे। हमारे सुराख़मुहम्मद के कमरे की भी बारी आई।

आप अन्दर चित पड़े हुए थे, मानो सांप सूंघ गया हो। आपने अपनी धोती को रियायती छुट्टी दे रखी थी। ऐसे अपूर्व दृश्य की भी थोड़ी देर तक खूब झाँकी रही। सुप्रिंटेंडेंट बड़े बिगड़े। जगाने ही को थे, मगर लड़कों ने सम्मति दी कि इस समय न जगाइये। वे नाम नोट कर के चले गए। इन के जाने के पश्चात् बोर्डिंग का लेम्प हटा कर छिपाया हुआ शिकारपुरी लेम्प स्टूल पर रख दिया गया। प्रातः काल उठ कर सुराख मुहम्मद को रात की घटना का पता तक न लगा। क्योंकि, इन्होंने अपना लेम्प बदस्तूर स्टूल पर ही रखा पाया।

लगभग आठ बजे आप के पास एक काग़ज़ आया, जिसमें लिखा था कि तुम पर दो रुपया जुरमाना हुए। आप बड़े चलित हुए, क्योंकि सुप्रिंटेंडेंट ने यह नहीं लिखा था, कि क्यों जुरमाना किया गया। आप तुरन्त ही उन से मिलने गये मगर वे मिले नहीं। बड़े परेशान थे। लड़कों से पूछा, मेरे ऊपर क्यों जुरमाना हुआ? क्या बात है, समझ में नहीं आती। लड़कों ने यह कह कर ढारस बन्धा दिया कि भाई यह तो यहां का नियम ही है। सब लड़कों ने मिलकर समवेदना की बन्सी बजाई। आप कलाई को घड़ी के खाली केस की तरह मुँह फाड़ रह गए।

होस्टल भर का नज़ला इन्हीं पर ढला करता था। मनहूस आप ऐसे हैं कि अपना मुँह तक दर्पण में न देखा करते थे। पढ़ने की परिपाटी आप की बड़ी विचित्र थी। समस्त बोर्डिंग के महाराजों को इकट्ठा कर के आप ने एक रात्रि पाठशाला खोल रखी थी

इस समय आप सब को रामायण सुनाया करते थे। कथा पर चढ़ावा भी हाथ लगता था। प्रातःकाल के समय आप कमरे में गा गा कर पढ़ा करते थे। रटनेवाले आप बड़े बेतुके थे। रटाई की पक्की सड़क पर आप की ज़ुबान बेभाव मोटर साइकल की रफ्तार से चक्कर काटती थी। अंग्रेज़ी भाषा का उच्चारण अधिक सुन्दर होने के कारण यह पता न चलता था कि आप कौन सी भाषा बोल रहे हैं। रेखागणित को तो आप बिलकुल रट चुके थे। पर हाँ, यह कठिनाई अवश्य पड़ती थी कि आरम्भ कहाँ से करें? डाकगाड़ी प्रतापगढ़ से छूट कर सीधी बनारस केन्ट पर रुकती थी। सुनते सुनते चित्त ऊब गया। और भी बढ़िया बढ़िया बातें और इधर उधर के अवतर आप के अक्ल के टट्टू ने मौका पाकर हरीघास की तरह चर लिए हैं।

वक्तृता में आप का व्याकरण बड़ा ही मनोरंजक और बेतुका रहता है। बहुधा आप अपनी अंग्रेज़ी ही बनाकर रट लेते हैं, और मौके पर सब उगल देते हैं। बोर्डिंग में आप मशहूर Speaker (लेक्चरार) हैं। बहुधा-Opening speech-पहली वक्तृता-आप ही की रहती है। वक्तृत्व-शैली अनोखी है। जो कुछ बोलते हैं, उसे हाथ, मुँह, नाक, कान से बताते भी जाते हैं, जिस से प्रभाव ख़ूब पड़े। शैली बिलकुल नई है। आप को समय का तो ध्यान रहता ही नहीं। सभापति घन्टी बजाया करे, मगर आप पर लेक्चर देने का भूत ऐसा सवार होता है कि इन संकेतों को कान तक फटकने भी नहीं देता। विषय चाहे कोई हो, इस पर कुछ ध्यान नहीं देते। आंख मींच कर अंग्रेज़ी राज्य से भारत को क्या क्या लाभ हुए, इस पर ही बन्सी बजाने लगते हैं।

साल ज्यों त्यों कर व्यतीत हुआ। सालाना इम्तहान हो चुका था। गर्मी की छुट्टियां आरम्भ होनेवाली थीं। आप के लिये एक जाल रचा गया। एक मित्र का विवाह था। बरात लखनऊ ही में जाने को थी। मगर आप से कहा गया कि बरात सोंठ की मंडी [यह वही मुहल्ला है जहाँ पागलखाना बना हुआ है] आगरे को जायगी। आपने अपने पिता से आज्ञा माँगी। बड़े अनुरोध करने के पश्चात् आज्ञा मिली; क्योंकि आप के पिता जी भी शिकारपुर ही के रहनेवाले हैं। टिकट के दाम हवाले किये गए और आप से निवेदन किया गया कि आप आगे ही से चलकर प्रबन्ध कीजिए। हम लोग भी आते हैं। और बहुत से मित्र आगे गए हैं। वहीं पर आप से भेंट होगी।

पहले तो आगरा देखने का शौक़ चर्राया, फिर पूरी कचौड़ी की याद से बेताब—और किराये के दाम वसूल—ये सब बातें ऐसी थीं, जो आप को आगरे ज़बरदस्ती खींच ले गईं। उतरे भी तो आप केन्ट के स्टेशन पर। कुली से असबाब उतरवाया। सोंठ की मंडी स्टेशन से दूर है। बजट में इक्के के लिये दो आने थे। असबाब भी मालूम था। बोर्डिंग पर एतबार न होने से अपनी लालटेन तक हाथ में लटकाए हुए थे। बड़ी खुशामद करने पर इक्केवाला ६ आने में राज़ी हुआ। कुछ शकल सूरत अपूर्व और कुछ असबाब और विकट पता होने के कारण कुली ने भी पूरी मज़दूरी चार्ज की। मगर दे ही डाले। कुली ने भी रहम खाया। इक्का भी सोंठ की मंडी पहुँच ही गया। उतर कर हमारे मित्र पूछने लगे कि यहाँ कोई बरात आनेवाली है? हम उसका इन्तज़ाम करने आए हैं। जिस से पूछते वही हँस पड़ता। कहीं कोई जवाब भी देता तो पागल खाने का रास्ता बताता। कोई हँस कर रह जाता। हमारे मित्र चक्कर में आए। मगर तो भी हिम्मत बांधे एक हाथ में लालटेन दूसरे में डंडा-छतरी लिए पूछते फिर रहे थे। जब पता न चला और इक्केवाले ने जल्दी मचाई, तब आप खड़े होकर सोचने लगे कि हाय कहीं मज़ाक तो नहीं किया। मगर यहाँ तो तैय्यारियाँ विवाह की सच मुच हो रही थीं। सोच विचार कर आप स्टेशन ही लौटे। वहाँ असबाब उतारा और सुस्ताने लगे। इक्केवाले ने १२ आने पैसे माँगे। मगर आप के पास कहाँ थे। जवाब भी न दिया। इन्हों ने सोचा था कि वहीं दिला देंगे। इक्केवाला बड़ा बिगड़ा; और लालटेन छतरी डंडा इक्के में रख दो चार गालियाँ रसीद में देकर चलता हुआ। अब क्या था! परेशानी ने चारों तरफ़ से घेर लिया। अच्छे जाल में फँसे। निकलना भी मुशकिल, घर भी दूर। पास पैसा नहीं, और न किसी से जान पहचान। फिर सोचा बरात आयगी तो अवश्य और इधर ही से उतरेगी। इसी ख़याल से हिम्मत बांध कर वहीं डट गए। नाका घेर लिया। स्टेशन पर जो कोई ट्रेन आती आप अपना सब असबाब ले दन से स्टेशन में बरात देखने को घुस जाते। स्टेशन पर बुखार की तरह चढ़े हुए थे। एक बार तो [illegible] उम्मेद हो निकल आए। भाग्य से किसी ने टोका नहीं। रात में गाड़ी फिर आई। आप अपना सब असबाब ले—क्योंकि बाहर किस पर छोड़ें—दन से फिर प्लेटफ़ार्म के अन्दर दाख़िल हो गए और प्लेटफ़ार्म पर चिल्लाने लगे ओ बरात! बरात! ओ बरात!!! टिकिट-चेकर ने पूछा, कहाँ से आते हो? कौन हो? टिकिट कहाँ है? आप बिलकुल ग़ैरहाज़िर। अरे, इतने प्रश्नों का उत्तर एक दम देना होगा? बस, हमारे मित्र बाबू के पैरों पर गिर गए। कहने लगे हम से भूल हुई। हमें क्षमा करो। बाबू ने कहा टिकिट कहाँ है? मगर आप क्षमा माँगने पर तुले हुए थे। गिड़गिड़ा रहे थे। बड़ी देर पीछे बोले कि मैं तो यहीं से आया हूँ। एक बरात आ रही है ... ... (बात काट कर)

'अच्छा चुप' कह कर बाबू ने पास के जंक्शन से चार्ज किया। पास कौड़ी क़सम खाने को नहीं! असबाब ज़ब्त किया गया।

आँख फूटी पीर गई। अब क्या था! नक़द दम रह गया। खाना भी दो दिन से नहीं खाया था। इधर हम लोगों ने अपने एक मित्र को लिख रखा था। उसने इनका पता लगा रखा था और इनके पीछे पीछे यह सब जगह इनका तमाशा देख रहा था। उसने रुपये देकर असबाब छुड़ा लिया। मगर इनको कुछ हाल न बता कर असबाब पास रखा। उधर उसने इनको ६ आने पैसे देकर घर पर रुपयों के लिए तार दिलाया। रुपये आए मगर तार से नहीं; कूपन में बड़ी डाट लिखी थी। ख़ैर! आप को टिकट दिला कर उसने चलता कर दिया। पीछे से असबाब की भी बिल्टी कर दी गई। वह भी पहुँची होगी। न जाने इन की [illegible] क्या दशा हुई होगी। घर पहुँच एक गाली गलौच से भरा हुआ हम लोगों को पत्र भी भेजा, जिसके जवाब में २ पैसे के टिकिट—लिफ़ाफ़े के दाम—भेज दिए गए।

पाठकगण! ध्यान रहे कि बीसवीं शताब्दी में भी बेवकूफ़ हैं ज़िन्दा हैं। ये लोग पीतल के ढले हुए नहीं होते। इनकी साधारण शकल सूरत होती है। मगर हाँ, उनके ढूंढने में भी देर नहीं लगती। ऐसे बेपेन्दी के लोटे सब कहीं मौजूद हैं।

ज्ञान-कण।

राष्ट्रीय उन्नति का मूल कारण शिक्षा प्रचार की न्यूनाधिकता ही है। राष्ट्र के शिक्षित न होने से ही उसे अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। अतः प्रत्येक राष्ट्र को सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होने का साधन एकमात्र शिक्षा-प्रचार ही है।

× × × ×

धर्म का ह्रास हो जाने पर जिस प्रकार उसकी पुनर्स्थापना करने के लिये धर्म श्रेष्ठ पुरुष की आवश्यकता हुआ करती है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्र के [illegible] के लिये राष्ट्र श्रेष्ठ-नेता-पुरुष की आवश्यकता होती है। [illegible]

जो मनुष्य जितनी अधिक बकबक करता है, उसे उतना ही अकर्मण्य समझो। बकवादीपन और कर्मण्यता में भारी विरोध है। कहावत भी है कि "गरजेगा सो बरसेगा क्या!"

× × × ×

लोग मुँह से तो दिन रात चिल्लाया करते हैं कि हमें स्वतंत्रता मिले। पर, स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये यथेष्ट प्रयत्न [illegible]

× × × ×

कृषक और मधुमक्खियाँ एक ही श्रेणी की हैं। जिस तरह मधुमक्खियाँ मधु इकट्ठा कर लेने पर भी अन्त में उससे [illegible] रहती हैं, ठीक उसी प्रकार कृषक बहुतसा धान्य [illegible] कर के भी उसे अपने साहूकारों और कर्मचारियों पर [illegible] मूल्य मान है।

सैनिक सेतु-बन्धन।

लेखक—श्रीयुत सीता-कांत।

इन दिनों, युद्धीय समाचार पढ़ती बार, शत्रु या मित्र सेना के किसी नदी के लाँघने अथवा तोपों की भीषण मार के कारण किसी नदी पर के पुल के टूट जाने के समाचार यत्र-तत्र देख पड़ते हैं। पर, ये अस्थायी (Temparary) पुल कैसे बनाए जाते हैं; इस बात का किसी को भी पता नहीं चलता। अतः उसका वृत्तान्त यहाँ संक्षेप में लिखते हैं।
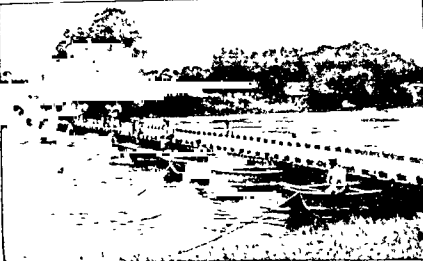
तैरता हुआ नौका पुल।

प्रत्येक राष्ट्र की सेना के साथ पैदल सेना, सवार वगैरह सैनिक दलों की तरह इंजीनियरों के भी दल रहा करते हैं। ब्रिटिश सेना की इंजीनियरों की टोली को 'रॉयल इंजीनियर्स' कहते हैं। बड़े २ विद्युत्शास्त्रज्ञ, बढ़ई, लुहार वगैरह पेशे के लोगों का भी 'रॉयल इंजीनियर्स' की टोली में ही समावेश किया जाता है। और, उन्हें भिन्न २ प्रकार की गाँठें बाँधने से लेकर इंजीनियरी के सभी काम सिखाये जाते हैं। ये लोग लकड़ी के टुकड़े जैसी थोथी चीज़ों से प्रतिसृष्टि निर्माण करने की योग्यता रखते हैं। अतः उनकी उक्त योग्यता के ही कारण रायल इंजीनियरों में भर्ती की जाती है। अस्तु।

तैरते हुए पुल पर से ही आगे का मार्ग बना रहे हैं।
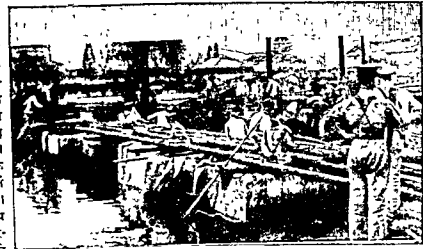
ज़माने के पलटते युद्धीय पद्धति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होते जाते हैं। इससे घुड़दौड़ और बन्दूकों के फेर करने जैसी पुराने ज़माने की कल्पनाएँ नष्टप्राय हो गई हैं। और, युद्धीय भूमि पर के इंजीनियरों की युक्तियाँ महत्व की समझी जाने लगी हैं। क्योंकि, युद्धीय रेलमार्ग, वायुयान, मोटरें इत्यादि आधुनिक साधनों में अपूर्व सफलता मिलने से सैनिक व्यवस्था और हलचल में इंजीनियरों की सहायता के बिना युद्ध में सफलता ही नहीं मिल सकती।

तैरता हुआ पुल बना रहे हैं।

सैनिक हलचल में बहुधा प्राकृतिक और शत्रुओं के कृत्रिम साधन ही भारी बाधा उपस्थित करते हैं। यदि बीच राह की नदी लाँघना हो तो उस कार्य में रायल इंजीनियर्स बड़ी सहायता करते हैं। नदियों पर पुल होने पर भी शत्रु-सेना के आक्रमण में बाधा उपस्थित करने के लिये वे नष्ट कर डाले जाते हैं।

नदियों के लाँघने के लिये नौका-पुल ही सर्वश्रेष्ठ होता है। पर, उसके बनाने में नौकाएँ, बड़े बड़े रस्से इत्यादि कई तरह की सामग्री की आवश्यकता होती है। अथवा उनके न होने पर नौकाएँ, केनवास और लकड़ी की पटरियाँ बनाने के लिये यथेष्ट समय की ज़रूरत हुआ करती है।

सभी साधनों के हस्तगत हो जाने पर उनका अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। नौका पुल तैयार करने के लिये पहले एक नौका को योग्य स्थान पर स्थित कर मार्ग बनाया जाता है। पर, प्रत्यक्ष रणक्षेत्र में जल-प्रवाह का वेग तथा अन्यान्य कई प्राकृतिक कारण इस कार्य की सिद्धि में भारी बाधा उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त शत्रुओं की भीषण तोपों के फेरों से तो उक्त कार्य को साधना अत्यन्त कठिन हो जाता है। अतः ऐसे समय किसी अन्य गुप्त मार्ग का अवलम्ब किया जाता है।

कभी कभी तो एकाध सँकड़ी जगह पर भी नौका-पुल बनाने के लिये बाध्य होना पड़ता है। सन १८९९–१९०० के एँग्लो-बोअर युद्ध में नेटाल के प्रेटोरियस फार्म के पास के बीस फीट चौड़े नाले पर ही नौका पुल बनाना पड़ा था! क्योंकि, उस समय नाले में बहुत पानी था; अतः उस को पार करना असाध्य था।

कभी कभी तो नदी के एक किनारे पर ही नौका-पुल बनाकर फिर वह दूसरे किनारे की ओर ढकेल दिया जाता है। बोअर युद्ध में जनरल बुडगेट की सेना को नेटल की राइट फर्मवाली टयूगेला नदी को, लाँघना था। सब नौका-पुल के द्वारा ही वह सेना नदी को पार कर सकी थी। उस समय नदी के एक किनारे पर पुल बनाकर फिर वह दूसरे किनारे की ओर लाया गया और प्रवाह का मध्य (बीच धार) भाग आवेग-युक्त होने से

पुल का शेष ७० फीट का भाग प्रवाह ही में बनाया गया। नौका-पुल पर से सेना के स्थल प्रदेश में प्रवेश करने के साधन बनाने में भी इंजीनियरों को बड़ी २ कष्ट-साध्य युक्तियों का अवलम्ब करना पड़ता है। किसी किनारे पर उथलापन होने पर लकड़ी के चौखट, बाँस और रस्सों की सहायता से पुल पार करना पड़ता है।

नौका-पुल बनाने और नदी पार कर जाने पर उसको नष्ट करने तथा पुनः उसे ही किसी यथेष्ट स्थान पर स्थित करने में ग़ज़ब की शीघ्रता की जाती है। नेटाल की टयूगाल नदी पर के पुल को बारम्बार एक ही स्थल पर तान कर, वहाँ का काम हो जाने पर, वही दूसरे स्थान पर हटाया जाता था। इस प्रकार कई स्थानों पर की सैनिक टोलियाँ, बारूद-गोलों से भरे हुए रेल के डिब्बे और अन्यान्य युद्धीय सामग्री यथेष्ट स्थान पर पहुँचाई जाती थी।

लकड़ी के चौखटों का पुल बनाना भी कुछ काम रखता है। लकड़ी के बड़े २ डूंड, खपीड़े और रस्सी के टुकड़ों की सहायता से अल्पावकाश ही में एकाध नाले पर इस प्रकार के पुल बनाए जाते हैं, जिन पर से रथ और अन्यान्य यांत्रिक वाहन भी जा सकते हैं। इससे भी हलके पुल बनाने की इच्छा होने पर पहले लकड़ी के बड़े डूंड रस्सों से बाँधकर उनका ढाँचा बनाया जाता है, जिससे नाले पर लटकता हुआ पुल बनाया जाता है।

तारबर्कों के तार, लकड़ी, तख़्ते वगैरह सामग्री से बनाए हुए झूलते हुए पुल पर रॉयल इंजीनियर्स खड़े हैं।

छोटे पीपे अथवा मछली मार नौकाओं पर भी अस्थायी पुल बनाए जाते हैं। गत यूरोपीय युद्ध में बनाए हुए मछलीमार नौकाओं के पुल का हमेशा उपयोग करते रहने पर भी वे लगभग चार मास तक नष्ट नहीं होने पाये। इससे उनकी मज़बूती का भी पता चल सकता है।

अस्थायी (Temporary) पुल भी कितने मज़बूत होते हैं, इसका पता निम्न उदाहरण से चलेगा। बहुधा नदी को पार करते समय चार २ सैनिकों की श्रेणी बनाई जाती है। साधारण [illegible] से पुल लाँघने पर एक फीट में ३५४ पौंड बोझा होता है। पर, [illegible] से लाँघने पर, [illegible] हो जाने से, उसका [illegible] १४०० पौंड हो जाता है, तथा [illegible] हो जाने से [illegible] १००० पौंड बोझा धारण करना पड़ता है! [illegible] है, कि जो [illegible] किसी [illegible] से [illegible] करता है, वह [illegible] ही अधिक [illegible] समझा जाता है। और [illegible] भी [illegible] से काम करता है, कि [illegible] इंजीनियरों [illegible]। [illegible] १४ [illegible] मिनट में १४ फीट [illegible] पुल बना सकते हैं!

सन १८६० ई० के अफ़गानिस्तान के युद्ध में एक अस्थायी पुल बनाया गया था। उसके बनानेवाले बिलकुल [illegible] थे। तो भी वे एक मास में, लकड़ी के डूंडों के आधार पर, जल-पृष्ठ पर ५०० फीट लम्बा पुल बना सके! उन की पुल बनाने की युक्ति बिलकुल भिन्न प्रकार की है। वे भाले और डूंडों के ढांचे बना कर उन्हें योग्य स्थान पर जलपृष्ठ पर छोड़ देते हैं और वे तैरते रहते हैं। उस समय पानी पर तैरने के उद्देश से ढाँचे में हवा से भरी हुई चमड़े की थैलियों का उपयोग किया गया था। किसी योग्य स्थान पर उनके रख देने पर उन में अनेक भारी चीज़ें रख कर वे पानी में डुबो दिये जाते हैं। इस प्रकार पुल की दृढ़ता के लिये उसका आधार मज़बूत बना दिया जाता है। [illegible] नदी के पुल के पास के छोटे छोटे रेतीले द्वीपों से उस नदी के तीन भाग हो गये हैं। पर, एकदम बाढ़ आ जाने और उन के नष्ट हो जाने के कारण पुल का कुछ हिस्सा बह गया और कुछ नीचा हो गया। तो भी उस का काम हो जाने तक वह मजबूत ही रहा।

एक ही श्रेणी से जाने के लिये पुल तयार होते समय, उस समय की बाधाएँ दूर करने के लिये, जो युक्तियाँ सोची जाती हैं, वे बड़ी चमत्कारजनक और कौशल्य-पूर्ण होती हैं। सैनिक तारबर्कों के सादे खम्भे, तार और रस्सों की सहायता से यथेष्ट मार्ग बनाया जाता है। पर-तीर के हस्तगत करने या सेनानायक की किसी भी आज्ञा का पालन करने को इधर सैनिक श्रेणी इस पर से सरलता से भेजी जा सकती है। दोनों तीरों पर लकड़ी के खम्भे खड़े कर वे पीछे की ओर के ज़मीन में गाड़े हुए, खूंटे या और किसी साधन से रस्सों से बाँध दिये जाते हैं। उन पर तार की गुड़लियाँ फिर इनको लगभग एक [illegible] की दूरी से लटके [illegible] दिये जाते हैं। [illegible]

तार बर्कों के तार और बाँस का बनाया हुआ पद-सेतु।

उस [illegible] के सदृश पुल पर एक [illegible] का रास्ता बनाया जाता है।

[illegible] कभी तो भारी मशीनों का भी [illegible] नदी पर के कुछ कुछ दूरी पर खड़े किये हुए [illegible] उन मार्गों के ऊपर से जाते हुए तार ही उन का आधार [illegible] जाता है।

[illegible] के [illegible] किये, वायुयुक्त [illegible] की [illegible] पास से जाते हुए [illegible] के [illegible] साधनों की सहायता से पानी पर तैरते रहते [illegible]

के द्वारा मार्ग बनाकर बहुतसी सेना पर-तीर पर पहुँचाई जाती है। पर, जब तोपखाना या युद्धीय सामग्री से लदी हुई गाड़ियों को पर-तीर पर पहुँचाने की आवश्यकता होती है, तब मजबूत और सुरक्षित मार्ग बनाए बिना काम नहीं चलता। जिन पर पुल बनाने की युक्ति और अन्यान्य कार्य करना निर्भर होता है, उन कर्मचारियों को बननेवाले पुल पर किस युद्धीय सामग्री का कितना बोझा पड़ेगा; इसका पूर्ण और सूक्ष्म ज्ञान होता है। और, उसीको सोच कर यथायोग्य पुल बनाए जाते हैं। प्रत्येक तोप, एँजिन, मनुष्य, घोड़ा वगैरह की हलचल की भिन्न २ परिस्थिति में—उनके घबरा जाने पर जल्दी से दौड़ने में—पुल के प्रति वर्गफीट जमीन पर कितना बोझा पड़ेगा, इसका भी उन्हें ज्ञान रहता है। चढ़ाई कर जानेवाली सेना को केवल पर-तीर पर पहुँचाने के लिये ही पुल नहीं बनाया जाता, वरन यदा-कदा पिछाहट हो जाने पर, शत्रुसेना के पंजे से बच निकलने के लिये भी, नदी को सुरक्षित रूप से पार करने में उसका उपयोग हो सकता है!

——

पिक-प्रार्थना।

(१)
कमनीय कान्तिवाली सुन्दर सुरागवाली!
काली कुलीन कोयल चित को चुरानेवाली!

(२)
क्यों कर कुहू! कुहू!! अब तू शोर है मचाती?
पलटा ज़माना प्यारी, क्यों लोग है हँसाती?

(३)
सुखकर वसन्त का सुन अब अन्त हो चुका है!
अपना अपूर्व वैभव वह नष्ट कर चुका है।

(४)
अब है न शान्तिदायी वह मन्द वायु बहता।
कुल-कामिनी-लता से था जो ठठोल करता॥

(५)
वे फूल, फूल कर जो मद-मत्त भूमते थे।
रंगे बिरंगे खिलकर हँस खेल खेलते थे॥

(६)
कामिनि-कमल-करों के गहने कभी जो बनते।
मृदु अंग-संग रह कर जो धन्य थे समझते॥

(७)
वे आज झड़ रहे हैं कीचड़ में पड़ रहे हैं।
हा! वक्त के बदलते देखो, वे सड़ रहे हैं॥

(८)
हो मान-हीन वे अब हत तेज हो रहे हैं।
पथिकों के पाद से वे कैसे कुचल रहे हैं?

(९)
अब मेघ हैं गरजते बिजली भी है चमकती।
वर्षा की झरझराहट सुन देह काँप उठती॥

(१०)
गायक सभी सुभग खग निज नीड़ को चले हैं।
देखो समय-पलटते वे भी पलट चले हैं॥

(११)
स्वर-राग प्रेमियों का त्यों ही सुराश्रितों का।
अब मान घट रहा है उन सब विधायकों का॥

(१२)
वह नभ-विहारकारी बक-वृन्द जग उठा अब।
संसार भर की आँखें उस पर अटक रहीं अब॥

(१३)
निज युक्ति से सभी को कैसा छका रहा वह।
दिखला अनेक चालें सब को भुला रहा वह॥

(१४)
अतएव कुहू! कुहू!! अब तेरी नहीं सुहाती।
बेवक्त बात कोई किस का न दिल दुखाती?

(१५)
अब छोड़ ध्यान अपना टुक सोच तो ज़रा तू।
तज निम्न-दृष्टि ऊपर को देख तो ज़रा तू॥

(१६)
पर भूल जो गई तो तव कृष्ण रंग से हम।
सम्बन्ध जोड़ देंगे काकों से एक ही दम॥

(१७)
फिर काक-मण्डली में मिल जायगी सही तू।
कर आप घात अपना पछतायगी सही तू॥

—मालव-मयूर।

वर्तमान 'नेल्सन' ऐडमिरल बीटी।

नेपोलियन मास्को से पीछे हट रहा है।

किया है। और २-४ आवारा लड़के भी उसके 'भारत-संगीत गायन वादन' पाठशाला में पढ़ने को आया करते हैं। मैंने उन्हें ४-६ मास के पूर्व कुछ रुपये उधार दिये थे। कई चिट्ठियाँ रुपये लौटाने के लिये लिखीं, पर हज़रत ने उत्तर तक नहीं दिया। जब मैं खुद उनके घर गया तब, मुझे वहाँ पर दाड़् दाड़् दाड़् दिड़् दिड़् दिड़् और किट, फुट, काट, किट की तानें सुनाई दीं; अतः तुम ही बतलाओ कि उसका क्या मतलब होता है? जलेबी तो सभी—छोटे-बड़े, ग़रीब-धनी, जवान-बूढ़े—को पसन्द होती है। यदि तुम्हारा गायनशास्त्र उत्तम होता तो उसे अवश्य ही सभी पसन्द करते। क्या मुझे ईश्वर ने कान नहीं दिये हैं? फिर मुझे वह क्यों पसन्द नहीं है?

सुनिये पंडित भी, जो कुछ कहो, सोच-विचार कर कहा करो। ज़रा बतलाइये तो सही कि क्या छोटे बच्चे को चटनी, रायता, और पेड़ा-बर्फी पसन्द होते हैं? यह श्यामा रसोइया है न? उसका लड़का चौथी कक्षा तक पढ़ा है। उसे नाटक देखना पसन्द है। यह क्यों? उसे मधुमालती नाटक का रहस्य न समझने के कारण वह उसे पढ़कर आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता। हाँ, यह किस्सा तोता मैना जैसी पुस्तकें समझ सकेगा। भला वह वेदान्त, शास्त्र, तर्क कैसे समझ सकता है? सारांश, प्रत्येक कला के आनन्द का अनुभव करने की पात्रता होने के लिये बौद्धिक सुधार की आवश्यकता होती है। उस कला में कितना मज़ा है, कहाँ माधुर्य है और आनन्द का स्थान कौनसा है, इन बातों का मर्म ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञात होने की आवश्यकता है। क्या प्रो० लक्ष्मणदास यों ही प्रसिद्धि पाये हुए हैं? पंडितजी, नाराज़ मत हूजिये। "बन्दर क्या जाने अदरख़ का स्वाद!"

चि० नं० १
आन्दोलन संख्या को गिननेवाला चक्र।

"हाँ, तुम्हारा कहना ठीक है। पर, क्या तुम्हारे कथन का यह उद्देश्य है कि ज्ञानेन्द्रियों को यथायोग्य शिक्षा मिले बिना गान-कला का आस्वादन ही नहीं किया जा सकता? मुझे अभी इस कला का चाव नहीं है। अतः क्या वह मुझ में उत्पन्न हो सकेगा?"

"हाँ, ज़रूर ही आपमें उसका आविर्भाव उत्पन्न हो सकता है। क्या आपको इस बात का स्मरण है कि तीन-चार वर्ष पूर्व भगवानदास ठेकेदार ने आप से अपने प्रश्नों के विषय में पूछा था, तब आपने उत्तर दिया था कि 'चल जा, लकड़ी के वाद्य बजा, जिससे तेरे ग्रह अच्छे होंगे!' फिर आज आप भी उसी काठ के पुतले क्यों बन गये?"

"तुम्हारा कहना मुझे स्वीकार है। पर, अब बुढ़ापे में क्या हो सकता है? बूढ़े तोते भी कहीं पढ़ते हैं?"

"इसमें उमर की कौनसी बात है? मैं ही आपको संगीत की अभिरुचि लगा दूंगा। मैं अभी भोजन से निपटेरा पा लेता हूं। फिर आप मेरे साथ चलिये। कल सन्ध्या को मैं आपको सुरमाधुरी के लक्षण और रहस्य समझा कर कहूंगा। गायन कला को पाँचवाँ वेद भी कहते हैं। वह एक मोहिनीविद्या है। गायक और श्रोता को सुरमाधुरी कैसे तल्लीन करती है; यह अभी प्रत्यक्ष रूप से देख पड़ेगा। ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये भी यह एक अच्छा साधन है। इसीसे तो गीता का पद इतना बड़ा हुआ है।

चि० नं० २
हंडिया को आघात पहुँचते ही आन्दोलन होता है, जिससे लकड़ी की गोटी उछलने लगती है।

पाठकों को उक्त संवाद से उभय साथियों का बहुतसा हाल मालूम हो गया होगा। 'जगद्भूषण' नाटकगृह में संगीतशास्त्र पर सभयोग व्याख्यान होनेवाला था। वहाँ विविधवाद्य भी श्रोतृ-समाज को बतलाने के लिये रख छोड़े थे। उनमें कुछ देशी थे और कुछ विदेशी। उन्हींमें डाफली, डमरू, तबला, ढोल, ताशे जैसे चमड़े के मढ़े हुए वाद्य; हाथ और पैर से बजनेवाला हार्मोनियम, पियानो, सनाई, अलगोज़ा, सीटी, झाँझ, सितार, बीन और ताऊस रखे थे। व्याख्यान के लिये ज़रा देर थी; अतः लो वाद्यों को ही देख रहे थे। वाद्य-रचना में भी कौशल्य प्रकट किय गया था, जिससे नाटकगृह की शोभा और भी बढ़ गई थी।

सुखदेवजी और पंडितजी ने उन वाद्यों का अवलोकन किया भिन्न २ देशों के, स्व-मनोरंजन के प्रीत्यर्थ बनाए हुए, उन असंख वाद्यों को देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये। केवल स्वर के मधुरालाप से मनुष्य का मोहित हो जाना उन्हें बड़ा ही आश्च कर मालूम दिया। जब उन्हें श्रीकृष्ण के मुरलि-रव से ग्वाल बछड़ों के मोहित हो जाने की बात का स्मरण हो आया, तब तो वे आश्चर्यचकित हो गये। सुखदेवजी ने सोचा कि जब पशु-पक्षि भी सुर-माधुरी से मोहित हो जाते हैं, तब पंडितजी भी क्यों न मोहित हो जायँगे? यों सोचकर ज्यों ही उन्होंने पीछे की ओर देखा तो उन्हें पंडितजी गान-तल्लीन दिखाई दिये। उन्हें देखते ही पंडितजी शरमा गये। तब सुखदेवजी ने पंडितजी से कहा, 'दूसरी तरफ ही क्या देख रहे हैं? ज़रा, इस जल-तरंग के खेल को तो देखिये। गैलरियों में तो स्त्रियाँ बैठती हैं। उन्हें देखना कामी जनों का काम है।"

चि० नं० ३
निर्वात हंडिया में घन्टी बजाने पर भी वह नहीं बजती।

"सुनिये सुखदेवजी, ये सभी बातें हमें मालूम हैं। हमें ईश्वर ने आँखें क्यों दी हैं? इसीलिये न कि ईश्वर-निर्मित सृष्टि का सौंदर्य देखकर उसे धन्यवाद दिया जाय? और, यहाँ तो सौन्दर्य की खान धरी हैं। ज़रा देखिये तो सही!"

"आप ठीक कहते हैं, पंडितजी। मेरे कहने का यह उद्देश्य नहीं है, कि यदि कोई स्त्री राह में देख पड़े तो तुम अपनी आँखें बन्द कर लो। पर, मेरी समझ से आँखों में स्त्री का प्रतिबिम्ब पड़ जाने पर उसकी ओर देखने, टेढ़ी गर्दन कर सूक्ष्मावलोकन करने में पाप है। मानलो कि तुम्हारी ही भगिनी जा रही हो और कोई पुरुष उसकी ओर टेढ़ी निगाह से देखे, तो क्या तुम उस पुरुष को धन्यवाद दोगे? क्या यह दृश्य तुम्हें पसन्द होगा? और, जाने दो इस बात को। वह देखिये, व्याख्याता महाशय और गवैये इस तरफ़ ही आ रहे हैं। अतः चलो, अपनी जगह को रोक रक्खें।

चि० नं० ४
दुतारी—भिन्न २ सुर उत्पन्न करनेवाला यंत्र।

पाँच मिनट ही में नाटकगृह में पूर्ण शान्ति विराज गई। गवैयों के दल में के तीन तरुण युवकों ने राग कल्याण में प्रभु-प्रार्थना गाई। वह राग, उसके गाये जाने का समय और गानेवालों के स्वच्छ-सात्विक पोषाक के कारण श्रोतृवृन्द शान्ति-सुख में डूब गये।

व्याख्याता महाशय एक अंग्रेज़ी कॉलेज के प्रोफ़ेसर थे। उन्हें संगीतविद्या का बड़ा चाव था। एक और गानप्रिय विद्वान् यात्रा सज्जन थे, जिनके प्रयत्न से ही संगीतकला को उन्नतावस्था पर चढ़ाने के लिये व्याख्यानादि का प्रबन्ध किया गया था। ठीक वक्त पर व्याख्यान का आरम्भ हो गया। पहले इस लेख के निर्माण का सुभाषित पद्य और सामवेद की कुछ ऋचायें गाई गईं। उसमें साधा-

स्पष्टतः यही मतलब निकलता था, कि ॐकार प्रणव नाम है, ब्रह्म का अधिष्ठान है और आद्य सगुण साकार स्वरूप है। शब्द-ध्वनि महाशक्ति है, अतः सृष्टि के आरम्भ में यह महादेव से उत्पन्न हुई। इसीसे जगत शब्द से आकर्षित हो जाता है।

तदुपरांत व्याख्याता ने निज विषय सप्रयोग स्पष्ट कर बतलाया।

ध्वनि एक आन्दोलनात्मक चमत्कार है। यदि पानी से भरी हुई एक बड़ी थाली के बीचोबीच एक कंकर डाल दिया जाय तो थाली के मध्यबिन्दु पर होनेवाले आघात से थाली के किनारे से लहरें टकरायेंगी। आघात-स्थल पर पानी दाबा जाता है, इसलिये उस बिन्दु के आसपास के 'अ' धरातल का पानी अधिक होता है, जिससे 'ब' धरातल का पानी कम हो जाता है। इस प्रकार यह लहर ऊँची उठती और नीची होती हुई किनारे तक पहुँचती है। जिस प्रकार घास की गंजी बनानेवाले मनुष्य, अपनी श्रेणी के एक सिरे से लेकर अन्तिम मनुष्य तक, घास के पूले पहुँचाया करते हैं, उसी प्रकार अ, ब, क इत्यादि पानी के तल क्रम से ऊँचे-नीचे होते जाते हैं। उसीको लहर कहते हैं। पानी अपना स्थान-परिवर्तन नहीं करता। उसका कोई भी एक थर आघात से होनेवाले परिणाम को अपने पर लेकर और उसे अगले थर की ओर ढकेल कर पुनः पूर्वस्थिति पर आ जाता है। इसी प्रकार कहीं भी दो पदार्थों का परस्पर आघात होने से अन्तरिक्ष रूपी महोदधि में लहरें उत्पन्न होकर उनके कर्णेन्द्रियों के परदे तक पहुँचते ही शब्द-ज्ञान होता है। शीघ्रगति से उत्पन्न किये हुए आघातों के कारण एक ही लहर उत्पन्न होती है। आघातों की गति बढ़ाने पर धीरे २ दो आघातों के बीच के समय का ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार सुर उत्पन्न होता है।

व्याख्याता ने एक चक्र के आगे एक देवदारु की लकड़ी के सन्दूक को क़ागज़ का टुकड़ा चिपका रखा था। (चित्र० १) काग़ज़ का जितना भाग चिपका हुआ नहीं था, उससे, चक्र के फिराने पर, चक्र के आरे टकराते थे। जब चक्र धीरे २ चलाया गया, तब कटकट शब्द सुनाई दिये। पर, जब वह जोर से घुमाया गया, तब उसमें से अधिकाधिक चढ़ते सुर निकलने लगे। एक सुर कायम हो जाने पर और सितार के सुर को सुनकर व्याख्याता के पास ही के एक श्रोता बोल उठे," वाह! अब षड्ज हो गया।" चक्र के पास के काग़ज़ से आरे कितनी बार टकराते थे; यह बतलाने के लिये काँटे घूम रहे थे। उसे देखकर व्याख्याता बोले, " यह सुर प्रति सेकंड २४० आन्दोलनों से उत्पन्न हुआ है। पर, इसका अर्थ कुछ देर के अनन्तर कहूंगा। अब मैं एक और प्रयोग बतलाता हूं, जिससे आपको मालूम होगा कि ध्वनि कंपमूलक होती है।" एक लकड़ी की बैठक पर काँच की हँडिया रखी गई और उसके पास ही उसके किनारे से भिड़ाकर एक छोटी लकड़ी का गोला लटकाया गया। हँडिया को, एक हथियार से, धीरे से आघात पहुँचाते ही वह गोला आगे को बढ़ा और पुनः अपने स्थान पर आ गया। पानी से भरे हुए बर्तन को आघात पहुँचाने से भी उसमें के पानी में छोटी लहरें उत्पन्न होती हैं। (चि० नं० २)

ध्वनि की लहरें उत्पन्न होती हैं और वे अन्तरिक्ष में फैलकर कर्णरन्ध्रों तक पहुँचती हैं। तब कान के परदे में कंप उत्पन्न होता है, जिससे ध्वनि सुन पड़ती है। फिर व्याख्याता ने कहा कि निर्वात प्रदेश में ध्वनि उत्पन्न नहीं होती और एक प्रयोग बतलाया। एक वाताकर्षक यंत्र पर एक काँच की हँडिया रखी थी। उसीमें एक विद्युत् घंटा भी रखी थी। विद्युद्युक्त तार के सिरे परस्पर मिलने पर विद्युत्घंटा बजने लगी और वह सब को सुनाई दी। फिर वाताकर्षक यंत्र पर की हँडिया में की हवा निकाल कर घंटी बजाई गई। पर, घंटी का आवाज़ नहीं सुनाई दिया (चि० नं० ३)। तब श्रोतागण सानंदाश्चर्य से तालियाँ पीटने लगे।

व्याख्याता बोले, हम घी, शक्कर और आटे को अलग २ भी खा सकते हैं। पर, जब तक हम विशिष्ट प्रकार से उनको इकट्ठा कर कोई पकवान नहीं बनाते, तब तक हमें उसका योग्य जायका नहीं मालूम हो सकता। उसी प्रकार भिन्न २ कंपसंख्या के विशिष्ट स्वरों का मिश्रण अत्यन्त मधुर होता है। जिस प्रकार पकवान के-घी, शक्कर और आटा ये-तीन मूल पदार्थ हैं अथवा लाल, नीला और पीला ये तीन मूल रंग हैं, उसी प्रकार मुख्य सुर सात हैं।

एक गवैये ने सात सुर गा सुनाये:—

सा	सा
नी	नी
ध	ध
प	प
म	म
ग	ग
रीं	रीं
सा	सा

एक लड़के ने ये सातों सुर सितार के द्वारा सुनाये। एक और लड़के ने धनुष्याकृति में काँच के प्याले रखकर और उनमें से हर में कुछ प्रमाण से पानी डालकर सातों सुर सुनाये।

व्याख्याता ने सांकेतिक शब्दों से अपनी इच्छा प्रकट करते ही सभी मनुष्य सप्तसुरों में एकदम एक ही रीति से अपने २ बाजों के द्वारा सातों सुरों के चढ़ाव-उतार गाने लगे। श्रोताओं में से जो संगीत-विद्या से बिलकुल अनभिज्ञ थे, उनके मुखमंडल पर भी आनन्द की छटा देख पड़ी।

व्याख्याता बोले "इन सात सुरों को सप्तक कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है, कि प्राचीन ऋषियों ने अपनी कल्पना के अनुसार प्रत्येक सुर का वाहन निश्चित कर उन सुरों के नाम रखे हैं यथाः—

षड्ज—सा	वाहन	मोर
ऋषभ—री	,,	चातक
गान्धार—ग	,,	बकरी
मध्यम—म	,,	बगुला
पंचम—प	,,	कोकिल
धैवत—ध	,,	मेंढ़क
निषाद—नि	,,	हाथी

वास्तव में देखा जाय तो किसी भी सुर में कोई भी प्रकार गाया जा सकता है। सुरों का इन अक्षरों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो संगीतकला का एक संकेत मात्र है।

ये सुर उच्च, मध्यम और नीच ऐसे तीन सुरों में गाये जाते हैं। इन्हें तार, मध्यम और मंद्र भी कहते हैं। इन सप्तसुरों में से सा और प के अतिरिक्त शेष सुरों से, विकार के द्वारा, और भी सुर निकाले जाते हैं।

यह देखो, यहाँ पर देवद्वार की लकड़ी की एक लम्बी सन्दूक है। इसके एक सिरे पर एक खूंटी गाड़ दी गई है और दूसरे सिरे पर चक्रयुक्त खूंटी है। पहली खूंटी को फौलाद के तार का एक सिरा लपेट कर, उसे चक्रयुक्त खूंटी पर से घुमाकर, उसके दूसरे सिरे पर बोझा लटका देता हूं। अब सन्दुक पर के तार के नीचे लकड़ी के दो टुकड़े रखता हूं। तार पर अब कम बोझा है, अतः उसे ऊँगली से तानते ही आवाज़ होता है। तार के आन्दोलन के कारण उस से जो सुर निकलता है, वह मंद्र सप्तक में का है। पर, अब बोझा बढ़ा देने पर सुर अधिक ऊँचा और मधुर सुनाई देने लगेगा।

जो मनुष्य गाते समय जिस किसी सुर को सरलता से गा सकता हो, वह उसका षड्ज अर्थात् सा है। इस सुर के ऊपर अथवा नीचे वह मनुष्य अपना सुर ऊँचा चढा भी सकता है अथवा नीचे उतार भी सकता है।

तार में से निकलनेवाला सुर, उसकी लम्बाई और बोझे पर अवलंबित रहता है। सितार, तम्बूरा इत्यादि बाजों के तार खूंटी पर तान दिये जाते हैं। इससे उन्हें बोझा लटकाने की आवश्यकता नहीं होती। इस सन्दूक पर मैं यह दूसरी एक और तार इन दो खूंटियों पर तान रखता हूं। देखो, वे धीरे २ तन रही हैं, जिससे इस तार का सुर पहले तार के सदृश होता जाता है। अब देखो, दोनों तारों में से एक से स्वर निकल रहे हैं। एक और आश्चर्य की बात यह है, कि एक ही सुर के दो तारों में से एक के बजाने पर दूसरा भी अपने आप ही बजने लगता है। इसका तुम एक बार अवश्य ही अनुभव लो।

व्याख्याता महाशय ने कहा कि यदि कोई कहे कि एक ही सन्दूक पर दोनों तार लगे रहने से एक के बजाने पर दूसरा कैसे न

उठती है ! यह देखो यहाँ दो तम्बूरे रखे हुए हैं। उनके सुर भी एक ही से हैं। अब मैं एक की तार को बजाता हूं। अब देखना, दूसरे तम्बूरे का सुर कदाचित बहुत से मनुष्यों को सुनाई नहीं देगा। पर, यदि यह बजते समय कंप पाने लगेगा, तो उस पर रखे हुए काग़ज़ के बारीक टुकड़े भी कंप पाकर उड़ जावेंगे।

व्याख्याता ने पहले तम्बूरे की तार छेड़ते ही दूसरे तम्बूरे की, उसी तरह की, तार पर रखे हुए काग़ज़ के टुकड़े उड़ गये।

इन सात सुरों में से सब अथवा कुछ सुरों की कर्णमधुर रचना करने से भिन्न २ राग-रागिनियाँ बनती हैं।

जिस राग में सातों सुरों का संग्रह किया जाता है, वह 'संपूर्ण' और जिसमें कुछ सुर काम में लाये जाते हैं, वह "आड़व" जाति का राग कहलाता है।

जिस प्रकार लाल रंग की वस्तु के साथ पीले रंग का पदार्थ शोभा देता है, पर काला शोभा नहीं देता अथवा हरे के साथ नारंगिया शोभा देता है, पर नीला शोभा नहीं देता; उसी प्रकार कुछ सुरों के संयोग में अन्य संयोग की अपेक्षा अधिक कर्णमाधुर्य होता है। सा, ग और प इन सुरों का सुरमधुरिमा बड़ी बहार का होता है।

माल-श्री राग में भी यही तीन सुर होते हैं।

तब एक गवैये ने गीतगोविंद में का निम्न मालश्री-राग गा सुनाया--

"राधिके मखि राधिके सीदति राधा वासगृहे।"

रसिक संगीताचार्य ने ग्रीष्म-शरदादि छः ऋतुओं के अनुसार मुख्य छः राग बनाये हैं। उनके नाम भैरव, मालकोश, हिंडोल इ० हैं। इन रागों की स्त्रियों को रागिणी कहते हैं। ये उदा, लालता, बेलावली इ० ३० हैं। जिस सुर-रचना में मनोरंजन होता है, वही राग है। सुरों के संयोग-वियोग से नाना प्रकार के विस्तार करने पर अनेक राग उत्पन्न हो सकते हैं। पर, उनमें से जिस सुर-रचना से आनंद होगा, उसे ही राग कह सकेंगे।

गायन वादन से न केवल स्वतः का ही मनोरंजन होता है, वरन अपने साथियों को भी रिझाकर उन्हें शान्तिसुख का लाभ करा सकता है।

यह देखो, लकड़ी के इन दो टुकड़ों के बीच के तार की लम्बाई ९० जौ है और इसमें से सा सुर निकलता है। अब मैं लकड़ी का दूसरा आधार ले लेता हूं। अब उन दो आधारों में ४५ जौ का अन्तर है। यदि अब यह तार छेड़ी जायगी तो तारसप्तक का अर्थात् ऊपर के सप्तक का सा सुर छिड़ेगा। यदि तांबे के आठ तार एकाध सन्दूक पर तान दिये जायँगे तो सप्तक के सुर छिड़ने के लिये उनकी लम्बाइयाँ निम्न प्रमाण से होनी चाहिये—

सा	री	ग	म	प	ध	नि	सा
१८०,	१६०,	१४४,	१३५,	१२०,	१०४,	९०,	९०
अथवा १							

अर्थात् यदि सा उत्पन्न करनेवाले तार की लम्बाई १८० जौ होगी तो १४४ जौ लम्बे तार में से गान्धार उत्पन्न होगा।

इस प्रकार एकाध तनी हुई तार के छेड़ने पर उसके कंप की संख्या कम होकर उसमें से निकले हुए प्रथम सुर के भी भिन्न २ सप्तक होते हैं।

किसी भी सप्तक में के सा और ऊपर के अथवा नीचे के सप्तक में के सा में जितना अन्तर होता है, पहले के गायनाचार्य उतने अन्तर के २२ भाग करते थे। प्रत्येक भाग को वे श्रुति कहते थे। इतने अन्तर में कानों से पहचानने जैसे २३ सुर हैं। पर श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना इत्यादि संगीत विषय सर्व साधारण लोग नहीं समझ सकते। यद्यपि इस शास्त्र की सभी अवहेलना करते हैं, तथापि आप जैसे विद्वानों को इस शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है, जिससे उसे अवश्य ही उर्जितावस्था प्राप्त होगी। अब कुछ राग और रागिनियाँ गाई जायँगी, उन्हें आप ध्यान लगाकर सुनिये।

व्याख्याता महाशय ने अपना व्याख्यान बन्द किया। तालियों का आवाज़ होने लगा। गाने और बजानेवाली मंडली महफिल की तैयारियाँ करने लगीं। भिन्न२ वाद्यों के द्वारा पहले जो असंगत सुर निकला करते थे; वे अन्तमें सुसंगत होकर उनकी सुरमधुरिमा के कारण श्रोतृवर्ग धीरे २ आनन्दित होने लगा। गाने का आरम्भ होनेवाला ही था, इतने में नाटकगृह का विद्युत्यंत्र बिगड़ जाने से सारे विद्युद्दीप बुझ गये। सारा नाटकगृह अंधकारमय हो गया।

कुछ देर के बाद रास्ते में दो आदमी दीपक के पास खड़े २ आपस में कुछ बातचीत कर रहे थे। उनमें से एक बोलाः—

"अब रात बहुत हो गई है। लगभग १० बजने आये हैं। चन्द्र भी चढ़ आया है। क्या कल हमारे यहाँ आओगे ?"

"हाँ, अवश्य ही आऊंगा। ताश और चौसर में क्या धरा है। मैं उस श्रीराग पर अत्यन्त मोहित हो गया हूं। मेरी समझ से तो गायन-वादन भी मोहनास्त्र ही है। नीनी सासा रीरी गग मम"।

"अरे वाह ! यह तो 'काफी' राग हुआ !"

श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमदनंताचार्य मठ, श्रीकांचीपुरी।

श्रीआचार्य का नागपुर में स्वागत।

शुक्रवार तालाब, नागपुर।

तालाब का पूर्वीय दृश्य।

रणतः यही मतलब निकलता था, कि ॐकार प्रणव नाम है, ब्रह्म का अधिष्ठान है और आद्य सगुण साकार स्वरूप है। शब्द-ध्वनि महाशक्ति है, अतः सृष्टि के आरम्भ में वह ब्रह्मदेव से उत्पन्न हुई। इसीसे जगत शब्द से आकर्षित हो जाता है।

तदुपरांत व्याख्याता ने निम्न विषय सप्रयोग स्पष्ट कर बतलाया।

ध्वनि एक आन्दोलनात्मक चमत्कार है। यदि पानी से भरी हुई एक बड़ी थाली के बीचोबीच एक कंकर डाल दिया जाय तो थाली के मध्यबिन्दु पर होनेवाले आघात से थाली के किनारे से लहरें टकरायेंगी। आघात-स्थल पर पानी दाबा जाता है, इसलिये उस बिन्दु के आसपास के 'अ' धरातल का पानी अधिक होता है, जिससे 'ब' धरातल का पानी कम हो जाता है। इस प्रकार वह लहर ऊँची उठती और नीची होती हुई किनारे तक पहुँचती है। जिस प्रकार घास की गंजी बनानेवाले मनुष्य, अपनी श्रेणी के एक सिरे से लेकर अन्तिम मनुष्य तक, घास के पूले पहुँचाया करते हैं, उसी प्रकार अ, ब, क इत्यादि पानी के तल क्रम से ऊँचे-नीचे होते जाते हैं। उसीको लहर कहते हैं। पानी अपना स्थान-परिवर्तन नहीं करता। उसका कोई भी एक थर आघात से होनेवाले परिणाम को अपने पर लेकर और उसे अगले थर की ओर ढकेल कर पुनः पूर्वस्थिति पर आ जाता है। इसी प्रकार कहीं भी दो पदार्थों का परस्पर आघात होने से अन्तरिक्ष रूपी महोदधि में लहरें उत्पन्न होकर उनके कर्णेन्द्रियों के परदे तक पहुँचते ही शब्द-ज्ञान होता है। शीघ्रगति से उत्पन्न किये हुए आघातों के कारण एक ही लहर उत्पन्न होती है। आघातों की गति बढ़ाने पर धीरे २ दो आघातों के बीच के समय का ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार सुर उत्पन्न होता है।

व्याख्याता ने एक चक्र के आगे एक देवदारु की लकड़ी के सन्दूक को क़ागज़ का टुकड़ा चिपका रखा था। (चित्र० १) काग़ज़ का जितना भाग चिपका हुआ नहीं था, उससे, चक्र के फिराने पर, चक्र के आरे टकराते थे। जब चक्र धीरे २ चलाया गया, तब फटफट शब्द सुनाई दिये। पर, जब वह जोर से घुमाया गया, तब उसमें से अधिकाधिक चढ़ते सुर निकलने लगे। एक सुर कायम हो जाने पर और सितार के सुर को सुनकर व्याख्याता के पास ही के एक श्रोता बोल उठे, "वाह! अब षड्ज हो गया।" चक्र के पास के काग़ज़ से आरे कितनी बार टकराते थे; यह बतलाने के लिये काँटे घूम रहे थे। उसे देखकर व्याख्याता बोले, "यह सुर प्रति सेकंड २४० आन्दोलनों से उत्पन्न हुआ है। पर, इसका अर्थ कुछ देर के अनन्तर कहूंगा। अब मैं एक और प्रयोग बतलाता हूं, जिसमें आपको मालूम होगा कि ध्वनि कंपमूलक होती है।" एक लकड़ी की बैठक पर काँच की हँडिया रखी गई और उसके पास ही उसके किनारे से भिड़ाकर एक छोटी लकड़ी का गोला लटकाया गया। हँडिया को, एक हथियार से, धीरे से आघात पहुँचाते ही वह गोला आगे को बढ़ा और पुनः अपने स्थान पर आ गया। पानी से भरे हुए बर्तन को आघात पहुँचाने से भी उसमें के पानी में छोटी लहरें उत्पन्न होती हैं। (चि० नं० २)

ध्वनि की लहरें उत्पन्न होती हैं और ये अन्तरिक्ष में फैलकर कर्णरन्ध्रों तक पहुँचती हैं। तब कान के परदे में कंप उत्पन्न होता है, जिससे ध्वनि सुन पड़ती है। फिर व्याख्याता ने कहा कि निर्वात प्रदेश में ध्वनि उत्पन्न नहीं होती और एक प्रयोग

एक गवैये ने सात सुर गा सुनायेः—

सा सा
नी नी
ध ध
प प
म म
ग ग
री री
सा सा

एक लड़के ने ये सातों सुर सितार के द्वारा सुनाये। एक और लड़के ने धनुष्याकृति में काँच के प्याले रखकर और उनमें से हर एक में कुछ प्रमाण से पानी डालकर सातों सुर सुनाये।

व्याख्याता ने सांकेतिक शब्दों से अपनी इच्छा प्रकट करते ही सभी मनुष्य सप्तसुरों में एकदम एक ही रीति से अपने २ वाद्यों के द्वारा सातों सुरों के चढ़ाव-उतार गाने लगे। श्रोताओं में से जो संगीत-विद्या से बिलकुल अनभिज्ञ थे, उनके मुखमंडल पर भी आनन्द की छटा देख पड़ी।

व्याख्याता बोले "इन सात सुरों को सप्तक कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है, कि प्राचीन ऋषियों ने अपनी कल्पना के अनुसार प्रत्येक सुर का वाहन निश्चित कर उन सुरों के नाम रखे। यथाः—

षड्ज—सा	वाहन	मोर
ऋषभ—री	"	चातक
गान्धार—ग	"	बकरी
मध्यम—म	"	बगुला
पंचम—प	"	कोकिल
धैवत—ध	"	मेंडक
निषाद—नि	"	हाथी

वास्तव में देखा जाय तो किसी भी सुर में कोई भी [illegible] गाया जा सकता है। सुरों का इन अक्षरों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो संगीतकला का एक संकेत मात्र है।

ये सुर उच्च, मध्यम और नीच ऐसे तीन सुरों में गाये जाते हैं। इन्हें तार, मध्यम और मंद्र भी कहते हैं। इन सप्तसुरों में से [illegible] और प के अतिरिक्त शेष सुरों से, विकार के द्वारा, और भी सुर निकाले जाते हैं।

यह देखो, यहाँ पर देवदार की लकड़ी की एक लम्बी सन्दूक है। इसके एक सिरे पर एक खूंटी गाड़ दी गई है और दूसरे सिरे पर चक्रयुक्त खूंटी है। पहली खूंटी को फौलाद के तार का [illegible] सिरा लपेट कर, उसे चक्रयुक्त खूंटी पर से घुमाकर, उसके दूसरे सिरे पर बोझा लटका देता हूं। अब सन्दूक पर के तार के नीचे लकड़ी के दो टुकड़े रखता हूं। तार पर अब कम बोझा है; इसे ऊँगली से तानते ही आवाज़ होता है। तार के आन्दोलन के कारण उस से जो सुर निकलता है, वह मंद्र सप्तक में का है। पर अब बोझा बढ़ा देने पर सुर अधिक ऊँचा और मधुर सुनाई देने लगेगा।

जो मनुष्य गाते समय जिस किसी सुर को [illegible] सकता हो, वह उसका षड्ज अर्थात् सा है। इस सुर के ऊपर [illegible] नीचे वह मनुष्य अपना सुर ऊँचा चढ़ा भी सकता है

क्रोड़पत्र, हिन्दी चित्रमय जगत्, सितम्बर १९१६ ।

युद्धीय चित्र ।

भारतीय अश्वारोही चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं ।

भारतीय अश्वारोही 'आला शहर में फिर रहे हैं ।

वर्डून की रक्षा।

पेरिस की तरह वर्डून की रक्षा मोटरों ही ने की। सन १९१४ के मार्न के युद्ध में, जर्मन सेनापति फॉन क्लक की सेना पर, जब पेरिस की ६० हज़ार सेना ने अकस्मात् ससामग्रीक, मोटरों के द्वारा, चढ़ाई की और युद्ध का स्वरूप एकदम पलटा दिया, तभी से इस नये वाहन का महत्व जगत को मालूम हो गया और वही महत्व वर्डून की घटना से निर्विवाद सिद्ध हो गया।

वर्डून के पीछे की ओर, मोटरों के द्वारा, फ्रेंच-सेना पहुंचाई जा रही है।

मोटरों का असामान्य महत्व बतलाने के लिये उनका कुछ पिछला हाल भी कहना आवश्यक है। वर्डून पर होनेवाला भीषण सामना सैनिक दृष्टि से इतना अधिक महत्व का नहीं है, जितना राजनैतिक दृष्टि से महत्व का है। वर्डून में ही शार्लेमेन नाम के जर्मन बादशाह के राज के हिस्से किये गए थे; अत ऐतिहासिक दृष्टि से इस शहर का अधिक महत्व है। शहर का कोट अभेद्य कहलाता है; अतः जर्मनों का ख़याल था कि उसके हस्तगत कर लेने से अपनी सेना का उत्साह बढ़ेगा और फ्रेंच सेना का नाश हो जायगा।

मोटरों की सहायता से फ्रेंच-सेना एक ग्राम तक पहुँच गई।

कहा जाता है, कि जनरल जाफ्रे वर्डून की रक्षा के लिये अधिक मनुष्यों की प्राण-हानि नहीं कराना चाहते थे। जब लीगा, नामूर जैसे मज़बूत किले भी आधुनिक तोपों के मार के आगे नहीं टिक सके, तब वर्डून के कोट की मज़बूती पर भी विश्वास रखना योग्य नहीं समझा गया। इसके अतिरिक्त वर्डून की रचना ही ऐसी की गई है कि उस पर सामने से तोपों का मारा नहीं किया जा सकता; वरन दोनों तरफ से मारा किया जा सकता है। और, यहाँ तक, रेलमार्ग के न होने से सेना तो सैनिक तथा सामग्री का अतयन्त कठिन है। जब सन १९१४ के सितम्बर मास में जर्मनों ने सेंट मिचेल को ले लिया, तब उन्होंने वर्डून तक सामग्री पहुँचानेवाले पेरिस-नान्सी के रेलमार्ग के नष्ट कर डाला। मार्न से पिछड़ती बार उन्होंने उस मार्ग को तोपों के मार के घेरे में ले लेने से तो वह बिलकुल ही निरुपयोगी हो गया। सारांश, वर्डून की रक्षा करने की उलझन में पड़ रहने से अधिक मनुष्यहानि होगी; इस विचार से ज. जाफ्रे ने उस किले को तज देने की आज्ञा दे दी थी। पर, फिर वर्डून के न त्यागने का निश्चय किया गया। इसलिये पहले वर्डून से बालेंडक तक का मार्ग, मोटरें चलाने के लिये, चौड़ा और साफ किया गया। मोटर के बिगड़ जाने पर उसे मार्ग ही में एक तरफ खड़ी करने के लिये स्थान स्थान पर घुमावदार रास्ते किये गये और राह के गाँवों में मोटरें दुरुस्त करनेवाले कारखाने स्थापित किये गये। सारांश; मनुष्य, बारूद-गोले, अन्न सामग्री, तोपें वग़ैरह सामग्री लाने-ले जाने के लिये हज़ारों मोटरें के चलाने की व्यवस्था की गई।

ट्रकों के द्वारा सैनिक सामग्री खन्दकों तक पहुँचाई जा रही है।

इस समय वर्डून के पीछे की ओर, ५० मील के बनाये हुए नये मार्ग पर, दिन-रात मोटरें दौड़ती रहती हैं। उन के बचाव का ऐसा सुप्रबन्ध किया गया है, कि किसी भी गाड़ी को रुकना नहीं पड़ता। प्रत्येक मोटर के द्वारा भरपूर माल नियत स्थान पर पहुँचाया जाता है और वहाँ से घोड़े के ताँगों में से खन्दकों तक पहुँचाया जाता है। यह काम अत्यन्त व्यवस्थित रीति से किया गया; अतः ज. जाफ्रे ने उस कार्य के करनेवालों की बड़ी प्रशंसा की।

क्रोड़पत्र, हिन्दी चित्रमय जगत्, सितम्बर १९१६।

युद्धीय चित्र।

भारतीय अश्वारोही चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं।

[illegible] हैं।
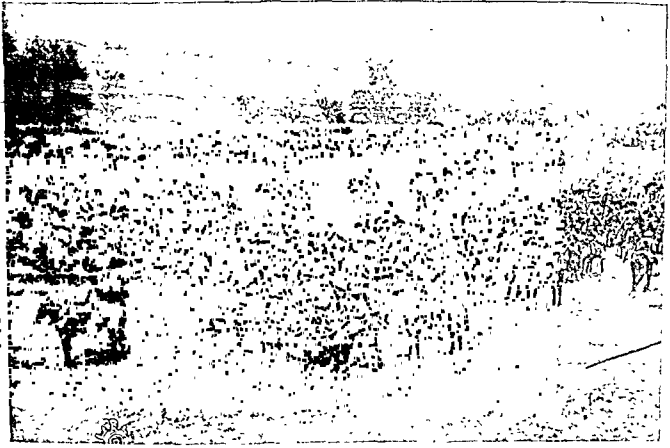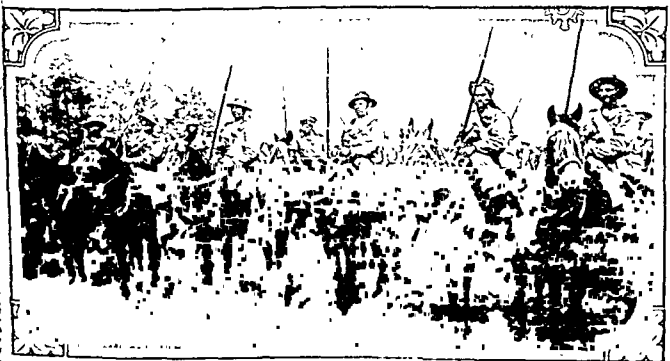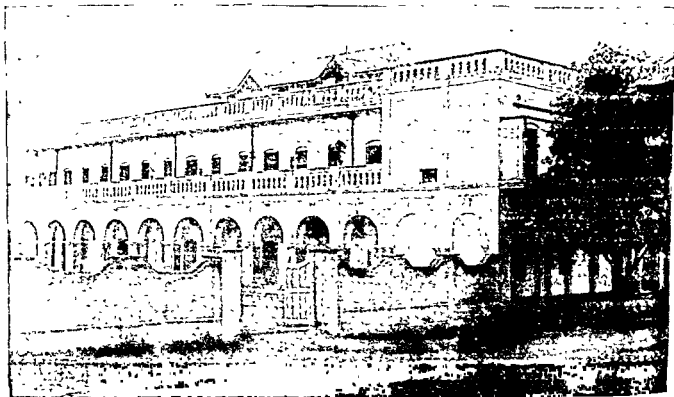
मारवाड़ी विद्यार्थी गृह, वर्धा ।
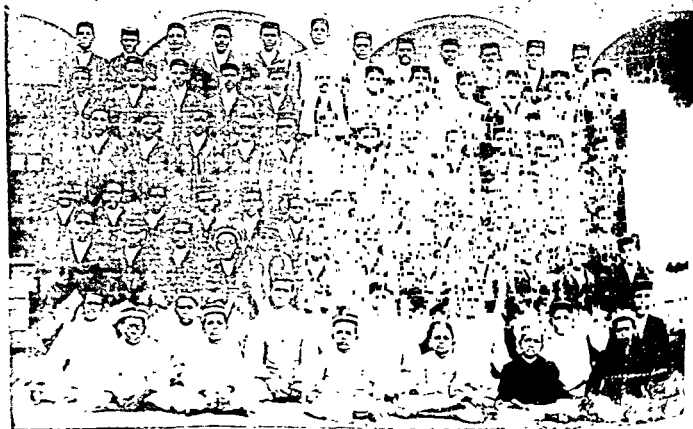
विद्यार्थी गण ।
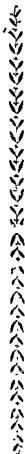
श्रीगणपति का जलूस, पूना।

श्रीमान् साँगली-नरेश बेलगाँव में रखे हुए घायल सिपाहियों को देखने जा रहे हैं।

राष्ट्रभाषा।

लेखकः—श्रीयुत विष्णुप्रसाद शुक्ल।
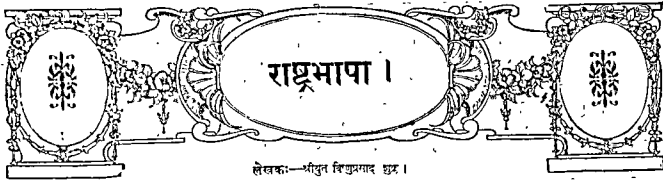
देश भर में एकता और एक से विचार होने के लिये किसी खास भाषा की जरूरत होती है, जिसे राष्ट्र भाषा कहते हैं। जिस देश में एकसी भाषा नहीं, जहाँ के विचार एक दूसरे से मिलते-जुलते नहीं, जहाँ देशभाइयों से सम्भाषण करते समय गूंगा-बहिरा होना पड़ता है, उस देश के कल्याण का मार्ग कितना दुर्गम होगा, यह प्रत्यक्ष है।

यूरोप महाद्वीप के प्रत्येक देश में एक ही सी भाषा, शहर क्या खेड़ों तथा जंगलों के निवासियों तक में, पाई जाती है। पर, भरत खंड में, जो भूगोलिक हिसाब से देश कहा जाता है, भिन्न भिन्न जातियाँ हैं, नानाप्रकार के धर्म हैं और तरह तरह की भाषाएँ हैं। पोशाक एक दूसरों से इतने विरुद्ध हैं कि यदि सब प्रान्तवाले अपनी अपनी पोशाक पहिन कर किसी स्थान में एकत्रित हो जाँय, तो कोई भी विदेशी दर्शक इन्हें भिन्न भिन्न देश के निवासी समझे बिना न रहेगा। यदि सच पूछा जाय तो भरतखंड एक महाद्वीप है। इस हिसाब से केवल भारतवर्ष ही महाद्वीप नहीं कहला सकता; वरन इसके कई एक प्रदेश भी ऐसे हैं, जिन्हें यदि महाद्वीप कहें तो अनुचित न होगा। इस दशा में भारत-संतान का अपने भाइयों को पहिचान कर उनके साथ सहानुभूति दरसाना, उनसे सम्भाषण करना, उनके विचार जान सकना और आपस में प्रीति का संचार करना असाध्य दीखता है।

कहा जा चुका है कि देश भर में एकता का संचार करने के लिये किसी खास राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है। इस पर यह प्रश्न उठता है, कि हिंदुस्थान में राष्ट्रभाषा होने के लिये कौनसी भाषा सुगम होगी, जिसके बनाने में थोड़ा समय लगेगा? राष्ट्रभाषा वही भाषा बनाई जा सकती है, जिसे सर्व साधारण अनायास ही सीख सकें, लिख सकें और हिमालय की तराई से लेकर कन्याकुमारी तक यदि बोली जाय तो समझी जा सके। यदि राष्ट्र-भाषा बनाने के लिये संस्कृत, जो भरतखंड में कई हज़ारों वर्ष से चली आती है, रखी जाय तो वह इतनी क्लिष्ट होगी कि शहर के इने-गिने लोगों को छोड़-वह भी कठिनता से-सर्व साधारण में उसके प्रचलित होने के लिये बहुत वर्ष लगेंगे। इसके सिवा संस्कृत इतनी क्लिष्ट भाषा है, कि वह सहज रीति से सीखी नहीं जा सकती। संस्कृत अब अपनी मातृभाषा नहीं है। वह अब केवल धर्म पुस्तक की भाषा है।

यदि मराठी, गुजराती और बंगाली में से किसी एक को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रयत्न किया जायगा तो भी वही कठिनाई झेलनी पड़ेगी। क्योंकि, ये भाषा इतनी सरल और दूसरे प्रान्तों की भाषा से मिलती-जुलती नहीं हैं, जो असाधारण परिश्रम किये बिना सीख ली जावें। इस तरह इन भाषाओं के सीखनेवालों को अधिक समय अवश्य ही लगाना पड़ेगा।

तो फिर उर्दू भाषा ही राष्ट्रभाषा बनाई जावे। क्योंकि, यह बहुत समय तक भारतवर्ष में राजभाषा रह चुकी है। ऐसा करने में भी वही अड़चन आवेगी, जैसी अंग्रेज़ी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने में होगी। इसके सिवा भरतखंड की दूसरी पुरानी भाषाओं को, जो प्राचीन काल से चली आ रही हैं, मान न देकर एक दूसरी जगह से आई हुई भाषा को मान देना ठीक नहीं। उर्दू भाषा के लिखने और पढ़ने की शैली इतनी बुरी है कि शायद ही दुनिया की किसी भाषा में ऐसी कुरीति हो। जो भाषा गला घोंटनेवाली फारसी भाषा की बेटी है, उसे आदर देकर अपने घर की पाली हुई भाषाओं की ओर निगाह न उठाना सचमुच अन्याय है।

हिंदुस्थान हिन्दुओं का घर है। यहाँ पर हिन्दु लोग सदा से रहते आये हैं। इसलिये इनकी राष्ट्रभाषा हिन्दी ही क्यों न होनी चाहिये? यह भाषा इतनी सरल है, कि यदि कोई बंगाली, महा-राष्ट्रीय, गुजराती या मद्रासी भाई किसी हिन्दी बोलनेवाले की ही कुछ दिन संगति करे तो अनायास हिन्दी बोलना और लिखना सीख सकता है। बहुधा यह देखने में आया है, कि भिन्न भिन्न भाषा-भाषी जिन्होंने कभी हिन्दी बोली नहीं सुनी थी, अल्पकाल ही में अच्छी हिन्दी बोलने लग गये और उन्हें शुद्ध लिखने की भी आदत पड़ गई। अतः यदि यह भाषा इनके बालकों को पढ़ाई जाय तो वे इतनी आसानी से पढ़-लिख सकेंगे, जितनी उनको अपनी मातृ-भाषा के सीखने में सरलता पड़ती है।

तैलंगू, तैमिल, कनाड़ी आदि भाषाएँ भी अपनी क्लिष्टता के लिये प्रसिद्ध हैं। ये भाषाएँ, बिना मातृभाषा हुए, पूर्ण रूप से नहीं सीखी जा सकतीं। इनके उच्चारण करने में बड़ी कठिनता होती है। इन भाषाओं की लेख शैली भी बड़ी विचित्र है, जो आसानी से नहीं सीखी जा सकती।

देवनागरी लिपि का प्रचार प्रायः हिन्दुस्थान भर में है। मराठी लिपि देवनागरी है। गुजराती लिपि और देवनागरी लिपि में विशेष अंतर नहीं। बँगला भी देवनागरी लिपि से बहुत कुछ समानता रखती है। इस तरह भारत की प्रायः मुख्य मुख्य भाषाओं की लिपि देवनागरी लिपि से, जो हिन्दी भाषा की लिपी है, मिलती-जुलती है। यही बात भाषा की। यह भी सीधी और सरल है। बहुतेरे बंगाली, महाराष्ट्रीय, गुजराती और मद्रासी भाइयों को, जिनको थोड़े काल तक हिन्दी बोले जाने वाले प्रांतों में रहने का अवसर मिला है, साफ़ और शुद्ध हिन्दी बोलते पायेंगे; पर किसी बंगाली भाई को गुजरात में रह कर, महाराष्ट्र को बंगाल में रह कर, गुजराती को मद्रास में रह कर या मद्रासी को पंजाब में रहकर इतनी जल्दी गुजराती, बंगाली, तेलगू और उर्दू बोलते हुए नहीं पायेंगे, जितनी जल्दी ये लोग हिन्दी बोले जाने वाले प्रान्त में रहकर हिन्दी बोल और लिख सकेंगे। इससे प्रतीत होता है कि भरतखंड में जितनी भाषाएँ हैं, उन सभी से हिन्दी सरल है। और जो सरल है, वही कम समय और थोड़े परिश्रम से राष्ट्रभाषा बनाई जा सकती है।

हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिये अधिक समय की जरूरत नहीं। अन्य प्रान्तों में जितने पढ़े-लिखे जन समुदाय हैं, उन्हें यदि अल्प परिश्रम से हिन्दी सीखने की पुस्तकें अच्छी पद्धति से बनाई जावें, तो हिन्दी आ सकती है। अभी से प्रत्येक प्रांत के प्राय-मरी स्कूलों में हिन्दी "आवश्यक विषयों" में रखी जाय तो ये अपनी मातृभाषा के साथ ही साथ हिन्दी भी सीख सकते हैं। माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा पाने वालों के लिये भी "हिन्दीभाषा" अवश्य रखी जाय।

बहुतेरे यह समझते हैं कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने से भारतवर्ष की दूसरी भाषाओं को कुछ न कुछ अवश्य धक्का पहुँचेगा। पर, यह उनकी भूल है। क्योंकि, तब भी सब भाषाएँ अपने अपने स्थान में उसी प्रकार शोभायमान रहेंगी, जैसे अभी हैं। और, उनका भंडार अभी की तरह बढ़ता ही रहेगा। राष्ट्रभाषा से यह मतलब नहीं है, कि प्रांतीय भाषा बिलकुल मिट जाय, उसमें कोई पुस्तक न लिखी जावे अथवा कोई पत्र उस भाषा में न निकले।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भाषा भाषी विद्वान हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं तथा कई स्थानों में, हिन्दी उनकी मातृभाषा न होते हुए भी, उन्होंने हिन्दी भाषा में वक्तृता दी है।

हिन्दी भाषा के शुभ चिन्तकों को यह नहीं समझना चाहिये कि हिन्दी अभी राष्ट्रभाषा बनने योग्य नहीं हुई है। यद्यपि वह पूर्णरूप से राष्ट्रभाषा नहीं हुई है तौ भी काम चलाने लायक अवश्य हो गई है। दिन बदिन हिन्दी पुस्तकों की संख्या बढ़ती जाती है; नये नये समाचार पत्र और मासिक पत्र भिन्न भिन्न प्रांत से निकलते आते हैं; नित नये नये कवि भारत के हिन्दी पत्रों में दिखाई देते हैं और प्रायः बहुतेरी मासिक पत्रिकाएं आ॰ दस कविता से सुसज्जित रहा करती हैं। यदि इन "अत्र कुश॰ यथौत सम" की फंख्या कम कर दी जाय तो मासिक पत्रों का गौर॰ घटेगी नहीं वरन चुनी हुई अच्छी कविताओं के रहने से उनकी मान्यता बढ़ेगी। हां, यदि ये कवि लेखक समुदाय में परिणत कर दि॰ जाँय तो बहुत अच्छा कार्य करेंगे। जिस कविता में भाव नहीं, उससे लेख कई दर्जे अच्छे कहे जा सकते हैं। आशा है, हिन्दी को राष्ट्र॰ भाषा बनाने के प्रेमी हिन्दी-भाषी विद्वान् इस बात को ओर ध्यान देंगे।

टेसू का आत्मकथन ।

कहते मुझ को टेसूराज ।
सभी देख लो मेरे साज ॥
यदि मैं चढ़ जाता इक बार ।
करता बिलकुल बंटा ढार ॥ १ ॥

× × ×

फैला हुआ 'महातम' मेरा ।
पूजन अर्चन करते मेरा ॥
'जिज्ञासु' भी कहते लोग ।
'संस्था' पर सब मेरे भोग ॥ २ ॥
'गुडम' का हूं मैं अवतार ।
चाहे कोई हो तैयार ॥
उससे लड़कर कर दूं चीत ।
मैं हूं बड़ा रखो परतीत ॥ ३ ॥

× × ×

'दैनिक' 'साप्ताहिक' का मालिक ।
मैं कहलाता हूं प्रामाणिक ॥
भूंस भूंस कर काटूं सब को ।
खुद के सिवा न मानूं किसको ॥ ४ ॥
कहो सुधारक या उद्धारक ।
अर्थोडाक्स कहो या घातक ॥
साथी से भी मोह न रक्खूं ।
नित नय मजा सदा मैं चक्खूं ॥ ५ ॥
'पड़ौस-धर्म' पालना पाप ।
समझूं देता हूं मैं ताप ॥
सब पर सदा चढ़ाई करता ।
घर में सदा निडर हूं रहता ॥ ६ ॥

× × ×

हूं मैं काणा लँगड़ा टूटा ।
कहना मत मुझ को तुम खोटा ॥
मगर कहोगे तो सुन लेना ।
इज़्ज़त अपनी भी खो देना ॥ ७ ॥
'पंजम' को मैं दूत बनाकर ।
लक्ष्मी के सम चंचल होकर ॥
'पुर' में 'माग' करूंगा हलचल ।
पीसूंगा मैं तुम को मलमल ॥ ८ ॥

× × ×

'टक्कर' देना सीखो मुझ से ।
कविता करनी सीखो मुझ से ॥
काव्य न हारोगे तुम मेरे ।
बस समझो सब हैं थिकरे ॥ ९ ॥
विज्ञापन मैं बड़ा लिखूंगा ।
टक्कर देना मैं सीखूंगा ॥
तिसपर भी यदि सफल न हूंगा ।
तेल-तूंबडे नष्ट करूंगा ॥ १० ॥

× × ×

होकर 'सिंह' बनूंगा 'स्यार' ।
काव्य पढूंगा बनके 'यार' ॥
यार बने बिन काव्य न आता ।
शीघ्र जुड़ाओ तुम नव नाता ॥ ११ ॥

× × ×

'धृष्ट समालोचक' मैं बन कर ।
'कलम-कुठार' चलाऊं सब पर ॥
इस पर भी यदि रूठें लोग ।
समझूंगा वह अपने जोग ॥ १२ ॥

× × ×

देखो मेरा सदा 'प्रताप' ।
देता नहीं किसी को ताप ॥
तिस पर भी यदि छेड़ो उस को ।
'गोलमाल' में डाले तुम को ॥ १३ ॥

× × ×

'पटलों' का मैं 'आश्रम' लेता ।
तो भी 'पटली' पर नहीं रहता ॥
आसमान की बातें करता ।
सब को कुछ भी मैं नहीं गिनता ॥ १४ ॥
तुम मत कहो बिहारी भूखे ।
औ वे दिल के हैं सब रूखे ॥
झाड़ तुलसी थल बतलाऊं ।
कोरी कोरी खूब सुनाऊं ॥ १५ ॥

× × ×

टेसू हूं मैं टेसू हूं ।
मन को खूब रिझाता हूं ॥
तुम सब मुझ से जोड़ो नाता ।
मैं किससे भी बैर न करता ॥ १६ ॥
सम्पादकजी जाता मैं अब ।
लेता हूं विश्रान्ती मैं अब ॥
भेजा करो 'पत्र' निज जबसे ।
मुझे 'रिपोर्टर' समझो तब से ॥ १७ ॥

"टेसू"

श्रीमती तापीबाई हर्डीकर, एम. ए. बी. एससी.

उत्कर्षायापि भूतानां संभवान्ति विपत्तयः ।

उक्त उधृत उक्ति एक पुराने संस्कृत कवि की है। और, जब उसकी सत्यता मालूम होती है, तब बड़ा आश्चर्य होता है, तथा संकट उपस्थित करने में भी 'ईश्वर का कोई न कोई अच्छा हेतु होता है' जैसे उद्गार निकल पड़ते हैं। यों तो मनुष्य-जन्म संकट-मय ही है। फलतः उसे अपनी जीवनयात्रा में अनेक संकटों से सामना करना पड़ता है। पर, जब मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है, तब उसे उसके पूर्व-उग्र-स्वरूप का कुछ भी ख़याल नहीं रहता। ऐसे कई उदाहरण लिखे जा सकते हैं, पर हम यहाँ, हाल ही का, श्रीमती तापीबाई का उदाहरण लिखते हैं।

श्रीमती तापीबाई हर्डीकर।

स्त्रीशिक्षा-प्रचार के इच्छुकों को यह सुन कर परमानन्द होगा कि गत मई मास की बम्बई यूनिवर-सिटी की एम० ए० और बी० एससी० की परीक्षाएँ महाराष्ट्र की एक देवी, श्रीमती तापीबाई हर्डी-कर, ने बड़ी सफलता के साथ पास कर ली हैं। बी० एस सी० की परीक्षा में आप द्वितीय श्रेणी में पास हुई हैं। इस अपूर्व सफ-लता पर आप जुलाई मास से फर्ग्यूसन कॉलेज, पूना, में 'दक्षि-णाफेलो' नियत की गई थीं। हमारी समझ में कम से कम बम्बई यूनिवर्सिटी में तो भी एक स्त्री के इस प्रकार से सम्मानित होने का यह पहला ही उदाहरण है। और, श्री तापीबाई को यह सम्मान प्राप्त हुआ, अतः आपका अभिनन्दन करते हैं।

श्रीमती तापीबाई का जन्म सन १८८१ ई० में कोल्हापुर के कागल ग्राम में हुआ। जन्म के समय इन्हें दो भगिनियाँ और तीन भाई थे। जब तापीबाई की अवस्था २२ मास की हुई, तब इनकी माता का परलोकवास हुआ। दो भगिनियाँ विवाहित थीं, अतः वे अपने ससुराल में थीं। दो भाई कोल्हापुर में विद्याध्ययन करते थे और एक भाई कागल ही में पढ़ता था। इनके पिता विनायकराव की साम्पत्तिक दशा अधिक शोचनीय थी। और, उनकी पत्नी का भी देहान्त हो चुका था। अतः उन्हें बालक तापीबाई के पालन की चिन्ता उत्पन्न हुई। वे पहले ही से अस्वस्थ थीं, अतः इनकी देख-भाल रखने के लिये, विनायकरावजी ने, अपने बड़े पुत्र को घर ही पर रख लिया और उसने इनका संगोपन किया। फिर तापीबाई की नानी इनके घर आकर रहने लगीं, जिससे इनका लालन पालन सुख से होता। जब ये छः वर्ष की हुईं, तब इन्हें कागल की कन्यापाठ-शाला में प्रविष्ट कराया। इनकी नानी अत्यन्त वृद्धा—८० वर्ष की—थीं, अतः ये उन्हें गृहकार्य में भी थोड़ी-बहुत सहायता किया करती थीं, जिससे गृहशिक्षा में भी ये धीरे धीरे निपुण हो चलीं। कागल की कन्यापाठशाला में केवल चौथी श्रेणी तक पढ़ाया जाता था; अतः बालिका तापीबाई ने शीघ्र ही वहाँ का अध्ययन पूर्ण कर डाला।

सन १९०१ ई० में श्रीयुत विनायकराव शेवड़े स्वर्गवासी हुए, जबकि तापीबाई की आयु केवल १२ वर्ष की थी। इनके बड़े भाई नील-कंठराव बी० ए० पास होकर कोल्हापुर में नौकर हो गये थे, दूसरे भाई शिवरामपंत पूना के फर्ग्युसन कॉलेज में अध्यापक थे और तीसरे भाई श्रीधरराव उस समय विश्वविद्यालय की शिक्षा संपादन कर रहे थे। तापीबाई की आयु १३ वर्ष की होते ही, सन १९०२ ई० में, इनका विवाह पूना में हुआ। इनके पति श्री नारायणराव हर्डी-कर बम्बई ऑफिस में नौकर थे। शीघ्र ही पूना में प्लेग शुरू हुआ और उसने नारायणराव का बलि लिया! श्री तापीबाई पर वैधव्य-कुठार गिर पड़ी!! हिन्दु स्त्रियों—विशेषतः ब्राह्मण स्त्रियों-पर वैधव्य की तरह दूसरी आपत्ति आना सम्भव ही नहीं है। तिस पर भी स्त्री के तरुण होने पर उसे उस दुःख की कितनी तीव्रता मालूम होती होगी, उसका वर्णन लिखना कठिन है और उसके लिखने की आवश्यकता भी नहीं है। दोनों तरफ़ की—पीहर और ससुराल की—स्थिति अच्छी न होने से तापीबाई को अपना जीवन भारवत् मालूम होने लगा। तो भी जगत की गति की ओर ध्यान देकर वे पुनः कोल्हापुर में, अपने भाई के पास, रहने लगीं। लगभग ६ महिने में इन्हें अपने दुःख की साधारण भूल पड़ी। तब इनके भाई ने इन्हें अपने घर पर ही अंग्रेजी पढ़ाना आरम्भ किया। पर, कार्यबाहुल्यता से घर पर यथावत् शिक्षा नहीं होने लगी। तब श्री शिवरामपंत ने इन्हें प्रो० कर्वे के अनाथबालिकाश्रम में रखने का विचार किया। उस समय वहाँ अनाथ विधवाएँ उक्त आश्रम में मेट्रिक पढ़ती थीं, पर इनके दोनों भाइयों को इन्हें वहाँ मेट्रिक पढ़ाना ठीक न जँचा; अतः कुछ मासिक सहायता पर इन्हें वहीं पर रखना निश्चित किया गया। श्री शिवरामपंत ने इसका व्यय देना स्वीकार किया और वे सन १९०४ के मई मास से अनाथबालिका-श्रम में रहने लगीं। इन्होंने घर पर रहकर अंग्रेजी प्रथम श्रेणी का अध्ययन कर लिया था, अतः वे वहाँ पर दूसरी श्रेणी में प्रविष्ट हुईं। इनकी बुद्धि की कुशाग्रता, [illegible], [illegible] आदि गुणों के कारण वहाँ के शिक्षक इन्हें बहुत ही चाहने लगे। आश्रम की [illegible], [illegible] के द्वारा, [illegible] इस प्रकार की [illegible] के होने से भी बहुत सहायता

पहुँचीं। ये छुट्टी के दिन अपने भाई के पास, कोल्हापुर में, बिताती थीं। सन १९०५ ई० में इनके भाई शिवरामपंत इस्तैफा देकर शिक्षा प्राप्त करने के प्रीत्यर्थ विलायत चले गये। इतने में तीसरे बंधु ने विद्याध्ययन पूर्ण कर नौकरी कर ली और उन्होंने तापीबाई के व्यय का भार अपने पर ले लिया। श्री शिवरामपंत के विलायत से लौट आने तक तापीबाई अंग्रेज़ी की पाँच श्रेणियाँ पढ़ चुकी थीं।

हिंगणे के आश्रम की हवा वसंत में बहुत ही खराब हो जाती है। पहले आश्रम के पास ही गन्ने की खेती हुआ करती थी, जिससे वहाँ मलेरिया का भारी उपद्रव होता था। तापीबाई के स्वास्थ्य पर भी वहाँ की हवा का बुरा परिणाम हुआ। इन्हें अन्नपचन नहीं होने लगा। साथ ही ज्वर की भी पीड़ा होने लगी। इन पर प्रो० कर्वे का बहुत वात्सल्यभाव था, अतः उन्हें इनके स्वास्थ्य की चिन्ता हुई। अब उन्होंने श्री शिवरामपंत को इनके स्वास्थ्य की चिन्ता करने के लिये कहा। इससे कुछ दिनों के लिये इन्हें अपना अध्ययन छोड़ कर, विश्राम लेने के लिये, छः मास तक, अपने भाई के पास सूरत में रहना पड़ा। जब स्वास्थ्य सुधरता चला, तब ये पुनः पूना में आकर न्यू इंग्लिश स्कूल की छठवीं श्रेणी में भर्ती हो गईं। प्रति दिन के नियमित व्यायाम तथा मिताचरण से इनका स्वास्थ्य चंगा हो गया और इन्होंने सन १९०९ ई० में इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर ली। परीक्षा में इनका अच्छा नंबर रहा, जिससे इन्हें स्त्रियों की 'दलधी स्कालर्शिप' मिली और ये फर्ग्युसन कॉलेज में पढ़ने लगीं। उस समय फर्ग्युसन कॉलेज में स्त्रियों से फीस नहीं ली जाती थी, तो भी इनके भ्राता शिवरामपंत ने इन्हें वहाँ पर सेंत मेंत पढ़ाना उचित नहीं समझा। श्रीतापीबाई ने वहाँ पर भी बड़ी सफलता के साथ पी० ई०, इंटरमीजिएट आदि मध्य परीक्षाएँ पास कर सन १९१३ में बी. ए की परीक्षा, द्वितीय श्रेणी में, पास की। अर्थात् अंग्रेज़ी सीखने के आरंभिक दिन से लेकर लगभग साढ़े नौ वर्ष में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास कर ली! क्या यह उदाहरण इन की तीव्र बुद्धि का द्योतक नहीं है? उसके अनन्तर भी इन्होंने अपना अध्ययन बन्द न कर सन १९१४ के नवम्बर मास में पुनः इन्टर बी० एस० सी० की परीक्षा पास की और सन १९१६ के मार्च मास में एम० ए० और बी० एस सी० की परीक्षाएँ पास कर लीं। इन्होंने बी० ए० की परीक्षा के लिये सृष्टिशास्त्र और रसायन शास्त्र तथा एम० ए० की परीक्षा के लिये वनस्पतिशास्त्र ऐच्छिक विषय चुना था।

बहुधा जिन स्त्रियों ने आधुनिक पद्धति से शिक्षा प्राप्त की है, उनके बर्ताव में उच्छृंखलता दिखाई देती है; स्त्रियों के स्वाभाविक अलंकार-विनय-का उनमें अभाव देख पड़ता है, पुरानी रीतियाँ उन्हें बुरी मालूम देती हैं; गृहकार्यों से घृणा होने लगती है, शृंगार-प्रियता बढ़ जाती है; पुरानी स्त्रियों जैसा शील नहीं देख पड़ता; वे उद्दण्ड हो जाती हैं इत्यादि कई आक्षेप आधुनिक सुशिक्षित स्त्रियों पर किये जाते हैं और किसी अंश में इसमें तथ्य भी है। पर, हमें यह कहते आनंद होता है, कि श्रीतापीबाई में अवगुण का नाममात्र भी नहीं है। इनका सादगीपन, स्वभाव, परोपकाररतता और निरहंकार वृत्ति आदर्शणीय है। 'जैसे में मिलाओ वैसी' जैसा इनका स्वभाव है। जब यूनिवर्सिटी का अध्ययन क्रम समाप्त कर ऐसी कई स्त्रियाँ हमारे समाज में पड़ेंगी, तभी स्त्री शिक्षा की आधुनिक पद्धति के दोष अपने आप नष्ट हो जावेंगे। अतः सुशिक्षित स्त्री के लिये एकमात्र आदर्श श्रीतापीबाई हैं; इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है। इनके आचार, विचार और उच्चार का सादगीपन कौतुकास्पद है।

श्रीतापीबाई की प्रबल इच्छा है कि वे इंग्लैंड अथवा किसी पश्चिमीय देश में जाकर उस ओर स्त्री शिक्षार्थ कैसे प्रयत्न किये जाते हैं, हमारी स्त्रियों की शिक्षा के लिये उधर की किन बातों का अनुकरण करना लाभदायक होगा इत्यादि बातों का निरीक्षण करें; पर, इसके लिये पुष्कल द्रव्य चाहिये। हमारी हार्दिक इच्छा है कि इनकी यह इच्छा शीघ्र पूर्ण हो। यदि कोई राजा वा धनी चाहे तो यह कार्य सरलता से हो सकता है। तापीबाई के उक्त चरित्र से ज्ञात हो ही जायगा, कि उनका वह द्रव्य नष्ट नहीं होगा। अस्तु।

गत मास में आप नागपुर में असिस्टन्ट इन्स्पेक्ट्रेस ऑफ स्कूल्स के पद पर, जिस पर केवल यूरोपीय स्त्री ही नियत की जाती है, २०० रु० मासिक वेतन पर नियत हुई हैं। यद्यपि यह स्थान आप को अभी अस्थायी (Temperary) प्रदान किया गया है, तथापि वे अपनी होशियारी तथा कार्यचतुराई से स्थायी रूप से नियत हो जावेंगी; ऐसी हमें पूर्ण आशा है। परमात्मा इनकी इच्छा पूर्ण कर इन्हें दीर्घायु करें!

पूना और वरार के कई प्रसिद्ध नेता।
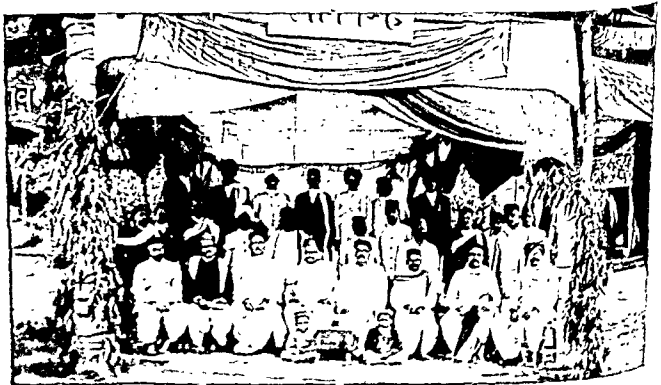
सितम्बर मास का महायुद्ध ।

लेखकः—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी. ए.

अगस्त मास की तरह सितम्बर मास में भी पश्चिमीय रणभूमि पर, अंग्रेजी और फ्रेंच सेना को, सफलता मिलती रही। अंग्रेज़ी सेना ने पिपवाल और कॉबलस नाम के दो महत्वपूर्ण स्थान हस्तगत कर लिये, जिससे जर्मनों को अपना पराजय स्वीकार करना पड़ा। कॉंबलस के पास ही तीन चार मार्गों का केन्द्र था, इससे जर्मनसेना को सैनिक हलचल करने में बड़ी सुभीता हो गई थी। अतः अंग्रेजी और फ्रेंच सेना ने सारा सितम्बर मास कोंबलस को घेरा लगाने ही में बिताया और अन्त में कॉबलस पर चढ़ाई कर जर्मनों की गर्दन पकड़कर धक्के मारकर उन्हें वहाँ से निकाल बाहर किया। जर्मनी ने खंदानों के जाल से कॉबलस और पिपवाल ऐसे दृढ़ कर रखे थे, जिसके आगे वर्डुन के किले की मजबूती भी कम दर्जे की समझी गई। पर, शूरवीर अंग्रेज़ों और फ्रेंचों ने ये स्थान भी हस्तगत कर लिये। जर्मनी जो कार्य वर्डून के पास नहीं कर सकी, वही मित्रों ने कॉबलस के पास किया, जिससे वे सेना तथा सैनिकबल में जर्मनों से श्रेष्ठ सिद्ध हुए। यद्यपि एँग्लो-फ्रेंचों को बड़ी भारी सफलता मिली, तथापि इसके साथ ही एक अनिष्ट घटना भी दृग्गोचर हुई। वर्डून का किला पहाड़ी प्रदेश के एक टीले पर है। इसके आसपास भी १०, १५ मील तक पहाड़ों का सिलसिला है। जिस प्रकार पहले ज़माने में, जब कि केवल तलवारों से युद्ध किया जाता था, यह स्थान मजबूत गिना जाता था, उसी प्रकार इस समय तोपों से युद्ध होते हुए भी यह प्राकृतिक ही मजबूत समझा जाता है। इन्हीं टीलों पर फ्रेंचों के खन्दानों के जाल फैला देने से वर्डून दुर्भेद्य कहलाया। वर्डून के सदृश प्राकृतिक दृढ़ता कॉबलस में नहीं है। इस दशा में भी जर्मनों ने अपने खन्दानों के जाल फैलाकर वर्डून की अपेक्षा कॉबलस अधिक दृढ़ बना रखा। नक्शे को उठाकर देखने से मालूम हो जायगा कि तीन मास के पूर्व अंग्रेज़ी सेना कॉबलस से पाँच मील के भीतर ही खन्दानों का जाल फैलाये हुए थी। अर्थात् तीन मास की चढ़ाई से सोमनदी के तट पर की लड़ाई में एँग्लो-फ्रेंच सेना केवल चार-पांच मील ही आगे को बढ़ सकी। इस हिसाब से वह एक महीने में मील या डेढ़ मील ही आगे को बढ़ सकी! बर्फ के मौसम के लिये अभी दो मास बाकी हैं, जब कि लड़ाई का मौसम भी मन्दा हो जायगा। इस अवधि में अर्थात् अक्टूबर-नवम्बर में एँग्लो फ्रेंच सेना अधिक से अधिक चार-पाँच आगे को बढ़ सकेगी। अर्थात् पाँच मास की चढ़ाई का फल
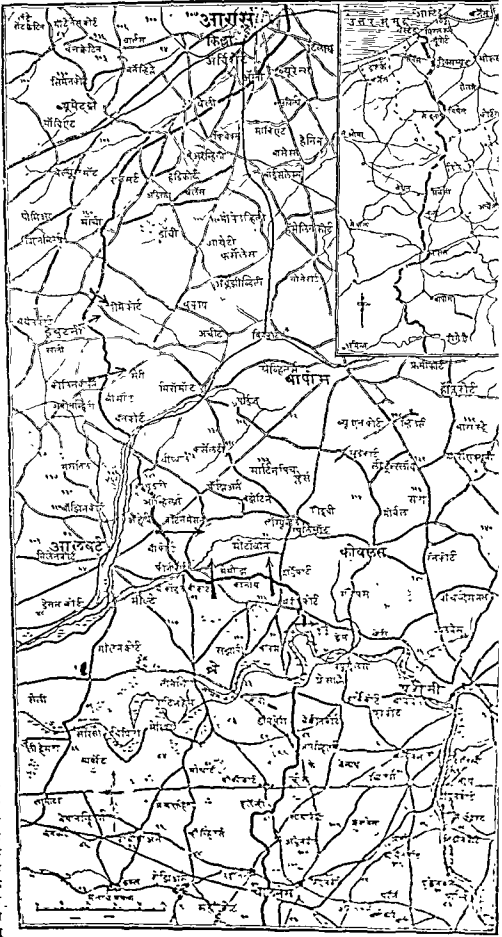
मील आगे बढ़ना ही है। कहा जा सकता है, कि यह फल बिलकुल ही अल्प है। पर, दूसरी दृष्टि से इसका सच्चा महत्व मालूम हो सकता है। दिसंबर मास में, बर्फ गिरने के कारण युद्धीय गति के मन्द हो जाने पर, जर्मनी कहेगी कि तुमने पाँच-सात मास तक दिल से लड़कर क्या हस्तगत किया? अपने घर में का सोना अमेरिका और जापान को देकर उसके बदले में उनसे लोहा और बारूद-गोले लेकर भी तुम हमारा व्यूह कहाँ छेद सके? हम तो सोमनदी के तट पर से केवल दस मील ही पिछड़े। उत्तर-फ्रांस का बहुतसा प्रदेश हमारे अधिकार में है और बेल्जियम पर हमारा पूर्ण अधिकार है। रोमेनिया के युद्ध में सम्मिलित हो जाने से हमारा क्या बिगड़ा? जहाँ एक तिहाई ट्रान्सल्वेनिया और ब्यूकोविना के प्रदेश रशिया और रोमेनिया ने हस्तगत कर लिये, वहाँ डोब्रेजा और केवेला जैसे महत्त्वपूर्ण उपजाऊ प्रदेशों पर हमने भी अपना अधिकार प्रस्थापित कर दिया है। सन १९१६ ई० के आरम्भ में तुम्हारी जैसी स्थिति थी, सन १९१६ के अन्तमें भी वैसी ही स्थिति रही। उलटे तुम्हें सोमनदी के ७० मील के सामने में, दस मील के प्रदेश को हस्तगत कर लेने में, एक वर्ष तक तप करना पड़ा। रीगा, पोलैंड, सर्विया, मेसिडोनिया, माउंटनिग्रो, बेल्जियम, उत्तरीय फ्रांस, डोब्रेजा और केवेला प्रदेशों में से हमें मार भगाने के लिये, मालूम नहीं, तुम्हें और कितने वर्ष लगेंगे! इससे व्यर्थ ही खून बहाकर शूर सिपाहियों की संख्या घटाने के बदले-"त्यजार्धं भयार्धं" की नाई सुलह ही क्यों नहीं करते? अर्थात् दिसम्बर मास में होनेवाले जर्मनी के सुलह का श्रीगणेश सितम्बर ही में हो गया, अमेरिका और स्पेन में सुलह की चर्चा छिड़ने लगी और पोप महाराज ने भी इस मन्तव्य का समर्थन किया। अगस्त के अन्त में, रोमेनिया के युद्ध में सम्मिलित होते ही, युद्धीय परिस्थिति के पलट जाने का आभास हुआ था, पर सितम्बर मास की युद्धीय हलचल से साफ देख पड़ा कि जर्मनी ने संभल कर, शत्रुओं में सैनिक सामर्थ्य सिद्ध कर, सन १९१७ के उत्तरार्ध में दिल से लड़ने का संकल्प कर लिया है। अतः यदि जर्मनी को कुश्ती में हराकर ही सुलह करना हो तो अनुमानतः १९१७ और १९१८ में भी महायुद्ध की दावाग्नि समस्त यूरोप में जलती रहेगी। रोमेनिया के युद्ध में सम्मिलित हो जाने से जनता को विश्वास हो गया था, कि दो-चार मास ही में जर्मनी हारकर सुलह करने के लिये राज़ी हो जायगी। पर, सितम्बर के युद्ध में ये सभी अनुमान मृगजलवत् सिद्ध हुए। इस प्रकार आशा के निराशा में परिणत हो जाने पर पोप महाराज और अमेरिका को स्पेन-हालैंड जैसे लघु राष्ट्रों की सहायता से मध्यस्थ बनने की इच्छा होना स्वाभाविक है। अतः साधारणतः सुलह की इस हलचल का दिसंबर की अवधि में कुछ न कुछ परिणाम अवश्य ही दिखाई देता। इस समय जर्मनी कहेगी कि बल्ला उठाकर देखो और फिर हमें सलाह दो कि हम किन किन प्रदेशों का त्याग करें। हम बेल्जियम को छोड़ने के लिये तैयार हैं, उत्तर फ्रान्स को छोड़ने के लिये राज़ी हैं और १८७० ई० में जीते हुए आलसास-लोरेन प्रदेश के कुछ भाग को . . हम फ्रान्स से निपटारा के सम्बन्ध बांधने के लिये तैयार हैं। इस प्रकार मध्यस्थ राष्ट्रों की इच्छा को तृप्त कर देने पर जर्मनी धीरे से यह भी कहेगी कि रशिया के कोरलैंड प्रदेश में बहुत से जर्मनों की बस्ती है; अतः यह प्रदेश हमारे ही अधिकार में रहे तो क्या हर्ज है! रशिया ने पोलैंड को स्वराज्य दे ही दिया है; अतः पोलैंड का स्वतंत्र राज जर्मनी के कृपाछत्र में स्थापित होने में रशिया की कुछ भी हानि नहीं है। अब केवल बालकन प्रदेश और सर्विया का मामला ते करना बाकी रहा है। यदि बलकान प्रदेश का जीता हुआ पुराना सर्विया अर्थात् बलकान युद्ध के पूर्व का सर्विया पुनः सर्विया के राजा को दे दिया जाय, माउंटनिग्रो का पुराना राज्य मांटिनिग्रो को लौटा दिया जाय और रोमेनिया का पुराना राज रोमेनिया के ही ताबे में रखा जाय तो बलकान देशों को जर्मनी की गृहमालिका में प्रवेश कर जर्मन सूर्य के आसपास ही घूमने में क्यों न आनन्द मनाना चाहिये? तुर्क साम्राज्य के स्वतंत्र हो जाने अथवा उसके जर्मनी के साथ आवश्यक सुलह करने में किसका क्या बिगड़ता है? रशिया भले ही ईरान में प्रवेश कर समुद्र पर स्वाधिकार प्रस्थापित करे, जर्मनी को उसमें हस्तक्षेप करने की इच्छा नहीं है। उलटे वह इस कार्य में उसे सहायता भी देगी। अर्थात् इससे "रामाय स्वस्ति रावणाय स्वस्ति" कहनेवाले मध्यस्थों को सुलह की उक्त शर्तें भले ही मान्य हों जिससे छोटे राष्ट्रों की वर्तमान परतंत्रता से मुक्ति होगी और प्रान्त निर्भीक हो जावेगा। हां, इससे रशिया की पुरानी महत्त्वाकांक्षा को जरूर ही धक्का पहुँचेगा, पर अधिक घातक न होगा। इस अधूरे सुलह से तुर्कीय साम्राज्य के द्वारा मुसलमान जनता जर्मनी के जाल में फँस जायगी, जिससे ईजिप्ट और भारतवर्ष पर भी जर्मनी का प्रभाव स्थापित होना सम्भवनीय है। अतः इंग्लैंड को इस सुलह को अस्वीकार करना आवश्यक है। सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में अमेरिका और स्पेन की सुलह की हलचल के विषय में चर्चा करते हुए मि० लाइड जॉर्ज ने स्पष्ट कह दिया कि हम अधूरा सुलह नहीं करना चाहते। कौंसल के सिवा से इंग्लैंड में उसके प्रतिकार करने की हिम्मत बढ़ चली है। यद्यपि दिसम्बर मास तक इंग्लैंड की सेना अधिक क्षेत्रफल का प्रदेश नहीं जीत सकेगी, तथापि वह जर्मनी के युद्धीय कौशल्य से निर्माण किये हुए यहाँ से भी अधिक दृढ़ खन्दक रूपी चक्रव्यूह के किले तोड़ सकती है, यह बात उसने स्वयं सितम्बर के अन्त में स्पष्ट रीति से सिद्ध कर दी है। सन १९१६ के आरम्भिक युद्ध में जिन लोगों को खन्दक की भूमि का आश्रय लेकर विरुद्ध पक्षवालों की छाती पर चढ़ बैठने के लिये बाध्य होना पड़ा था, वहीं अब अपनी प्रजा को सैनिक बना कर और सारे कारखानों में सैनिक सामग्री सिद्ध कराना आरम्भ कर बड़ी हिम्मत से अपनी छाती पर बैठनेवाली जर्मनी की ही छाती पर चढ़ बैठा है! अब इंग्लैंड सन १९१७ में अपना हाथ जर्मनी की गर्दन पर रखेगा और सन १९१८ में जर्मनी की नाक सीधी हो जायगी। अब प्रश्न यह है, कि और भी दो वर्ष तक लड़ने में क्या रक्खा है? इसका उत्तर यही है, कि समस्त कुश्ती के पेंच छोड़कर तुर्कों की खुराक पर २-३ वर्ष तक जीवित रखकर, १०-१२ वर्ष के बाद इंग्लैंड और फिर

रशिया की चढ़ाई।

चढ़ाई के बाद। चढ़ाई के पहले।

स्वान को खो बैठने की अपेक्षा और भी १-२ वर्ष तक कष्ट सहकर जर्मनों का बल सदा के लिये नष्ट करना ही उत्तम है। सितम्बर मास की चढ़ाई से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है, कि एक-दो वर्ष के बाद इंग्लैंड को प्रचंड सफलता अवश्य ही मिलेगी। अर्थात् कोम्बलस की सफलता का उपयोग प्रदेशों के हस्तगत करने की दृष्टि से अधिक महत्व का न होने पर भी यह इंग्लैंड का सामर्थ्य और सफलता को बतलाने के लिये पर्याप्त है। साथ ही यही सफलता उक्त प्रकार के अधूरे सुलह से विजयी दोस्त राष्ट्रों की रक्षा कर सकेगी।

रोमेनिया और रशिया।

अगस्त के अन्त में पहले ही धावे में रोमेनिया ने अपनी सीमा पर के कार्पेथियन पर्वत के सभी घाट हस्तगत कर लिये और आस्ट्रियन सेना को मार भगाकर ट्रान्सलेवेनिया में प्रवेश किया। सितम्बर के आरम्भ में हार्मनस्टॅड, ब्रासो इत्यादिक दक्षिणीय और पूर्वीय ट्रान्सलेवेनिया के महत्वपूर्ण ग्राम रोमेनिया ने ले लिये। अतः राजनीतिज्ञ पुरुषों का अनुमान था कि वह सारे ट्रान्सलेवेनिया को एकाध सप्ताह में ही व्याप्त कर लेगा और सितम्बर के अन्त में अथवा अक्टूबर के आरम्भ में हंगरी के मैदान में प्रवेश कर लेगा, जिससे वह वहाँ पर रशिया से संलग्न हो जाता। पर, सितम्बर मास के ये सभी अनुमान भ्रमपूर्ण सिद्ध हुए। रोमेनिया ने पहले सप्ताह में लगभग एक तिहाई ट्रान्सलेवेनिया को व्याप्त कर लिया। उसकी इस सफलता का रहस्य भी बड़ा ही विचित्र है। यद्यपि रोमेनिया की सेना ट्रान्सलेवेनिया में द्रुतगति से प्रविष्ट हो रही थी, तथापि आस्ट्रियन सेना का पराभव *नहीं हो रहा था। हाँ, जर्मन* सेनापति फिडनबर्ग ने रोमेनिया की बहुतसी सेना के ट्रान्सलेवेनिया में अटक जाने पर उस पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया था। अब आशंका यही है कि शत्रु को अपने प्रदेश में घुसने देने में कौनसा लाभ था? साथ ही इस कृत्य से क्या पहले ही सामने में आस्ट्रिया को नीचा नहीं देखना पड़ा? बात ठीक है। आस्ट्रिया के प्रदेश में रोमेनियन सेना के घुस जाने से अवश्य ही आस्ट्रिया को नीचा देखना पड़ा है, पर दो संकटों में से एकके संकट का सामना कर सेनापति फिडनबर्ग ने भीषण संकट को, कम से कम इस समय के लिये तो भी, टाल दिया है। उस समय बलगेरिया सेलोनिका की ओर उलझा हुआ था। अतः यदि रोमेनिया कार्पेथियन के घाटों को लेकर बलगेरिया पर चढ़ाई कर देता तो सितम्बर मास में बलगेरिया को पिछड़ना पड़ता और अक्टूबर-नवम्बर मास में ऊपर से नीचे को उतरनेवाली रोमेनिया और रशिया की सेना तथा सेलोनिका से ऊपर को *चढ़नेवाली एंग्लो-फ्रेंच सेना का मिलाप* बलगेरिया ही में होता, जिससे तुर्क साम्राज्य का जर्मनी से संबंध टूट जाता। और, आगामी जाड़े के दिनों में मित्रराष्ट्रों की इच्छानुसार ही आस्ट्रो-जर्मनों को सुलह करने के लिये बाध्य होना पड़ता। अर्थात् रोमेनिया ने ट्रान्सलेवेनिया के व्यर्थ के लोभ में फँस कर भावी लाभ के मार्ग नष्ट कर डाले, जिससे जो काम जाड़े के दिनों के पूर्व ही होनेवाला था, वही अब वसंतऋतु के अनन्तर होने के लिये आगामी जाड़े के दिनों में सब कर रशिया को पुन अपनी तैयारी करना आवश्यक है। सितम्बर मास में रोमेनिया की रणभूमि में जो २ घटनाएँ हुईं, उनका सूक्ष्मावलोकन करने से कहा जा सकता है कि अक्टूबर-नवम्बर मास में अथवा आगामी शरदऋतु में टर्की और जर्मनी के रेलमार्गों का सम्बन्ध नष्ट होना सम्भव नहीं है। और, बिना उक्त सम्बन्ध के नष्ट किए आस्ट्रो-जर्मनों का पूर्ण पराभव करना भी सहल काम नहीं है। सितम्बर के आरम्भ ही में रोमेनिया की मुख्य सेना को ट्रान्सलेवेनिया में अड़ी हुई देखकर आस्ट्रो-जर्मनों ने, बलगेरिया और टर्की की सेना की सहायता से, रोमेनिया के डोब्रुजाप्रदेश पर चढ़ाई कर दी। जिस स्थान पर से डेन्यूब नदी उत्तरवाहिनी हुई है, वहाँ से काले समुद्र तक का प्रदेश डोब्रुजाप्रान्त कहलाता है। यदि रशियन सेना कालेसमुद्र के किनारे से दक्षिण में कान्स्टेंटिनोपल पर चढ़ाई करने की इच्छा करे, तो उसे डोब्रुजा प्रदेश से ही जाना पड़ेगा। अगले जमाने में, रोमनसाम्राज्य के समय भी, उत्तर की ओर के लोग इसी मार्ग से कान्स्टेंटिनोपल पर चढ़ाई करते थे। उस समय इसी डोब्रुजा प्रदेश के मध्यभाग पर अर्थात् जहाँ डेन्यूब नदी और कालेसमुद्र के बीच में केवल २५-३० मील का अन्तर है वहाँ-वर्तमान कान्स्टँजा बन्दर के रेलमार्ग के प्रदेश में-उत्तरीय सेना का प्रबन्ध करने के लिये तीस मील लम्बा मजबूत तट बनाया गया था। सितम्बर के आरम्भ ही में आस्ट्रो-जर्मन सेना ने दक्षिण की ओर से डोब्रुजा प्रदेश पर चढ़ाई कर रोमेनियन और रशियन सेना को पिछड़वाया और लगभग १५ वीं सितम्बर तक वह सेना कान्स्टांजा रेल-मार्ग तक पहुँच गई। १५ से २० तारीख तक कान्स्टँजा रेल-मार्ग के प्रदेश में उभय दलों में भीषण युद्ध हुआ, जिससे शत्रुसेना की *गति मंद हो गई और उभयपक्षों* को खन्दानों का आश्रय लेना पड़ा। यद्यपि कान्स्टँजा रेलमार्ग अद्यावधि रोमेनिया के ही अधिकार में है, तथापि तीस मील लम्बे खन्दानों की सहायता से ही आस्ट्रो-जर्मन सेना अपनी रक्षा कर सकने के कारण रोमेनिया के पीछे व्यर्थ झगड़ा लग गया है। रोमेनिया ने एक तिहाई ट्रान्सलेवेनिया हस्तगत कर लिया और आधा डोब्रुजा खो दिया। बीस सितम्बर के आसपास का डोब्रुजा का युद्ध मन्दा भी न होने पाया था कि जर्मनी ने और भी दो-चार मार्गों से रोमेनिया को घेरा लगाने का कार्य शुरू कर दिया तथा बलगेरिया और रोमेनिया के बीच की डेन्यूब नदी को लाँघने के उद्देश्य से डेन्यूब नदी पर, सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में, तोपें दागना आरम्भ कर दिया है। सेवना के उत्तर में जहाँ ईस्कर नदी डेन्यूब में गिरती है उस कोरेबिया प्रदेश में आस्ट्रो-जर्मन सेना ने रोमेनिया के किनारे पर उतरने की चेष्टा की। पर, उस कार्य में उसे सफलता नहीं मिली। दक्षिण की ओर से डेन्यूब नदी को लाँघ जाने का उपक्रम शुरू कर देने पर उस स्थान के ठेठ उत्तर में अर्थात् पूर्ववाहिनी डेन्यूब नदी के समानान्तर कार्पेथियन पर्वत के अर्थात् ट्रान्सलेवेनियन आल्प्स पर्वत के घाटों द्वारा, शत्रुसेना ने, रोमेनिया पर चढ़ाई कर दी है। रोमेनिया के द्वारा ट्रान्सलेवेनिया में घुसने के लिये मुख्य तीन घाट हैं। पहला टेमास नाम का घाट रोमेनिया की राजधानी बुखारेस्ट की उत्तर में है। रोमेनियन सेना ने इसी घाट के द्वारा ब्रासो नगर ले लिया था और दूसरे घाट रेडटरटॉर्म के द्वारा उसने हार्मनस्टॅड नगर ले लिया था। इन दोनों घाटों के बीच में रेलमार्ग है। तीसरे अर्थात् वल्कान घाट में रेलमार्ग

रोमेनिया की रणभूमि।

नहीं है। बाल्कन घाट के उत्तर में आस्ट्रिया का रेलमार्ग है। पर, दक्षिण में रोमेनिया का रेलमार्ग नहीं है। वल्कान घाट को लाँघ आनेवाली रोमेनिया की सेना पर आस्ट्रो-जर्मन सेना ने चढ़ाई कर उस घाट को ले लिया। अतः यदि शत्रु-सेना वल्कान घाट के द्वारा नीचे उतरने लगेगी तो रोमेनिया के पश्चिमीय कोने की डेन्यूब नदी की रक्षा करनेवाली ओर्सोवा प्रदेश की रोमेनियन सेना का पिछला भाग निराश्रित हो जायगा। अतः इस संकट को पहचान कर ही रोमेनिया ने वल्कान घाट की ओर बहुत सी सेना भेज दी और *नीचे उतरनेवाली आस्ट्रियन सेना को घेरा लगाना शुरू कर दिया।* आस्ट्रियन सेना, रोमेनिया की इस कार्यतत्परता को देखकर, वहाँ से भाग जाने लगी, इससे अक्टूबर के आरम्भ ही में, वल्कान घाट के उत्तर में आस्ट्रिया और रोमेनिया के दलों के बीच भीषण सामना शुरू होगया है। इस सामने के जयापजय पर ही ट्रान्सिल-वेनिया के द्वारा रोमेनिया पर चढ़ आनेवाली हिंडनबर्ग की सेना के दाँव-पेंचों का परिणाम अवलम्बित है। कहा जाता है, कि सेना-पति हिंडनबर्ग ने पहले रोमेनिया को हराकर फिर सलोनिका की एँग्लो-फ्रेंच सेना को मार भगाकर रोमेनिया के द्वारा रशिया की बाईं ओर घेरा लगा काले समुद्र के तट परके रशिया के ओडेसा बन्दर तक रशियन सेना को धर दबाने का निश्चय किया है। बाल्कन प्रदेश में की रशिया की ओर की उक्त कार्यवाही को पूर्ण करने के लिये ही सेनापति हिंडनबर्ग ने यथासमय पश्चिमीय रणभूमि के उत्तरीय फ्रांस और बेलजियम के प्रदेशों का त्याग करना मान्य कर र्‍हाइन नदी तक पिछड़ने का निश्चय कर पश्चिमीय रणभूमि की बहुत सी सेना को पूर्व की ओर हटाने का घोषित किया है। पश्चिम रणभूमि पर की सेना, बलगेरिया की सेना और तुर्कीय सेना मिलाकर दस लाख नई सेना इस कार्यवाही को पूर्ण करने के लिये एकत्रित की गई है। इस संख्या में से तीन चार लाख सेना कोवेल से ब्यूकोविना तक की रशियन सेना का सामना करने के लिये भेजी गई है। शेष ४-७ लाख सेना रोमेनिया पर चढ़ाई करनेवाली है और डेन्यूब और डोब्रुज की ओर सेनापति मेकेनसन नियत किये गये हैं। आस्ट्रो-जर्मन सेना और तोपें मुख्यतः ट्रान्सिलवेनिया में एकत्रित हुई हैं, जिससे आस्ट्रो-जर्मन सेना वल्कान और वेरेस्टोरोनी घाटों के द्वारा रोमेनिया पर चढ़ाई करने का विचार कर रही है। शत्रुसेना ने अपनी दाल वल्कान घाट की ओर गलती हुई न देखकर तथा उसी ओर रोमेनियन सेना के एकत्रित हो जाने से यह सितम्बर के अन्तमें वेरेस्टोरोनी घाट के उत्तरीय हार्मनस्टेट नगर की ओर चल दी और वहाँ की रोमेनि-यन सेना को चारों ओर से घेर लिया। पर, रोमेनियन सेना उस संकट के समय भी विचलित नहीं हुई और दिल से लड़कर घेरे को नष्ट कर दक्षिणीय वेरेस्टोरोनी के घाट तक बड़ी सिफ़त के साथ पिछड़ी। अब शत्रुसेना दक्षिण ट्रान्सिलवेनिया, डेन्यूब नदी और डोब्रुजा प्रदेश में रोमेनिया को धर दबाना चाहती है। अतः यदि रोमेनिया, अक्टूबर मास में, शत्रुओं के पंजे में न फँसेगा तो पश्चिमीय रणभूमि की पिछाहट से शत्रुसेना की खैर बहुत ख़राब होगी। पर, यदि रोमेनिया को नीचा देखना पड़ा तो अवश्य ही शत्रुसेना बाल्कन प्रदेश के रशिया की ओर के संकट से कुछ समय के लिये अपना छुटकारा कर सकेगी। यद्यपि तीन-चार लाख शत्रु-सेना रशिया से सामना करने के लिये डटी हुई है, तथापि रशिया प्रिपेट नदी से रोमेनिया के प्रदेश तक के शत्रु-समूह से बड़ी हिम्मत से लड़ रहा है। जुलाई और अगस्त मास में रशियन सेना आगे को बढ़ती रही। पर, सितम्बर मास में उसकी बाढ़ रुक गई। हाँ, अगस्त के अन्त में जिस स्थान पर रशियन सेना खड़ी हुई थी,

अक्टूबर मास के आरम्भ में भी वह वहीं पर डेरा
कोवेल के प्रदेश में आस्ट्रो-जर्मनों के सिर पटकने पर
दाल नहीं गलने दी। यद्यपि रशिया ने अधिक प्र
कार्य, सितम्बर मास से, बन्द कर दिया है, तथापि
महीनों में आठ लाख शत्रुसेना नष्ट की है, जिससे शत्रु
पस्त हो गई है। रशियन सेना ने यह भी घोषित
योग्य अवसर मिलने पर वह अवश्य ही आस्ट्रो जर्
पर सवार हुए बिना न रहेगी। रशिया ने सितम्बर
निया को बहुत कुछ सहायता भेजी। अक्टूबर मास में
निया को सहायता पहुँचा रहा है, जिससे आशा की
कि वह हिंडनबर्ग की अच्छी तरह से मट्टी पलीत
समय यदि रशियन सेना रोमेनिया को हिंडनबर्ग के
फँसने देने के लिये दक्षिण की ओर चली जायेगी तो
का प्रभाव मन्द हो जायगा। हिंडनबर्ग को इस बात
कि वह वहाँ से रशिया को अवश्य ही पीछे हटा
चार मास से पूर्व और पश्चिम रणभूमि पर की शत्रु से
हो जाने पर शत्रु-सेना-शकट के जनरल हिंडनबर्ग
बनने से भी वे मित्र-सेना का पीछा दबाने में कह
होंगे? रशिया के पास असंख्य सेना है। फलत
जितनी सेना समरभूमि पर दाखिल करा सकता है।
सैनिकसामग्री की चिन्ता है। पर, इंग्लैंड के पास
सामग्री होने से उसे किसी भी बात का डर नहीं
की दीर्घोद्योगप्रियता को देखकर जर्मनी का इंग्लैंडवि
बुरी तरह से धधक उठा है। अतः उसको सताने के
ने लन्दन तथा उसके उत्तरीय ज़िलों पर, सितम्बर मास
चढ़ाइयाँ कीं। यद्यपि वे चढ़ाइयाँ भीषण थीं, तथापि उन
कुछ भी हानि नहीं हुई। हाँ, उलटे उसको ही दो त
इंग्लैंड की तोपों को बलि दे देने पड़े। इंग्लैंड, रशिय
सैनिक सामग्री के द्वारा सहायता ही नहीं कर रहा है
इटाली को भड़का कर युद्ध में सम्मिलित किया
राजा की इच्छा न होते हुए भी ग्रीस में राजक्रांति कर
एँग्लो-जर्मनों ने उठाई हैं। अतः जर्मनी की इन बातों के
जा सकता है, कि अब वह बिलकुल निर्बल हो गई है
के आरम्भ में रोमेनिया के युद्ध में सम्मिलित हो जा
भयभीत हो गई और अक्टूबर के आरम्भ ही से उ
ग्रीस का नया संकट उपस्थित हो गया है। रोमेनिया
लित हो जाने पर भी ग्रीस के राजा ने सितम्बर मास में
से मिलने में आनाकानी की। राजा की इस पक्ष
को देखकर ग्रीस के भूत पूर्व मुख्य प्रधान एम० वेन
पक्ष ने क्रीटद्वीप में जाकर वहाँ खुल्लमखुल्ला ग्रीस की रा
घोषणा की। एम० वेनीज़ुलास खुद राजक्रांति के अगु
तथा ग्रीस की सेना में के सैकड़ों कर्मचारी और कुछ प्र
नायक भी उससे सहमत हो गये हैं। एम० वेनीज़ुलास की
की हलचल प्रतिदिन बढ़ती जाती है तो भी ग्रीस की
सेना अद्यावधि ग्रीस-नरेश के ही अधिकार में है। अतः
वह अक्टूबर मास की रोमेनिया और आस्ट्रो जर्मन सेना
इयों का परिणाम देख लेने पर युद्ध में सम्मिलित हो जा
फिर ग्रीस के मित्रराष्ट्रों में सम्मिलित होने से विशेष
होगा। सितम्बर मास में ग्रीस के स्वपक्ष में सम्मिलित
आशा से ही सलोनिका के पास की एँग्लो फ्रेंच सेना विशे
नहीं कर सकी।

ग्राहकों को सूचना—

कई ग्राहक चित्रमय जगत् के न पहुँचने की शिकायत अथवा चित्रमय जगत् सम्बन्धी अन्यान्य बातें लिखती बार अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। ऐसी दशा में कर्मचारियों को उनकी आज्ञा का पालन करने में अनेक कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं। ... है, कि वे हर एक समय अपना ग्राहक नम्बर लिख दिया करें। जो ग्राहक अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखेंगे, उनकी आज्ञा ... होगा।

ऐय्याशी को त्यागकर यूरोपीय स्त्रियाँ पतलून पहने काम कर रही हैं।

सामाजिक सुधार जैसे निकम्मे प्रश्नों के हल करने में सफल नहीं हों तो भी सच्चा देश-हितैषी यही कहेगा कि राष्ट्रीय उत्थान के लिये सभी बातों की आवश्यकता है। यही शर्त यही कि वे मर्यादित हों। मर्यादा का उल्लंघन करना किसे सहनीय होगा? आवश्यकता नहीं है कि भारत प्रत्येक बात में Extrimist (गरम) बने; योग्य नहीं है कि मंज़िल के तै कर लेने पर ही उल्लंघित मार्ग की विशेषताओं के विषय में, मार्ग-क्रमण के समय तद्विषयक कुछ भी विचार न करते हुए, अनन्तर सिर रगड़ा करें; वरन आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक पाँव फूंक फूंक कर आगे को बढ़ाया जाय। समाज-सुधार! जो राष्ट्र-संगठन की सच्ची भित्ति है; वह कितनी महत्वपूर्ण है; इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। आँख भीच कर सुधार के उच्चतर शिखर पर स्वैर संचार करने का हास्यास्पद प्रयत्न कर उस पर से फिसल पड़ने की अपेक्षा कई गुना अच्छा यह है, कि भावी परिणाम से सावधान हो जाने के लिये मार्ग-क्रमण करती बार ही आँखों में अँगुली चुभो ली जाय। विवाह सामाजिक सुधारों की भित्ति है। फलतः वह एक ऐसी पवित्र संस्था है, जिसके स्त्री-शिक्षा, स्त्री स्वातंत्र्य आदि अंग और उपांग हैं। अतः क्या ऐसे पवित्र कार्य के लिये उच्छृंखलवृत्ति वांछनीय है? चिन्ताशील पाठकों के सामने उक्त विज्ञापन रख दिया गया है और वे उसकी शैली से उसी पवित्र विवाह-संस्था के धज्जे बिखरे हुए पावेंगे! वास्तव में हमें विज्ञापन पर टिप्पणी लिखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। पर, 'मर्यादा' का पूर्वेतिहास, मर्यादा के समाज-सुधारक संचालक और उनकी विज्ञापन की दल्लाली ही इसे आलोचना के मैदान में प्रविष्ट करने के लिये कारणीभूत हुई है। उद्देश्य नहीं है, कि गुड़ियों के विवाह करा समाज को और भी गिरा दिया जाय, पर यह भी आवश्यक नहीं है कि इंग्लैंड में ५० वर्ष की आयुवाली स्त्री कुमारी समझी जावे तो हमारी स्त्रियों को ३० वर्ष तक अविवाहित रखने में हम गौरव समझें। यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक राष्ट्र की रस्में उसकी परिस्थिति के अनुसार होती हैं। जहाँ इंग्लैंड की स्त्रियों की अवस्था देर में पकती (Mature) है, वहाँ इटाली की स्त्रियाँ १४ वर्ष की आयु में ही पक जाती हैं। भारतवर्ष का प्रमाण १४ से १६ वर्ष की आयु तक का है। फलतः २५ या ३० वर्ष की भारतीय स्त्रियाँ चार बच्चों की माताएँ बन जाती हैं। अतः हम श्रीन० सिंह की इस मर्यादा के उल्लंघन करने के कार्य को सिवा साहस के और क्या कह सकते हैं? वर्ण व्यवस्था का भंग करने में भी विज्ञापक महाशय का मन्तव्य विचारणीय है। स्त्री के स्वतंत्र अर्जन करने की शर्त भी सराहनीय है। हाँ, अलग गृह में रहने की बात हमारी समझ में नहीं आई। पर, जब विज्ञापन की आगामी पंक्तियाँ पढ़ते हैं, तब उसके कुछ भाव अवश्य ही प्रकट हो जाते हैं। तो भी पहले इस बात का उल्लेख अवश्य चाहिये, की विवाह-बन्धन है किस चिड़िया का नाम? अच्छा होता, यदि विज्ञापक अपने विज्ञापन में 'विवाह' जैसे पवित्र शब्द का उपयोग कर उसका मान-भंग करने की अनुदारता न दिखाते। जब कि तनिक बात पर विवाह-बन्धन के तोड़ने अथवा पति-पत्नी के पारस्परिक मान मर्यादा में धब्बा लगाने जैसी अकाट्य कल्पनाओं का अंगीकार किया जाता है, तब हमारी समझ से वतुष्पाद बननेवालों को विवाह शब्द से सम्पर्क रखने की ही कोई आवश्यकता नहीं है। इससे कहीं अच्छा यही है, कि बारनारि को ही कल्पित स्व स्त्री समझ कर स्वेच्छानुसार उससे बर्ताव किया जाय। जिससे हमारी समझ से श्रीन० सिंह जैसे सुधारकों की उक्त प्रकार की इच्छाएँ भी पूर्ण होंगी और वे हिन्दू धर्म के पवित्र संस्कारों को अपवित्र न करने के अपार पुण्य के भागी होंगे। पत्नी को स्वतंत्रता प्रदान करने, सन्तान को स्वेच्छानुसार किसी पर छोड़ने, उसके एवज़ में एकमुश्त रकम देने, पालन का भार सहने इत्यादिक विज्ञापन की बातें ऐसी हैं, जो सिवा पति-पत्नी शब्द के धज्जे बिखरने के कुछ भी नहीं दर्शातीं और, कोई सहृदय पति, जिसे अपने हिन्दुत्व पर अभिमान है अपनी पत्नी के साथ उक्त प्रकार का बर्ताव कर नहीं सकता है। सच्चा समाज-सुधारक भी उक्त कर्तव्यों के पालनेवाले पुरुष को सिवा बारनारि और व्यभिचारी के कौनसी संज्ञा प्रदान कर सकता है? बस; यहाँ हमारा उक्त विज्ञापन विषयक वक्तव्य समाप्त होता है। हिन्दी में यह अपने ढंग का पहला विज्ञापन है और केवल हिन्दी में वरन बँगला, गुजराती, उर्दू, मराठी आदि पत्रों में भी इस तरह का विज्ञापन हमारे देखने में नहीं आया। अतः हमने इस विज्ञापन की ओर जनता का ध्यान विशेष कर आकर्षित किया है। आशा है, इससे विज्ञापक तथा विज्ञापन के दल्लाल महाशय के आन्तरिक हेतु पूर्ण होंगे और ऐसे विचित्र सुधार से हिन्दू समाज को चेतने की भी स्फूर्ति होगी।

एक अनूठा आविष्कार।

यह युग Century of wonders अर्थात् आश्चर्यमय शताब्दी के नाम से कहा जाता है। अतः इस युग में जितनी आश्चर्यमय बातें हों, उतनी थोड़ी ही हैं। क्षुद्रातिक्षुद्र वस्तुओं से लाभ उठाना, प्राकृतिक वस्तुओं पर अपना अधिकार प्रस्थापित करना अपूर्व वस्तुएँ बनाना इत्यादि बातों का जितना दिग्दर्शन इस शताब्दी में हुआ इतना अन्य किसी भी गत शताब्दी में न हुआ होगा। एक तरह से इन नूतन आविष्कारों ने जगत में क्रांति कर दी है। इससे इस युग को उत्क्रांति युग कहना सर्वथा योग्य ही है। उत्क्रांतियुग में कहना नहीं होगा, कि जिन राष्ट्रों की बन पड़ी, उन्होंने तो ग़ज़ब भी उन्नति कर ली है और जगत में अपूर्व प्रतिष्ठा लाभ की है। उन प्रगति पर राष्ट्रों में जर्मनी की प्रमुखता से गणना की जाती है। और, यदि वह वर्तमान जगतव्यापी युद्ध की निन्दनीय अपच्च अनाधिकार छेड़छाड़ के कारण सभ्य जगत की दृष्टि से नीचे न गिर गई होती तो अवश्य ही वह जगत के सभी राष्ट्रों में सिरमौर गिनी जाती। तो भी जब कभी इस उत्क्रान्ति युग के प्रगतिशील राष्ट्रों की चर्चा छिड़ने लगती है, तब एकदम जर्मन राष्ट्र की ओर भी, उस के किये हुए अनुपमेय आविष्कारों के कारण, अँगुली दिखलानी ही पड़ती है। जर्मनी के युद्ध के पूर्व के आविष्कार विचारणीय हैं। और, कहना नहीं होगा कि यदि जर्मनी को वर्तमान महायुद्ध जैसे निन्दनीय कार्य में अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करना पड़ता तो वह अब तक और भी कई क्रांतिकारक आविष्कार करती, जिससे समग्र जगत को अपार लाभ हुआ होता। सारांश, जर्मनी की वैज्ञानिक शक्ति अनूठी है और वह वर्तमान संकट के समय भी अपनी उस प्रतिभा का परिचय कराती है। उसने हाल ही में एक नया अपूर्व आविष्कार किया है। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है, कि इस समय जर्मनी संकटग्रस्त होने से भूखों मरने लगी है। उसके विदेशों से सभी व्यवहार बन्द हो जाने से वहाँ अन्न की बड़ी कमी हो गई है। ऐसी दशा में उन्हें अन्न की अधिक आवश्यकता थी। पर, उसने अपनी चतुराई से उस कमी की पूर्ति कर ली है। कहा जाता है, कि अब उसने हड्डी के द्वारा अन्न तैयार करने की नई युक्ति निकाली है, जिससे उसे अन्न की चिन्ता नहीं रही है। जर्मनी ने हड्डी को गरम पानी में उबालकर उसमें से एक तरह की चर्बी निकालने का प्रयत्न किया है और उसे अपने कार्य में पूर्ण सफलता भी मिली है। तिस पर भी विशेषता यह है, कि एक बार उपयोग में लाई हुई हड्डी को जितनी बार पानी में उबाला जाता है, उतनी बार उसमें से चर्बी उत्पन्न होती है। अवश्य ही मांस भक्षण करनेवालों के लिये यह एक सुसंवाद है और ऐसे समय में इस युक्ति से जर्मनी को भी बड़ा भारी लाभ हो सकता है।

एक नया ऐतिहासिक अन्वेषण।

इन दिनों भारत में इतिहास विषय की चर्चा बड़े ज़ोर-शोर से छिड़ रही है। भारतवासियों के इतिहासविषयक चाव को बढ़ता हुआ देखकर ही यहाँपर विविध ऐतिहासिक संस्थाएँ स्थापित हुई हैं। बम्बई की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, उक्त सभा की बंगाल की शाखा, बिहार-उड़ीसा रिसर्च इन्स्टिट्यूट, भांडारकर प्राच्य संशोधन-मन्दिर, पूना का भारत-इतिहास-संशोधक मंडल आदि कई संस्थाएँ इतिहास का प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं, एपिग्राफ़ी कार्य हो रहा है और भारत-सरकार ने भी ऐतिहासिक अन्वेषण में योग दिया है। किसी भी देश का प्राचीन इतिहास उस देश के प्राचीन सभ्यता का दिग्दर्शक होता है। ऐसी दशा में भारतवासियों को उनकी प्राचीन सभ्यता का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये इतिहास की जितनी छिपी हुई बातें ढूंढ कर उनके सामने रखी जायें, उतना अच्छा है। तदनुसार इस इतिहास-उद्धारक काल में

वर्ष ६ चित्रमयजगत अंक १०

हों जातीय विचार उन्नत कला-विज्ञान-धारा बहै। हिन्दी में अनिवार्य्य हिन्द सुख से सर्वोच्च शिक्षा लहै॥
सारे दोष, कुरीति, द्वेष विनसें औ स्वत्व जानैं सभी। जागे भारत, "चित्रमय-जगत" के उद्देश्य पूरें तभी॥

भाग ६] आश्विन सं० १९७३ वि०—अक्टूबर स० १९१६ ई० [संख्या १०

परम पिता की प्रार्थना।

दृते दृंहह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ यजुर्वेद॥

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो।
तेजस्विता दीजिए।
देखें सर्व सुमित्र होकर हमें
ऐसा कृती कीजिए॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को
सन्मित्र की दृष्टि से।
फूलें और फलें परस्पर सभी
सौहार्द्र की वृष्टि से॥
(बा० मै० श० गुप्त।)

श्रीमद्भगवद्गीता-रहस्य

अथवा

कर्मयोगशास्त्र।

(समालोचना)

लेखक—श्रीयुत वेदतीर्थ नरदेवशास्त्री महाविद्यालय, ज्वालापुर।

कुछ दिन हुए कि इस कर्मयोगशास्त्र का हिन्दी अनुवाद हमारे पास 'प्रेमोपहार'-रूप में पहुंचा था। केसरी कार्यालय से पहुंचे हुए इस प्रेमोपहार को देख कर हमको जो हर्ष हुआ वह वर्णनातीत है। बड़े सौभाग्य से ऐसे 'प्रेमोपहार' मिलते हैं। लोकमान्या गीता जैसा विचित्रशास्त्र, लोकमान्य बाल गंगाधर जैसे सैंतालीस वर्ष के सतत सांग स्वाध्याय के पश्चात् अपना अनुभव 'रहस्य'-रूप में लिखनेवाले विचित्रभाष्यकार, श्री० माधवराव सप्रे जैसे भाष्यकार के हृदय को जाननेवाले अनुवादक—एक से एक सब विचित्र ही विचित्र है—सब से पूर्व हमने इस ग्रन्थ के पारायण मराठी में किये थे, तत्पश्चात् हमको श्रीयुत कोल्हटकर के 'रहस्य-खण्डन' को देखने का भी अवसर मिला। अब कुछ दिनों से इस हिन्दी अनुवाद को देख रहे हैं और आज 'हिन्दी चित्रमय जगत्' के पाठकों के सम्मुख अपने विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं।

गीताशास्त्र भी एक ऐसा अद्भुत शास्त्र है कि इस में जिसको जो अभियाञ्छित होता है वही निकाल लेता है। द्वैत-अद्वैत-विशिष्टाद्वैत आदि सब इसमें से ही निकाले जाते हैं। निवृत्ति की दृष्टिवाला इसीमें से निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति की दृष्टिवाला प्रवृत्ति मार्ग निकाल कर उसके गीत गाने लगता है। मानो गीताशास्त्र क्या है—जादूगर की पुटलिया है। जिस ने जो मांगा झट निकाल कर दिया। सामान्य लोग जादूगर के हस्तलाघव से विस्मित हो भले ही कुछ का कुछ समझें, परन्तु विचक्षण दर्शक तत्काल ताड़ जाता है कि वस्तुस्थिति क्या है। इसी प्रकार गीताशास्त्र के विषय में भी मेधावान्, दूरदर्शी, सारासार को पहिचाननेवाले विद्वान तत्काल समझ सकते हैं कि गीता प्रवृत्तिपरक है या निवृत्तिपरक है। जिस गीता ने अर्जुन जैसे निराश हुए, किंकर्तव्यविमूढ हुए, कर्तव्य से पराङ्मुख हुए वीर को सचेतन, कर्तव्यदक्ष बना दिया, क्या वह गीता निवृत्तिपरक हो सकती है? क्या निवृत्तिपरक उपदेश सुन कर पूर्व से ही निवृत्ति की इच्छा रखनेवाला-मोह में पड़ा हुआ अर्जुन इस प्रकार रणक्षेत्र में अपूर्व युद्धकौशल दिखा सकता है? सांप्रदायिक आग्रहों को दूर रखा जाय, और उपदेश्य (अर्जुन) उपदेष्टा (कृष्ण) की गति को विचारा जाय, और परस्थिति को ध्यान में रखा जाय तो सब इसी सिद्धान्त पर आ जायँगे कि गीता निवृत्तिपरक नहीं, किन्तु कर्तव्यपराङ्मुख लोगों को कर्तव्यपथ बतलानेवाली और उस पर चलने की प्रबल प्रेरणा करनेवाली जीती जागती ज्योति है।

इसी बात को संसार में स्पष्ट दिखलाने के लिये 'गीतारहस्य' का अवतार है और रहस्यकार का ग्रन्थ के आदि में यह कथन अत्यन्त उपयुक्त ही है कि —

"श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्म ग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड-ज्ञानसहित आत्मविद्या के गूढ और पवित्र तत्त्वों को थोड़े में और स्पष्ट रीति से समझा देनेवाला, उन्हीं तत्त्वों के आधार पर मनुष्यमात्र के पुरुषार्थ की अर्थात् आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देनेवाला, भक्ति और ज्ञान का मेल कराके इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देनेवाला और इसके द्वारा संसार से दुःखित मनुष्यों को शान्ति देकर उन्हें निष्काम कर्तव्य के आचरण में लगानेवाला गीता के समान बालबोध ग्रन्थ, संस्कृत की कौन कहे, समस्त संसार के साहित्य में नहीं मिल सकता—केवल काव्य की ही दृष्टि से यदि इसकी परीक्षा की जाय तो भी यह ग्रन्थ उत्तम काव्यों में गिना जा सकता है, क्योंकि इसमें आत्मज्ञान के अनेक गूढ सिद्धान्त ऐसी प्रासादिक भाषा में लिखे गये हैं कि वे बूढ़ों और बच्चों को एक समान सुगम हैं और इसमें ज्ञानयुक्त भक्तिरस भी भरा पड़ा है। जिस ग्रन्थ में समस्त वैदिक धर्म का सार स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् की वाणी से संगृहीत किया गया है उसकी योग्यता का वर्णन कैसे किया जाय!"

इसमें सन्देह नहीं है कि गीताशास्त्र ऐसा ही तेजस्वी और निर्मल हीरा है—उपर्युक्त कथन की सत्यता को वे ही अनुभव कर सकेंगे जो 'कर्मयोग' मार्ग पर चलने लगे हैं या चल चुके हैं। केवल प्रातःकाल उठते ही 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' का पाठ करनेवाले गीतापाठी अनुभव नहीं कर सकेंगे। यदि अन्ध पुरुष स्तम्भ को नहीं देख सकता तो उस स्तम्भ का क्या अपराध! यह अपराध तो उस अन्ध पुरुष का ही है जो नहीं देख सकता।

धर्म के विषय में भी इस समय इतनी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं कि बड़े से बड़े विद्वान् को भी उसका सार समझा देना कठिन हो रहा है—सामान्य जनता की कौन कहे! केवल चार रोटी कमा कर खाना और बाल बच्चों को खिलाना धर्म है? थोड़ा सा दुःख होते

...हुए मित्र बन्धुओं को छोड़ अरण्य में जा कर निवास करना धर्म ...? परदास्य में आजन्म व्यतीत करना धर्म है ? केवल जटाधारी ...कर यज्ञ, आहुति में लगे रहना धर्म है ? अथवा धर्म क्या बला ...? संसार में रहते हुए और पापों से बचते हुए धर्म हो सकता ...? या विद्वान् लोगों ने केवल लोकवञ्चना के लिये एक धर्म का ...ढकोसला बना रखा है ? यह सब कुछ है क्या ? इत्यादि विषय ...का इतना अच्छा सोपपत्तिक व्याख्यान इस गीतारहस्य में किया है कि जिसको पढ़ कर अशान्त चित्त शान्त हो जाता है, संसार को दुःखमय समझ कर उससे भागने की तैयारी में लगा हुआ पुरुष सुख से संसार के कार्यों में तत्पर होता है। रहस्यकार ने ये सब बातें कोई नवीन ढूंढ कर नहीं निकालीं—सब कुछ शास्त्रों में लिखा है—उसी का उपपादन है। न्यायदर्शन में पूर्वपक्ष की ओर से जब कहा गया कि—

" विविधबाधनायोगाद्दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः "—४-१-५५ न्या० सू०।

यह संसार दुःखमय है—इसमें जन्मादि के झगड़े लगे ही रहते हैं। उत्तर में सिद्धान्तवादी कहते हैं कि—

" न सुखस्यान्तरालनिष्पत्तेः "—४-१-५६ न्या० सू०

यह संसार दुःखमय ही नहीं है—बीच बीच में सुख की उपलब्धि होती रहती है।

इस प्रकार शास्त्रकारों की दृष्टि में भी संसार केवल दुःखमय ही नहीं है।

पाश्चात्य विद्वान् हमारे शास्त्रकारों को Pessimists निराशा-वादी=संसार से घृणा करनेवाले व उसको दुःखमय समझनेवाले कहते हैं और अपने आप Optimists आशावादी बनते फिरते हैं परन्तु यह उनकी भूल है। सब शास्त्रकारों ने, संसार को सुखपूर्वक ...कर मोक्ष तक किस प्रकार पहुंचना चाहिये, इसी तत्त्व का ...दन किया है। उन्हों ने संसार से घृणा करना, उसको ...य छोड़ बैठना इत्यादि बातों का उपदेश नहीं किया। जो ...कार—" संसार में रहते हुए भी मनुष्य जीवन्मुक्त, विदेहमुक्त ...सकता है "—ऐसा प्रतिपादन करते हैं क्या वे कभी संसार से ...छोड़नेवाले थे। क्या जनकादिकों के दृष्टान्त विद्यमान नहीं हैं। ... तत्त्व रहस्यकार ने भली भाँति समझा दिया है। आज कल ... कि संसार में एक सिरे से दूसरे सिरे तक आग लग रही है ...र लोग संत्रस्त हुए धर्म कर्म को भूल, निवृत्ति का मनमाना अर्थ ...मझ, इधर उधर अस्तव्यस्त हुए फिरते हैं, ऐसे समय में इस ...रहस्य ' ने अवतार लेकर संसार का बड़ा उपकार किया है। अधीर ...ो धीर बनाया है, ' लोगो—कहाँ जगल में भग जाओगे ? ...यदि ठीक धर्म कर्म को समझ कर चलोगे तो इस संसार के कार्यों ...हो करते हुए भी तुम वैसे ही सुखी रह सकोगे। यदि संसार ...छोड़ा और तुम्हारी वासनाएँ तुम्हारे साथ गईं तो तुमने छोड़ा क्या ? बस ठहरो, कर्मयोग का आश्रय लो, और तुम दुःखों से तर जाओगे "—यह प्राचीन तत्त्व नवीन शब्दों में—प्रभावशाली शब्दों में—रहस्यकारने समझाया है।

एक बात पर हमारे प्राचीन ढर्रे के पण्डित बड़ा तूफान मचाते हैं —वह यह कि ज्ञानोत्तर कर्म नहीं करने चाहियें। वे कहते हैं जब वस्तुस्थिति का पूर्ण ज्ञान हो गया तब कर्म बनेंगे ही कैसे ? और करने से ही क्या लाभ ? रहस्यकार कहते हैं कि संसार बड़े लोगों के पीछे चलता है। इसलिये ज्ञानी पुरुष को लोकसंग्रहार्थ कर्म करते रहना चाहिये, क्योंकि लोग गतानुगतिक होते हैं। जैसा २ देखते हैं वैसा २ करते रहते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् के लोकसंग्रह इस शब्द पर लोग बड़ा वादविवाद करते हैं, परन्तु हमारी समझ में रहस्यकार का अभिप्राय मूलानुरूप और सर्वथा सुसंगत है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि रहस्यकार का आदि से लेकर अन्त तक समस्त विवेचन [illegible] पर है, वे—" [illegible] Arctic Home in the Vedas [illegible]—इस कोटि के नहीं हैं। [illegible] कि तिलक [illegible] पुस्तकें [illegible] हैं—[illegible] प्रकार [illegible]

[illegible]

[illegible] और पर्याय से उन्हीं ने

[illegible]

[illegible] है ! यह कर्मयोगी ही कर सकता है।

हम ने गीता पर लिखे हुए पचासों संस्कृत ग्रन्थ देखे, अंग्रेज़ी द्वारा पर लिखी हुई १०—१२ टीकाएँ भी देखीं, बाबू विपिनचन्द्र ... गीता, श्री० वसन्तीदेवी की गीता, लाला लजपतराय की गीता आर्यसामाजी पण्डितों की कांटी छांटी हुई गीता—ये सब देखीं पर हम सच कहते हैं कि हमको तो ये सब ऐसी फीकी (निस्तेज) प्रतीत हुईं कि उनके विषय में कुछ भी न लिखना अच्छा है।

गीतारहस्य में एक बड़ी त्रुटि यह है कि पाश्चात्य और पौरस्त्य तत्त्वज्ञान की तुलनात्मक दृष्टि से लिखे जाने के कारण कहीं कहीं तो इतना दुर्बोध है कि जिसने दोनों प्रकार के ग्रन्थ नहीं देखे वह शायद ठीक तत्त्व को समझ भी नहीं सकेगा। केवल संस्कृत पण्डित जब गीतारहस्य हाथ में लेंगे उनको एक सिरे से दूसरे सिरे तक ' अंगरेज़ीपन की बू ' आवेगी और वे इसको और दृष्टि से देखेंगे। जब अंगरेज़ीवाले गीतारहस्य को देखेंगे तब उन पर भिन्न प्रकार का प्रभाव रहेगा। उनके मन में प्राचीन ऋषिमुनि व शास्त्रों का आदर बढ़ेगा, जिस घृणा की दृष्टि से वे आज तक काम लेते हैं वह पार जाती रहेगी। अर्थात् गीतारहस्य के कारण पश्चिम की ओर झु...हुआ लोगों का मुख फिर पूर्व की ओर हो जायगा। यह बड़ा भारी काम गीतारहस्य करेगा। संसार का प्रवाह बदलना साधारण पुरुष का काम नहीं। लोकमान्य तिलक महाराज ही ऐसे कार्यों में समर्थ हैं। या तो शिवाजी के समय में स्वामी रामदास समर्थ कहलाए या अब इस समय ये दूसरे समर्थ उत्पन्न हुए हैं। इसलिये सुशिक्षित लोगों के लिये तो यह गीतारहस्य रहा पर अर्द्धशिक्षित लोगों के लिये एक सरल गीतारहस्य लिखा जाना चाहिये। तिलक महाराज ने अपने विचार अगली पीढ़ी तक पहुंचाने का यत्न किया इसके लिये भारतवर्ष के आबालवृद्ध उनके ऋणी हैं। इससे केवल महाराष्ट्र देश का गौरव नहीं किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष का गौरव है—हिन्दी साहित्य के सौभाग्य कि उसको अपनी बाल्य दशा में ही ऐसा अपूर्व ' कण्ठाभरण ' मिला। प्रत्येक हिन्दी भाषा भाषी का परम कर्तव्य होना चाहिये कि ऐसे अमूल्य रत्न का संग्रह करें। पुण्यपत्तन से ' हिन्दी चित्रमय जगत् ' निकाल कर महाराष्ट्र ने जतला दिया था कि " देखो ! सब से पूर्व महाराष्ट्र लोग ही हिन्दी को अपनाते हैं "—अब गीतारहस्य को हिन्दी में प्रकाशित कर यह जतला दिया कि महाराष्ट्र लोग इस हिन्दी को ' राष्ट्र-भाषा ' होने का मान देते हैं। इस हिन्दी गीतारहस्य से एक और भी बड़ा कार्य होगा। वह यह कि दक्षिण और उत्तर के लोगों में परस्पर विचारपरिवर्तन और प्रेमाभिवृद्धि होगी और सम्बन्ध निकटतर होंगे। संसार में विचारों की एकता चाहिये—... सब कार्य बनते हैं—बाकी लोकाचार, देशाचार, जात्याचार ये अनादिकाल से लगे हैं और समाप्ति तक लगे रहेंगे।

सूक्ष्म दृष्टि से गीतारहस्य का पर्यालोचन अशक्य है, अत ... दृष्टि से लिखते हैं—

१ विषय-प्रवेश—इस में " गीताधर्म का रहस्य प्रवृत्ति विषयक कर्मविषयक ही होना चाहिये "—इस प्रकृत विषय की ... लिये खूब ऊहापोह किया है और पाठकों को पारिभाषि... समझा दी है।

२ कर्मजिज्ञासा—इसमें कर्म की गति की अच्छी विवेचना है। प्राचीन श्रेष्ठ लोग संकट ... पड़ने पर कैसे बर्तना चाहिये। ... कैसे बर्ताव करते थे इत्यादि बतला कर " वेदान्त के गहन ... आधार पर ' कार्याकार्य व्यवस्थिति ' करनेवाला गीता ... ग्रन्थ संस्कृत में अन्य कोई नहीं, यह सिद्ध किया है।

३ कर्मयोगशास्त्र—योग शब्द का सोपपत्तिक अर्थ बतला... का तत्त्व समझा दिया है।

४ आधिभौतिक सुखवाद—इन्द्रियगम्य बाह्य सुखों की ... गम्य अन्तःसुख की अर्थात् आध्यात्मिक सुख की ... है इत्यादि सिद्ध किया है और केवल स्वार्थी, दूरदर्शी ... स्वार्थी इनका मनोरंजक वर्णन भी आया है।

५ सुखदुःखविवेक—इसमें सुख दुःख की मीमांसा है। ... पौरस्त्य दृष्टि से तुलना भी है।

६-७ [illegible]—इसमें ... [illegible] की आलोचना है—जो महत्त्वपूर्ण है।

किसको करते हैं यह भी जतलाया है। क्षराक्षर-विचार भी किया है।

८ विश्व की रचना और संहार—इसमें सांख्यशास्त्र की रीति से रचना संहार की गंभीर विवेचना है। प्रकृति और पुरुष ये दो ही स्वतन्त्र अनादि तत्त्व हैं इत्यादि।

९ अध्यात्म—पिण्ड ब्रह्माण्ड की जड़ में जो श्रेष्ठ तत्त्व है उसमें तद्रूप कैसे हो सकते हैं इत्यादि गंभीर रीति से विचार करने योग्य विषय हैं।

१० कर्मविपाक और आत्मस्वातन्त्र्य—कर्मफल, कर्मकाण्डी और कर्मयोगी इनके दो भिन्नमार्ग दो प्रकार के फल, आत्मा की स्वतन्त्रता क्या है इत्यादि उत्कृष्ट विवेचन है—

११ संन्यास और कर्मयोग—यह भाग सब से अधिक महत्त्व का है। संन्यास क्या है? कर्मयोग और संन्यास का आपात विरोध कैसे दीखता है और मेल कैसे बैठता है इसका अनुपम वर्णन है।

१२ सिद्धावस्था व व्यवहार—कर्मयोग का व्यवहार के साथ कैसे मेल होगा? सिद्धावस्था कब समझनी चाहिये इत्यादि। हमको सब से अधिक मनोरंजक यह भाग प्रतीत हुआ।

१३ भक्तिमार्ग—इस की विवेचना है और इसकी आवश्यकता और इससे लाभ दर्शाये हैं।

१४ गीताध्याय की संगति—अध्यायों की संगति भी रहस्यकार के अभिप्राय के साथ कैसे लग सकती है, यह संगति लगा कर बतलाई है।

१५ उपसंहार—इसमें पीछे कहे हुए का निचोड़ आया है।

इस प्रकार अन्तरंग परीक्षण के अनन्तर गीता का बहिरंग परीक्षण किया है जिसमें १-गीता और महाभारत, २-गीता और उपनिषद्, ३-गीता और ब्रह्मसूत्र, ४-भागवतधर्म का उदय और गीता ५ वर्तमान गीता का काल, ६-गीता और बौद्ध ग्रन्थ, ७-गीता और बाइबल, इन सात प्रश्नों पर नवीन परीक्षण रीति से खूब प्रकाश डाला है। इससे आगे रहस्यसंजीवन नामक गीता का प्राकृत अनुवाद है। इस प्रकार ८५२ पृष्ठों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। जिसको निःसन्देह आकर ग्रन्थ कह सकते हैं। श्रीकृष्णजी का जन्म भी कारागार में हुआ था। और इस गीतारहस्य का जन्म भी कारागार में हुआ। यह विचित्र साम्य मन में एक विचित्र भाव उत्पन्न करता है। यदि कृष्ण ने कंस-वध किया, यदि कृष्ण की गीता ने अर्जुन में प्राण डालकर सत्य का विजय करवाया तो क्या उसी कृष्ण की उसी गीता के इस रहस्य से भारतवासियों का अज्ञान दूर न होगा? अवश्य होगा। भारतवासियों का अज्ञान अब अधिक काल तक टिक नहीं सकता। मार्गदर्शक लोग-नेता लोग मार्ग दिखा देते हैं, चलना न चलना लोगों का काम है।

यदि लोग राजी खुशी से उस मार्ग पर चलने लगेंगे तो अच्छा है। उनको सुख होगा, उनका कल्याण होगा, नहीं तो काल बलवान् अपने उग्र दण्ड के प्रभाव से सब को उस मार्ग पर चलायेगा।

जब किसी महापुरुष में अटल श्रद्धा होती है तो उसकी कृति, उसकी प्रत्येक बात अपूर्व दीखती है। यद्यपि हमारी तिलक महाराज में अटल श्रद्धा है, तथापि अन्धभक्त हो कर हमने नहीं लिखा है। और शास्त्राशास्त्र के गहन विचार के समय में अन्धभक्ति काम भी नहीं देती। रहस्यकार स्वयं किसी के अन्धभक्त नहीं हैं। न वे दूसरों को अन्धभक्त होने का उपदेश देते हैं। गणपति उत्सव के अवसर पर म० कोल्हटकर के 'रहस्यमण्डन' का उत्तर देते हुए उन्होंने स्वयं यही कहा था। इतना लिख कर लेखक अपनी इस संक्षिप्त समालोचना को समाप्त करता है। ॐ तत्सत्।

चतुराबाई श्राविका-विद्यालय, शोलापुर।

पाठक और पाठिकाओ ! देखिये, हिन्दुस्तान के बच्चों की शिक्षा में [illegible] है। [illegible] भारत में भी ऐसी ही विद्यालय होनी चाहिये।

जर्मनी और रबर।

(लेखक—पु० वि० गोगटे, खण्डवा।)
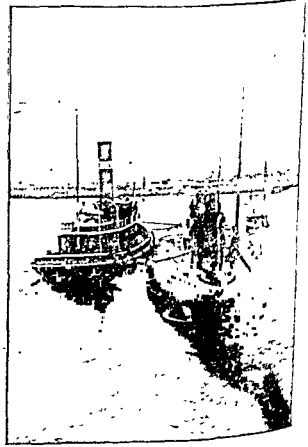
वर्तमान युद्ध में जर्मनी के व्यापार का ह्रास होने के कारण जर्मनी में रबर की बहुत कमी मालूम होने लगी है। जर्मनी में रबर के वृक्ष नहीं हैं और वहां की सर्द हवा में वे उग भी नहीं सकते, इस कारण जर्मनी को रबर के लिए दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है; अमेरिका के कुछ देशों से जर्मनी में रबर आती रही है। उन देशों में जर्मन लोगों की बस्ती है, इस लिए वे लोग जर्मनी को रबर भेजने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न करते रहते हैं। जर्मनी के व्यापारी जहाज, समुद्र में मित्रों की नाकेबन्दी के कारण, संचार नहीं कर सकते। जितना कुछ माल जर्मनी को जा सकता है सब उदासीन राष्ट्रों के जहाजों के द्वारा ही जा सकता है। परन्तु जब यह मालूम होजाता है कि उदासीन राष्ट्रों के जहाजों से जर्मनी को माल जाता है तब मित्रराष्ट्रों की ओर से उन जहाजों की भी तलाशी ली जाती है, इस कारण उन जहाजों के द्वारा खुल्लमखुल्ला जर्मनी को रबर नहीं भेजी जा सकती। डाकविभाग को एक प्रकार सारा संसार आदर की दृष्टि से देखता है, इस कारण डाक की थैलियां पवित्र मानी जाती थीं, अतएव बहुत दिनों तक मित्र देशों की ओर से डाक की थैलियां खोल कर नहीं देखी जाती थीं। जर्मनी ने इस बात से फायदा उठाया। यद्यपि डाक के द्वारा रबर मँगाने में बहुत व्यय होता है, तथापि रबर के अभाव में उससे भी अधिक हानि होने के कारण डाक के ही द्वारा रबर मँगाना प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार जब डाक के समान पवित्र विभाग से भी अप्रत्यक्ष रीति से शत्रु को सहायता मिलने लगी तब तो डाक के थैलों की भी जाँच होने लगी। इस जाँच से नाना प्रकार की मजेदार बातें बाहर आने लगीं। पत्रों के लिफाफों के द्वारा, पार्सलों के द्वारा, समाचारपत्रों के पाकटों के द्वारा, तम्बाकू के द्वारा, इत्यादि नाना प्रकार से जर्मनी को रबर जाती हुई देखी गई। जर्मनी को रबर की इतनी आवश्यकता क्यों हुई, और यदि वह न मिले तो उसकी क्या दशा हो, इत्यादि बातें ध्यान में आने के लिए यह जानना चाहिए कि रबर के गुणधर्म क्या हैं, उससे कौन कौन पदार्थ तैयार होते हैं और किस काम में उन पदार्थों की आवश्यकता होती है।

रबर अनेक जाति के वृक्षों से निकलती है। कुछ वृक्षों से दूध के समान एक पतला पदार्थ निकलता है। उसीमें न्यूनाधिकप्रमाण से रबर का अंश रहता है। जिस वृक्ष के दूध में रबर का अधिक अंश रहता है उससे रबर निकालना अधिक लाभदायक होता है। कोलम्बस ने जब दूसरी बार अमेरिका की सफर की तब उसने देखा कि मेक्सिको के दक्षिण की ओर के कुछ द्वीपों में लड़के एक प्रकार का मुलायम गेंद खेलते हैं। इस गेंद के विषय में जब उसने जानकारी प्राप्त की तभी से अमेरिका में रहनेवाले स्पेनिश लोगों को रबर का पता लगा। ये लोग रबर के दूध को मोटे कपड़े में पोत कर बरसात में ओवर कोट बनाने लगे। इसके बाद फिर मालूम हुआ कि इस दूध को सुखा कर गोलियां बना लेने से उनके द्वारा पेंसिल से लिखा हुआ मिटा सकते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रबर के विशेष गुण मालूम होने लगे और यूरप के लोगों को भी उसकी जानकारी हुई। तब से ही यूरप के लोग उसे मँगाने लगे। जब रबर के व्यापार में बहुत लाभ होने लगा तब साहसी लोगों ने सारे अमेरिका में घूम घूम कर रबर के वृक्षों का बड़े परिश्रम और उद्योग से पता लगाया। दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील देश में एमेजिन नदी के किनारे रबर के वृक्षों का एक बड़ा भारी बन मिल गया। इसके सिवाय और भी कई जगह रबर के अच्छे अच्छे वृक्ष मिले। उनमें से कुछ जाति के वृक्षों की फसल भी लगा कर देखी गई। परन्तु जब मालूम हुआ कि हर प्रदेश में फसल नहीं लग सकती, और यदि लगी भी तो रबर बहुत कम निकलती है तब गर्म प्रदेशों में रबर के वृक्ष लगाये जाने लगे। उनमें से दक्षिणी अमेरिका, आसाम, भारतीय महासागर के द्वीप, आफ्रिका का पश्चिमी किनारा और मारिशस टापू मुख्य हैं।

ब्राजील देश में रबर के वृक्षों का बन है, इसलिए वहां वृक्ष काट कर दूध जमा करने की रीति पाई जाती है। परन्तु इस रीति से वृक्षों को हानि होती है, इसलिए फसल में लगे हुए वृक्ष से इस प्रकार दूध नहीं निकालते। वृक्षों की छाल में एक खड़ी दरार कर देते हैं और उस दरार के निचले सिरे पर एक दोना मिट्टी से जमा कर रखते हैं। एक दिन में उस दोनेमें लगभग दस तोला दूध जमा होता है। दूसरे दिन उस खड़ी दरार के ऊपर एक आड़ी दरार कर देते हैं और पहले दिन का रखा हुआ दोना निकाल कर उसकी जगह दूसरा खाली दोना रख देते हैं। इस प्रकार वृक्ष के भिन्न भिन्न भागों में खड़ी और आड़ी दरारें डाल कर प्रत्येक फसल में बड़े वृक्ष से मिट्टी के तेल के लगभग चार पीपे दूध निकालते हैं। यह दूध यदि भर कर रख छोड़ा जाय तो सड़ जाता है, इस लिए उसे पतला फैला कर सुखा लेते हैं, अथवा आग पर सुखा लेते हैं। अथवा, जिस प्रकार दूध में कोई आम्लपदार्थ डालने से दही की फुटकियां जम जाती हैं और पानी अलग हो जाता है, उसी प्रकार रबर के दूध में एक प्रकार का पत्ता डाल देने से उसकी फुटकियां जम जाती हैं और पानी अलग हो जाता है। इन दोनों में से किसी भी रीति से रबर जमा लेने से वह बाहर के व्यापारियों के पास भेजने योग्य हो जाती है। एक वृक्ष से लगभग दो पौंड गाढ़ी रबर तैयार होती है। कोलम्बस स्पेन देश से भारतवर्ष का पता लगाने के लिए चला था। बहुत दिनों बाद जब उसे पृथ्वी देख पड़ी तब उसने समझा कि यही भारतवर्ष होगा और इसी लिए उसने अमेरिका को "इंडिया" और वहां के जंगली लोगों को इंडियन कह कर पुकारा। यूरप में जब यह बात जानी गई कि इंडिया से आये हुए एक प्रकार के गोंद से पेंसिल के लिखे हुए अक्षर मिटाये जा सकते हैं तब उस गोंद को "इंडिया रबर" (इंडिया से आया हुआ मिटाने का पदार्थ) नाम दिया गया और तब से इंडिया रबर अथवा केवल "रबर" नाम का प्रचार हुआ।

रबर के खेतों से अथवा जंगलों से जिस रूप में रबर आती है उस रबर को कच्ची रबर अथवा कौचौक (Caoutchouc) कहते हैं। उस रूप में रबर हाथ में चिपट लगती है और ऐसी रबर के दो टुकड़े यदि जोर से दाबे जायँ तो वे एक हो जाते हैं। कच्ची रबर में अपने पूर्वस्वरूप को स्थिर रखने की शक्ति (स्थिति-स्थापकता) बहुत कम होती है। शीत के योग से रबर कड़ी और दृढ़ होती है तथा गरम करने से नरम होती और पिघलती है। कच्ची रबर पानी, मद्यार्क, अनेक प्रकार के क्षार और एसिडों में गलती नहीं। ईथर, क्लोरोफार्म, कारबन, बायसल्फाइड, टरपेंटाइन, नेपथा, पेट्रोलियम, बेनज़ीन, इत्यादि के समान शीघ्र ज्वालाग्राही और हलके (विशिष्ट गुरुत्व में हलके) द्रवों में यह रबर पिघलती है। मद्यार्क और गंधक के तेज़ाब के मिश्रण को तपाने से जो भाफ निकलती है उसको ठंढा करने से जो द्रवरूप पदार्थ बनता है उसको ईथर कहते हैं। शस्त्रक्रिया करते समय रोगी को बेहोश करने के लिए जो द्रव सुँघाया जाता है उसको क्लोरोफार्म कहते हैं। प्रखर अंगारों पर से गंधक की भाफ चलाने से कोयले के कारबन नामक तत्व का गंधक से जो संयोग होता है उससे एक दुर्गन्धियुक्त द्रव पदार्थ तैयार होता है उसको कारबन बायसल्फाइड कहते हैं। नेपथा, पेट्रोलियम, बेनज़ीन, इत्यादि तेल मिट्टी के तेल को खान से निकलनेवाले द्रव में रहते हैं। इसको तपाने से उसमें से भिन्न भिन्न उष्णतामान के अनुसार भिन्न भिन्न तेल निकलते हैं, उनमें से गैसोलीन, नेपथा, बेन-

लीन, पेट्रोल, केरोसिन १२५ दर्जे का, केरोसिन १५० दर्जे का, मॅशीन-आइल (यंत्रों में लगाने का तेल) वेसलीन, पैराफ़िन, इत्यादि मुख्य हैं। पत्थर का कोयला, अथवा लकड़ी बन्द भट्टी में तपाने से दीपक जलाने योग्य धुआं और अन्य पदार्थ निकलते हैं। इन अन्य पदार्थों में कुछ शीघ्र ज्वालाग्राही तेल होते हैं। उनमें भी नेपथा और बेन्ज़िन मुख्य हैं।

कच्ची रबर में पत्थर, लकड़ी और अन्य कूड़ा-करकट बहुत रहता है। इसमें से कुछ कूड़ा-करकट आप ही आप आता होगा, परन्तु कारखानेवाले कहते हैं कि उसका अधिकांश भाग रबर का वज़न बढ़ाने के लिए, खेतवाले, जान बूझ कर मिलाते हैं। कारखानेवाले भी माल तैयार करते समय स्वयं चूना, खड़िया, काजल, तारकोल, बुरादा शंख, इत्यादि पदार्थ मिलाते हैं। वास्तव में इन पदार्थों के मिश्रण से रबर के गुणधर्म कम होते हैं, तथापि उन्हें इस प्रकार से मिलाते हैं कि ये पदार्थ जाने नहीं जाते और इस प्रकार बेईमानी करके अपना लाभ करते हैं। याद रहे कि ये कारखानेवाले और खेतवाले सब यूरोपियनही होते हैं जो सदैव अपनी सच्चाई का डंका पीटा करते हैं।

खेतवालों के यहां से जब रबर कारखानेवालों के पास आजाती है तब उसका कूड़ा करकट—फिर वह चाहे आपही आप आया हो, अथवा खेतवालेने जान बूझ कर मिलाया हो—कारखानेवाले को निकालना पड़ता है। पानी की एक बड़ी टंकी में रबर भर कर उस टंकी में आंच देते हैं। पानी में उफान आते ही कच्ची रबर पिघल जाती है और उसमें मिले हुए पत्थर अथवा अन्य वज़नी पदार्थ पानी के नीचे जा बैठते हैं। हलका कूड़ा करकट पानी के ऊपर उतराने लगता है। इस प्रकार रबर शुद्ध कर लेने पर उसको धोना शुरू करते हैं। इस क्रिया में यह शुद्ध की हुई रबर दूसरी टंकी में भरते हैं। यह टंकी ऐसी बनी होती है कि पानी एक ओर से आकर दूसरी ओर से बह जाता है और इस बहते हुए पानी में छुरियां फिरती रहती हैं। छुरियों से रबर छिन्नभिन्न हो कर बहते पानी से धुलती जाती है। यह शुद्ध और धोई हुई रबर बड़े रोलर में दाब कर उसका पतला पत्रा बनाते हैं। इस पतले पत्रे में पानी का बहुतसा अंश रह जाता है, इसलिए फिर उसे भाफ की गर्मी से सुखाते हैं। इस पत्रे में स्थिति-स्थापकता बिलकुल ही नहीं होती। इन पत्रों को उपर्युक्त किसी भी द्रावक पदार्थ में पिघलाने से रबर सोल्युशन तैयार हो जाता है। यह सोल्युशन बाइसिकल के ट्यूब के छिद्र अर्थात् पंक्चर बन्द करने में उपयोगी होता है। इसी प्रकार का पतला सोल्यूशन तैयार कर के कपड़े पर ब्रश से लगाते हैं, इसके बाद उस कपड़े को दो रोलरों में दबाते हैं, इससे रबर कपड़े के के भीतर भिद जाती है। इस पर एक और क्रिया (यह क्रिया आगे दी है) होने पर रबर की चिपचिपाहट दूर हो जाती है और वह अधिक मज़बूत हो जाती है। इस प्रकार जो कपड़ा तैयार किया जाता है उसमें पानी नहीं भिदता—उसे वाटरप्रूफ कहते हैं। उस कपड़े को काट कर के उपर्युक्त सोल्यूशन से चिपकाते हैं। कुछ विशिष्ट उष्णतामान पर दाबने से ये कपड़े के जोड़ पक्के हो जाते हैं। और उन्हें सीने की आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रकार से इस जलाभेद्य कपड़े का ओवरकोट, बिस्तर को पानी से बचानेवाला आवरण, इत्यादि अनेक वस्तुएं बनाते हैं।
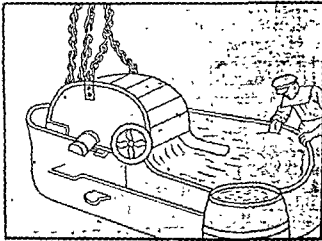
थोड़ासा कारबन बायसल्फाइड और उसका $\frac{1}{6}$ भाग ..., इन दोनों के मिश्रण में उस मिश्रण का आधी रबर यदि पिघलाई जाय तो एक मुलायम गोला सा तैयार होता है। यह गोला एक यंत्र में डाल कर दाबने से रबर के बारीक तन्तु छिद्रों से लम्बे ही लम्बे निकलते हैं, इन तन्तुओं के आगे मुलायम कपड़े का एक पट्टा फिरता रहता है। यंत्र के छिद्रों से निकले हुए तन्तु इस पट्टे पर पड़ कर साथ आगे जाते हैं और इस प्रकार कुछ देर इस कपड़े के पट्टे पर प्रवास करने से उन तन्तुओं का कारबन बायसल्फाइड उड़ जाता है और वे सूख जाते हैं। कारबन बायसल्फाइड के प्रभाव से इन तन्तुओं में स्थितिस्थापकता आती है। फिर इन तन्तुओं को खिंची हुई अवस्था में चर्ख़ी में लपेटते हैं। ऐसी दशा में बहुत देर तक रहने से उनकी स्थितिस्थापकता नष्ट होती है। इसके बाद धागे के साथ इन तन्तुओं को बुन कर कपड़ा अथवा फ़ीता तैयार करते हैं। फिर इस कपड़े या फ़ीते पर गरम इस्त्री फिराते हैं। इस्त्री से तन्तुओं का स्थिति-स्थापकत्व फिर आजाता है। यह कपड़ा और यह फ़ीता इलॅस्टिक (elastic) नाम से प्रसिद्ध है। बिना बन्द के बूट और मोज़ों के बन्द तथा अन्य अनेक चीज़ें इन्हीं से तैयार की जाती हैं। रबर के सोल्यूशन में रंग तथा और कुछ पदार्थ डाल कर बरसाती अथवा पानी में चलनेवाले बूट का रोगन तैयार करते हैं। चमड़े पर यह रोगन लगा देने से वह भींगता नहीं और बूट के छिद्र इस रोगन से भर देने पर उनमें पानी नहीं जाता। इमरी नाम का एक बहुत कड़ा पत्थर होता है। उस पत्थर के आटे में रबर का सोल्यूशन मिला कर खूब दाब देकर उससे चाक तैयार करते हैं। इन चाकों को इमरी व्हील अर्थात् इमरी के चाक कहते हैं। लोहा, फ़ौलाद इत्यादि कठोर पदार्थ घिसने तथा मांजने में उन चाकों का उपयोग किया जाता है। सदा व्यवहार में आनेवाले धातुओं के पदार्थ तैयार करने में तो इन चाकों का उपयोग होता ही है, परन्तु युद्धसामग्री तैयार करने में भी इन चाकों की बड़ी जरूरत पड़ती है। जर्मनी में ये चाक बहुत अधिक तैयार होते हैं। इस प्रकार कच्ची रबर के छोटेमोटे अनेक उपयोग हैं; परन्तु रबर में स्थितिस्थापकता बढ़ा कर जब उसे टिकाऊ बना लेते हैं तब उसके असंख्य उपयोग होते हैं।

रबर धोने का यंत्र।

रबर की स्थिति-स्थापकता बढ़ाने के लिए और उसको टिकाऊ बनाने के लिए उस पर एक क्रिया की जाती है। आधी उन्नीसवीं शताब्दी व्यतीत हो जाने के बाद इस क्रिया का आविष्कार हुआ। कच्ची रबर में गन्धक का चूर्ण मिला कर उस मिश्रण को २४० से ३१० दर्जे फारेनहाइट तक गरम करने से रबर और गन्धक का संयोग होकर रबर अधिक टिकाऊ और स्थितिस्थापक होती है। इस क्रिया का जब से प्रयोग होने लगा तब से व्यवहार में रबर का अधिकाधिक उपयोग होने लगा। और उसकी मांग भी उसी हिसाब से बढ़ने लगी। कच्ची रबर हाथ में चिपकती है; ठंडी करने से कड़ी और दृढ़ होती है; गरम करने से पिघलती है; उसमें स्थितिस्थापकता नहीं होती। ये दोष रबर में गन्धक मिलाने से दूर हो जाते हैं। फिर वह हाथ में नहीं लपटती; साधारण सर्दी अथवा गर्मी में उसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता और वह इतनी कल्पनातीत स्थितिस्थापक बन जाती है कि उतना स्थितिस्थापकत्व अन्य दूसरी जगह मिल ही नहीं सकता। उसके इसी विशिष्ट गुण के कारण स्थितिस्थापकत्व का अर्थ रबर और रबर का अर्थ स्थिति-स्थापकत्व—ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हो रहे हैं। रबर में गन्धक मिलाने से उसमें एक यह और विशेष गुण आ जाता है कि वह किसी भी द्रव में पिघलती नहीं। रबर में गन्धक मिलाकर दोनों के उष्णता से संयोग करने को अँगरेजी में वल्कनाईज़ेशन (Valcanisation) कहते हैं। व्यवहार में देख पड़नेवाली रबर की सब वस्तुएँ, अर्थात् पेंसिल अथवा स्याही मिटाने की रबर, बाइसिकल के ट्यूब, टायर्स मोज़ों के बन्द, रबर की नलियां इत्यादि सब वस्तुएं गन्धकमिश्रित रबर की होती हैं। कच्ची रबर और गन्धकमिश्रित रबर का अन्तर दिखाने के लिए गन्धकमिश्रित रबर को हम "पक्की रबर" कह सकते हैं। रबर की सब व्यवहारोपयोगी वस्तुएं पक्की ही रबर की बनती हैं। इधर कुछ दिनों से पक्की रबर बनाने की भिन्न भिन्न युक्तियां प्रचलित हुई हैं। चाहे किसी युक्ति से भी रबर पक्की की जाय, परन्तु रबर और गन्धक का यह संयोग

हुए बिना काम नहीं चलता। हां, इन युक्तियों में इस बात का अवश्य ध्यान रक्खा गया है कि गन्धक जो मिलाया जाय तो किस तरह मिलाया जाय जिससे मिलाने में सुभीता हो और खर्च कम हो और इन युक्तियों के निकालनेवालों ने अपनी अपनी युक्तियों की विशेषता दिखला कर उन्हें पेटेंट भी करा लिया है।

रबर को पक्का बनाने के लिए उसमें दो सैकड़ा से लेकर चालीस सैकड़ा तक गन्धक मिलाते हैं। गन्धक यदि कम हुआ तो रबर से संयोग होने के लिए उष्णता कम देनी पड़ती है और यह रबर बहुत मुलायम होती है। बाइसिकल के ट्यूब अथवा मोजों के बंदों में गन्धक का परिमाण ज्यों ज्यों बढ़ाया जाता है त्यों त्यों यह अधिकाधिक कठोर होती जाती है और गन्धक का संयोग होने के लिए अधिकाधिक उष्णता देनी पड़ती है। मोटर अथवा बाइसिकल के टायर्स, घोड़ा गाड़ी के टायर्स, पेंसिल अथवा स्याही पोंछने, बाइसिकल के पेडल्स, गेंद, स्टेम के वाशर, इत्यादि में जो रबर काम में लाई जाती है उसमें गन्धक अधिक रहता है। इससे भी अधिक अर्थात् ४० फीसदी तक गन्धक का परिमाण किया जाय तो रबर बहुत ही कठोर और नैसर्गिक काले रंग की हो जाती है। इस प्रकार की कठोर और काली रबर को अंग्रेज़ी में वलकनाइट (Vulcanite) अथवा एबोनाइट (Ebonite) कहते हैं। वलकनाइट ३१० दर्जे फारेन हाइट उष्णता से पिघलती है। इतनी उष्णता देने तक उसमें कुछ भी अन्तर नहीं आता। उसके इसी गुण के कारण भाफ के एंजिन में अथवा अन्य यंत्रों में जहां उष्णतामान ३०० दर्जे के नीचे ही रहता है, वलकनाइट का अथवा अधिक गन्धक वाली रबर के वाशर का व्यवहार करते हैं। वलकनाइट को ३०० दर्जे पिघला कर सांचे में दाबने पर उसको चाहे जिस आकार में ला सकते हैं। यह पदार्थ एक प्रक्रिया से हाथीदांत के समान चमकदार बन जाता है। फर्क इतना ही रहता है कि रंग इसका काला होता है और हाथीदांत का सफेद होता है। हाथीदांत महँगा और काटने में कठिन होता है और वलकनाइट सस्ता तथा सहज में ही चाहे जिस आकार में लाया जा सकता है। सांचे में चाहे जितनी बारीक नक्काशी का काम हो, तथापि वह वलकनाइट पर अच्छी तरह उठ आता है। इस प्रकार के अनेक गुण उसमें होने के कारण हाथीदांत की जगह उसने अच्छी तरह लेली है। बड़े बड़े महलों अथवा नाज़ुक मिज़ाज़ धनवानों के कमरों में, जहां बूट की आवाज भी सहन नहीं होती, वलकनाइट के पत्रों की फर्शबन्दी की जाती है। इस फर्शबन्दी से बूट की आवाज़ बिलकुल ही नहीं होती। वलकनाइट की वस्तुओं में से कंघे, बटन, फाउंटेन पेन, इत्यादि वस्तुएं ऐसी हैं जो नित्य के व्यवहार में पाई जाती हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि व्यापार की प्रतियोगिता में लाभ उठाने के लिए, रबर को पक्का करते समय, गंधक के साथ अन्य वस्तुएं भी कारखानेवाले मिलाते हैं। वास्तव में देखा जाय तो उन वस्तुओं से रबर के गुणों में वृद्धि नहीं होती, किन्तु उनमें कमी आ जाती है।

ऊपर पक्की रबर के जो गुण दिखलाये हैं वे जितने महत्व के हैं उतने ही महत्व का एक और गुण उसमें है और वह गुण विद्युद्रोधकता है। लाक्ष, गन्धक, कांच, इत्यादि विद्युद्रोधक पदार्थ हैं; परन्तु इस बात में भी सब से अधिक रबर ही व्यवहारोपयोगी सिद्ध हुई। समुद्र के गर्भ से विद्युत्-सन्देश भेजने के तारों को, रबर से विद्युद्रोधक बना कर ऊपर से सन लपेटते हैं, अधिक मजबूती के लिए उनमें फौलादी तार का अथवा शीशे का आवरण लगाते हैं। डायनामो अथवा विद्युदुत्पादक यंत्र में उत्पन्न होने वाली विद्युत् निश्चित मार्ग से बाहर निकले और यंत्र की यंत्र में ही फिर न लौट जाए—इसके लिए बहुत जगह विद्युद्रोधक पदार्थ का उपयोग करना पड़ता है। बिजली बन्द करने अथवा जारी करने अथवा न्यूनाधिक करने की सब कुंजियां विद्युद्रोधक पदार्थों की बनानी पड़ती हैं। जहां जहां विद्युद्रोधक की आवश्यकता रहती है वहां वहां वलकनाइट का प्रयोग किया जाता है। इस काम के लिए रबर के समान अन्य कोई उपयोगी पदार्थ नहीं है; यही नहीं बल्कि यदि रबर की जगह इस काम में दूसरे पदार्थ का प्रयोग किया जाय तो यह भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि डायनामो में से बिजली का प्रवाह बराबर एक समान बहेगा अथवा नहीं। गन्धक और लाक्ष इत्यादि पदार्थ यद्यपि विद्युद्रोधक हैं, तथापि डायनामो के समान, एक मिनट में दो हजार चक्कर करनेवाले शीघ्रगामी यंत्र में, वे एक क्षण भर भी ठहर नहीं सकते। कांच विद्युद्रोधक है; परन्तु कांच को चाहे जिस आकार में लाना, छेद करना, इत्यादि काम बहुत मुश्किल हैं और भट्टी के अभाव में तो बिलकुल असम्भव हैं, इसलिए डायनामो में अथवा तारों के वेष्टन में कांच का भी उपयोग नहीं हो सकता।

अब इससे यह बात पाठकों के ध्यान में सहज ही आ जायगी कि इस समय जर्मनी को रबर की आवश्यकता विशेष क्यों मालूम होती है और बहुतसा व्यय सहन करके भी वह बाहर से रबर मँगाने का प्रयत्न क्यों करता है। हमारे देश में चौमासा खतम होने पर शेष आठ मास पानी नहीं बरसता और यदि कभी बरसा भी तो बहुत कम; वहां ऐसा हाल नहीं है। वर्षा अमुक ऋतु में ही हो—ऐसा कोई निश्चय नहीं रहता। हां, यह बात जरूर रहती है कि किसी समय पानी अधिक होता है और किसी समय कम। इस कारण सैनिकों का तथा उनके कपड़ों इत्यादि का पानी से बचाव करने के लिए जलाभेद्य कपड़ों का बन्दोबस्त अवश्य करना पड़ता है। पैर के जोड़े भी जलाभेद्य बनाने पड़ते हैं। उनको रसद पहुंचाने के लिए, गोलाबारूद पहुँचाने के लिए और उनकी सवारी के लिए मोटर का उपयोग करना पड़ता है। इन मोटरों के टायर्स और ट्यूब्स सदैव चलते रहने के कारण घिस जाते हैं और उतनी रबर की आवश्यकता जर्मनी में बनी ही रहती है। इस कारण जर्मनी बड़ी अड़चन में पड़ गया है; क्योंकि यदि मोटरों का उपयोग ही न करे तो काम नहीं चलता और यदि उपयोग करता है तो रबर नहीं है। जिस प्रकार राक्षस काम अधिक करता है; पर साथ ही उसे खाने की भी अधिक आवश्यकता रहती है उसी प्रकार मोटरों से कार्य बहुत होता है; पर साथ ही उनका व्यय भी बहुत होता है। मोटरों के टायर्स और ट्यूब्स में जो रबर लगती है उसके अतिरिक्त और कार्यों में भी रबर की आवश्यकता कम नहीं है। जगह जगह आकाशयानों को घुमाने के लिए विद्युज्ज्योति अर्थात् सर्चलाइट के निमित्त बिजली के यंत्रों की योजना की गई है। जेप्लिन पर भी बिजली के यंत्र हैं, समुद्र में सुरंगें लगा कर, उन सुरंगों के, विद्युद्रोधक पदार्थ से लपेटे हुए तार किनारे तक फैलाये गये हैं; और इन तारों के द्वारा सुरंग उड़ाने के लिए जगह जगह बिजली के यंत्र रखे हुए हैं। इन सब बिजली के यंत्रों में और तारों को विद्युद्रोधक बनाने में रबर की आवश्यकता होती है। सदैव व्यवहार में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनको छोड़ दिया जाय तो भी जर्मनी को उपर्युक्त कार्यों के लिए सब प्रकार से रबर की आवश्यकता है। कई वर्षों से जर्मनी रासायनिक संयोग से कृत्रिम रबर तैयार करने का प्रयत्न कर रहा है; परन्तु जब कि वह बाहर से रबर मँगाने में बहुत सा धन व्यय कर के अनेक प्रकार के प्रयत्न कर रहा है तब ऐसा जान पड़ता है कि कृत्रिम रबर बनाने में उसे सफलता नहीं हुई है।* लड़ाई की आवश्यकताओं के निमित्त से जिस प्रकार अन्य अनेक नवीन आविष्कार हुए हैं उसी प्रकार यदि कृत्रिम रबर का भी आविष्कार हो गया तो रबर के व्यापार में बड़ी हलचल मच जायगी और आज जिस प्रकार जर्मनी के कृत्रिम नील से असली नील का महत्व चला गया है उसी प्रकार असली रबर को भी कोई नहीं पूछेगा, इसमें सन्देह नहीं। कृत्रिम रबर यदि सस्ती पड़ी तो उसका उपयोग दुनिया में बहुत बढ़ जायगा, और न जाने कितने नवीन पदार्थ उससे और बनने लगेंगे।

---

* सितम्बर १९१६ के 'टाइम्स' पत्र में एमस्टर्डाम के तार से यह समाचार आया है कि जर्मनी को कृत्रिम रबर तैयार करने में सफलता हुई और यह रबर असली रबर से किसी बात में कम नहीं है।

भारतवर्ष के पितामह दादाभाई नौरोजी।

आज से ठीक ९२ वर्ष पहिले ता० ४ सितम्बर स० १८२५ ई० को एक दरिद्री पारसी ब्राह्मण कुल में श्रीयुत दादाभाई जी का जन्म हुआ। राष्ट्र से सच्चा प्रेम रख कर उनके लिये आजन्म कष्ट सहनेवाले देशभक्तों के प्रति जो भक्ति, आदर और प्रेम राष्ट्र को होता है उसी प्रकार का सच्चा आदर और अभिमान दादाभाई जी के प्रति राष्ट्र को है। आज दस बारह वर्ष से जो उनकी जयन्ती मनाई जाती है उससे उपर्युक्त बात स्पष्ट होती है। रामजयन्ती, कृष्णजयन्ती, शिवजयन्ती के साथ साथ दादाभाईजयन्ती, तिलकजयन्ती भी राष्ट्र के पंचांग में त्योहार की तिथियाँ होगई हैं। गत चार सितम्बर को दो तीन जगहों में जो दादाभाई जी का जयन्त्युत्सव मनाया गया उसमें बम्बई नेशनल युनियन संस्था का मनाया हुआ उत्सव विशेष वर्णनीय था। नेशनल युनियन संस्था दादाभाई जी के जन्मदिन पर ही स्थापन की गई है। तथा नेशनल युनियन अपना उत्सव प्रति

पूज्यवर दादाभाई नौरोजी, श्री० केलकर तथा नेशनल युनियन के सभासद।

वर्ष बड़े समारोह से मनाती है। उसका अधिकांश श्रेय बम्बई के प्रसिद्ध नेत्रवैद्य डाक्टर दिनकरराव साठे तथा उनकी मित्रमंडली को है। दादाभाई-जयन्ती के दिन इस संस्था की तरफ से किसी न किसी विद्वान् पुरुष का व्याख्यान होता है। इस वर्ष महाराष्ट्र के अग्रणी, केसरी तथा मराठा के सम्पादक, लोकमान्य तिलक जी के दाहने हाथ श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर जी का व्याख्यान श्रीयुत पटेल जी के सभापतित्व में हुआ। व्याख्यान बहुत ही उत्तम तथा पठनीय है। पहले केलकरजी ने कहा कि दादाभाई के समान पूज्य देशभक्त नेता जो दीर्घायु हो रहा है, यह हमारे लिए अभिमान तथा गौरव का विषय है। इसके बाद उन्होंने फिर उनके पूर्वचरित्र का वर्णन किया। केलकर महाशय ने बतलाया कि दादाभाई नौरोजी ने सरकारी नौकरी करने का लोभ छोड़ कर जो सार्वजनिक कार्यों में आयु बिताने का निश्चय किया; श्रीयुत गोखले इंजिनियर होने से बच गये; सुरेन्द्र बाबू तथा अरविन्द बाबू ने सिविल सर्विस से मुँह मोड़ा, यह हमारे राष्ट्र का बड़ा सौभाग्य है। श्रीयुत दादाभाई जी ने अपनी २६ बरस की अवस्था में बम्बई में 'रास्त-गोफ्तार' नामक पत्र निकाला। तथा ३० बरस की अवस्था में वह इंग्लैंड गये, और वहां उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये एक संस्था स्थापन की। स० १८६९ ई० में भारतवर्ष में वापस आये। उस समय बम्बई में लोगों ने उन्हें मानपत्र दिया था। स० १८७४ ई० में वह बड़ौदा राज्य के दीवान हुए तथा स० १८९२ में वह ब्रिटिश पार्लिमेंट में निर्वाचित हो, भारत के तमाम काम करते रहे। स. १८८६, १८९३ तथा १९०६ की राष्ट्रीय सभा के वह अध्यक्ष बनाये गये। इन तीनों राष्ट्रीय सभाओं के पर दादाभाई जी के विचारों की जो उत्क्रान्ति दृष्टिगोचर में स्पष्ट होती है।

सन १८८६ में सभापति के नाते से दिये हुए भाषण में जनता की न्यायबुद्धि पर उनका पूर्ण विश्वास दिखता है, १८९३ में कुछ कम हुआ, तथा १९०६ में बिलकुल उड़ गया दिखाई देता है। अन्त में उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी है तक हम लोगों को 'स्वराज्य' न मिले, काम नहीं चल। भारतवर्ष से बाहर जाते हुए धन को देख कर दादाभा दुखित होते रहे हैं। उनके सब लेखों, व्याख्यानों तथा में आर्थिक विषय पर अच्छी चर्चा रही है। जब तक शरीर रही, दादाभाई ने बराबर अपनी प्रिय मातृ-भूमि की तन, मन, से सेवा की परन्तु अब वह समुद्र किनारे के वेरसवा ग्राम स्वस्थ चित्त से भारतवर्ष का हित-चिन्तन करते हुए अपना स बिता रहे हैं।

केलकर जी के इस प्रकार के हृदयद्रावक व्याख्यान के पश्चा श्रीयुत दादाभाई जी का दर्शन करने के लिये, बम्बई नेशनल युनि की तरफ से, श्रीयुत पटेल, श्रीयुत केलकर, डा० साठे, डा० वेलक श्रीयुत ललित, श्रीयुत नवलकर आदि महाशय वेरसवा को गये। श्रीयुत दादाभाईजी का दर्शन करने के पश्चात्, दादाभाईजी सब महाशयों के साथ फोटो लिया गया। वह फोटो आज अपने पाठकों को भेट करते हैं। इस अवसर पर दादाभाईजी प्रत्यक्ष दर्शन यद्यपि संभव नहीं है, तथापि उनके फोटो का दर्श हिन्दी चित्रमय जगत के पाठकों को अवश्य ही आनन्ददायक होगा। नेशनल यूनियन के सभ्यों से उन्होंने उस दिन जो शब्द कहे हैं प्रत्येक पुरुष के अन्तःकरण में सदैव खचित रहेंगे और वे शब्द ये हैं उनके — "जिस ध्येय का हम इतने दिनों से चिन्तना कर रहे हैं, पूर्ण होने का समय अब बिलकुल समीप आ गया है।" अब सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की यही इच्छा है कि परमेश्वर श्री० दादाभाई नौरोजी को ऐसी दीर्घायु प्रदान करे कि जिससे वे "इसी दश और इन्हीं नेत्रों" से अपने चिन्तित ध्येय को पूर्ण होता हुआ देखें।

भारतीय महिलाविश्वविद्यालय।

प्रसिद्ध भारतहितैषी आंग्ल पुरुष सर विलियम् वेडरबर्न प्रो० करवे को लिखते हैं:—

"As I should like to be associated with the inception of the independent Poona movement for the higher education of Indian women, please accept enclosed cheque for Rs. 300, to be applied in such way as you may consider most useful."

सारांश, पूना में भारतीय देवियों को उच्च शिक्षा देने के लिए आप लोग जो उद्योग कर रहे हैं उसमें मेरी पूर्ण सहानुभूति है, और तदर्थ ३०० रु० का चेक भेजता हूं, कृपया स्वीकार कीजिए।

मार्च १९१६ का 'माडर्नरिव्यू' इस प्रकार लिखता है:—

"The Maharastra women's University inaugurated by Pro. Karve deserves success, as it cannot but be

बैठे हुए—द० रा० दिवेकर, गो० मा० चिपलूनकर, कु० शान्ताबाई देरलेकर, प्रो० धों० के० कर्वे, स० वि० जोशी, न० म० आठवले। खड़ी—कालेज की विद्यार्थिनें।

productive of great good. Similar schemes, with changes made according to local conditions, ought to be eloborated for all other provinces of India and carried out with great zeal."

सारांश, प्रोफेसर कर्वे के महिला-विश्वविद्यालय की हम सफलता चाहते हैं। इससे देश को बड़ा लाभ होगा। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों की देवियों को भी, कुछ प्रान्तीय फेरबदल के साथ, शिक्षा देने का इसमें अच्छा प्रबन्ध किया गया है।

× × × ×

जापानी स्त्रियों के विश्वविद्यालय की उन्नति देख कर पहले पहल प्रोफेसर कर्वे के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में भी इसी प्रकार के विद्यालय खुलने चाहियें।

गत दिसम्बर मास में सामाजिक परिषद् के सभापति की हैसियत से प्रो० कर्वे ने बम्बई में जो भाषण किया उसीमें पहले पहल उन्होंने अपना यह विचार जनता के समक्ष उपस्थित किया। इस पर महिलाश्रम के आजन्म सेवक श्रीयुत गाडगील ने प्रतिज्ञा की कि यदि हिंगणे-बुद्रुक* में नवीन प्रणाली के अनुसार लड़कियों का उच्च साहित्यात्मक कालेज खुलेगा तो वे वार्षिक एक हजार रुपये दस वर्ष तक देते रहेंगे। इसी प्रकार महिलाश्रम की अधिष्ठात्री श्रीमती सौभाग्यवती सरलाबाई नायक ने भी श्रीमान् गोडबोले के स्मरणार्थ खुले हुए फंड से चार हजार रुपये, कालेज में वाचनालय स्थापित करने के लिए, सहायता के तौर पर, देना स्वीकार किया।

जब इस प्रकार उपर्युक्त दो दान मिल गये तब प्रोफेसर कर्वे के महिला-विश्वविद्यालयसम्बन्धी प्रस्ताव को, अनाथबालिकाश्रम की कार्यकारिणी कमेटी ने, विचार के लिए ग्रहण किया। और अन्त में कमेटी ने इस प्रस्ताव के अनुसार कार्यक्रम निश्चित कर के और विश्वविद्यालय की योजना स्थिर कर के उसको अनाथबालिकाश्रम संस्था के सभासदों के समक्ष उपस्थित कर के फरवरी सन् १९१६ की १३ वीं तारीख को उसे पास कर लिया। उस समय भारत-

* यह स्थान पूना के निकट रमणीय जंगल में है। यहीं पहले पहल कर्वे महाशय ने अनाथबालिकाश्रम खोला, फिर कालांतर से महिलाविद्यालय और महिलाश्रम तथा महिलाविश्वविद्यालय कर दिया है। कई वर्ष से आप इसी केन्द्र से महाराष्ट्रीय महिलाओं के सुधार और संस्कार तथा शिक्षा का उद्योग, अपनी सहधर्मिणी तथा मित्रों की सहायता से, कर रहे हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग चार वर्ष पूर्व इस पुनीत आश्रम का दर्शन किया था। (बीच में तीन चार वर्ष लेखक बाहर रहा) अब तो देवियों का "विश्वविद्यालय" खुल जाने के कारण इस आश्रम की शोभा और भी बढ़ी होगी। शीघ्र ही दर्शन करने का विचार है। —सम्पादक।

sical Sciences) ६ प्राणिशास्त्र और वनस्पतिशास्त्र (Natural Sciences) ७ शिक्षणशास्त्र (Education) ८ गणितशास्त्र (Mathematics), ९ धर्म का तुलनात्मक ज्ञान (Comparative Religion), १० रेखाकला और चित्रकला (Drawing and Painting), ११ संगीतशास्त्र (Music)

(५) सिण्डिकेट की पास की हुई अन्य बातें और आगामी कार्यक्रम—हिंगणे का महिलाश्रम (Girl's High school), और महिलाविद्यालय (Women's College) ये दो संस्थाएं, जिनको कि अनाथबालिकाश्रम-मंडली चला रही है, भारतवर्षीय महिला विश्वविद्यालय ने अपने नियमन में ले ली हैं। विश्वविद्यालय की नियामक कमेटी (Syndicate) ने निम्नलिखित कार्यों के विषय में योजना तैयार करके उसे सेनेट के सामने उपस्थित करनेका विचार निश्चित किया है।
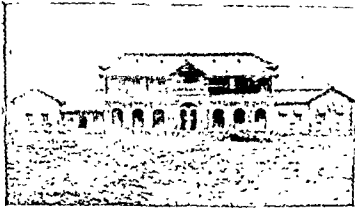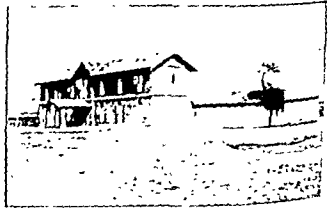
महिला-विद्यालय।

(१) भिन्न भिन्न सम्मतिदायी संघों को योग्य प्रातिनिधिक सम्मतियां मिलने की दृष्टि से सम्मतिदायी संघों के नियम में उचित परिवर्तन करना।

(२) संरक्षकों (Patrons) और सहायकों (Benefactors) का एक सम्मतिदायी संघ अलग तैयार करना।

(३) अन्य उचित परिवर्तन करना।

उपर्युक्त रीति से भारतवर्षीय महिला विश्वविद्यालय का प्रारम्भ ठीक तौर से हो गया है। विश्वविद्यालय का प्रस्तुत काम करनेवाली संस्थाएं, हिंगणे बुद्रुक का महिलाश्रम और महिलाविद्यालय, ये दो हैं। इन संस्थाओं के संचालकों को, अपना कार्य सफलतापूर्वक चलाने के लिए, सौभाग्य से, योग्य शिक्षक और अध्यापक भी मिल गये हैं। उनकी सूची इस प्रकार है:-

महिलाविद्यालय और महिलाश्रम के अध्यापक।

अध्यापक	धों० के० कर्वे बी० ए०
,,	द० रा० दिवेकर एम० ए०
,,	न० म० आठवले एम० ए०
,,	म० वि० जोशी बी० ए० एल० एल० बी०
,,	प्रो० ग० चिपलूणकर एम० ए०
,,	कुमारी आनन्दीबाई देवधर बी० ए०
,,	रा० के० गाडगील बी० ए०
,,	वा० गो० मालदेव बी० ए०

महिलामहाविद्यालय में इस समय पांच विद्यार्थिनें हैं। उनमें से एक बम्बई-विश्वविद्यालय की मेट्रिक परीक्षा पास है और बाकी चार भारतवर्षीय महिला-विश्वविद्यालय की सिण्डिकेट की प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण हैं। महिलाश्रम में इस समय महिलाविश्वविद्यालय का निश्चित किया हुआ, प्रवेशिका परीक्षा का पाठ्यक्रम जारी है और उस परीक्षा के लिए लड़कियों को तैयार करने का काम प्रारम्भ होगया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में उच्च स्त्रीशिक्षा के

अनाथबालिकाश्रम।

वास्ते यह बिलकुल अनूठी संस्था स्थापित हुई है और प्रत्येक स्वदेशाभिमानी पुरुष इसका अभिनन्दन करेगा। अब आवश्यकता यह है कि हमारे देश के धीमान् राजा महाराजा, सेठ साहूकार, इत्यादि लक्ष्मीपुत्र इस संस्था के लिए मुक्त हस्त से द्रव्यदान करें; विद्वान् और स्वार्थत्यागी पदवीधर इस संस्था के द्वारा विद्याप्रचार करने में अपना जीवन अर्पण करें; स्त्रीशिक्षा के प्रेमी सज्जन स्थान स्थान पर ऐसे महिलाविद्यालय स्थापित करें कि जिनसे इस विश्वविद्यालय के उद्देश्यों में सहायता पहुँचे और उच्च स्त्रीशिक्षा के प्रेमी सज्जन अपने यहां की देवियों को इस महिला-विश्वविद्यालय की शिक्षणसंस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेषित करें। हम चाहते हैं कि परमात्मा की कृपा से एक दिन वह आवे कि भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में एक एक दो दो महात्मा कर्वे उत्पन्न हो जावें, और इसी प्रकार के महिला-विद्यालय प्रत्येक प्रान्त में स्थापित हों, परन्तु जब तक ऐसा न हो, इस भारतीय महिला-विश्वविद्यालय से समस्त भारत को लाभ उठाना चाहिए और तन मन धन से इसकी सहायता करनी चाहिए।

सज्जन कौन है ?

जो न्याय-दृष्टि से सब का गौरवकर्ता।
मिथ्याभिमान परवशता का जो हर्ता॥
दुख-भोगों को मांगते न सत्पथ छोड़े।
कटु भाषण से न कभी निज नाता जोड़े॥
जो सहनशीलता को आभूषण माने।
मांगना किसी से कभी नहीं जो ठाने॥
जो दुखियों का दुख देख दया मन लाता।
है पतित जनों का भी जो आश्रयदाता।
जो अतिथि और विद्वानों का सत्कर्ता।
सत्कवियों का जो भक्त, धैर्य का धर्ता॥
मद मत्सर का है लेश न जिसके मन में।
जो लगा हुआ है परहित के साधन में॥
जो अपनी ही पत्नी से नेह लगाता।
परदारा को जो समझे है निज माता॥
समरांगण में न कभी जो पीठ दिखाता।
दुख सहने पर भी जो है सत्य निभाता॥
देशोपकार ही जिसका सच्चा व्रत है।
तन मन से निशदिन जो इसमें ही रत है।
सज्जन की पदवी सदा वही नर पाता।
सारा संसार उसी को सीस नवाता॥

आन्दोलन करना।

(लेखकः—श्री० चिन्तामणि बालकृष्ण वैद्य।)

कुछ दिनों से आन्दोलन का गुण हम लोगों में खूब बढ़ रहा है। इधर के दस पांच वर्षों में स्वदेशी आन्दोलन, बहिष्कार-आन्दोलन, राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन, प्रेस ऐक्ट के विरुद्ध आन्दोलन, कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन और अभी बिलकुल नवीन स्वराज्य का आन्दोलन, इत्यादि अनेक आन्दोलनों का जब हम विचार करते हैं तब हमें जान पड़ता है कि यह आन्दोलन करने का पश्चिमी लोगों का गुण अब हम लोगों में भी खूब फैल रहा है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इसके पहले हमारे देश में आन्दोलनकर्त्ता लोग थे ही नहीं, अथवा आन्दोलन यहां पर हुए ही नहीं। नहीं, हमारे यहां धार्मिक आन्दोलन बहुत बड़े बड़े हुए हैं, सो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि यह गुण हमारे लिए बिलकुल नवीन ही है। वास्तव में आन्दोलन करना हम बहुत पहले से जानते हैं। हां, इतना अवश्य है कि हमारी आन्दोलन-प्रणाली भिन्न है; और चूंकि प्राचीन-समय में हमारे व्यापार और राज्य की परिस्थिति बिलकुल भिन्न थी; इस कारण आज कल का सा व्यापार अथवा राज्य का आन्दोलन हमारे लिए बिलकुल नवीन है। अतएव ये आन्दोलन किस प्रकार करने चाहिएं, सो हमें आज पश्चिमी लोगों से सीखना है।

आन्दोलन जब कभी होता है तब किसी न किसी सिद्धान्त के विरुद्ध होता है; और प्रत्येक आन्दोलन में किसी न किसी का विरोध करना ही पड़ता है। इस विरोध का, जहां तक हो सके, प्रचार करना ही आन्दोलनकारियों का मुख्य उद्देश्य रहता है। ऐसी दशा में प्रत्येक आन्दोलन का प्रधान कार्य यही रहता है कि उक्त विरोध जितनी प्रखरता से जनता के सम्मुख लाया जा सके उतनी प्रखरता से उसे उपस्थित कर के जनता की सहानुभूति अपनी ओर खींची जावे। इस लिए प्रत्येक आन्दोलन यथोचित रीति से, धैर्य के साथ, और दृढ़तापूर्वक कर के यह निश्चय धारण करना पड़ता है कि चाहे जितने संकट आवें, जब तक उद्देश्य नहीं सिद्ध होगा, आन्दोलन करते ही जायेंगे। प्रत्येक आन्दोलन में सफलता प्राप्त करने के लिए ओजस्विता, दृढ़ता और धैर्य, मनस्विता और आत्मीकरण, निश्चय और आत्मविश्वास, इत्यादि उत्कृष्ट गुणों की पूर्ण आवश्यकता होती है। ये गुण यदि पूरे पूरे न हुए, कम हुए, तो आन्दोलन शीघ्र ही ठंढा पड़ जाता है और यदि कुछ रहा तो वैसा ही जैसा कि प्राण निकलते समय, जब कि शरीर ठंढा होने लगता है, प्राणी के हाथ-पैरों में थोड़ीसी हलचल रहती है! परन्तु ऐसे मृतप्राय आन्दोलन से कोई विशेष लाभ नहीं होता।

आज हमारे मन में जो ये विचार आये हैं उनका एक कारण यह तो है ही कि हमारे यहां आन्दोलनों की दशा अच्छी नहीं है, परन्तु मुख्य तात्कालिक कारण हमारे इन विचारों के यहां आने का यह है कि अंगरेजलोगों के आन्दोलन करने की प्रणाली का एक ताजा उदाहरण उस दिन हमारे सामने आया। वह उदाहरण यही है कि इंग्लैंड में आज कल जर्मनी के विरुद्ध जो द्वेष, क्रोध, तिरस्कार, मत्सर उत्पन्न हुआ है और इस कारण जर्मनी के विरुद्ध जो वहां आन्दोलन उत्पन्न हुआ है उस आन्दोलन को बढ़ाने के लिए वहां हाल में एक हैंडबिल (हस्तपत्रक) निकला है। इस हस्तपत्रक के सिर्फ पढ़ने से ही हम लोगों को यह मालूम हो सकता है कि आन्दोलन कैसे करना चाहिए और हमारे प्रभु अंगरेज लोग किस किस प्रकार के उपाय आन्दोलन बढ़ाने में प्रयोजित करते हैं। इस लिए उस हस्तपत्रक का नमूना, सारांशरूप में, हम यहां पर देते हैं।

जर्मन-शत्रु संघ।

धिक्कार है जर्मनी की कारीगरी को! जर्मनी के माल और उसके वैभव को, लाख बार धिक्कार है!!

ब्रिटिश शाखाओं की आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए ब्रिटानियां आना तैयार है।

दफ्तर—२४६ स्ट्रैंड लंडन डब्ल्यू सी। टेलीफोन नं० सिटी २१==
टेलिग्राफिक पता "आयोजर्मी।"

अध्यक्षः—अर्ले आफ यूस्टन।

उपाध्यक्ष—(इस संस्था के २५ उपाध्यक्ष हैं। उनकी सूची में मर्क्विस अर्ल्स, लार्ड्स, सर, राजमान्य, मेजर जनरल और बड़े बड़े घरानों की अनेक स्त्रियां भी हैं।

कार्याध्यक्षः—ई० बी० मॉसबोर्न।

(संस्था के लिए कोषाध्यक्ष, मंत्री, बैंकर्स, आडिटर्स, सालिसिटर्स नियत किये हुए हैं। इस संघ (मंडल) में ब्रिटिश रक्त से उत्पन्न होने वाला ही मनुष्य लिया जाता है—फिर वह किसी पक्ष, किसी श्रेणी और किसी भी धर्म का क्यों न हो।)

उद्देश्य और कर्तव्य।

(१) राष्ट्रीय विचारों का प्रचार कर के स्वदेशाभिमान की आग भड़काना।

(२) जर्मनी के आक्रमण से ब्रिटिश लोगों की स्वतंत्रता, उनके सुख और उनके अधिकारों की, रक्षा करना।

(३) जर्मनी की प्रतियोगिता में, ब्रिटिश लोगों के व्यापार और कलाकौशल की रक्षा करना।

(४) जर्मनी के बढ़ते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और औद्योगिक वैभव के विरुद्ध युद्ध करना।

हमारी नीति।

(१) यह दिखला देना कि ऐसे सरल नियमों पर जर्मनी से संधि करना कितनी मूर्खता है कि जिनसे फिर सिर उठा कर यूरप की और संसार भर की शांति भंग करने की शक्ति उसमें बनी रहे।

(२) साम्राज्य में जर्मनी की जो सम्पत्ति है वह सब जप्त कर के, युद्ध के कारण ब्रिटिश लोगों पर आई हुई आपत्ति का कुछ न कुछ भार हलका करने में खर्च करना किस प्रकार हो सकता है सो बतलाना।

(३) परकीय लोगों के नाम दर्ज करने के कायदे, और कौंसिल के हुक्म, को सख्त तामील कर के नागरिकत्व के अधिकार पाये हुए जर्मनों को व्यापार के लिए, अथवा अन्य किसी भी कारण से, नाम बदलने की आज्ञा न देते हुए, ४ अगस्त १९१४ के बाद, जितने इस प्रकार के परिवर्तन हुए हों, सब को रद करना।

(४) नागरिकत्व का अधिकार देने की जो प्रणाली इस समय भी जारी है, ऐसे युद्धसमय में सार्वजनिक हित की दृष्टि से हानिकारक है, अतएव इस कानून को ही रद करना।

(५) ऐसे किसी भी मनुष्य को, जो शत्रु के बीज से पैदा हुआ हो, सार्वजनिक दफ्तरों से निकाल देना और उसे नागरिकत्व का अथवा अन्य किसी भी प्रकार का सम्मान न मिलने देना और यह कानून पास करना कि किसी भी परराज्य में जो बृटिश वकील रक्खा जाय वह बृटिश रक्त का ही होना चाहिए।

(६) अपने देश में जर्मन कारीगरों को काम न मिलने दे कर उनको पादाक्रान्त करने का प्रयत्न करना और जो कोई जर्मन कारीगरों को आश्रय देवे उस पर अधिक कर लगाना अथवा ऐसा कुछ करना कि जिससे वे जर्मनों को नौकरी पर न ले सकें।

(७) जर्मनी के समान उत्तम स्वदेशी माल की खपत बढ़ा कर जर्मन माल का बहिष्कार करना।

(८) कम्पनीज ऐक्ट में ऐसा फेरफार करना कि जिससे व्यापार-विषयक अथवा अन्य किसी भी ब्रिटिश कम्पनियों में जर्मनों की निर्णायक प्रेरणा कभी न रहे और ऐसे कायदों की सख्ती के साथ तामील करना कि जिससे परकीय लोग स्वदेश में न आ सकें।

(९) ऐसा प्रयत्न करना कि जिससे जर्मन लोगों को जमीन अथवा अन्य स्थावर मिल्कियत भी न मिले।

(१०) शत्रु से लड़ने के लिए सरकार को सहायता देना और युद्ध समाप्त होने पर परदेश में कैद में पड़े हुए अपने भाइयों को स्वदेश में ले आना।

(११) सब दुकानदारों के लिए दाखिले और परवाने के कायदे लगा कर, अपने सच्चे नाम और सच्ची राष्ट्रीय जाति को दर्ज करने के लिए बाध्य करना।

फ्रांस के जंगलों में पड़ा हुआ सूर्य का कृत्रिम प्रकाश।

रोमानिया का राजा किंग फर्डिनेंड।

श्रीमती कुमारी नज़ीरवी।

आप को अमरावती के हाईस्कूल में स्थान मिला है, इस कारण बड़ौदे के स्कूल से आपने कार्य छोड़ दिया है। बड़ौदे में रहते हुए आपने लड़कियों की शारीरिक शिक्षा की ओर अच्छा ध्यान दिया। व्यायाम, आरोग्य और नीति पर आपने कई लेख भी लिखे हैं। बड़ौदे से बिदाई के समय आपका बड़ा सन्मान हुआ और वहां की विद्यार्थिनियों ने आपको एक चांद और घड़ी भी भेंट की।

कोंकण प्रान्त में धान लगाने के अवसर पर वहां के ग्रामीण कृषिकार खेत के किनारे बैठ कर भोजन कर रहे हैं।

डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जापान।

हमारे अनेक पाठकों को मालूम होगा कि हमारे बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, कुछ दिन पूर्व, यात्रा करते हुए जापान गये थे। वहां के लोगों ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और टोकियो की इम्पीरियल युनिवर्सिटी तथा और कई प्रतिष्ठित स्थानों में, उनके सम्मानार्थ, उनके व्याख्यान कराये। इससे हम लोगों को स्वाभाविक ही बड़ा आनन्द हुआ। जापान में उनके व्याख्यान होने का समाचार सुन कर हमारे यहां के पत्रों ने रवीन्द्रबाबू की प्रशंसा खूब ही शुरू की। और इस प्रशंसा से हमारे आनन्द की वृद्धि ही होती रहती, यदि अन्त में रवीन्द्र बाबू के व्याख्यानों के विरुद्ध जापान के लोगों ने अपनी सम्मति प्रकट न की होती।

रवीन्द्र बाबू की जन्मभूमि भारतवर्ष ही है, जो आध्यात्मिकता के लिए संसार का गुरु है। फिर रवीन्द्र बाबू जापान में जा कर वहां के लोगों को और क्या बतलाते? अस्तु। जगत् के राष्ट्रों की वर्तमान गति का निरीक्षण करनेवाले हमारे पाठक जानते हैं कि जापान देश इस समय अपने लौकिक वैभव को बढ़ाने में व्यग्र है। उद्योग-धंधा, कलाकौशल, व्यापारवृद्धि इत्यादि के द्वारा जापान राष्ट्र इस समय अपने को संसार के सब से प्रबल राष्ट्रों में से एक राष्ट्र बनाना चाहता है। यूरप के वर्तमान युद्ध के कारण उसे अवसर भी अच्छा मिला है। उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ रही है—यही नहीं कि वह अपने व्यापार और कलाकौशल से ही दूसरे राष्ट्रों को हराना चाहता हो, बल्कि जापानी लोगों के मन में यह भी स्फूर्ति उठ रही है कि वह कौन सा दिन आवेगा कि जब हमारा देश अन्य देशों को जीतेगा। अमेरिका से उसकी प्रतिस्पर्धा जारी है सो हमारे बहुत से पाठक जानते ही हैं। उपर्युक्त महत्वाकांक्षा के अनुसार ही जापान के लोगों की रहनसहन तथा विचारशैली इस समय हो रही है, सो स्वाभाविक है। ऐसी दशा में, रवीन्द्र बाबू ने, वहां जा कर आध्यात्मिकता का उपदेश किया!

जापानी लोग बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं और उनके धार्मिक गुरु बुद्धमहाराज इस बूढ़ी भारत-माता की ही सन्तान हैं। इस दृष्टि से भारत जापान का प्रत्यक्ष गुरु है। इस जगद्गुरु भारतवर्ष से जब रवीन्द्र बाबू के समान दार्शनिक कवि वहां गया तब वहां के लोगों को स्वाभाविक ही उनके विषय में कुछ कौतूहल तथा जिज्ञासा हुई। वहां के बड़े बड़े लोगों ने रवीन्द्र बाबू का गौरव किया, वहां के मुख्य प्रधान भी उनके दर्शन के लिए पधारे और उनके उपदेश सुनने के लिए सैकड़ों जापानी एकत्र होते रहे। रवीन्द्र बाबू ने अपना वही आध्यात्मिकता का राग अलापा और जापानी लोग, जो पारलौकिक उन्नति की ओर बिलकुल ध्यान न रख कर भौतिकता के ही पीछे पड़े हुए हैं, उनको आध्यात्मिकता का उपदेश दिया।
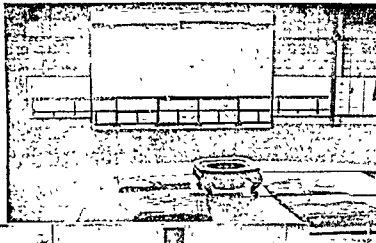
उस समय रवीन्द्र बाबू के व्याख्यानों की जो रिपोर्टें इधर आईं उन पर से यहां के पत्रों ने, और खास कर बंगाली पत्रों ने, रवीन्द्र बाबू की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर दिया और यह दिखलाया कि जापान पर इन व्याख्यानों का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा है। परन्तु, अब जापान के पत्रों में रवीन्द्र बाबू के उपदेशों की जो समालोचना हो रही है और उस समालोचना की जो रिपोर्टें इधर आ रही हैं उनसे जान पड़ता है कि रवीन्द्र बाबू का यह वेदान्ती उपदेश, औद्योगिक और राजनैतिक स्वतंत्रता के स्वच्छ वायुमंडल में संचार करनेवाले जापानी लोगों को बिलकुल पसन्द नहीं आया है!

'योमीउरी' नामक एक जापानी पत्र में मि० यूनो ने रवीन्द्र बाबू के नाम एक अनावृत पत्र (ओपेन लेटर या खुली चिट्ठी) लिखा है। उसमें उन्होंने खुले मन से रवीन्द्र बाबू को स्पष्ट जतला दिया है कि भौतिक उन्नति के विरुद्ध जो उपदेश आप जापानी लोगों को देना चाहते हैं उसके अनुसार चलने के लिए जापानी लोग बिलकुल तैयार नहीं हैं! (The Japanese are in no mood to take such advice as the poet has been offering them)

१ उयेनो में मि० योकोयमा के घर में रवीन्द्र बाबू का कमरा।
२ रवीन्द्र बाबू और उनके अन्य मित्र, दाहनी ओर मि० योकोयामा।
३ उयेनो के मन्दिर में कौंट ओकुमा रवीन्द्र बाबू का स्वागत करते हैं।

श्यकता होती है उसी प्रकार व्यापारी, कारखानेवाले, कोठीवाल, मजदूर, इत्यादि लोगों को भी उस राष्ट्र को उतनी ही आवश्यकता रहती है। यह स्वयं काउंट ओकमा की सम्मति है। इन उपर्युक्त चार पांच सम्मतियों से यह बात सहज ही जानी जा सकती है कि लौकिक, आर्थिक और भौतिक सभ्यता की जापानी लोगों को कितनी आवश्यकता मालूम होती है और रवीन्द्र बाबू के आध्यात्मिक और निवृत्तिपरक विचारों के लिए उनके मन में कितनी थोड़ी गुंजायश है!

अस्तु, यह भौतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का वाद आज कुछ नवीन नहीं है। यह बहुत प्राचीन काल से चला आता है। इसके सिवाय यह वाद केवल भारत और जापान अथवा पूर्व और पश्चिम का ही नहीं है; किन्तु यह सार्वत्रिक और सर्वकालीन है; और इस वाद में दोनों ओर निस्सन्देह सच्चाई है। जब तक संसार में जीवित रहना है तब तक केवल अध्यात्म-ज्ञानी बन कर रहने से ही काम नहीं चलेगा और जब तक मर कर परलोक जाना है तब तक केवल आधिभौतिक सुधारों में ही निमग्न रहने से भी काम नहीं चलेगा। वैदिक धर्म का सिद्धान्त यही है और हमारे यहां के महात्माओं ने भी इसी का प्रतिपादन समय समय पर किया है। आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि ने भी संसार के लोगों को यही बतलाया है कि भौतिक उन्नति करो, पर आध्यात्मिक को भूलो नहीं। 'अभ्युदय' और "निःश्रेयस" दोनों का साथ साथ साधन ही वैदिक धर्म की शिक्षा का मूल तत्व है। कविवर रवीन्द्रनाथ जी ने जापानी लोगों को भौतिकता की ओर बेतरह बढ़ते हुए देख कर ही कदाचित् आध्यात्मिकता का एकदेशीय उपदेश दिया है, तथापि हमारे जापानी भाइयों को यह अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए कि जैसे केवल आध्यात्मिकता के पीछे पड़ जाने से राष्ट्र का लय होता है उसी प्रकार केवल भौतिकता में ही निमग्न हो जाने से भी अन्त में राष्ट्र का नाश हो जाता है। इस लिए आध्यात्मिक उन्नति के साथ साथ ही भौतिक उन्नति अभीष्ट है।

वियोगी चन्द्र।

(उषःकाल के समय चन्द्र की ओर देख कर)

सखे चन्द्र! तुम अधोवदन बैठे क्यों ऐसे?
उदासीन यह हुआ फूल सा मुखड़ा कैसे?
कहो मित्र! किस के वियोग से शोकाकुल हो?
जिससे इतने तेजोहत और व्याकुल हो।
सुता तारका पति के गृह को विदा हुई है?
दुखी हुए तुम, क्योंकि अभी व जुदा हुई है।
कन्याजन तो सदा 'मित्र' दूजे का धन है,
उदासीन क्यों किया व्यर्थ ही इतना मन है?
जुदा हुई तुम से अथवा कौमुदी तुम्हारी?
जिससे यह है हुई तुम्हारी हालत सारी।
नहीं नहीं, प्रमातिरेक से हुए भ्रान्त हो;
दशा विचारो अपनी कुछ तो अभी शान्त हो।
देखो तो ये सूर्य सामने आये मिलने;
लज्जा से हा मित्र! चांदनी लगी छिपने।
होतीं लज्जाशील देवियां हैं स्वभाव से,
शोभा इन की यही; नहीं कुछ हावभाव से।
दुःख दूर कर, करो 'मित्र' का स्वागत सुख से;
कर के कुछ सत्कार मधुर बोलो श्रीमुख से।
दुःख तुम्हारा देख कुमुदिनी सकुची देखो,
अपनी ही सी दशा मित्र तुम सब की लेखो।
सुख संयोग से, दुःख वियोग से स्वाभाविक है;
अनुभव करता इसे सदा प्रेमी भाविक है।

छोटे लड़के की कसरत।

देखिये, छोटा बच्चा किस प्रकार हाथ पर सधा हुआ है!

सज्जनगढ़ के किले का पहला द्वार।

यह सज्जनगढ़ वही पवित्र स्थान है जहां पर समर्थ श्री रामदास स्वामी को छत्रपति शिवाजी महाराज ने ला कर रक्खा था।

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का अक्टूबर मास।

लेखकः—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०।

रोमानिया की रणभूमि।
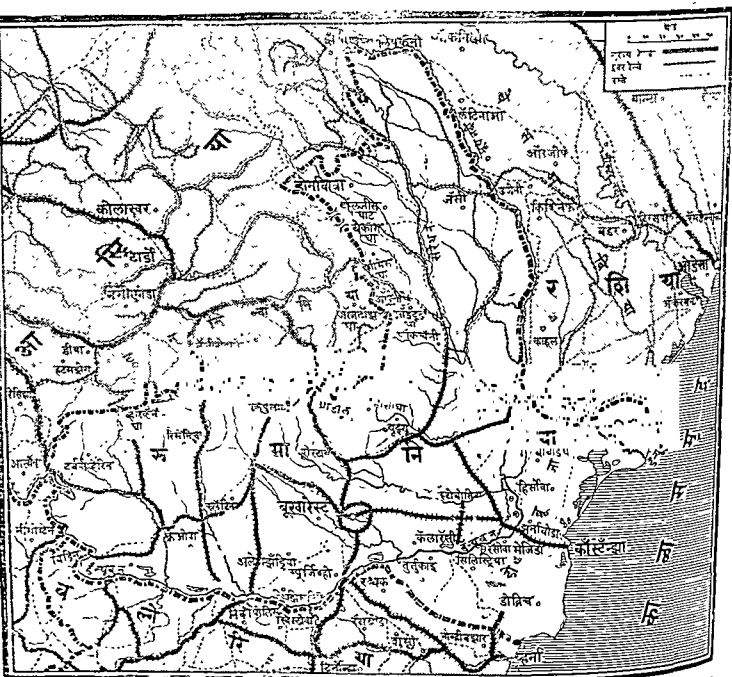
सितम्बर मास के अन्त में रोमानियन युद्ध को जो महत्व प्राप्त हुआ वह अक्टूबर में भी स्थिर रहा, यही नहीं, बल्कि इस महीने के अन्त में यह भी देख पड़ा कि नवम्बर और दिसम्बर के महीनों में भी रोमानिया सब का ध्यान खींचे रहेगा। जिस समय सेनापति हिंडेनबर्ग के हाथ में आस्ट्रो-जर्मन सेना के सब सूत्र गये उस समय उनकी सैनिक नीति के विषय में जानकार लोगों ने जो अनुमान किया था वह अनुमान अक्टूबर महीने में सच हुआ। जर्मनी का यह विचार, फ्रांस और इंगलैंड की मुख्य सेना पर धावा करके, और वहां विजय सम्पादन करके महायुद्ध की परिसमाप्ति की जाय, सेनापति हिंडनबर्ग के मन में समाया था। सैनिक नीति का एक यह स्वरूप है कि अपने मुख्य प्रतिस्पर्धी के सिर पर एक प्रबल आक्रमण करना और उस आक्रमण से जब वह घायल हो कर गिर जावे तब अन्य दूसरे लोग उसे तुरन्त ही निगल जावें। ऐसी सैनिक नीति नेपोलियन को बहुत प्रिय थी। जो सेनापति सदा विजयश्री से सुशोभित रहता है और जो कर्तृत्ववान् तथा अभिमानी भी होता है उसे यही नीति पसन्द आती है। दूसरी नीति यह होती है कि पहले वृक्ष की डालियां काटना और फिर वृक्ष के निर्बल हो जाने पर उसके मुख्य तने पर आक्रमण करना। हिंडनबर्ग मानो दूसरे प्रकार की नीति के पुरस्कर्ता जान पड़ते हैं। नेपोलियन के ढंग प्यारी नहीं है। पहली नीति उन्हीं को प्रियकर जान पड़ी।

जिनके शरीर में मस्ती नहीं समाती। महायुद्ध के प्रारम्भ में जर्मनी की मस्ती, चालीस वर्ष की तैयारी के कारण, हद से ज्यादा बढ़ी हुई थी, इस कारण पहली मार के साथ ही पेरिस को चकनाचूर कर के मास में ही महायुद्ध समाप्त करने का विचार जर्मनी ने किया। परन्तु मार्ने नदी पर जनरल जाफ़र ने और यप्रेस में अँगरेज़ों ने उसकी यह मस्ती उतार दी। यह मद उतर जाने पर जर्मनी, हिंडन-बर्ग की सम्मति से, रूसरूपी संकट टालने के उद्योग में लगा। यह सच है कि रूस का मनुष्यबल असीम है; परन्तु वैज्ञानिक सामग्री और वैज्ञानिक सुधार में रूस बहुत पीछे है; अर्थात् मित्र-दल के वृक्ष में मुख्य स्तम्भ की जगह रूस नहीं है, किन्तु यह बड़ी डाली की जगह है। यह रूसरूपी बड़ी डाल काट डालने का उद्योग सन् १९१५ में जर्मनी ने किया। इस काम में हिंडनबर्ग और मेकेन-सन को सफलता अच्छी प्राप्त हुई। यह सफलता अच्छी तो अवश्य हुई; परन्तु इससे जर्मनी का बुद्धिभ्रंश हो गया। सेनापति मेकेनसन ने रूस के फूल पत्ते तोड़ लिये, हिंडेनबर्ग ने रूस के पके हुए फल खा लिये और जर्मनी भर को यह भ्रम हो गया कि विजयी जर्मन सेना ने रूस रूपी डाली को ही काट डाला! बुद्धिभ्रंश विनाश की जड़ है। इस बुद्धिभ्रंश के कारण सन १९१६ के प्रारम्भ में, सन १९१४ का मद फिर चमकने लगा और फ्रेंचों का पराजय करने की बुद्धि ने फिर सिर उठाया। बस यहीं से जर्मनी की कला उतरने लगी। वर्डुन पर जर्मनी ने पांच छै मास तक प्रबल आक्रमण किये और फ्रेंचों के आगे अपना स्वयं सिर तोड़वा कर जर्मनी ने इस महायुद्ध को स्वयं कुछ भिन्न स्वरूप दे दिया! चूंकि वर्डुन पर हमला करते करते जर्मनी थक गया था, इस लिए, यह अच्छा अवसर देख कर इंगलैंड और फ्रांस ने सोम नदी के किनारे उलटे हमला कर दिया। इधर एंग्लो-फ्रेंच सेना को पादाक्रान्त करने के गर्व से जर्मन सेना वर्डुन की ओर आई थी; परन्तु उधर उलटे सोम नदी के किनारे उन्हीं सेनाओं के द्वारा पादाक्रान्त होते हुए जर्मनी को स्वयं पीछे हटना पड़ा! सीमा से अधिक गर्व का परिणाम यही होता है। इसी समय जर्मनी को यह भी प्रतीत हुआ कि रूस की डाली कटी नहीं है, किन्तु नवीन पल्लवों, नवीन पुष्पों और नवीन फलों से वह फिर लद गई है। इस प्रतीति के साथ ही जर्मनी ने क्या देखा कि रोमानिया की एक नवीन शाखा भी मित्रदल के महा वृक्ष में निकल आई है। अब जर्मनी की आंखें खुलीं। फ्रांस की रणभूमि पर, व्यर्थ की महत्वाकांक्षा में आकर, यदि जर्मनी ने अपनी हानि न कर ली होती तथा सालोनिका और इटाली के मोर्चे पर अपना सारा बल खर्च कर के उन दूसरी शाखाओं को तोड़ डाला होता, अथवा कम से कम फल-पुष्प-विरहित कर दिया होता, तो रोमानिया का नवीन संकट जर्मनी पर न आया होता। छोटा लाभ तुच्छ मान कर बड़े लाभ के लोभ में पड़ कर बराबरी की कुश्ती छूटने का फल भी जर्मनी ने अपने हाथ से गवां दिया। जानकार लोगों ने जो यह सिद्धान्त निकाला है कि अन्त में मित्रदल की ही पूरी विजय होगी और जर्मनी को, अपनी गर्दन नीची कर के, सन्धि करना पड़ेगी सो इसका कारण यही है कि जर्मनी ने अपने अहंकारवश सेनापति हिंड-नबर्ग की सैनिक नीति में व्यर्थ का हस्तक्षेप किया। रोमानिया का

सालोनिका में अँगरेज और फ्रेंच सेनाओं की छावनी का नकशा।

अंजन आंखों में पड़तेही जर्मनी को पश्चात्ताप हुआ और अपनी भ
को ठीक करने का कार्य हिंडनबर्ग को सौंपा। इसमें कोई सं
नहीं कि हिंडनबर्ग चतुर पुरुष हैं; परन्तु अवसर निकल जाने
चातुर्य कहां तक काम दे सकता है? जानकार लोगों का मत है
बिगड़े हुए मामले को अब हिंडनबर्ग सुधार नहीं सकते। "ग
वक्त फिर हाथ आता नहीं"। हां, बहुत होगा तो हिंडनबर्ग सा
आज की मृत्यु कल पर टाल सकते हैं। १९१६ के पूर्वार्ध में
सम्भव था वह १९१६ के उत्तरार्ध में अथवा १९१७ के साल में जै
का तैसा कैसे सम्भव रह सकता है? काल के हिंडोले के स
यदि उसके अनुरोध से फिरते नहीं रहे तो उसकी गति इम
आसन को डिगाये बिना कैसे रह सकती है? १९१६ के पूर्वार्ध
मित्रदल की छोटी शाखें काट डालने का जो कार्य जर्मनी को
डालना चाहिए था उस कार्य का प्रारम्भ सितम्बर महीने में, विल
से, हिंडनबर्ग साहब ने किया। अर्थात् काल (समय की गति
हिंडनबर्ग के विरुद्ध है। तथापि अक्टूबर महीने में यह देखने
आया कि हिंडनबर्ग के विचित्र चातुर्य के कारण अब इस महायुद्ध
आयु एक वर्ष और बढ़ जायगी। इस समय आस्ट्रो-जर्मनों का य
उद्देश्य जान पड़ता है कि पहले नवीन शाख (रोमानिया) को का
कर, फिर सेलोनिक
और इटली की खब
ली जाय। इस दा
में सेनापति हिंडनब
को तात्कालिक थो
ड़ासा विजय मि
जाने के भी लक्ष
अक्टूबर मास
दिखने लगे हैं
अक्टोबर के अन्त
और नवम्बर के
प्रारम्भ में रोमानिय
को आस्ट्रो-जर्मनों ने
अपने दाँव में फांस
लिया है। नवम्बर
के प्रारम्भ में रोमा-
निया का सारा
डोब्रुजा प्रान्त चला
गया है; ट्रांसिलवेनिया
से रोमानिया को
बाहर निकलना पड़ा
है; सीमाप्रांतीय पर्वत
के सारे घाट आस्ट्रो
जर्मनों के हाथ में चले गये हैं; और इन घाटों के नीचे रोमानिया के राज्य में दो चार जगह आस्ट्रो-जर्मन सेना भीतर घुस गई है! इसमें कोई शंका नहीं कि अक्टूबर के अन्त में रोमानिया फल पुष्प विरहित होगया है। नवम्बर-दिसम्बर में यदि रोमानिया की शाख आस्ट्रो-जर्मन तोड़ सकेंगे तो तात्कालिक यश सेनापति हिंडनबर्ग को मिल जायगा। तात्कालिक कहने का कारण यह है कि चाहे रोमा-निया पीछे हट जावे और उसकी राजधानी बुखारेस्ट नगर भी जर्मनों के हाथ में आ जाय तो भी, वर्डुन की लड़ाई के बाद, महायुद्ध के जय-पराजय के प्रवाह की जो दिशा लग रही है उसमें किसी तरह का परि-वर्तन नहीं हो सकता। रोमानिया को कैंची में लाने अथवा उसका चकना चूर कर डालने से कुछ रूस का पराजय नहीं हो सकता। रोमा-निया के सम्मिलित होने के पहले रूस ने आस्ट्रो-जर्मन सेना का परा-भव शुरू कर दिया था; इधर रोमानिया को दबाने में आस्ट्रो-जर्मनों ने अपना बहुतसा बल लगा दिया; अब देखना चाहिए कि अगले साल के वसन्त काल में, रूस की नवीन तैयारी के आगे, आस्ट्रो-जर्मनों की क्या दशा होगी? रोमानिया के शामिल होने के पहले एंग्लो-फ्रेंचों ने जर्मनी की गर्दन में अपना हाथ लगा दिया था; वह हाथ दिनोंदिन आगे जोर से बढ़ता आ रहा है; और आगामि शीत-काल में चाहे उसकी कुछ मन्दगति हो जाय, तो भी अगले साल के वसन्तकाल में जर्मनी को चित किये बिना वह कैसे रह सकता है? रोमा-

के उत्तर की ओर के हेरमन श्टेड गांव में रोमानियन सेना को आस्ट्रो-जर्मन लोगों ने घेर लिया, अक्टूबर के पहले सप्ताह में टर्स-बर्ग घाट के उत्तर की ओर का फोगरस मुकाम रोमानिया को छोड़ना पड़ा, और अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में, अर्थात् ११।१८ तारीख को, प्रिडियल घाट के उत्तर की ओर ब्रासो नगर के मैदान में बड़ा भारी युद्ध हुआ और रोमानियन सेना हार गई। इस पराजय के बाद, अर्थात् अक्टूबर के दूसरे सप्ताह के अन्त में, रोमानिया को मालूम होगया कि से० फालकेनहेन के अधिकार में आस्ट्रो-जर्मनों की मुख्य तोपें पहुंच गई हैं और कार्पेथियन पर्वत के उस पार ट्रांसिलवेनिया में घुसी हुई रोमेनियन सेना को भारी तोपों की सहायता समय पर नहीं पहुंच सकती। यह स्थिति ध्यान में आते ही तुरन्त ही रोमानिया ने बड़ी फुर्ती से, और प्रबन्ध के साथ, ट्रांसिलवेनिया में पीछे हटना शुरू किया। और एक तृतीयांश जीता हुआ ट्रांसिलवेनिया छोड़ कर अक्टूबर के तीसरे सप्ताह में सारी रोमानियन सेना अपनी सरहद पर आगई। सेनापति फालकेनहेन ने बड़े जोर से उसका पीछा करना शुरू किया। बलकनघाट, रोथेथुरमघाट, टर्सबर्गघाट, प्रिडियल-घाट, बूझाघाट, पेटज़ाघाट, ग्युमिसघाट, बेकारघाट, और सब से उत्तर ओर का डोर्नावट्रा, इत्यादि सब घाट लांघ कर अक्टूबर के तीसरे सप्ताह में आस्ट्रो जर्मन सेना रोमानिया में उतरने लगी! रोमानिया के साधारणतया तीन भाग किये जा सकते हैं। पहला भाग पूर्व रोमानिया, इसको छोटा वोलिचिया कहते हैं। इसके उत्तर में वल-कन घाट और पूर्व में असोंथा और अयर्न गेट नामक मुकाम हैं। दक्षिण में डान्यूब नदी और पश्चिम में रोथेथुरम घाट से निकलने वाली अलूटा नदी है। इसी को छोटा वोलेचिया कहते हैं। दूसरा भाग बड़ा वोलेचिया अथवा मध्य रोमानिया है। इस दूसरे भाग के मध्य में बुखारेस्ट राजधानी है और उत्तर की ओर प्रिडियल घाट है। तीसरा भाग नकशे में ऊंचा सिरा सा दिख पड़नेवाला मोल्डे-विया प्रान्त है। इस मोल्डेविया के मध्य से सिरेथन नदी कार्पेथियन पर्वत से पच्चीस तीस मील के अन्तर पर बहती है और सिरेथन नदी के पूर्व ओर पच्चीस मील पर, रोमानिया और रूस की सरहद पर प्रूथ नदी बहती है। रूस के वेसआरेबिया प्रान्त की एक रेल-गाड़ी सिरेथन नदी के दाहने किनारे से उत्तर की ओर दक्षिणी रोमानिया में आती है, और दूसरी रेलगाड़ी प्रूथ नदी और सीरेथ नदी लांघ कर फोकचानी स्टेशन के पास सिरेथ की रेल-गाड़ी से मिलती है। उत्तरी सिरे, अर्थात् मोल्डेविया को तोड़ डालने के इरादे से से० फालकेनहेन ने बेकास, गुर्मेज और पेटज़ा, इन तीन घाटों के नीचे से उतर कर सिरेथ नदी तक पहुँचने का उद्योग अक्टूबर के तीसरे सप्ताह में प्रारम्भ किया। आइटस और गुर्मेज के घाटों में से तो वे बहुत आगे आगये और रोमानिया की गर्दन मरोड़ी गई तथा यह भय होने लगा कि रोमानिया का धड़ कहीं रूस से अलग न हो जाय! पर इतने ही में रूस की सहायता आ गई, इस कारण मोल्डेविया में आस्ट्रोजर्मनों की चढ़ाई का जोर कम हो गया। डोब्रुजा प्रान्त की रोमानियन सेना मोल्डेविया में दौड़ आई और रोमानिया के गले में आस्ट्रो-जर्मनों ने जो पाश डाला था वह ढीला पड़ा। मोल्डेविया का दबदबा कम अवश्य हो गया, परन्तु अक्टूबर के चौथे सप्ताह में डोब्रुजा प्रान्त में सेनापति मेकेन-सन ने फिर सिर उठाया। और ज़र्नावोडा-कान्स्टनज़ा रेलवे पर एक-दम अधिकार कर के डान्यूब नदी पर बसा हुआ ज़र्नावोडा ग्राम तथा काले समुद्र का कान्स्टनज़ा बन्दर भी ले लिया। यहां गेहूं बहुत एकत्र था, इसलिए इस आशा से, कि यहां रोटियां खाने को मिलेंगी, जर्मन सेना एकदम दौड़ गई; परन्तु यहां से जहाजों पर बैठ कर जाते समय रूसी सेना ने गेहूं की बखारियों में आग लगा दी थी, अतएव जर्मनी की बड़ी निराशा हुई। ज़र्नावोडा-कांस्टांज़ा रेलवे जब से० मेकेनसन ने अधिकार में ले ली तब तुरन्त ही उन्होंने उत्तर डोब्रुजा प्रान्त भी दो ही चार दिन में ले लिया; नवम्बर मास के प्रारम्भ में डोब्रुजा प्रान्त के ईशान कोण में अवशिष्ट रूसो-रोमानि-यन सेना दृढ़ स्थान पर जम कर सेनापति मेकेनसन से जोर के साथ लड़ रही है। जान पड़ता है कि इस सेना को कोई बड़ी सहायता आकर नहीं मिलेगी; इस लिए यह कहने में भी कोई प्रत्यवाय नहीं है कि सारा डोब्रुजा प्रान्त अब से० मेकनसन का ही समझना चाहिए। डोब्रुजा प्रान्त मिल जाने के कारण डान्यूब नदी का दाहना किनारा जर्मनी का हो गया; और बल्गेरिया तथा टर्की रूस के भय से मुक्त हुए; और सेनापति मेकेनसन की लाख डेढ़ लाख सेना दूसरे कार्य के लिए खाली हो गई। अब इस विजय के बाद सेना-पति मेकेनसन क्या करेंगे? कुछ लोगों का अनुमान है कि वे सेलिनोका की ओर बढ़ेंगे; कुछ लोगों का कथन ऐसा है कि एक दो सप्ताह में वे असोर्वा में आकर पश्चिम की ओर से रोमानिया पर चढ़ाई करेंगे; कुछ लोगों का तर्क यह है कि जर्मनी के वैज्ञानिक साधनों से डान्यूबनदी को पार करने की तैयारी बल्गेरिया में पहले ही होगई होगी, और उन साध-नों का उपयोग करके चतुर सेनापति मेकेन्सन कहीं न कहीं से डान्यूबनदी एकदम पार करके एकाएक रोमानिया की राजधानी को भयभीत कर डालेंगे। इन अनुमानों में से कौन अनुमान सही है, सो नवम्बर के महीने में मालूम हो जावेगा। आस्ट्रो-जर्मन सेना, यह देख कर कि मोल्डेविया में रूसो रोमानियन सेना प्रबल प्रतिरोध कर रही है, बालकन घाट की जीउल नदी की खोरी से, रोथेथुरम घाट की अलूटा नदी की खोरी से, और प्रिडियल घाट के पास की प्रयोवानदी की खोरी से, अक्टूबर के अन्त में जोर से नीचे उतरने लगी। जीउलनदी की खोरी में रोमानियन सेना ने उनको पीछे हटा कर फिर बलकनघाट दिखलाया; परन्तु अलूटानदी के किनारे, टर्सबर्गघाट के दक्षिण ओर, किम्पांग के जिले में, और प्रिडियलघाट के दक्षिणी मैदान में आस्ट्रो-जर्मन सेना का कदम धीरे धीरे आगे बढ़ा और उन तीन घाटों से नीचे उतरी हुई सेना नवम्बर के प्रारम्भ में एक दूसरे से संलग्न हो गई। इस जगह प्रबल युद्ध शुरू हो गया है और इन्हीं युद्धों के फैसले पर और सेनापति मेकेनसन के दावँपचों पर, नवम्बर-दिसम्बर में, रोमानिया का बुरा-भला भविष्य निर्भर है। पश्चिमी रणभूमि में, रूस की ओर गेलेशिया और बुकोविना की रणभूमि में, इटली की रणभूमि में और सालो-निका की रणभूमि में भयंकर लड़ाइयां शुरू होगई हैं और मित्र पक्ष आस्ट्रो-जर्मन लोगों को दबा रहा है, तथा आस्ट्रो-जर्मन सेना रूस को दबा रही है कि जिस से वह रोमानिया को मदद न दे सके। इस में कोई शक नहीं कि रोमानियाका युद्ध एक कोने में ही हो रहा है; और इस में भी कोई सन्देह नहीं कि महा युद्ध के सम्पूर्ण प्रवाह पर उसका कोई स्थिर परिणाम न हो सकेगा, परन्तु नवम्बर दिसम्बर में यदि बुखारेस्ट राजधानी आस्ट्रो-जर्मनों के हाथ आगई तो, अभिमन्युवध की तरह, मित्रदल के सारे शुभचिन्तक, शोका-कुल हुए बिना न रहेंगे। रोमानिया के पराजय का बहुजन-समाज पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ेगा, और इसी लिए नवम्बर के प्रारम्भ में ही, अन्य सब रणभूमियों को एक ओर रख कर, रोमानिया की छोटी सी रणभूमि को ही विलक्षण महत्व प्राप्त हुआ है। अन्त में यह कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि नवम्बर मास में पाठकगण रोमानिया की रणभूमि की ओर विशेष ध्यान रखें।

बम्बई का दशहरा ।

बम्बई में कई वर्षों से दशहरा का जलूस बन्द हो गया था, सो इस वर्ष कुछ राष्ट्रीय दल के नेताओं के उद्योग से यह जलूस बड़ी धूमधाम से निकला। सब प्रकार के उत्सवों का प्रबन्ध करने के लिए इस वर्ष यहाँ "उत्सवमंडल" नामक संस्था भी संगठित हो गई है। इसमें बड़े बड़े राष्ट्रीय महाशिक्षित पुरुष सम्मिलित हैं। भारत के प्रत्येक बड़े बड़े नगर में शिक्षित पुरुषों के यदि ऐसे ही मंडल स्थापित हो जायँ और वे लोग सर्वसाधारण उत्सवों को राष्ट्रीय रूप देने का प्रयत्न करते रहें तो जलसों और जलूसों के द्वारा रा भक्ति तथा राष्ट्रीय एकता के प्रचार में बहुत सहायता मिल स है। अस्तु। बम्बई के उक्त उत्सवमंडल ने गणेशोत्सव तथा वि दशमी-सम्मेलन और सीमोल्लंघन के उत्सव बड़े धूमधाम और उत्साह से सफलतापूर्वक समाप्त किये। आनन्द की बात है कि बम्बई के नरम और गरम दोनों दलों की सहानुभूति इस मंडल ने अपनी कार्यदक्षता से प्राप्त कर ली है।

सीमोल्लंघन-समारंभ, नं० १

सीमोल्लंघन-समारंभ, नं० २

इस उत्सवमंडल की प्रार्थना को सादर स्वीकार कर के इस वर्ष के विजयादशमी के जलूस में बम्बई के प्रमुख नागरिक डाक्टर सर भालचन्द्र भाटवडेकर, बम्बई स्माल कोर्ट के जज· सेठ त्रिभुवनदास बरजीवनदास, प्रो० पी० एन० तेलंग, " यंग इंडिया " (तरुण-भारत) पत्र के सम्पादक श्री० यमुनादास, बम्बई आर्यसमाज के प्रधान डा० कल्याणदास देसाई, बैरिस्टर मुजूमदार, इत्यादि अनेक सज्जन सम्मिलित हुए थे। इनके सिवाय आर्यसमाज, भाटिया-मित्रमंडल, यंगमेन्स एजुकेशन सोसायटी (नवयुवक-शिक्षासमिति), बम्बई मर्चेन्ट्स एसोसियेशन (बम्बई-व्यापारी-समाज), हिन्दू एम्बुलेंस ब्रिगेड इत्यादि बीसियों सार्वजनिक संस्थाओं का भी समावेश हुआ था। मंडल से सहानुभूति रखनेवाले अनेक राष्ट्रीय सज्जनों के पत्र भी आये थे।

सब प्रकार का ईर्षा-मत्सर और द्वेष तथा फूट को भूल कर सब जाति और वर्णों के लोग इस उत्सव में सम्मिलित हुए। विजय-दशमी के शुभ अवसर में, उक्त दुर्गुणों पर विजय प्राप्त कर के, एकता-रूपी सुख-सुवर्ण की लूट का अनुभव बम्बई के नागरिकों ने खूब ही प्राप्त किया। हमारे हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तों के नगरों में भी जातीय त्योहारों के जलसों पर ऐसा ही संगठन यदि होने लगे तो वहां भी राष्ट्रीय जागृति होने में विलम्ब न लगे।

सीमोल्लंघन-समारंभ, नं० ३

विनय।

(पं० श्यामलाल शुक्ल, धार)

जगदीश ज्ञानदाता सुखमूल शोकहारी।
भगवान तुम सदा हो निष्पक्ष न्यायकारी॥
सबकाल सर्वज्ञाता सविता पिता विधाता।
सब में रमे हुए हो तुम विश्व के विहारी॥
हम जानकर चकित हैं इन दिव्य लक्षणों को।
सुनते न देखते हो फिर क्यों दशा हमारी॥
अब क्यों कृपा नहीं है हम दीन आश्रितों पै।
हृदयेश देख लो लो हम हैं बने भिखारी॥
कुछ तो दया करोगे हम मांगते यही हैं।
हम को मिले स्वयं ही उठने की शक्ति सारी॥
कर दो बलिष्ट आत्मा घबरायँ ना दुखों से।
कठिनाइयों का जिस से तर जायँ सिंधु भारी॥
स्वत्वों की अपने रक्षा करते रहें सबल हो।
सब का भला विचारें हम और प्राणधारी॥
विनती यही हमारी सुनिये कृपालु स्वामी।
सुध लो प्रभो, न भूलो, आशा हमें तुम्हारी॥

बम्बई के प्रसिद्ध धनवान् व्यापारी

जेकब सासून का स्वर्गवास

बम्बई का ज्यू जाति का सासून घराना व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। इसके मूलपुरुष डेविड सासून थे। स्वर्गवासी जेकब सासून, जिनका चित्र पाठक देखते हैं, अपने उद्योग में बड़े दक्ष थे। व्यापारी दावपेंच आपको अच्छी तरह मालूम थे। इनका बहुत सा व्यापार विदेशों से था। लंदन, मैंचेस्टर, जापान, [illegible], चीन, इत्यादि अनेक जगहों में इनकी कोठियां चल रही हैं। जेकब साहब बड़े उदार और दयालु हृदय के थे। धर्म अर्थात् परोपकार के कार्य में आपने अपना बहुत सा धन व्यय किया। दस लाख रुपये वैज्ञानिक शिक्षा के लिए दिये। और भी अनेक छोटे छोटे दान दिये। ७१ वर्ष की अवस्था में आपका स्वर्गवास हुआ। धन्य है उन्हीं नररत्नों को जो अपना धन इस दीनहीन भारत में शिक्षा-प्रचार के कार्य में खर्च करते हैं। क्या हमारे अन्य भारतीय भारत-पुत्र सासून महाशय का अनुकरण करके पुण्य के भागी न होंगे?

इस वर्ष की कांग्रेस और उसका ध्येय।

इस वर्ष की कांग्रेस लखनऊ में होनेवाली है, जिसके सभापति बा० अम्बिकाचरण मुजूमदार हैं। आप बंगाल के गम्भीर राजनीतिज्ञों में हैं। रंगढंग देखने से ऐसा जान पड़ता है कि इस वर्ष की कांग्रेस बिलकुल अपूर्व होगी। 'अपूर्व' इस लिए कहते हैं कि इस वर्ष महर्षि दादाभाई नौरोजी का प्रकट किया हुआ कांग्रेस का ध्येय नरम-गरम दोनों मिलकर पास करेंगे। सन् १९०६ में कलकत्ते में पितामह दादाभाई के सभापतित्व में "भारतवर्षीय महाराष्ट्रीय सभा" (Indian National Congress) हुई थी, उसके बाद गत वर्ष तक एकपक्षीय राष्ट्रीय सभा "कन्वेंशन" होती रही; अब इस वर्ष वह कन्वेंशन फिर "महाराष्ट्रीय" रूप धारण करेगी और आशा की जाती है कि "सूरत" में कांग्रेस की जो 'सूरत' बिगड़ी थी वह इस वर्ष पूर्ण समारोह से चमक उठेगी–क्यों नहीं, समस्त भारतीय राष्ट्र का प्राण अथवा "राजनैतिक गगन का प्रखर सूर्य" इस वर्ष "शीतल अमृतमयी चन्द्र" हो कर कांग्रेस के मंच पर प्रकाशित हो कर अपनी अमृतमयी किरणों से स्वराज्यरूपी वचनसुधा बरसाने वाला है!

कांग्रेस के ध्येय के विषय में जो मतभेद था, वह अब मिट गया है और महर्षि दादाभाई ने जो कलकत्ता कांग्रेस में प्रकट किया था कि:—

We do not ask any favours. We want only justice. Instead of going into any further divisions or details of our rights as British Citizens, the whole matter can be comprised in one word—"Self-Government or Swaraj" like that of the United kingdom or the Colonies." अर्थात् हम ब्रिटिश गवर्नमेंट से कुछ यह नहीं कहते कि तुम हमारे ऊपर कोई कृपा करो, हम सिर्फ न्याय चाहते हैं। और वह न्याय यही है कि हमारे अधिकार हमें दो—वे अधिकार कौन हैं, इस तूल-तवील में हम नहीं पड़ना चाहते—एक शब्द में सब आजाता है और वह शब्द है—"सेल्फ गवर्नमेंट या स्वराज" सो कैसा "स्वराज"—जैसा कि यूनाइटेड किंगडम, (अर्थात् इंगलैंड, स्काटलैंड, आयरलैंड और वेल्स मिलकर) या अन्य उपनिवेशों का है–अर्थात् एक ब्रिटिश नागरिक का जो हक हासिल रहते हैं वही एक भारतीय को भी रहना चाहिये।

यह ध्येय कलकत्ते की १९०६ की कांग्रेस में ही दादाभाई ने निश्चित कर दिया था। उन्हों ने फिर भी कहा था:—

"I regard it as a best result of all the political work during the past 50 years that we have now decided upon a decided goal, we have decided upon one particular aim.

सो कांग्रेस का ध्येय तो १९०६ में ही निश्चित हो गया था और इस वर्ष सर्वसम्मति से पास हो जायगा, परन्तु प्रश्न यह है कि इसके अनुसार किस प्रकार आचरण किया जाय? सो भी—इस वर्ष कांग्रेस में निश्चित हो जाना चाहिए, जिसके अनुसार कि वर्ष भर आन्दोलन होता रहे—वर्ष भर ही नहीं, किन्तु जब तक 'स्वराज' मिल न जाय तब तक आन्दोलन जारी रहे—इसके लिए दादाभाई के शब्दों में हम भी आशा रखते हैं कि—

I hope [illegible] young and old will work together [illegible], [illegible] with all the fervour, enthusiasm and patriotism, to do their best to arrive and attain that goal. सारांश, जहां तक हो सके, भारत के सब वृद्ध और तरुण कार्यकर्ता, अपनी सारी शक्तियों को लगा कर, बराबर आन्दोलन करते रहें—जबतक स्वराज्य न मिल जाय।

साहित्योत्तेजक महाराजा होलकर।

साहित्यप्रेमियों को मालूम होगा कि गतवर्ष महाराजा होलकर ने मराठी और हिन्दी के उत्तमोत्तम ग्रन्थों के लिए पुरस्कार देनेके लिये कुछ रुपया स्वीकार किया था। इसमें से ८००) रु० मराठी के कई ग्रन्थकारों को, थोड़ा थोड़ा करके, दिया गया। मालूम नहीं कि हिन्दी के लिए कितनी पुस्तकें भेजी गई और उनमें से कितने को इनाम मिला; पर हां, एक इन्दोरी मित्र की सूचना पर इस नोट के लेखक ने अपनी "तरुण-भारत-ग्रन्थावली" की पहिली संख्या "अपना सुधार" नामक पुस्तक भेज दी थी। हिन्दी-प्रेमियों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इस पुस्तक को कमेटी ने पसन्द किया और १५) रु० पारितोषिक पुस्तक-लेखक पं० नर्मदाप्रसाद जी मिश्र "साहित्य-विशारद" को दिये। और किन किन हिन्दी लेखकों को इन्दौर-दर्बार से पारितोषिक मिला, सो हमें मालूम नहीं हुआ। जो कुछ हो। इन्दौर-नरेश की यह साहित्योत्तेजक उदारता सर्वथा सराहनीय है; और अन्यान्य नरेशों को इसका अनुकरण करना चाहिए।

कागज और स्टेशनरी।

भारतवर्ष में प्रति वर्ष ८० हजार टन के लगभग कागज का खर्च है। इसमें से १९१५-१६ में ३० हजार टन कागज देश में तैयार हुआ। अवश्य ही शेष कागज परदेश से आया। गत वर्ष कागज, कागज की दफ्ती और स्टेशनरी सामान दो करोड़ एक लाख रुपये का आया। विगत वर्ष की अपेक्षा यह संख्या २ सैकड़ा अधिक है। कागज के भाव में ३० सैकड़ा वृद्धि हुई है। इससे जान पड़ता है कि विगत वर्ष की अपेक्षा गत वर्ष इस देश में कागज का खर्च कम हुआ। कागज और स्टेशनरी की आमद के, निजी और सरकारी, यदि दो भेद किये जायँ तो जान पड़ता है कि गत दस वर्ष में निजी उपयोग के लिए जो आमद हुई उसका प्रमाण ७० लाख से १ करोड़ ४३ लाख तक, अर्थात् दूने से कुछ अधिक बढ़ा। और सरकारी उपयोग के लिए आये हुए कागज का प्रमाण ४ लाख से ६ लाख तक अर्थात् ड्योढ़ा बढ़ा। अब स्टेशनरी का हिसाब लीजिए। निजी उपयोग के लिए दस वर्ष पहले ८८ लाख की आमद होती थी सो अब ५७ लाख की होने लगी है। सरकारी काम के लिए इतने ही समय में ४ लाख से ११ लाख तक संख्या बढ़ गई है। अर्थात् स्टेशनरी की निजी आमद दस वर्ष में ४० सैकड़ा घट गई है और सरकारी आमद उतने ही समय में चौगुनी हो गई है। भारतवर्ष में कागज के कारखाने कुल ११ हैं। इनमें से गत वर्ष कुल ३०,३११ टन कागज निकला। १९१३ में कागज की खपत १० सैकड़ा ही बढ़ी। इन सब कारखानों की पूंजी ५० लाख के लगभग है। गत दो वर्षों में कागज के सिर्फ दो कारखाने नये खुले हैं। भारत में औद्योगिक उन्नति होने के लिए अनुकूल साधन हैं, परन्तु अज्ञान और दरिद्रता के कारण यहां कुछ नहीं होने पाता। अन्य देश, जो उद्योग और कला कौशल में बढ़ रहे हैं, वहां की सरकार उन्हें सब प्रकार से उत्तेजित करती है। हमारे यहां की सरकार भी यदि देशी उद्योग धंधों को विशेष उत्तेजना देने लगे तो थोड़े ही काल में बहुत उन्नति हो सकती है।

प्रोफेसर राममूर्ति और प्राणायाम का महत्व।

प्रोफेसर राममूर्ति की दिनचर्या के विषय में लिखते हुए सेंट निहालसिंह लिखते हैं कि सुबह सो कर उठने के बाद राममूर्ति पहले बादाम, कालीमिर्च, इत्यादि की ठंढाई पीते हैं, फिर प्राणायाम के लिए बैठते हैं। प्राणों के नियमन करने का उन्हें बहुत अच्छा अभ्यास हो गया है। प्राणायाम के बाद प्रतिदिन वे मन की एकाग्रता का अभ्यास दो घंटे करते हैं। इस समय किसी एक बात को छोड़ कर दूसरी कोई भी बात वे मन में नहीं आने देते। इस प्रकार धीरे धीरे उन्होंने अपने मन और प्राण-वायु पर अधिकार कर लिया है और यही कारण है कि वे अपने शरीर की सारी शक्ति किसी एक विशेष भाग में एकत्र कर सकते हैं और मन की पूर्ण समाधि भी लगा सकते हैं। प्रोफेसर राममूर्ति कहते हैं कि प्राणायाम के बल पर ही वे हाथी का भार सह सकते हैं और मोटरगाड़ियां रोक सकते हैं। राममूर्ति जी का यह दृढ़ विचार है कि मन की सामर्थ्य बढ़ाने से ही शरीर की सामर्थ्य बढ़ सकती है। शरीर में चैतन्य आने के लिए प्रति दिन दो बार आधे घंटे से अधिक मानसिक शक्ति बढ़ानी चाहिए। यह मानसिक व्यायाम करते समय केवल इसी बात का विचार मन में आना चाहिए कि हमारा शरीर किस किस दशा में हो कर गुजरता है और उससे क्या लाभ होता है। शेष विचारों का मन में बिलकुल प्रवेश न होने देना चाहिए। शारीरिक और मानसिक शक्ति प्राप्त करने के लिए यह एक ही मार्ग है। ब्रह्मचर्य पर उनकी बड़ी श्रद्धा है और उनका कथन है कि भारत के लड़कों को कम से कम २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए। राममूर्ति जी स्वयं अभी तक अविवाहित हैं और जब तक वर्तमान शारीरिक सामर्थ्य के खेल दिखलाना वे बन्द न करेंगे तब तक अविवाहित ही रहने का उनका विचार है। प्राणायाम, व्यायाम, चित्तएकाग्रता, ब्रह्मचर्य, आत्मविश्वास, इत्यादि के साधनों से ही हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों ने बड़े बड़े आश्चर्यमयी कार्य किये थे। इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रो० राममूर्ति का आदर्श पर्याप्त है। प्रत्येक नवयुवक को इन साधनों का थोड़ा थोड़ा अभ्यास नित्य करना चाहिए।

राजा-महाराजाओं की परिषद।

२० अक्टूबर को दिल्ली में भारतीय राजा-महाराजाओं की एक परिषद् वाइसराय साहब की अध्यक्षता में हुई। इसमें सब छोटे बड़े मिला कर कोई ४० राजा-महाराजा एकत्र थे। पहले वाइसराय ने अपने भाषण में कहा कि इस भयंकर युद्ध के समय भारतीय राजाओं ने जिस उदारता के साथ साम्पत्तिक और सैनिक सहायता सरकार को दी है उस पर सरकार बहुत सन्तुष्ट हुई है और इसके बदले में राजा-महाराजाओं का यदि कोई स्थायी हित हो सकेगा तो बड़े आनन्द और सन्तोष की बात होगी। अन्त में वाइसराय ने कहा कि राजाओं के राज्य अथवा उनके प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है और भारतीय सरकार के प्रबन्ध में आप लोग भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की इच्छा न करें। सब राजाओं की ओर से वाइसराय के भाषण का उत्तर देते हुए बड़ौदा महाराज ने अपने भाषण में एक बात मार्के की कही। आपने कहा कि साम्राज्य की घटना में हम राजा लोगों की भी एक कौंसिल होनी चाहिए, जिससे कि भारत के एक तृतीयांश प्रदेश और एक चतुर्थांश प्रजा के प्रतिनिधि के नाते से साम्राज्यविषयक प्रश्नों का निर्णय करते समय हमारा भी मत लिया जा सके। वाइसराय साहब और महाराजा बड़ौदा दोनों का कथन परस्पर के लिए उपयुक्त है। हमारी सम्मति में भारतीय राजाओं की ऐसी ही सभायें यदि समय समय पर होती रहें तो, और कुछ नहीं तो, इतना अवश्य हो सकता है कि अंधकार में पड़े हुए हमारे कई राजा लोगों को, परस्पर के विचार-परिवर्तन से, अपने अपने राज्य में सुधार करने के कोई न कोई मार्ग सूझेंगे।

अन्नसंरक्षण।

हम लोगों में एक जनश्रुति है कि "अन्न धन अनेक धन" अर्थात् जितने प्रकार के भी धन हैं उनमें अन्नधन सर्वश्रेष्ठ है। अन्य धनों के बिना कुछ देर काम भी चल जाता है, पर यदि पेट के लिए अन्न न मिले तो जीवन नहीं रह सकता—भोजन का समय टल जाने पर प्राणी की क्या दशा होती है, इसका अनुभव थोड़ा थोड़ा सभी को है। ऐसी दशा में, अन्न की रक्षा करना, हमारी क्षुद्र सम्मति में, सब से अधिक आवश्यक है। भारत-भू-माता हमारे लिए अन्न बहुत देती है, पर हम उसकी रक्षा नहीं कर सकते, इसी कारण हमारे आधे से अधिक भाई एक बार भी पेट भर भोजन नहीं पा सकते। कितनी सन्तान भारत में भूखी रहती है, इसकी जांच करना हो तो गाँव-खेड़ों की झोंपड़ियों में जाइये; और देखिये वही किसान जाति—जो हमारे अमीरों और सेठ-साहूकारों को अन्न देती है, और जिस अन्न का वे लोग इतना दुरुपयोग करते हैं कि अधिक खा खा कर मरते हैं और अजीर्ण तो रोज ही होता है—किस दुर्दशा में पड़ी हुई मर रही है, जिसके चूल्हे पर तवा रोज समय पर नहीं तचता और धातुपात्रों की जगह कठेलियों का भी ठिकाना नहीं है; तथा आज कल कैसे कठोर शीत में अंग ढकने को चीथड़ा भी नहीं है। इन पंक्तियों के लेखक को ग्रामों में भ्रमण करने का अवसर आया है; और इसने उन बिचारों की दुर्दशा पर तरस खा कर अनेक बार आंसू बहाये हैं! अतएव भारत के नेताओ! भारत की नौका को पार ले जाने वाले केवटो! सम्पादको! लेखको! लीडरो! राजनीतिज्ञो! 'माननीय' कौंसिलरो! पहले अन्न की रक्षा का कुछ बन्दोबस्त करो और इन अपने 'अन्नदाता' किसानों के घरों को जा कर देखो-यह किसान जाति यदि इसी तरह खप खप कर मर गई तो फिर यह कांग्रेस पीछे से कुछ भी काम नहीं देगी। इसलिए किसानों की दशा सुधारने और अन्नरक्षण करने पर अवश्य विचार करो!

ज्ञानमंडल।

काशी में ज्ञानमंडल नाम की एक संस्था स्थापित हुई है। इसके उद्देश इस प्रकार हैं:—(१) देशी भाषाओं द्वारा संसार के ज्ञान को अपनाना; (२) विदेशी भाषाओं द्वारा भारत के ज्ञान को संसार में पहुँचाना; (३) संस्कृत में वर्तमान ज्ञानभांडार की खोज कर उसका देशी व विदेशी भाषाओं द्वारा प्रकाश करना, (४) पुस्तकालय, मुद्रणालय और पुस्तकों की दुकान खोलने का प्रबन्ध करना। प्रत्येक भारतीय, जिसको इस मंडल के उद्देश्य से सहानुभूति हो, और जिसकी अवस्था १८ वर्ष से अधिक हो, इस मंडल का सदस्य हो सकता है। सदस्य दो प्रकार के होंगे (१) ५००) या इससे अधिक एकदम दे कर आजीवन सदस्य; जिनको साल भर में मंडल से प्रकाशित अधिक से अधिक ३०) रु० की पुस्तकें बिना मूल्य मिला करेंगी; (२) ६) वार्षिक देने वाले; ये अपने चन्दे के भीतर के मूल्य की पुस्तकें पा सकेंगे और चन्दे से अधिक मूल्य की पुस्तकें चाहने पर आधे मूल्य पर मिला करेंगी। इस मंडल के अन्तर्गत विज्ञानमंडली, साहित्यमंडली, संस्कृतविद्यामंडली और विदेश-ज्ञान-प्रचारमंडली, ये चार मंडलियां, अथवा आवश्यकतानुसार अन्य मंडलियां भी, अपने अपने विषयों पर पुस्तकें तैयार कराने, प्रकाशित कराने तथा उनका प्रचार कराने का प्रबन्ध करती रहेंगी। हम इस मंडल के कार्य की उत्सुकतापूर्वक बाट जोह रहे हैं। इसके मंत्री हमारे परम उत्साही मित्र बा० शिवप्रसाद जी गुप्त हैं। जिन महाशयों को अधिक ज्ञातव्य हो वे उक्त बाबू साहब से नगवाराद्ध की गली, काशी के पते पर पत्रव्यवहार करें।

आर्यसमाज का साहित्य।

आर्यसमाज भारतवर्ष की उन्नति करती हुई संस्थाओं में समझी जाती रही है और अब भी समझना चाहिए, परन्तु इस समय इस आर्यसमाज-संस्था में स्वतंत्र (आन्तरिक अशान्ति) बहुत बढ़ रही है, जिसे देख कर भय होता है कि आर्यसमाज कुछ लोगों का एक पंथ सा आगे चल कर बन जायगा। इस विषय में हम अपना अनुभव फिर कभी लिखेंगे। आज हमें उसके साहित्य पर कुछ संक्षिप्त रूप से लिखना है। आर्यसमाज का साहित्य जैसा गम्भीर होना चाहिए था वैसा नहीं बना। इसमें छिछोरे लोग ही ग्रन्थकर्त्ता बन बैठे हैं जो किसी सामाजिक विषय को लेकर कोई वाहियात सी पुस्तक या भजन रच डालते हैं और भोले-भाले तथा मूर्ख आर्यसमाजियों में उसका प्रचार करके टके बटोरते रहते हैं। कई पुस्तकसेवक इसी प्रकार के साहित्य से हजारों रुपया पैदा कर रहे हैं। आर्यसमाज में दो चार अच्छे साहित्यसेवी भी हैं, पर शोक की बात है कि उनके साहित्य का आर्यसमाज के संचालक लोग प्रचार नहीं करते-कराते। जैसे पं० राजारामशास्त्री, पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ, स्वामी हरप्रसाद जी वैदिक मुनि, बाबू [illegible]

जी एम० ए०, कविवर नाथूराम शंकर शर्मा, स्वर्गस्थ पं० तुलसीरामजी स्वामी, बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, स्वर्गीय स्वामी नित्यानन्द, स्वा० दर्शनानन्द इत्यादि कई साहित्यसेवी विद्वान् और सहृदय हैं; पर इन की कृतियों का आर्यसमाज में बिलकुल मान नहीं है। मान कैसे हो ! विद्वानों का मान विद्वान् ही कर सकते हैं; और आर्यसमाज के वर्तमान संचालक लोग विद्वत्ता के पीछे लट्ठ ले कर पड़े हुए हैं-वे आर्यसमाज की धार्मिकता छोड़ कर उसे केवल एक समाज-सुधार (सो भी मनमाना) की संस्था बनाना चाहते हैं। जन्म के ब्राह्मणों से द्वेष कर के उन्हें धता बता रहे हैं; और आर्यसमाज को सिर्फ " ब्राह्मणेतर-सुधारकसमाज " बना डालना चाहते हैं। पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ एक विद्वान् साहित्यसेवी आर्यसमाज में वर्तमान हैं; पर वर्तमान आर्यसमाजियों ने उनको " फुटबाल " बना रक्खा है-वे इधर से उधर और उधर से इधर मारे मारे फिरते हैं। आर्यसमाज की सभायें हजारों रुपये वाहियात तरह से खर्च करती हैं, पर किसी संस्था से यह नहीं होता कि एक विद्वान् को अपने हाथ में रख कर-उसको पुरस्कृत करते हुए-उससे कुछ सालिड वर्क " स्थायी सेवा " (साहित्य के द्वारा) करा लें। हमने अभी हाल में एक समाचारपत्र में पढ़ा कि गवर्नमेंट ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में फिर आर्यसमाज के साहित्य को बुरा भला कहा है। इस पर ' आर्यसमाजी ' अखबार बिगड़े हैं; पर उनको ध्यान में रखना चाहिए कि गवर्नमेंट ने जो राय दी है, ठीक है, उससे लाभ न उठा कर-अर्थात् अपने साहित्य को ऊंचा बनाने का प्रयत्न न कर के-गवर्नमेंट की रिपोर्ट पर अप्रसन्न होना उनके लिए ही आत्मघातक प्रवृत्ति है। इस नोट के लेखक ने तीन चार वर्ष आर्यसमाज की प्रत्यक्ष सेवा की है और अनेक अनुभव प्राप्त किये हैं, उन सबको धीरे, धीरे-आर्यसमाज के कल्याण के लिए-प्रकट करने का विचार है।

साहित्य-चर्चा।

ग्रन्थ-साहित्य।

विश्वरत्नमालिका ग्रन्थमाला—इसे पं० रामस्वरूप शर्मा चन्दौसी जिला मुरादाबाद से निकालते हैं। स्त्रीशिक्षा, संसार की आकांक्षा, वर्णव्यवस्था पर विचार, विचित्र वीर, रोजगार-ये पांच ट्रैक्ट हमारे सामने हैं, प्रत्येक का मूल्य -) है। " ग्रन्थमाला " नाम की जगह यदि इसे " पुस्तिका-माला " या ट्रैक्टसीरीज़ कहा जाय तो अच्छा। शर्माजी का उत्साह सराहनीय है, पर जो ट्रैक्ट अभी तक निकले हैं, बिलकुल मामूली हैं। यदि प्रभावशाली लेखक आपको ट्रैक्ट लिखने में सहायता दे सकें तो उत्तम हो।

[illegible]—ओंकार प्रेस प्रयाग के अध्यक्ष पं० ओंकार नाथ जी बाजपेयी चार आना सीरीज़ के आदर्श जीवनचरित्र बहुत अच्छे निकालते हैं। अभी तक आपने दयानन्द, विवेकानन्द, रामतीर्थ, [illegible], रामदास, इत्यादि एक दर्जन से अधिक जीवनचरित्र निकाले हैं, जिनमें कोई कोई चरित्र १२० पेज तक का हो गया है, पर मूल्य चार ही आना प्रति पुस्तक है। सब जीवनचरित्र सचित्र रहते हैं। आपका विचार कोई चार सौ जीवनचरित्र इसी प्रकार निकालने का है। आपका प्रयत्न बहुत ही [illegible] है। यदि हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक आपकी चरित्रमाला में चरित्र लिख कर सहायता करने रहेंगे तो यह चरित्रमाला हिन्दी साहित्य का गौरव [illegible] बढ़ावेगी। हम इस चरित्रमाला का खूब प्रचार चाहते हैं।

[illegible]—[illegible] हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों में [illegible] और पुस्तकों के द्वारा समाज में जो जागृति उत्पन्न कर रहे हैं उसके लिए [illegible] धन्यवाद [illegible]। [illegible] ...हिन्दी-साहित्य में [illegible] परन्तु इसमें भी मनुष्य के [illegible], [illegible] शिक्षा का [illegible] [illegible], बहुत ही [illegible] है। [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] मूल्य [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]

युवकों को सुमार्ग पर चलाने, उनको नैतिक शिक्षा देने के [illegible] ऐसी पुस्तकों की हिन्दी संसार में बहुत आवश्यकता है।

पारसी मत और वैदिक धर्म—लेखक महात्मा मुंशीराम जि[illegible] पृष्ठसंख्या ४०। मूल्य ≈)। पारसी मत का वैदिक धर्म से सम्बन्ध [illegible] हुए थोड़े ही में अच्छा विवेचन किया है। तुलनात्मक धर्मा[illegible] करने वालों को इस पुस्तक से थोड़ी बहुत सहायता अवश्य मिले[illegible]

स्वर्गीयजीवन—अमेरिकन ग्रन्थकार ट्राइन साहब ने अंगरेज़[illegible] " In tune with the infinite ' (इन ट्यून विथ दि इन्[illegible] इट) नामक ग्रन्थ लिखा है। इसका मराठी अनुवाद " अनन्[illegible] साधर्म्य " हमने कोई ७ वर्ष पहले पढ़ा था। श्रीयुत सुखसम्पत्ति[illegible] भंडारीजीने इस पुस्तक को हिन्दी में कर के बड़ा अच्छा काम कि[illegible] परन्तु " स्वर्गीय जीवन " नाम इसका ठीक नहीं जान प[illegible] वास्तव में मूल ग्रन्थकारने इसका नाम बहुत ही रमणीय काव्य[illegible] रखा है-अर्थात् " अनन्त के साथ स्वरसम्मेलन "-जिसका ता[illegible] यह है कि आत्मा परमात्मा की प्रतिध्वनि है-और इ[illegible] स्वर उस अनन्त से अखंड सम्मिलित रहता है। [illegible] पुस्तक का विषय इससे प्रकट हो जाता है कि इसमें आत्मा[illegible] अमरता और परमात्मा से उसका सम्बन्ध बतलाया गया है। [illegible] कारों की राय है कि ट्राइन साहब ने गीता के ही आधार पर [illegible] पुस्तक की रचना की है-अर्थात् भारतीय आध्यात्मिक-सिद्धा[illegible] को अंगरेजी मनोमोहक ' गौन ' पहना दिया है। इससे मूल पु[illegible] लोगों ने बहुत पसन्द की है। भंडारीजीने, जान पड़ता है, म[illegible] के आधार पर इसे लिखा है, क्योंकि कई जगह वाक्यरचना [illegible] शब्द मराठी ढंग के हैं। कुछ भी हो, भूमिका में आपने अंगरेजी से [illegible] अनुवादित होना प्रकट किया है। दो परिच्छेदों का अनुवा[illegible] इसमें नहीं है। तथापि हिन्दी में इसको निकाल कर भंडारी जी[illegible] प्रशंसनीय कार्य किया है। यदि मूल पुस्तक से ही कोई विद्वान् मह[illegible] इसका अनुवाद सर्वांगपूर्ण करते तो पढ़नेवालों को विशेष आन[illegible] मिलता। पुस्तक हरिदास एंड कम्पनी कलकत्ता से ॥) में मिलती [illegible]

" चित्रमय-जगत् " के विषय में।

' जगत् ' का यह अक्टूबर का अंक पाठकों की सेवा में विलम्ब[illegible] पहुंच रहा है। इसका कारण पूने में प्लेग की प्रबलता के का[illegible] कर्मचारियों का इधर उधर हो जाना ही है। अब प्लेग कम हो रहा [illegible] अगला नवम्बर का अंक यथासम्भव हम शीघ्र ही निकालेंगे। आ[illegible] है कि दिसम्बर या जनवरी के मास से फिर ' जगत् ' पाठकों [illegible] सेवा में नियमानुसार पहुंचना रहेगा।

हमें खेद से लिखना पड़ता है कि चित्रमय-जगत् का प्रचार अ[illegible] तक हिन्दी-भाषा-भाषियों में बहुत कम हुआ है। यहां तक [illegible] गुजराती चित्रमय-जगत्, जो अभी दो ही साल से निकला [illegible] ग्राहकसंख्या में हिन्दी से आगे निकल गया है। हम हिन्दी भा[illegible] भाषियों की सेवा में त्रुटि नहीं करते। अब आप लोग भी अप[illegible] कर्तव्य अवश्य पालन करें। हम यह भी चाहते हैं कि आप लो[illegible] हमें चि० ज० की त्रुटियां भी बतलावें, जिन्हें पूर्ण करने का ह[illegible] प्रबन्ध करें।

हम चाहते हैं कि ' चित्रमय जगत् ' में हिन्दी भाषा भाषी प्रान्[illegible] की सार्वजनिक संस्थाओं, सार्वजनिक उत्सवों, सार्वजनिक पुरु[illegible] और उनके निजी उत्सवों (क्योंकि सार्वजनिक पुरुषों के [illegible] उत्सव भी सार्वजनिक ही होते हैं) के चित्र संक्षिप्त वर्णन स[illegible] प्रकाशित किया करें, परन्तु उन प्रान्तों से चित्र प्राप्त करने का [illegible] कोई सुभीता नहीं है। यदि ' जगत् ' के प्रेमी ऐसे चित्र, [illegible] समय पर, संक्षिप्त वर्णन के साथ, भेज दिया करें तो ' जगत् ' [illegible] भाषा-भाषियों के लिए और भी उपयुक्त तथा मनोरञ्जक बन [illegible] परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि चित्र सार्वजनिक [illegible] संस्थाओं, उत्सवों और पुरुषों के ही हों, व्यक्तिविशेषके नहीं; [illegible] [illegible] लोग अपनी प्रसिद्धि न होने के लिए स्वयं ही [illegible] [illegible] करते हैं, अथवा किसी अन्य मित्रों के द्वारा [illegible] करते हैं—ऐसे चित्रों से जनता को कोई लाभ नहीं। [illegible] [illegible] इस निवेदन पर ' जगत् ' के प्रेमी ध्यान देंगे और [illegible] [illegible] निवेदन का पालन करेंगे।

वर्ष ६ — चित्रमयजगत् — अंक ११

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो! तेजस्विता दीजिए। देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से। फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से॥

भाग ६] कार्तिक सं० १९७३ वि०—नवम्बर स० १९१६ ई० [संख्या ११

गीतारहस्य पर चर्चा।

लोकमान्य महात्मा तिलक जी का गीतारहस्य मराठी में पहले पहल प्रकाशित होते ही महाराष्ट्र विद्वान् लोगों ने उस पर चर्चा करना प्रारम्भ कर दिया। इन चर्चा करने वालों के दो दल हैं। एक प्राचीनाभिमानी, शंकराचार्य का पक्ष लेनेवाले और दूसरे नवीनाभिमानी, तिलक महाराज का पक्ष लेनेवाले। शंकराचार्य के पक्षवालों का कथन है कि तिलक जी ने गीता में जो कर्मयोग को प्रधानता दी है सो ठीक नहीं है, शंकराचार्य जी का मत ठीक है, जो कि कर्मसन्यास को प्रधानता देते हैं। नवीन-दलवाले कहते हैं कि नहीं श्रीकृष्ण भगवान् का तात्पर्य, गीता में कर्मयोग की ही प्रधानता अर्जुन के लिए प्रकट करने का है, 'कर्मसन्यास' का तात्पर्य नहीं है। सारांश, महाराष्ट्र लोगों में, मराठी गीतारहस्य के प्रकाशित होने पर यह चर्चा प्रारम्भ हुई है कि शंकराचार्य का मत गीता के विषय में ठीक है या तिलक का।

हिन्दी में भी गीतारहस्य निकले कई महीने होगये, पर अभी तक विशेष चर्चा इस ग्रन्थ पर प्रारम्भ नहीं हुई। मामूली 'समालोचना' में भी हमारे समालोचकों ने इस ग्रन्थ पर कुछ विशेष चर्चा नहीं की। कई पत्रों ने तो अभी तक कुछ लिखा ही नहीं। हिन्दीसंसार की यह उदासीनता स्वाभाविक है। तथापि इस मास के "ब्राह्मण-सर्वस्व" नामक मासिक पत्र में प्रसिद्ध विद्वान् पं० भीमसेन शर्मा वेदव्याख्याता "कलकत्तायूनिवर्सिटी" ने एक लेख गीतारहस्य पर लिखा है। आपने भी प्राचीन दल की तरह का कुछ मतभेद प्रकट किया है। आपके कथन का सारांश यह है कि तिलक महाराज ने जो कर्मसन्यास को गीता से बिलकुल उड़ा दिया है सो हम नहीं मानते। हम यह मानते हैं कि भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान् का तात्पर्य अर्जुन को, प्रधानतया कर्मयोग बतलाना ही है, किन्तु गीता में कर्म-उपासना-ज्ञान तीनों का त्रिवेणीसंगम है और इसी लिए गीता सब प्रकार के लोगों के लिए 'कामधेनु' है। यही पंडित भीमसेन जी के लेख का सारांश है। पं० भीमसेन जी ने गीता का स्वाध्याय अच्छा किया है। आर्यसमाजी रहते समय उन्होंने गीता का जो भाष्य हिन्दी और संस्कृत में किया है वह बहुत आदर पा चुका है। पंडित जी का कथन ठीक है। और लोकमान्य तिलक से जो मतभेद पंडित भीमसेन जी ने दर्शाया है सो वास्तव में इसी कारण से जान पड़ता है कि पंडित भीमसेन जी ने तिलक महाराज के "गीतारहस्य" को "स्थाली-पुलाक-न्याय" से ही देखा है। उन्होंने यह बात अपने लेख में प्रकट भी की है, कि उन्होंने "गीतारहस्य" सम्पूर्ण नहीं पढ़ा। अन्यथा पं० भीमसेन जी और तिलक महाराज के मत में कुछ भी भेद नहीं है। सम्पूर्ण "गीतारहस्य" पढ़ कर यही निष्कर्ष तिलक महाराज का भी है कि गीता में कर्म-उपासना ज्ञान तीनों हैं; पर श्रीकृष्ण भगवान् ने जिस स्थिति में अर्जुन को गीतोपदेश किया है वह कर्मयोग-प्रधान ही। उपासना और ज्ञान उस स्थिति में गौण थे-किंबहुना उपासना और ज्ञान की सिर्फ सहायता ले कर कृष्ण भगवान् ने गीता में अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश किया है। हम समझते हैं कि तिलक महाराज का यह मत सर्वथा माननीय है। अस्तु।

हम चाहते हैं कि महाराष्ट्र पंडितों की तरह हिन्दी-भाषा-भाषी पंडित भी हिन्दी-गीतारहस्य का अध्ययन करके उस पर हिन्दी में चर्चा प्रारम्भ करें, क्योंकि हम जानते हैं कि महाराष्ट्र की तरह हिन्दी बोलने वालों में भी ऐसे प्राचीन विचार के पंडित हैं कि जो महाराष्ट्र की तरह तिलक जी के गीता विषयक विचारों से मतभेद रखते हैं। और यह भी सम्भव है कि उनका मतभेद कुछ अंशों में सत्य भी हो-ऐसी दशा में गीतारहस्य पर हिन्दी पत्रों में "वाद-सम्वाद" या चर्चा बहुत आवश्यक है, क्यों कि इससे सर्वसाधारण को हिन्दी पंडितों का मत जानने को मिलेगा; और—"वादे वादे जायते तत्त्व-बोधः"—सम्भव है कि उस चर्चा से सर्वसाधारण के सामने यह प्रकट हो जावे कि सत्य तत्व क्या है। गीतारहस्य के अनुकूल प्रतिकूल दोनों प्रकार की, चर्चा अभीष्ट है।

"चित्रमयजगत्" के गत अंक में वेदतीर्थ नरदेव शास्त्रीजी ने एक लेख "गीतारहस्य पर लिखा है, सो पाठकों ने पढ़ाही होगा जहां तक हमें मालूम है, उक्त शास्त्री जी "आर्यसमाज" के प्रकट किये हुए वैदिक सिद्धान्तों को माननेवाले हैं। परन्तु आर्यसमाज का एक दल ऐसा है कि जो "गीता-रहस्य" के विचारों से कई अंशों में मतभेद रखता है। जान पड़ता है उक्त शास्त्रीजी उस दल में नहीं हैं, क्योंकि आपने जो विचार अपने लेख में प्रकट किये हैं वे गीतारहस्य के अनकूल-किंबहुना प्रशंसात्मक हैं। आप तिलक महाराज के अन्धभक्त नहीं हैं-ऐसा प्रकट किया है, सो उचित ही है। हम आप से अभी और यह भी आशा रखते हैं कि आप "गीतारहस्य" को सब पहलुओं से अच्छी तरह अध्ययन करके गम्भीर और मार्मिक विचार हिन्दी-संसार के सम्मुख रखें।

पांडेय रामावतार शर्मा, प० शिवकुमार शास्त्री, स्वामी हरप्रसादजी, प० आर्यमुनिजी पं० दीनदयालु शर्मा, वाणीभूषण पं० गिरिजाशंकरजी शुक्ल, पं० बालकृष्ण शर्मा (बम्बई), पं० भीमसेन शर्मा वेदव्याख्याता डा० गंगानाथ झा, पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ, पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी, बा० गंगाप्रसाद एम० ए०, पं० गोविंद नारायण मिश्र, प० बाल शास्त्री (राजपूताना) पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (आर्यकुल) पं० इंद्रजी वेदालंकार (गुरुकुल) बा० हरिनामजी इंजिनियर उपनाम "वीरेन्द्र" जी, पंडित कृष्णशास्त्री (इन्दौर), इत्यादि कई हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वान् हैं जो "गीतारहस्य" पर अनुकूल-प्रतिकूल चर्चा कर सकते हैं। हम आशा रखते हैं कि हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वन्मंडली हमारी इस प्रार्थना पर शीघ्र ध्यान देगी। "चित्रमयजगत्" के स्तम्भ इस चर्चा के लिए खुले हुए हैं।

मान सभ्यता इस दृष्टि से अन्त में सुखदायक नहीं है; और ऐसे महाशयों का भी बिलकुल अभाव नहीं है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से यह कहते ही जाते हैं कि फिर भी उसी प्राचीन जंगली दशा का स्वीकार क्यों न किया जाय? हम समझते हैं कि उस पूर्वावस्था का स्वीकार उचित चाहे भले ही हो; परन्तु आज की दशा देखते हुए यह सम्भव कदापि नहीं है। और इसी लिए दंड के तौर पर मिले हुए रोगों को दूर करने के लिए आरोग्यदायक उपचाररूप दंड हम को फिर भी भोगना ही चाहिए।

हां, प्रयत्न करने पर यह अवश्य निश्चित किया जा सकता है कि यह दंड जो भोगा जाय सो किस स्वरूप में भोगा जाय; और उसके लिए यदि तारतम्यभाव का उपयोग किया जायगा तो उस दंड का स्वरूप भी बहुत कुछ सौम्य हो सकता है।

इस प्रकार का सौम्य दंड यही है कि रोग उत्पन्न होने के पूर्व-लक्षण देखते ही उसके उपचार का प्रारम्भ कर दिया जाय। और इस से भी सौम्यदंड यदि पूछिये तो वह यह है कि अनेक प्रकार की और अनिश्चित परिणाम करनेवाली औषधियां न लेकर युक्ताहार-विहार से ही रोग की उत्पत्ति जहां की तहां ही नष्ट कर दी जाय। परन्तु इस से भी अधिक, और सब से अधिक, सौम्य एक उपाय है। वह उपाय है रोगप्रतिबन्धक निसर्गोपचार-अर्थात् ऐसे प्राकृतिक उपचार किये जायँ जिनसे रोग होने ही न पावे-अथवा जहां का तहां नष्ट हो जाये।

अपने अतिकृत्रिम (अस्वभाविक) आहार से, रहन-सहन से, सदैव सारे शरीर में बहुत से कपड़े पहने रहने की आदत से, त्वचा का उपर्युक्त कार्य यथार्थ रीति से नहीं होने पाता। इसी लिए कुछ ऐसे उपचारों का आविष्कार हुआ है जो अवकाश मिलने पर कर लेने से, आदतों की ऐसी बुरी दशा में भी, त्वचा के कार्य में, और न सही तो कृत्रिम रूप से ही कुछ न कुछ सहायता देते रहते हैं। उन्हीं उपचारों में से घर्षणस्नान भी एक है। अतएव आज हमने इसी विषय को, चित्रमय जगत् के प्रेमी पाठकों के लिए सचित्र देने की योजना की है। इस स्नान से त्वचा मृदु और कान्ति तेजस्वी होती है। स्पर्श-ज्ञान तीव्र होता है, और सम्पूर्ण त्वचा तथा सारे शरीर में नवीन स्फूर्ति, सामर्थ्य तथा तेज का संचार हो जाता है।

सामर्थ्य अथवा बल केवल स्नायुओं अथवा हड्डियों में ही नहीं होता, किन्तु अन्य अवयवों की तरह त्वचा पर भी अवलम्बित रहता है। आगे जो व्यायाम घर्षणस्नान के दिये जाते हैं वे कदाचित् पाठकों को बहुत कठिन, अस्वाभाविक, कृत्रिम और परिणाम-शून्य भी मालूम होंगे, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। ये चित्र सामने रख कर, उनके वर्णन के अनुसार, यदि कुछ समय तक इन व्यायामों का अभ्यास किया जायगा तो फिर ये व्यायाम बिलकुल सहज हो जायेंगे। सच पूछिये तो इन व्यायामों के करने में ६-७ मिनट से अधिक कभी नहीं लगते। अवश्य ही अन्त में यह आरोग्यसम्पादक और व्याधिप्रतिबन्धक तरह बहुत ही सौम्य स्वरूप का प्रतीत होगा।

यह सब व्यायाम खड़े हो कर करना चाहिए, इस से स्नान करने पर शरीर पर धूल या मैल नहीं बैठेगा। हाथ से जब मलना या रगड़ना हो तब सदा शरीर के ऊपरी भाग की ओर मलते या रगड़ते जाना चाहिए। पहले नीचे की ओर मलना या रगड़ना नहीं चाहिए, जब तक खास तौर पर बतलाया न जाय।

पहले ही से इस व्यायाम में विशेष जोर न देना चाहिए। इनमें से दो ही तीन प्रकार का व्यायाम एक बार में सीखने का प्रयत्न करना चाहिए। उनमें अच्छा अभ्यास हो जाने पर आगे बढ़ना चाहिए। इस प्रकार करने से सारा व्यायाम सुलभ होने से, और एकदम करने का अभ्यास हो जायगा।

व्यायाम के पूर्व कभी कपड़े न रखना चाहिए। अथवा हों, धीरे धीरे और बिना रोके लेना चाहिए। जहां तक हो सके, शुद्ध और खुली हवा में व्यायाम करना चाहिए। और शरीर पर, जहां तक हो सके, कपड़े कम रखना चाहिए। यह व्यायाम भोजन के बाद दो तीन घंटे तक और भोजन के पहले कम से कम एक घंटे, अर्थात् अधिक भूख के समय, न करना चाहिए। सब से उत्तम समय प्रातः काल सो कर उठने के बाद और सायंकाल सोने के पहले है। सुबह करने से आलस, उनींदापन, जड़ता, इत्यादि शरीर और मन को अस्वस्थ करनेवाली प्रवृत्तियां नष्ट हो जाती हैं और शरीर तथा मन में नवीन स्फूर्ति तथा तेजस्विता आने लगती है। और यदि सोने के पहले यह व्यायाम किया जायगा तो दिन भर की सारी थकावट दूर हो जायगी और निद्रा गंभीर आयेगी। जो लोग दोनों वक्त यह व्यायाम न कर सकें उन्हें सायंकाल को सोने के पहले तो अवश्य करना चाहिए, इससे दिन भर का शरीर पर बैठा हुआ मैल सोते समय निकल जाया करेगा; और त्वचा शुद्ध हो जाने से रात में शरीर के भीतर का मैल बाहर निकलने का कार्य ठीक ठीक होता रहेगा। सायंकाल के समय प्रायः लोग स्नान करते हैं; उस स्नान की जगह यह व्यायाम यदि किया करें तो अधिक लाभ हो।
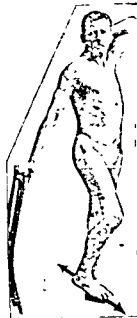
व्या० नं० १ अ व्या० नं० १ क

व्या० नं० १ ब

आकृति (नं० १ अ) जैसा कि इस व्यायाम १ चित्र में दिखलाया गया है, दाहना हाथ किसी न किसी प्रकार के आधार पर रख कर पैर के एक तलवे से दूसरे पैर पर साथ और से २४ बार मलना चाहिए। उस समय बायां हाथ पीछे ले जा कर, गर्दन का पिछला भाग, जहां तक हाथ जा सके वहां तक, अर्थात् लगभग पीठ के मध्यभाग तक, मलना चाहिए। इसके बाद (आकृति नं० १ क) के अनुसार सारी गर्दन मलनी चाहिए, और बाद को अन्त में गला

व्या० नं० २

[illegible] चाहिए। (व्या० नं० १ ब) इसके बाद [illegible]
[illegible]
चाहिए।

दाहने कंधे के ऊपर की हड्डी से लेकर बिलकुल उँगलियों तक सरकाते हुए फिराना चाहिए। इसके बाद फिर हाथ बदल कर दूसरी ओर से यही क्रिया करनी चाहिए।

यह व्यायाम करते समय (आ० नं० २ ब) के अनुसार १० बैठकें भी करना चाहिए। ऊपर से भुजदंड घिसते हुए ही घुटने लचाते रहना चाहिए और नीचे से कोर तक ज्यों ही हाथ मलना खतम हो कि फिर तुरन्त पूर्वस्थिति पर आजाना चाहिए।

व्यायाम नं० ३

पंजे का अगला भाग बाहर की ओर झुका कर दोनों पैरों में लगभग हाथ भर अन्तर रख कर खड़ा रहना चाहिए। शरीर का ऊपरी भाग अच्छी तरह पीछे झुकाना चाहिए। इसके बाद दोनों हाथों की हथेलियों से गले की हड्डियों से ले कर बिलकुल नीचे तक का भाग अच्छी तरह मलना चाहिए। इसके बाद हाथ मामूली हालत में लाना चाहिए और उसी समय सीधे खड़े होजाना चाहिए।

इसके बाद उदरप्रदेश, जितना हो सके, भीतर खींच कर उसी समय हाथ पीठ के पीछे ले जाना चाहिए। इसके बाद हाथ, जहां तक आ सकें, कटिपश्चात् भाग पर ले जाकर सारा भाग बड़े सपाटे के साथ रगड़ डालना चाहिए। (आ० नं० २ ब) और ऐसा करते

व्या० नं० ८ अ ब

समय, जहां तक हो सके, आगे निहुर जाना चाहिए। इसके बाद, बिलकुल न ठहरते हुए, फिर अकड़ जाना चाहिए और ऐसा करते समय हाथ घुटनों से लेकर जांघों तक मलते आना चाहिए।

इस समय हाथों का तनाव बन्द कर के साधारण दशा में खड़े हो जाना चाहिए। और अगले व्यायाम के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

व्यायाम नं० ४

दोनों पैरों में बहुत सा अन्तर रख कर डट कर खड़े हो जाना चाहिए। इसके बाद दाहना घुटना तोड़ कर बायां पैर बिलकुल तना रखना चाहिए। और बाईं ओर, जहां तक हो सके, झुकना चाहिए। बायें पैर के बाहरी ओर का भाग (आ० नं० ४) के अनुसार मलना चाहिए। इसके बाद अकड़े हुए ही और दाहने पैर को ताने हुए ही बाईं जांघ के बाहरी भाग पर हाथ फिराते हुए शरीर के अर्धभाग तक ला कर बाद को दूसरी ओर तक हाथ लाना चाहिए। (आ० नं० ४ ब) बायें हाथ की हथेली से पेट के दोनों ओर रगड़ते हुए ही दाहने हाथ से बगलों और उदर के बीच का मध्यस्थल दाबते रहना चाहिए।

इसके बाद दोनों हाथ खुले छोड़ कर बायां पैर और पेट दाहनी ओर को ही तरह मलना चाहिए।

शरीर ऊपर करते हुए श्वास भीतर लेना चाहिए और बाकी सब समय श्वास धीरे धीरे बराबर बाहर छोड़ते रहना चाहिए।

व्यायाम नं० ५

किसी कुर्सी के पीछे अथवा अन्य किसी स्थिर आधार के पीछे खड़े हो कर दाहना हाथ सीधा नीचे छोड़ कर पीछे फिरा कर (आकृति नं० ५ अ) के अनुसार फिराना चाहिए। उसी समय शरीर के ऊपर का भाग कमर से बाईं ओर घुमाना चाहिए। इसके बाद कुर्सी की पीठ पर दाहनी हथेली अच्छी तरह जमा कर बायें हाथ से पीठ, जितनी हो सके, ऊपर से नीचे तक, घुमाते फिराते हुए तीन बार रगड़ कर मलना चाहिए। और जब तक मलना खतम न

व्या० नं० ९ अ ब

व्या० नं० १० अ ब

हो तब तक कुर्सी पर जमा हुआ हाथ, जितना हो सके, जोर से नीचे को दाबना चाहिए। (आ० नं० ५ ब) इसके बाद कुर्सी पर रखा हुआ बायां हाथ निकाल कर उसकी जगह दाहना हाथ रखना चाहिए और यही व्यायाम फिर करना चाहिए।

हाथ हिलाते हुए श्वास भीतर लेना चाहिए और एक हाथ कुर्सी पर दाब कर दूसरे हाथ से पीठ रगड़ते हुए श्वास बाहर छोड़ना चाहिए।

व्यायाम नं० ६

सरल खड़े होकर पैर में पैर जोड़ना चाहिए, परन्तु पैरों की उँगलियां बाहर फिरा कर और हाथ का पंजा नीचे सीधा कर के हाथ कमर पर रख कर अकड़ कर खड़ा हो जाना चाहिए। (आ० नं० ६ अ) इसके बाद एक पैर घुटने में और घुट्टे में, न लचाते हुए, तना रख कर धीरे धीरे ऊपर उठाते आना चाहिए, ऐसा करते हुए ही उसी ओर के हाथ से उस पैर की जंघा का बाहरी भाग ऊपर से नीचे तक रगड़ते जाना चाहिए। (आ० नं० ६ ब)

पर नीचे लाते समय हाथ से पैर को नीचे से ऊपर तक रगड़ते जाना चाहिए। परन्तु उस समय यह ऊपर की ओर से न रगड़ते हुए भीतर की ओर से रगड़ते जाना चाहिए (आ० नं० ६ ब) यह मलना खतम होने ही पूर्व दशा पर आकर दूसरा पैर मलना चाहिए।
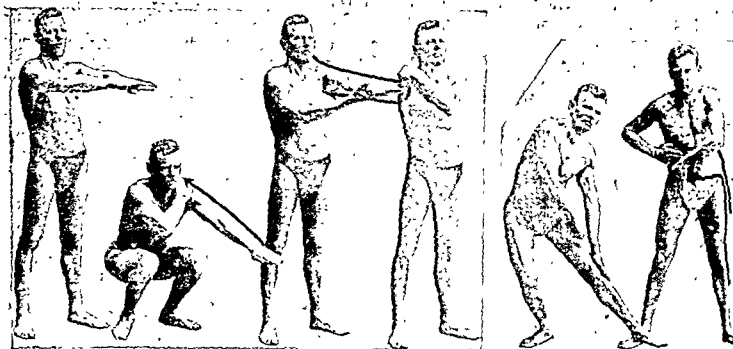
व्या० नं० २ अ ब क ड

व्या० नं० ४ अ ब

व्यायाम नं० २

बायां हाथ सामने की ओर सीधा कर के तानना चाहिए। हाथ का पंजा जमीन की ओर नीचे झुका हुआ रहना चाहिए। दाहने हाथ की हथेली से बायें हाथ का ऊपरी भाग (व्या० नं० २ अ) उँगलियों के सिरे से ले कर बिलकुल कंधे तक और फिर इसके बाद कंधे से लेकर उँगलियों के सिरे तक खूब रगड़ना चाहिए। (व्या० नं० २ ब)

इसी प्रकार हाथ का निचला भाग भी कांख तक घिसना चाहिए और उसे छाती के बाईं ओर से कंधे पर लाना चाहिए। इसके बाद दाहना हाथ ढीला कर के फिर दोनों हाथ एक दूसरे के ऊपर छाती पर लाना चाहिए, और दाहने हाथ से बायां कंधा, जितना खिंच सके, पीछे खींचना चाहिए। और बायें हाथ से दाहना कंधा खूब मजबूती से पकड़ लेना चाहिए। (व्या० नं० २ ड)

इसके बाद हाथों की लपेट छोड़ते हुए दाहने हाथ से बायें कंधे का भाग कांख तक रगड़ना चाहिए और उसी समय बायां हाथ

व्या० नं० ७ अ आ इ ई उ

व्या० नं० ५ अ ब

व्या० नं० ६ अ ब क

दाहने कंधे के ऊपर की हड्डी से लेकर बिलकुल उँगलियों तक सर-
काते हुए फिराना चाहिए। इसके बाद फिर हाथ बदल कर दूसरी
ओर से यही क्रिया करनी चाहिए।

यह व्यायाम करते समय (आ० नं० २ ब) के अनुसार १० बैठकें
भी करना चाहिए। ऊपर से भुजदंड घिसते हुए ही घुटने लचाते
रहना चाहिए और भौंह से कान तक ज्यों ही हाथ मलना खतम
हो कि फिर तुरन्त पूर्वस्थिति पर आजाना चाहिए।

पेट का अगला भाग बाहर की ओर झुका कर दोनों पैरों में
लगभग हाथ भर अन्तर रख कर खड़ा रहना

व्यायाम नं० ३

चाहिए। शरीर का ऊपरी भाग अच्छी तरह पीछे
झुकाना चाहिए। इसके बाद दोनों हाथों की
हथेलियों से गले की हड्डियों से ले कर बिलकुल नीचे तक का भाग
अच्छी तरह मलना चाहिए। इसके बाद हाथ मामूली हालत में
लाना चाहिए और उसी समय सीधे खड़े होजाना चाहिए।

इसके बाद उदरप्रदेश, जितना हो सके, भीतर खींच कर उसी
समय हाथ पीठ के पीछे ले जाना चाहिए। इसके बाद हाथ, जहां
तक जा सकें, कटिपश्चात् भाग पर ले जाकर सारा भाग बड़े सपाटे
के साथ रगड़ डालना चाहिए। (आ० नं० २ ब) और ऐसा करते

व्या० नं० ८ अ ब

समय, जहां तक हो सके, आगे निहुर जाना चाहिए। इसके बाद,
बिलकुल न ठहरते हुए, फिर अकड़ जाना चाहिए और ऐसा करते
समय हाथ घुटनों से लेकर जांघों तक मलते आना चाहिए।

इस समय हाथों का तनाव बन्द कर के साधारण दशा में खड़े हो
जाना चाहिए। और अगले व्यायाम के लिए तैयार हो जाना
चाहिए।

दोनों पैरों में बहुत सा अन्तर रख कर डँट कर खड़े हो जाना

व्यायाम नं० ४

चाहिए। इसके बाद दाहना घुटना मोड़ कर
बायां पैर बिलकुल तना रखना चाहिए।
और बाईं ओर, जहां तक हो सके, झुकना
चाहिए। बायें पैर के बाहरी ओर का भाग (आ० नं० ४) के अनु-
सार मलना चाहिए। इसके बाद अकड़े हुए ही और दाहने पैर को
तानते हुए ही बाईं जांघ के बाहरी भाग पर हाथ फिराते हुए शरीर
के अर्धभाग तक ला कर बाद को दूसरी ओर तक हाथ लाना
चाहिए। (आ० नं० ४ ब) बायें हाथ की हथेली से पेट के दोनों
ओर रगड़ते हुए ही दाहने हाथ से बगलों और उदर के बीच का
मध्यप्रदेश दाबते रहना चाहिए।

इसके बाद दोनों हाथ खुले छोड़ कर बायां पैर और पेट दाहनी
ओर को ही तरह मलना चाहिए।

शरीर ऊपर करते हुए श्वास भीतर लेना चाहिए और बाकी सब
समय श्वास धीरे धीरे बराबर बाहर छोड़ते रहना चाहिए।

किसी कुर्सी के पीछे अथवा अन्य किसी स्थिर आधार के पी[illegible]
खड़े हो कर दाहना हाथ सीधा नीचे छो[illegible]

व्यायाम नं० ५

कर पीछे फिरा कर (आकृति नं० ५ अ) [illegible]
अनुसार फिराना चाहिए। उसी समय शरी[illegible]
के ऊपर का भाग कमर से बाईं ओर घुमाना चाहिए। इसके बा[illegible]
कुर्सी की पीठ पर दाहनी हथेली अच्छी तरह जमा कर बायें हाथ
से पीठ, जितनी हो सके, ऊपर से नीचे तक, घुमाते फिराते हुए
तीन बार रगड़ कर मलना चाहिए। और जब तक मलना खतम न

व्या० नं० ९ अ ब

व्या० नं० १० अ ब

हो तब तक कुर्सी पर जमा हुआ हाथ, जितना हो सके, जोर से
नीचे को दाबना चाहिए। (आ० नं० ५ ब) इसके बाद कुर्सी पर
रखा हुआ बायां हाथ निकाल कर उसकी जगह दाहना हाथ रखना
चाहिए और यही व्यायाम फिर करना चाहिए।

हाथ हिलाते हुए श्वास भीतर लेना चाहिए और एक हाथ
कुर्सी पर दाब कर दूसरे हाथ से पीठ रगड़ते हुए श्वास बाहर
छोड़ना चाहिए।

सरल खड़े होकर पैर से पैर जोड़ना चाहिए, परन्तु पैरों की उँग-
लियां बाहर फिरा कर और हाथ का पंजा

व्यायाम नं० ६

नीचे सीधा कर के हाथ कमर पर रख कर
अकड़ कर खड़ा हो जाना चाहिए।
(आ० नं० ६ अ) इसके बाद एक पैर घुटने में और गुल्फ में, न
लचाते हुए, तना रख कर धीरे धीरे ऊपर उठाते जाना चाहिए,
ऐसा करते हुए ही उसी ओर के हाथ से उस पैर की जंघा का
बाहरी भाग ऊपर से नीचे तक रगड़ते जाना चाहिए। (आ०
नं० ६ ब)

पर नीचे लाते समय हाथ से पैर को नीचे से ऊपर तक रगड़ते
जाना चाहिए। परन्तु उस समय वह ऊपर की ओर से न रगड़ते
हुए भीतर की ओर से रगड़ते जाना चाहिए (आ० नं० ६ क) यह
मलना खतम होते ही पूर्व दशा पर आकर दूसरा पैर मलना
चाहिए।

एक पैर मलते समय श्वास भीतर लेना दूसरा रगड़ते समय बाहर छोड़ना चाहिए।

व्यायाम नं० ७

सीधे अकड़ कर खड़े होजाओ (आ० नं० ७ अ) एक पैर गांठ पर लचा कर, शरीर न झुकाते हुए हो, जितना हो सके, ऊपर को उठाओ, तलवा तना हुआ न रख कर उसे इस तरह बिलकुल भीतर खींचना चाहिए कि जिससे वह ऊपर की पिंडली के सामने सरल रेखा में आजावे। (आ० नं० ७ आ) दोनों हाथों से तलवे की एड़ी जोर से पकड़ो और पैर जोर से नीचे खींच कर हाथ जोर से मलते हुए लगभग गांठ तक जब आजावें (आ० नं० ७ इ) तब श्वास भीतर लो। फिर पहली दशा पर आकर दूसरे पैर से यही व्यायाम करो!

इस प्रकार पैर बदलने में कुछ अवकाश मिलता है। उस अवकाश के समय स्वस्थ खड़े रहो और श्वास बाहर छोड़ो। ऊपर बतलाई हुई क्रियाएं जब अच्छी तरह होने लगें तब उसमें कुछ विशेषता करनी चाहिए। जंघा तक हाथों से पैरों का मलना जब हो जावे तब वहीं न ठहरते हुए ऊपर गले की हड्डियों तक शरीर का भाग मलना चाहिए। (आ० नं० ७ ई) और हाथ खुले छोड़ देना चाहिये। तथा तुरन्त ही बायां हाथ पीछे ले जा कर उस के पीछे से पीठ पर से नीचे ठोंकते जाना चाहिए।

पीठ ठोंकने समय श्वास बाहर छोड़ना चाहिए।

व्यायाम नं० ८

कमर पर हाथ रख कर और पैर से पैर जोड़ कर अकड़े हुए खड़े रहो। तुरन्त शरीर बाईं ओर को झुकाओ। और बायां कटिपश्चात् भाग (नितम्ब) और जंघाओं का बाहरी भाग हथेली से रगड़ते जाओ और दाहनी हथेली, दाहनी बगल को मलते हुए ऊपर ले जाओ (आ० नं० ८ अ) इसके बाद पहली दशा में आकर, दूसरी ओर से यही व्यायाम करो। (आ० नं० ८ ब)

व्यायाम नं० ९

पैर कुछ दूर दूर और पैरों की उँगलियां किंचित् अन्तर्मुख कर के खड़े हो जाओ और कमर के ऊपर का भाग जल्दी जल्दी बाईं ओर से दाहनी ओर और दाहनी ओर से बाईं ओर घुमाओ। और उसी समय दोनों हाथ (आ० नं० अ और ब) के अनुसार छाती पर फिराओ।

व्यायाम नं० १०

पैर एक दूसरे से कुछ दूर, और उँगलियां बाह्यमुख कर के शरीर, जितना हो सके, पीछे झुकाना चाहिए और हाथ छाती पर से कमर तक नीचे फिराते हुए लाना चाहिए (आ० नं० १० अ) इसके बाद पीठ न झुकाते हुए और उँगलियां भीतर न खींचते हुए आगे झुकना चाहिए और पीठ हथेलियों से रगड़ना चाहिए (आ० नं० १० ब) फिर पहली दशा में खड़े हो जाना चाहिए।

सूचनाः—यह व्यायाम-प्रणाली सुप्रसिद्ध व्यायामशास्त्रज्ञ मेजर जे० पी० मुलर ने निकाली है और इस लेख में जो चित्र दिये गये हैं सो भी उन्हीं के हैं।

लोकमान्य तिलक हुबली में पिञ्जरापोल देखने जा रहे हैं।
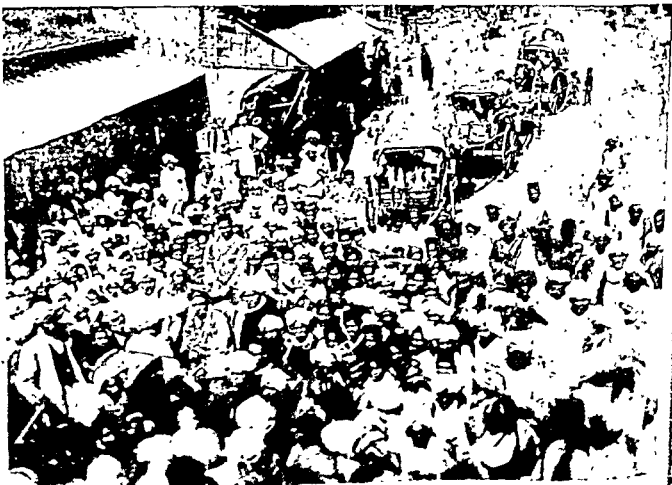
जुलूस के आगे लोगों के झुंड में तिलक महाराज हैं, जिनके गले में पुष्प-हार पड़े हुए हैं।

एक प्रसिद्ध पाश्चात्य कोठी।

(नैरोबी (पूर्व आफ्रिका) के एक मित्र से प्राप्त)

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदंति। दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥

भर्तृहरि.

हम भारतीयों के लिए यह बड़े गौरव तथा अभिमान का विषय है कि इधर कुछ दिनों से जावा और उसके आसपास के टापुओं में प्राचीन हिन्दू (आर्य) लोगों के उपनिवेशों (कालोनी) और उनके उद्यम-व्यापार तथा कलाकौशल के विषय में बहुत सी जानकारी प्राप्त हो रही है। परन्तु उनके अर्वाचीन उपनिवेशों, और विशेषत ब्रिटिश पूर्व आफ्रिका के उपनिवेशों के विषय में, अर्थात् इधर के जंगली प्रदेशों, लोगों, उनके आचार विचारों, यूरोपियन और भारतीय लोगों, और उनकी सामाजिक राजनैतिक और औद्योगिक दशा इत्यादि के विषय में, कुछ जानकारी प्रकाशित नहीं हुई है। भारतीय साधारण जनता को यह प्रदेश, निर्जन, वालुकामय, उजाड़ और हिंस्र पशुओं से भरा हुआ ही जान पड़ता है, इस लिए प्रस्तुत लेखक इस विषय में, अवकाश पा कर, कुछ वृत्तान्त प्रकाशित करने का विचार रखता है। उससे यह जान पड़ेगा कि यहां की भारतीय जनता, और और बातों की तरह, व्यापार-उद्योग में भी बहुत पिछड़ी हुई है। इस देश में उद्योगधंधों की वृद्धि खूब हो रही है; परन्तु भारतीय लोगों की ऐश्वर्यवृद्धि जैसी होनी चाहिए वैसी होती हुई नहीं देखी आती; और ब्रिटिश व्यापारी और कोठीवाल अभी यहां सिर्फ चार ही वर्ष से आये हैं परन्तु जो उन्नति और ऐश्वर्यवृद्धि अन्य लोग ३० वर्ष में भी नहीं कर सके वह उन्होंने सिर्फ चार ही वर्ष में कर दिखलाई है। एक पाश्चात्य कोठीवाल ने अपनी कोठी चलाने में जो सफलता प्राप्त की है वह प्रत्येक भारतीय को आश्चर्य में डालनेवाली है।

कलकत्ते में कम्पनी की पहली दुकान

उसका कुछ वृत्तान्त हम आज चित्रमयजगत् के प्रेमी पाठकों के लिए सचित्र देते हैं। आशा है, कि हमारे भारतीय बन्धु इससे यथोचित शिक्षा ग्रहण करके अपने व्यापार में उन्नति करने का मार्ग ढूंढ निकालेंगे।

इस कोठी से हमारे भारतीय शिक्षित पुरुष अवश्य परिचित होंगे और इसका नाम "व्हाइट-अवे लेडला एंड कम्पनी लिमिटेड" है।

इस कोठी के मूल उत्पादक सर राबर्ट लेडला, जो एक महा पुरुष थे, गत वर्ष स्वर्गवासी हो गये। इन महाशय की उन महा पुरुषों में गणना थी कि जो अपने अतुल पराक्रम, बाहुबल और बुद्धिबल से पूर्वी देशों में व्यापार की प्रचण्ड क्रांतियां कर रहे हैं; और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी मृत्यु से पूर्वीय देशों का एक महान औद्योगिक पुरुषरत्न उठ गया है। ये बड़े धार्मिक, अतिशय महत्वाकांक्षी, कुशल और व्यापारनीति के उत्तम ज्ञाता थे। ये एक समय पार्लिमेंट के और ओपियम कमीशन के सभासद भी थे; रायल जिओग्रेफिकल सोसायटी के फेलो और लंडन मिशनरी सोसायटी के खजांची थे, इसके सिवाय अन्य भी कई संस्थाओं में बड़े बड़े कार्य करके उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता और चातुर्य व्यक्त किया था। उनमें यह कुशलता बहुत भारी थी कि कैसी परिस्थिति को कैसे कार्य में ला सकते हैं और उस परिस्थिति का पूर्ण उपयोग किस रीति से किया जा सकता है—अर्थात् परिस्थिति के अनुकूल कार्य की योजना करना उन्हें बहुत अच्छी तरह ज्ञात था; और यही ज्ञान एक व्यापारी के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। उन्होंने जो अपनी व्यापारी संस्था, अर्थात् कोठी, स्थापित की है उसी से उनके उपर्युक्त कौशल का अनुमान भली भांति किया जा सकता है। और उनकी दूसरी खूबी, या विशिष्टता, यह थी कि होशियार और होनहार लोगों को वे अच्छी तरह अपने हाथ में ले लेते थे—इस कार्य में भी वे सिद्धहस्त थे। व्यापार की कुशलता, समयसूचकता और उपयोगी लोगों को हाथ में रखना अर्थात् लोकसंग्रह—ये सब बातें जिस पुरुष में पूर्णतया हों वह अपने उद्योग में सफल क्यों न हो?

पाश्चात्य देशों में ऐसी बहुत सी संस्थायें और कोठियां हैं कि उन्हें शुरू हुए अनेक वर्ष होगये; पर वे बराबर आज तक, उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर क्रमण करती हुई, चल रही हैं। इसका रहस्य क्या है? यही जो हमने ऊपर बतलाया—व्यापार-कौशल तथा उत्तम उपयोगी पुरुषों का चुनाव। हमारे यहां कोठियों को खुलते देर नहीं लगती और न दिवाला निकलते ही देर लगती है, इसका कारण क्या है? लोगों में व्यापार-कौशल और समय या परिस्थिति की परख, या समयसूचकता, नहीं है; और योग्य मनुष्य भी नहीं चुने जाते। बेईमान और उड़ाऊ लोगों के हाथ में कोठियों की पूंजी दे दी जाती है—अथवा दरिद्रता के कारण लोग ईमान खराब कर बैठते हैं—और कोठियों का दिवाला झट निकल जाता है। अस्तु। सर राबर्ट स्वयं तो व्यापारनीति में कुशल थे ही; परन्तु उन्होंने अपनी कोठी के लिए जो मनुष्य रखे, और जिन्हें कि उन्होंने स्वयं अपनी देखरेख में व्यापार चलाने की शिक्षा दी, वे मनुष्य भी ऐसे ही उन्होंने चुने कि जो उनके बाद उनके 'व्रत'—उनके चलाये हुए व्यापार—को बराबर चलाते ही रहेंगे। सारांश, गीता में जैसा कि कहा है, योगः कर्मसु कौशलम्, सो राबर्ट साहब व्यापार करने में पूरे 'कर्मयोगी' थे।

१९०९-१० में बना हुआ कलकत्ते का भवन।

अब आज कल, उनके बाद, कम्पनी के चेयरमैन की जगह मि० ... फिनलेसन साहब काम कर रहे ... सर राबर्ट के पहले ... —उनके दाहने हाथ थे। ... प्रारम्भ में पेकिंग के ... कर और सब ऊंचे से ऊंचे ... पदों पर काम किया करते थे। बस, इसीमें उनकी योग्यता और उन्नति का रहस्य है। प्रिय पाठको! मनुष्य ऊंचा वही होता है जो नीचे से ऊंचे कार्यों को प्रामाणिकता और परिश्रम के साथ करते हुए क्रमशः ऊंचे को उठता जाता है। जितने भी महापुरुष दुनिया में हुए हैं, और हैं, उनमें से अधिकांश इसी प्रकार के पाए देखेंगे। अस्तु। इसके सिवाय एक बात और भी ध्यान में रखना चाहिए कि किसी संस्था में, उसके मुख्य संचालक के बाद, जिस पुरुष की योजना संचालक की जगह पर अधिक उपयोगी होती है वह प्रायः वंशपरम्परा का नहीं होता, क्योंकि यह कोई निश्चित बात नहीं है कि योग्य व्यक्ति का वंशज भी उसी योग्य निकले। इस लिए जो व्यक्ति महत्वाकांक्षी और उद्योग से

व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिए मुख्यतया चार साधन चाहिए:—

(१) पूंजी
(२) माल
(३) स्थल
(४) प्रणाली

ह्वा० लै० कं० पुरुषों के कपड़े ।

ये सब तो व्यापार में चाहिए ही, पर इनका परस्पर-परिमाण भी यथायोग्य होना चाहिए, अन्यथा व्यापार में सिद्धि नहीं हो सकती। अर्थात् ऐसी स्थिति नहीं होनी चाहिए कि जब दांत हैं तब चने नहीं और जब चने हैं तब दांत नहीं। थोड़ी पूंजी लेकर यदि किसी बड़े शहर में कोई व्यापार करने जाय, और व्यापार भी ऐसे माल का कि जिसकी उस स्थान में खपत न हो सके, तो बतलाइये कि ऐसे व्यापार में सफलता कैसे हो सकती है, बात यह है कि जब पूंजी काफी हो, माल भी खपने लायक हो, जगह भी ऐसी हो कि जहां माल खप सके, और, जहां से चारों ओर को माल के आने जाने में सुभीता हो; ये सब बातें उचित परिमाण में हों और व्यापार करनेवाला व्यापारनीति भी जानता हो, अर्थात् किस प्रणाली से कार्य चलाना चाहिए यह उसे मालूम हो, तब व्यापार चल सकता है। हां, कभी कभी ऐसा भी देखने में आया है कि उपर्युक्त सब साधन उचित परिमाण में न होने पर भी किसी किसी को व्यापार में सफलता हुई है; परन्तु जांचने पर इसका यही कारण देखने में आया है कि ऐसी दशा में उनके पास कोई कोई साधन ऐसे प्रबल परिमाण में पाया गया है कि जिसने अन्य साधनों की निर्बलता को दबा दिया है, तथापि यह निर्विवाद है कि व्यापार में पूरी पूरी सफलता प्राप्त करने के लिए उक्त साधनों का उचित मेल होना चाहिए; और यह मेल उस कोठी के संचालकों ने ठीक तौर से किया है।

व्यापार के उपर्युक्त चार साधनों में से पूंजी मुख्य साधन है। यह साधन यदि न हुआ तो अन्य तीनों साधन बेकाम से हो जाते हैं। मान लीजिये, किसी व्यापारी को पूंजी सताती है और उसके पास बहुत रुपया नहीं है, तो उसको कितनी आपत्ति का सामना करना पड़ता है तो वही जान सकता है।

इस कम्पनी की सारी कोठियां ऐसे सुन्दर शहरों के सुन्दर भागों में बनी हुई हैं कि जहां व्यापार की वृद्धि होने के सारे सुभीते रहते हैं। [illegible] को साधारण प्रकृति [illegible] सुविधा [illegible]

रहती है; और उनकी सुविधा देख कर जो व्यापारी अपनी दूकान की जगह नियत करता है उसी की दूकान पर माल खरीदने के लिए ग्राहक जाता है। परन्तु पूंजी का बल जब तक पूरा पूरा न हो तब तक मौके की दूकान नहीं मिल सकती; और यदि अधिक भाड़े से कोई दूकान प्राप्त भी कर ली तो इसका मतलब यह समझना चाहिए कि वह व्यापारी "मालिक-मकान" के फायदे के लिए ही व्यापार करता है। भारतीय व्यापारियों की प्रायः बड़े बड़े शहरों में ऐसी ही दशा देखने में आती है।

इस कम्पनी की दूकानों में जिन वस्तुओं का भांडार रहता है उनका अपने अपने विभाग में रखने का ढंग इतना सुन्दर होता है कि जिससे दूकान आपही आप सुशोभित दिखाई देने लगती है और ग्राहकों को जिस माल की आवश्यकता होती है वह अचूक उनकी दृष्टि में पड़ जाता है। इससे ग्राहक और विक्रेता (Salesman) दोनों को सुभीता रहता है और उनका समय खराब नहीं होता। ऐसी बड़ी बड़ी दूकानों में स्त्रियोपयोगी वस्तुओं के विभाग अलग रहते हैं, और पुरुषों के लिए अलग रहते हैं। एक विशेषता यहां और देखने में आती है कि मौसिम मौसिम में उपयुक्त होने वाले पदार्थ दुकान में ऐसे मौके पर चुन दिये जाते हैं कि जहां ग्राहकों की दृष्टि आप ही आप पहुँचती है। बरसात का मौसिम आने नहीं पाता कि उस ऋतु के अनुकूल पदार्थ दूकान में सुन्दरता के साथ लगा दिये जाते हैं। बरसाती कोट बूट और छाते, इत्यादि सामान दिखाई देने लगता है। गर्मी और सर्दी के दिनों में भी ऐसा ही प्रबन्ध किया जाता है। यहां तक कि प्रति दिन की ऋतु, त्योहार, सभा, मातम, मेलकूद, इत्यादि विशिष्ट बातों की ओर ध्यान रख कर भी दूकानों की सजावट की जाती है।

पश्चिमी व्यापारी इस बात की ओर सदैव दृष्टि रखता है कि हमारे ग्राहक किस प्रकार बढ़ें और माल के रूप में जो पूंजी फँसी पड़ी है वह किस प्रकार घटे। एक बात इसकी ओर भी हमारे

ह्वा० लै० कं० [illegible]

व्यापारियों के लिए अनुकरण करने योग्य है [illegible] [illegible] कि [illegible] है

दुकान में जिस विशिष्ट माल की खपत होती रहती है उस माल की विशेष सूक्ष्म जानकारी अलग रखी जाती है। उदाहरणार्थ, कमीज़ किस माप की विशेष खपती है, टिकाऊ रंग और प्यारा रंग, कपड़े की बुनावट और सिलाई की पसन्दगी, इत्यादि। एक हजार जोड़ा बूट की खपत से इस प्रकार की जानकारी होती है:—

आकार	४	४॥	६	६॥	७	७॥	८	८॥	९	९॥	१०	१०॥	११	११॥
संख्या	१०	२१	३१	६८	१२४	१६४	१४८	१४७	११४	७३	४०	२१	१९	४

उपर्युक्त उदाहरण से यह मालूम होता है कि उपयोगी जानकारी किस प्रकार रखी जासकती है। इस प्रकार सारे माल की पूरी पूरी जानकारी रखने से माल की व्यर्थ खरीद नहीं होसकती और माल—अर्थात् पूंजी—पड़ा नहीं रह सकता। इसके सिवाय व्याज की हानि न होकर बिक्री बढ़ती है; और फिर फिर माल आने तथा बिकने से लाभ बहुत होता है।

सच तो यह है कि हमारे व्यापारियों को अभी इन पश्चिमी कोठीवालों से बहुत कुछ सीखना है। प्रयत्न करने से पूंजी एकत्र हो सकती है, स्थान और माल भी मिल जायगा; परन्तु माल के गुणावगुण की चर्चा करके ग्राहकों को रिझाना, उनका चित्त आकर्षित कर लेना, इत्यादि अर्वाचीन चातुर्य कोई नहीं दे सकता। इसके लिए हमारे सुशिक्षित लोगों को आगे बढ़ना चाहिए। अन्यथा हमारा व्यापार सदैव लँगड़ा ही बना रहेगा। व्यापार-विषयक सुधार सार्वजनिक शिक्षा का एक मुख्य अंग है। परन्तु इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि विक्रेता, (दुकानदार या सेलसमैन) का सच्चा चातुर्य स्कूल में नहीं सीखा जा सकता। किन्तु बड़ी बड़ी कोठियों में काम करने से ही यह चातुर्य आता है। भारतीय लोगों में यूरोपियनों के समान पारंगत विक्रेता बहुत ही कम मिलेंगे। सभ्यता, मधुर भाषण, प्रामाणिकता (ईमानदारी या सच्चाई), चातुर्य और तत्परता, इत्यादि गुणों से युक्त दुकानदार भारत में उत्पन्न होने चाहिए। सभ्यता और मधुरभाषण से विक्रेता पुरुष ग्राहक को आधा वश में कर लेता है। और सच्चाई देख कर फिर ग्राहक दुकानदार पर पूरा पूरा रीझ जाता है। यह सच है कि अपनी दुकान का हित देखना और अपना माल खपाने की अभिलाषा रखना विक्रेता का कर्तव्य है; परन्तु उसी प्रकार उसका यह भी पवित्र कर्तव्य है कि वह यह देखे कि ग्राहक जितना द्रव्य दिये जाता है उतने का माल उसने पाया है या नहीं। मायावी भाषण से कुछ दिन तक दुकानदार कम कीमत का माल अधिक दामों में बच सकता है; कुछ दिन तक तड़कभड़क का माल सब प्रकार के लोगों के गले मढ़ा जा सकेगा, अथवा ऊपरी सच्चाई दिखला कर हमेशा भी कुछ लोगों को फंसाया जा सकेगा—पर यह कदापि नहीं हो सकता कि सभी लोगों को, सभी समय इसी प्रकार जाल में फँसाया जा सके। उपर्युक्त गुणावगुण भारतीय व्यापारियों में किस परिमाण से पाये जाते हैं, इसका नमूना यदि देखना हो तो किसी भारतीय व्यापारी की दूकान पर बैठ कर देख लेना चाहिए।
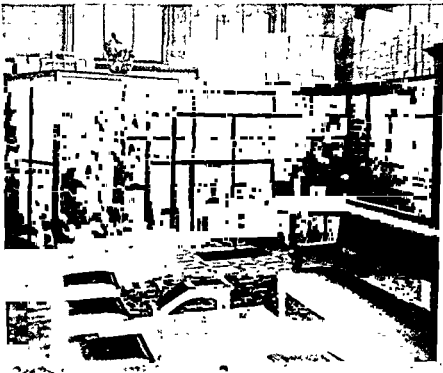
व्यापार की पूर्ण सफलता सर्वसाधारण की सहायता पर अवलम्बित है। और जो कोठी सर्वसाधारण की सहानुभूति सम्पादन करेगी, अपने यहां के माल की जांच रख कर उसे ग्राहकों को उचित मूल्य पर दे सकेगी, जो अपने को सर्वसाधारण की विश्वासपात्र सिद्ध कर सकेगी; और उत्पन्न हुए विश्वास को स्थिर रख सकेगी, वही कोठी सर्वसाधारण की सहायता की अधिकारिणी बनेगी। यह बिलकुल सिद्ध बात है। परन्तु इसके लिए दो साधन चाहिए। पहला विक्रय-प्रणाली और दूसरा विज्ञापन-प्रणाली। पहली प्रणाली के विषय में हम ने ऊपर कुछ थोड़ा बहुत विवेचन किया ही है; और दूसरी प्रणाली के विषय में तो हमको यही कहना पड़ेगा कि विज्ञापन देने का तरीका भारतीय लोगों को अभी मालूम ही नहीं है। विज्ञापन में ही बड़ी बड़ी कोठियों के लाखों रुपये खर्च होते हैं। इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि लोगों के सामने यह बात सदैव बनी रहे कि इन कोठियों का अस्तित्व लोगों के किस सुभीते के लिए है—ये कोठियां लोगों की किन आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती हैं, अथवा ये सर्वसाधारण की सेवा किस रूप में कर सकती हैं। जिसका व्यापार सच्चा है और जो सच्चा विज्ञापन देता है उसके हाथ में विज्ञापन की प्रणाली मानों एक जादू की सीढ़ी है; और वह उसे जैसे जैसे लोगों की आंखों के सामने फिराता जायगा त्यों त्यों उसका व्यापार फैलता ही जायगा। इसमें कुछ भी शक नहीं। व्यापार की सदैव वृद्धि होते जाना और किसी कोठी का दीर्घायु होना अधिकांश में उसके सच्चे और गम्भीर विज्ञापन पर अवलम्बित है। तड़कीले भड़कीले विज्ञापन को देख कर मनुष्य एक बार फँस जायगा सही; परन्तु केवल ...र फँस जाने से ही ...र को सदैव के लिए ...स्थायी-सफलता नहीं ...सकती। हमारे लोग ...न का सदुपयोग करने ...पेक्षा दुरुपयोग करना ...धिक जानते हैं। और ...त को सोच कर बड़ा ...होता है कि झूँठे और दगाबाज विज्ञापनदाता सच्चे और परोपकारी विज्ञापनों पर से भी लोगों की श्रद्धा हटा रहे हैं। इस प्रकार लोगों के विश्वास का खून किया जा रहा है।

नैरोबी की बूट बिक्री की दुकान।

हमने ऊपर कहा ही है कि व्यापार के मुख्य साधन यदि परस्पर-उचित परिमाण से न होंगे तो व्यापार की वृद्धि होनी असम्भव है। परन्तु विज्ञापन की प्रणाली यदि विचारपूर्वक ठीक तौर से काम में लाई जाय तो उपर्युक्त साधनों के अभाव से होनेवाली हानि भी बच सकती है। इसके योग से पूंजी का मुख्य साधन किसी न किसी अंश में साध्य हो सकता है, कोने की दुकान चौराहे की दुकान से प्रतिस्पर्धा कर सकेगी। सारांश, विज्ञापन के द्वारा अन्य साधनों की कमी पूर्ण हो सकती है। परन्तु इसका उपयोग बड़ी चतुरता और दूरदर्शिता से करना चाहिए। इसी की सहायता से संसार के बड़े बड़े व्यापारी सर टामस लिप्टन, सायरस कर्टिस, इत्यादि नीची दशा से ऊंची दशा को प्राप्त हुए।

विज्ञापन के मुख्य साधन समाचारपत्र, मासिक पत्र और विज्ञप्ति हैं। और इन साधनों का उपयोग यूरोपियन तथा भारतीय दोनों ही करते हैं। हां, इन दोनों के विज्ञापन में अन्तर इतना ही रहता है कि पाश्चात्य लोग प्रदर्शिनी की जगह (Show window) में जो माल रखते हैं उस का विज्ञापन दैनिक पत्रों में देते हैं और प्रदर्शिनी की जगह का माल ज्यों ज्यों बदला जाता है त्यों त्यों विज्ञापन भी बदले जाते हैं; अथवा यदि दुकान में नवीन माल आता है तो उसके अनुसार विज्ञापन में योग्य फेरफार किया जाता है, और भिन्न ऋतु-परिवर्तन पर भी इस बात पर ध्यान दिया जाता है। जहां जगह हो सकता है, माल का फोटो भी दिया जाता है। इधर हमारे लोगों का तरीका ही दूसरा है। वर्ष दो वर्ष तक, ...

का ही विज्ञापन, दूकान का माल खतम हो जाने पर भी, बदला नहीं जाता। इसी प्रकार अन्य भांति भी भारतीय लोग विज्ञापन-प्रणाली की दुर्दशा करते रहते हैं।

विज्ञापन का दूसरा महत्व का भाग 'कैटलाग' या सूचीपत्र है। बाहर के लोगों को इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। इसमें सभी माल के चित्र दे कर उसका विशेष वृत्तान्त संकलित किया जाता है और उसका प्रचार बहुत विस्तृत परिमाण पर किया जाता है। इससे, जिसको माल लेना होता है सो तो लेता ही है; परन्तु जिसका मन माल लेने का नहीं होता उसका भी मन एक बार कोई न कोई वस्तु लेने के लिए चल ही आता है। इस प्रकार सूचीपत्र का खर्च निकल ही आता है। परन्तु मंदी के दिनों में बिक्री के लिए कैटलाग एक मुख्य साधन बन जाता है। भारतीय लोगों ने इसका अनुकरण अच्छा किया है। परन्तु फिर भी कई लोग सूचीपत्र भेजने के लिए लोगों से डाक के टिकट इत्यादि मँगाते हैं; इससे उनके सूचीपत्र का अच्छा प्रचार नहीं होता, तथा सूचीपत्र तैयार करने की प्रणाली में भी त्रुटियां रहती हैं, इनका परिमार्जन होना चाहिए। अस्तु। सूचीपत्र की प्रणाली से डाक के द्वारा माल भेजे जाने का धंधा अच्छा बढ़ गया है। छोटे छोटे दूकानदार, जो बाहर रह कर, थोड़ी पूंजी पर लाभ अधिक रखते हैं वे इस धंधे के कारण हानि उठाते हैं। डाक के द्वारा माल भेजने का व्यवसाय भारत में प्रायः कोठीवाले बहुत कम करते हुए देखे जाते हैं। अस्तु। यद्यपि भारतवर्ष में मुख्य मुख्य शहरों में विज्ञापन की चाल बहुत कुछ सुधरी हुई जान पड़ती है, पर उसका उपयोग विस्तृत रीति से अभी नहीं होता। पश्चिमी लोगों की विज्ञापनकला की तुलना जब भारतवर्ष से की जाती है तब यही कहना पड़ता है कि हमारी विज्ञापन-कला अभी बाल्यावस्था में ही है। अस्तु।

ऊपर जिस कम्पनी की वैभववृद्धि, बाह्य और अन्तर्व्यवस्था, आधुनिक और वैज्ञानिक व्यापारपद्धति का संक्षिप्त विवेचन किया गया है उसके उदाहरण से हमारे पाठकों को यह भली भांति मालूम हो गया होगा कि पश्चिमी लोगों ने व्यापार के बल पर ही जो सारे संसार को घेर रक्खा है उसका रहस्य क्या है। अब हमारे पाठक विचार करें कि हमारे भारतीय लोगों की इस प्रकार की कोठियां कितनी हैं?

भारतवर्ष में, ब्रिटिश पूर्व आफ्रिका में, और अन्य जगहों में भी भारतीयों की कुछ ऐसी कोठियां है कि जिनको खुले कई वर्ष हो चुके होंगे और उनमें से कुछ अच्छी दशा पर भी होंगी; परन्तु जिसमें पूरी पूरी पूंजी लगी हैं; आवश्यकतानुसार माल का भांडार है और अर्वाचीन व्यापार के वैज्ञानिक अंग भी पूर्णतया उपयुक्त हो कर कार्यप्रणाली जिसकी पक्की हो गई है और जिसकी शाखायें सर्वत्र फैली हुई हैं, तथा जो अपनी सच्चाई से प्रसिद्ध हो कर भारतीय लोगों की कर्तव्यजागृति का प्रमाण दे रही है—ऐसी एक भी भारतीय व्यापारी कोठी भारत में अथवा अन्य कहीं होगी अथवा नहीं-इस बात की पूरी पूरी शंका ही है। इधर कुछ दिनों से भारतवर्ष में कुछ ऐसी कोठियां खुलने लगी हैं कि यदि वे समयानुसार नियमित रीति से, व्यापार को बढ़ानेवाली और पुष्टि देनेवाली नवीन प्रणाली का अंगीकार करके, अड़चनों में मार्ग निकालते हुए अपना कार्य करती रहेंगी तो आशा है कि वे पश्चिमी व्यापारी कोठियों की बराबरी कर सकेंगी।

अभी थोड़े ही दिन हुए, बंकों के व्यापार में उलथापथल करनेवाला एक ऐसा बड़ा भूचाल भारत में आया कि जिसके कारण बड़ी बड़ी मजबूत नीवों पर खड़ी की हुई और विश्वासयोग्य तथा भारतीय कर्तृत्व की बड़ी बड़ी इमारतें किस प्रकार ढसल पड़ीं सो हमारे पाठकों को याद ही होगा। कुछ भी हो। भूलें यदि हानिकारक होती हैं तो साथ ही शिक्षादायक और मार्गदर्शक भी होती हैं और मनुष्य की दृष्टि और बुद्धि को कारणमीमांसा-की ओर प्रवृत्त करती हैं। अस्तु। इस लेख से हमारे भारतीय व्यापारियों को यह ज्ञान हो जायगा कि पाश्चात्य व्यापारी कोठियां, जो अपने व्यापार में पूर्ण सफल हो हैं, उनकी कार्यप्रणाली किस ढंग की होती है, व्यापार में पूंजी कि प्रकार लगाई जाती है, पूंजी अथवा माल के अतिरिक्त और भी इत्योत्पादक कारणों का उपयोग किया जाता है या नहीं। इस ले को पढ़ कर यदि हमारे भारतीय व्यापारी कुछ शिक्षा ग्रहण क तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दक्षिण के कुछ सैनिक, जो मेसोपोटेमिया में युद्ध पर गये हुए हैं।

कन्नम्बाड़ी का जल-भांडागार।

(लेखक—प्रो० एन० एस० गडगे ले, एम० ए० बी० एस० सी० दयालसिंह-कालेज, लाहोर)

मैसूर की रियासत इंजिनियरिंग के लिए सारी दुनिया में प्रसिद्ध बतलाई जाती है। इस रियासत ने दो चार वर्ष से कावेरी नदी पर एक बड़ा सा सरोवर बांधने का कार्य प्रारम्भ कर रखा है। इस काम के लिए उस राज्य ने लगभग तीन करोड़ रुपये खर्च करने का विचार किया है। अतएव यह इतना बृहत्‌जल-भांडागार न कि सिर्फ भारतवर्ष में ही, किन्तु निस्सन्देह सारे जगत् में सब से अधिक [illegible] होगा। यहां के सुपरिंटेंडेंट इंजिनियर मि० सुब्बाराव और [illegible] इंजिनियर मि० [illegible], ये दोनों मेरे मित्र हैं, इस लिए उनके कहने से अभी सितम्बर मास में मैं यह बृहद् सरोवर देखने के लिए गया था। उसका सचित्र वर्णन आज मैं चित्रमयजगत् के पाठकों की भेंट करता हूं।

सम्पूर्ण बांध का सामान्य दृश्य।

बांध के बायें ओर का दृश्य।

जहां पर सरोवर बांधने का काम जारी है वह स्थान कन्नम्बाड़ी गांव के पास है। यह गांव मैसूर से ११ मील और श्रीरंगपट्टन से ८ मील की दूरी पर कावेरी नदी के तट पर बना हुआ है। [illegible] मैसूर देखने के लिए गई थी, इस लिए वहीं [illegible] गाड़ी पर [illegible] सुबह आठ साढ़े आठ बजे हम [illegible]
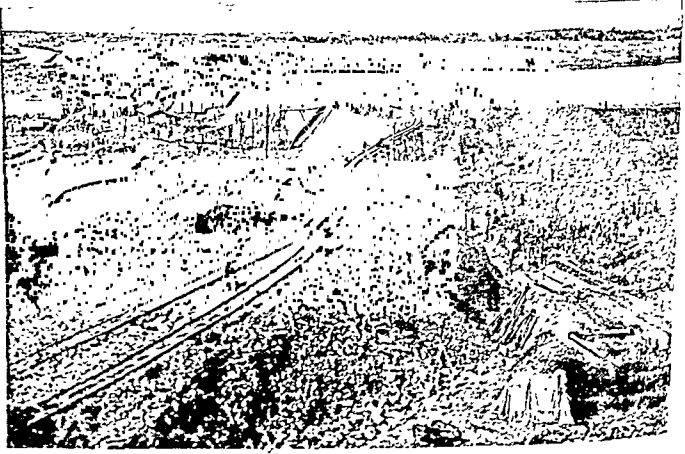
बांध का काम होते समय लिया हुआ फोटो।

होसूर। के बाद दो बजे हम लोग कन्नम्बाड़ी में आ दाखिल हुए। बस्ती में प्लेग था, इस कारण हम लोग सीधे बांध पर ही पहुँचे।

कावेरी नदी दक्षिणी भारत की बड़ी नदियों में से है। यह नदी पुरातन काल से ही पवित्र मानी जाती है। सहस्रों यात्री, अपने पापक्षालन के विचार से, इसके स्वच्छ जल में स्नान करने के लिए आया करते हैं। कावेरी नदी का उद्गम पश्चिमी घाट से है और मैसूर की सीमा में यह कोई १५० मील तक बहती है। और इसके बाद 'शिवसमुद्रम्' के कृत्रिम जल प्रपात के आगे आ कर मदरास-सरकार की सीमा में प्रवेश करती है। लगभग ६८ लाख रुपया खर्च कर के मैसूरसरकार ने शिवसमुद्रम् में ५०००० हार्स पावर (अश्व-शक्ति) के समान बिजली की शक्ति उत्पन्न करने का प्रबन्ध किया है। भारतवर्ष भर में विद्युत् उत्पन्न करने का यह सब से बड़ा कार्यालय है। मैसूर सरकार को प्रति वर्ष इस बड़ी भारी शक्ति से १४ लाख का शुद्ध लाभ (नेट प्रॉफिट) है। इसमें से १२ लाख कोलार की सोने की खान से और दो लाख बंगलोर तथा मैसूर, इन दो

नहर की बँधाई के दक्षिण ओर से लिया हुआ फोटो

नगरों से है। हां, गर्मियों में पानी का संचय कम हो जाता है और कोलार के लिए बिजली उत्पन्न करना कठिन हो जाता है। इसी लिए मैसूर-सरकार ने यह विचार किया है कि कन्नम्बाड़ी में एक बड़ा सा सरोवर बांध कर बरसात में ही पानी जमा कर लिया जाया करे।

बिजली की शक्ति उत्पन्न करने के अतिरिक्त सिंचाई के काम में भी कावेरी के पानी का उपयोग बहुत दिन से किया जा रहा है। मैसूर, तंजौर, त्रिचनापली, इत्यादि प्रान्तों की बहुत सी भूमि कावेरी के जल से सींची जा रही है। सिर्फ़ मदरास इलाके में लगभग १० लाख एकड़ जमीन इस नदी के पानी पर अवलंबित है। मैसूर रियासत के इंजिनियर लोगों ने ऐसा हिसाब लगाया है कि बरसात में जब कभी नदी में बाढ़ आती है तब एक सेकंड में २५०,००० घनफुट पानी नदी में बह जाता है! ऐसी दशा में मैसूर-सरकार ने यह विचार किया कि अपनी अड़चन को दूर करने के लिए यदि किसी सुभीते की जगह में सरोवर बांधकर बरसात में खूब पानी एकत्र कर लिया जाया करे और फिर गर्मियों में उसी का धीरे धीरे उपयोग किया जाया करे तो हमारा और मदरास सरकार दोनों का काम बनेगा। बस, इसी विचार के अनुसार अक्टूबर १६११ में सरकार की आज्ञा लेकर कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। मैसूर सरकार ने सरोवर बांधने की जगह का चुनाव बड़ी ही सावधानी से किया है। कावेरी तट की पूर्णतया जांच कर के, मजबूत चट्टानों का सुविधाजनक स्थान देख कर, श्रीरंगपट्टन से पश्चिम ८ मील पर कन्नम्बाड़ी का स्थल पसन्द किया गया। सरोवर की बंधाई का कार्य जिस जगह हो रहा है उस से थोड़ी ही दूर पर अभी हाल में एक शिलालेख मिला है। उससे अब यह सिद्ध हुआ है कि सन् १७६४ ई० में टीपू सुलतान ने भी यही जगह सरोवर बांधने के लिए पसन्द की थी। इस से क्या यह बात सिद्ध नहीं होती कि इस प्रकार के सर्वजनोपयोगी कार्य करने की बुद्धि और कला-कौशल बहुत प्राचीन काल से भारत में चला आता है!

इस बांध का काम बहुत विस्तृत है और सरोवर भी बहुत बड़ा बननेवाला है, इस कारण आसपास के कई गावँ उठा दिये गये हैं। कुल २७७०३ एकड़ जमीन, अर्थात् ४३'२ वर्ग मील भूमि, पानी के नीचे डूबी रहेगी। सत्रह गावों के लोगों को नवीन जगह दे कर सरकार नवीन गावँ तैयार करवा रही है। यह बड़े सन्तोष की बात है कि मैसूर-सरकार ने इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखा है कि उन गावँ वालों को स्थल-परिवर्तन के कारण किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे।

जिस समय मैसूर सरकार ने सरोवर बांधने का कार्य हाथ में लिया उस समय एक बड़ा वादग्रस्त प्रश्न उपस्थित हुआ। वह यह कि यदि मैसूर सरकार ने यह बांध बांधा तो मदरास सरकार की सीमा में जो जमीन कावेरी के पानी से उपजाऊ बनी है उस जमीन को पर्याप्त पानी मिलने की ज़िम्मेदारी कौन लेगा? बांध रहेगा मैसूर की सीमा में और जमीन रहेगी मदरास की सीमा में! पानी की कुंजी रहेगी मैसूर के हाथ में। अतएव मदरास-सरकार ने प्रकट किया कि शिवसमुद्रम् के विद्युत्कार्यालय के लिए जितने जलसंचय की आवश्यकता हो उसके लिए हम आज्ञा दे सकते हैं, परन्तु सिंचाई के लिए, और मैसूर-सरकार की सीमा में सिंचाई के लिए, हम सरोवर बढ़ाने की आज्ञा नहीं दे सकते। मैसूर-सरकार का विचार है कि ८६०० फीट लम्बी और १२४ फीट

गति-निरीक्षण और हस्तकौशल।

(लेखक—वैकुंठराय।)

हमारे मोहन के शौक की कुछ न पूछिये! अंगरेजी तो थोड़ी ही पढ़ा है। बस, मैट्रिक के बाद ही स्कूल छूट गया, आगे चल ही नहीं सका। फिर कुछ दिन टाइपराइटिंग, शार्टहैंड, इत्यादि के क्लासों की सैर करके पोस्ट-आफिस में नौकरी कर ली। इतने ही में पिता भी प्लेग से चल बसे और हाथ में रकम आई। अब क्या पूछना है! चाहे शाम देखो, चाहे सुबह, जब सवारी घर आवेगी,

(१) टाइप-राइटर पर काम करनेवाली अत्यन्त चतुर स्त्री; काम करते समय इसके शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों की गति मापने के लिए एक ओर काले पर्दे पर वर्ग बना दिये गये हैं।

कोई न कोई फैशनदार वस्तु हाथ में लिये ही आवेगी। कहीं जापानी पंखा है, तो कहीं कंघे ही लिये आता है; छड़ी, शीशे, तो कहीं अपनी बहन के लिए तरह तरह की गुड़ियां; कलेंडर (वर्ष में हैं सात)—ऐसी एक दो नहीं, हजारों चीजें कमरे में आकर भर गई हैं! उसके टेबल पर एक महीना भर भी कोई एकही दवात
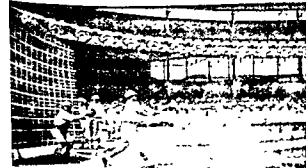
(२) भिन्न भिन्न व्यवसायों में होनेवाली गतियों की समता स्पष्ट करके दिखलाने के लिए खेलाड़ी, राज, पियानो बजाने वाले, डाक्टर इत्यादि अनेक लोगों के काम करते समय उनकी गतियों को दर्ज करने के लिए मि॰ गिलब्रेथ उनका फ़ोटोग्राफ़ ले रहे हैं।

रह जाय तो कसम! भांति भांति की दवातें बदलता ही रहता है!! अपने घर को ऐसी चीजों से कौन नहीं सजाना चाहेगा। देखिये तो कितनी संक्षिप्त, सुन्दर और तड़कभड़क की होती हैं! कहां वह भद्दा ताड़ का पंखा और कहां वह जापानी रेशमी (नकली) पंखा! कहां वह बांस का डंडा और कहां वह रुपहरी मूठ की फैशनेबल छड़ी! कहां वह मिट्टी की भद्दी दवात और कहां वह बिल्लौरी चमकदार दवात की जोड़ी! कहां वह काठ का रद्दी कलमदान और कहां वह सुन्दर पेन-रैक!

परन्तु मोहन इसके लिए क्या करे—सच तो यह है कि ये वस्तुएं ही ऐसी मोहिनी होती हैं, जो मोहन के समान शौकीन तरुण पर मोहिनी डाले बिना नहीं रहतीं। परदेश से हजारों मील का मार्ग चल कर फिर वे बिलकुल अपने द्वार ही पर आ धमकती हैं और फिर उनके नाम का ऐसा डंका बजता रहता है कि:—

"चलो, कोई भी चीज उठाओ, दो दो आना; कोई भी चीज उठाओ, एक एक आना!"

परन्तु इस बात का हम में से कोई विचार नहीं करता कि इतनी सुन्दर वस्तुएं परदेशी व्यापारी इतनी सस्ती कीमत पर कैसे बेचते हैं! एक यही बात यदि हमारे लोगों के हृदय में ठँस जावे तो इन वस्तुओं का हमारे ऊपर बड़ा उपकार हो।

नरकचतुर्दशी की रात को, जब कि धीरे धीरे पानी बरस रहा था, बस्ती के बाहर, एक साधु एक विदेशी खुनखुने को बहुत दूर एक पीपल के नीचे लेजा कर शपथ-पूर्वक पूछता है कि बतला—इसका कारण क्या है?

खुनखुना कहता है—"गुह्याद्गुह्य और गुह्यतम" यह रहस्य तेरे सिवाय यदि अन्य किसी ने मुझ से पूछा होता तो मैं ने उससे कभी न प्रकट किया होता; परन्तु तुझ से बतलाता हूं।

हमारे देश के सब वैज्ञानिक और राज-नैतिक पुरुष ऐसे छोटे विषयों में भी मन लगाते हैं। वे समझते हैं कि हमारे कल्याण से ही उन सब का कल्याण है। इसी लिए वे हमारी ओर अच्छी तरह ध्यान रखते हैं। रसायनशास्त्र, पदार्थविज्ञानशास्त्र, इत्यादि में जो अर्वाचीन आविष्कार हुए हैं उनकी भी हमारे ऊपर बड़ी कृपादृष्टि रहती है। कोई भी पदार्थ हो, हमारे कारीगर सदैव इस बात का विचार किया करते हैं कि वह बिलकुल कम परिश्रम से, थोड़े व्यय में, और सुभीते की जगह में, कैसे तैयार हो सकता है। इसी लिए वे हस्त-कौशल में खूब बढ़े चढ़े हैं। यही एक बात आज मैं तुझसे साफ साफ बतलाता हूं, ध्यान में रख।

(३) हथौड़ी से चोट ठीक करनेवाले मनुष्य अपने व्यवहार अच्छी तरह कर सकें, इसलिए उनमें से निपुण और चतुर मनुष्यों के व्यवहारों की गतियों को दर्ज करने के लिए लिये हुए चित्र।

प्रत्येक कार्य करते समय अपने शरीर के भिन्न भिन्न भागों को हिलाना पड़ता है। इस चलन अर्थात् इन्द्रियों की गति को अच्छी तरह अपने अधिकार में लाना चाहिए—यों ही व्यर्थ के लिए आवश्यकता से अधिक गति खर्च होने से परिश्रम तो बहुत पड़ता है, पर कार्य थोड़ा होता है। इस लिए इन बातों का वैज्ञानिक निरीक्षण किया जाता है कि भिन्न भिन्न कलाकौशल के कामों में मजदूरों के शरीर के अवयवों की कौन सी हलचल व्यर्थ जाती है; कौन सी

और जब उसे जल्दी नहीं होती तब किसी तीसरी ही रीति से काम करता है। कारखाने के अन्य कारीगरों की ओर ध्यान देने से भी यही बात देखने में आई। कितने ही लोग तो तीन तीन चार चार रीतियों से काम करते हुए देखे गये।

(१०) एक गाड़ी पर १६ सन्दूके चढ़ाने में व्यस्त होने वाले एक अनभ्यस्त की गति।

इन सब बातों से उसने समझ लिया कि प्रत्येक कार्य के विषय में सब से उत्तम और, जिसमें गति बिलकुल कम हो, ऐसी बिलकुल कम मिहनत की एक ही रीति ढूँढ़ निकालनी चाहिए। यही बात ध्यान में रख कर उसने खूब परिश्रम और उद्योग किया, तथा अन्त में, कुल सात वर्ष में, ईंटें तैयार करने में उसने ऐसी निपुणता दिखलाई कि उसे एक बड़े व्यापारमंडल की ओर से एक बड़ा सामानसूचक पदक प्राप्त हुआ।

उस समय से आज २१ वर्ष हुए, गिलब्रेथ ने अपना सारा ध्यान इस एक ही बात के पीछे लगा दिया है कि भिन्न भिन्न धंधों के कला-कौशल के और व्यायाम के काम में एक होनेवाली शारीरिक गति में से कितनी जाती है और उपयुक्त कितनी होती है। वह इस विषय का, बिलकुल अर्वाचीन काल में प्रचलित हुई वैज्ञानिक प्रणालियों से, निरीक्षण करता है और जहां तक बन पड़ता है, उसमें सुधार करता है।

इस विषय में सुधार करने की जो एक मुख्य प्रणाली अब तक बिलकुल निश्चित हो गई थी सो यह थी कि कारखाने का जो कार्य अशिक्षित मजूरों से हो सकता है वह उनसे करा लिया जाय और जो कार्य व्यर्थ जान पड़ता हो उसे छोड़ दिया जाय। मान लीजिए किसी कारखाने में रूमालों की घड़ी करने का काम कोई स्त्री सुबह के पहर की अपेक्षा शाम के पहर बहुत धीरे करती है— अर्थात् सुबह एक घंटे में जितने रूमालों की घड़ियां हो सकती हैं उतनी शाम को नहीं होतीं। इसका कारण जब बारीकी से देखा गया तब ऐसा मालूम हुआ कि जिस कुर्सी पर बैठ कर वह स्त्री काम करती थी वह बहुत पुरानी होने के कारण उसके लिए कुछ छोटी बैठती थी; इसलिए प्रत्येक बार जितनी ऊंचाई पर हाथ सहज ही लाये जा सकते हैं उसकी अपेक्षा कुछ अधिक ऊंचाई पर हाथ ले जाने पड़ते थे, अतएव धीरे धीरे वह थक जाती थी और उसका काम भी धीमा पड़ जाता था। परन्तु पीछे से उस कुर्सी के पायों में पैर लगा कर जब वह कुछ ऊंची की गई तब उसका काम फिर ठीक ठीक होने लगा। अब आज कल हमारे पाठशालाधिकारियों

(११) अभ्यस्त की गति।

का ध्यान भी इसी रीति से यह जाच करने की ओर आकर्षित हुआ है कि हमारे स्कूल के लड़के पढ़ते पढ़ते उकता क्यों जाते हैं, उनके अक्षर अच्छे क्यों नहीं बनते और उनकी दृष्टि मन्द क्यों हो जाती है। अस्तु।

(१२) ऐसी गतियों का लेखा हृदय रूप में रखने के लिए तैयार किया हुआ तार का नमूना।

मि० गिलब्रेथ का कथन है कि कोई भी कार्य हो, उसे योग्य रीति से करने के लिए उसकी आवश्यक गतियों की ओर पहले ध्यान दे कर उनमें योग्य सुधार करना चाहिए। भिन्न भिन्न कलों की गति का निरीक्षण करने के लिए उन्होंने अनेक युक्तियां भी निकाली हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन काल के उद्योगधंधों के चलाने में जो निश्चित शारीरिक गतियां लगती थीं वे यदि उस समय लिख रखी गई होतीं तो, आज जो सैकड़ों प्राचीन उद्योगधंधे नामशेष हो गये हैं वे न हुए होते। इजिप्ट के पिरामिड नामक ऊंचे मीनारों की बैठाई का रहस्य, ग्रीक लोगों की अग्नि उत्पन्न करने की युक्ति और तांबे में कठोरता लाने की रीति, इत्यादि अनेक बातों से आज हम वंचित न रहते।
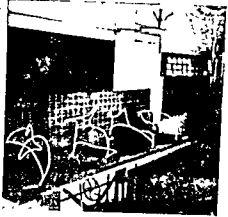
(१४) अपरिचित क्रिया की गति:—इसी मनुष्य ने कोट की ऊपर की जेब से पेंसिल निकाली तब, उसके हाथ को नियत मार्ग से जाने आने का अभ्यास न होने के कारण उस की गति टेढ़ी-मेढ़ी हुई टेढ़ी-मेढ़ी रही है।

परन्तु ऐसी गतियों में जो समय लगता है वह, चाहे अब बना ली जाने और चाहे जब बनाई जाने वाली घड़ियों के द्वारा भी दर्ज नहीं किया जा सकता। इस कारण गिलब्रेथ ने इस काम में सिनेमेटोग्राफ का उपयोग किया—सिनेमेटोग्राफ के लिए फोटोग्राफ लेने का जो यंत्र होता है उसमें एक सेकेंड में उसके लिए ४० चित्र लिये जा सकते हैं। अब यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि सब गतियां और हलचलें उक्त यंत्र की सहायता से अच्छी तरह दर्ज की जा सकती हैं। काम करनेवाले मनुष्य के पीछे की दीवाल पर और वहां की जमीन पर उसने विशिष्ट आकार के वर्ग बनवा रखे। इस योजना से यह अच्छी तरह बतलाया जा सकता है कि प्रत्येक चित्र में कितने बार और कितने अवकाश में काम करने वाले के शरीर का कौन अवयव हिला।

[illegible] के मुंह से यह वर्णन सुनते हुए मैं ने समझा कि शायद वो मैं ने इससे यह प्रश्न कर दिया! उसके कथन की सत्यता पर भी मुझे शंका होने लगी। परन्तु इतने ही में वह [illegible]

(१३) इस बक्से के [illegible] में भिन्न भिन्न [illegible] [illegible] है।

पड़ाके नहीं बना आते। केप तो हम और जापानी लोग बना कर भेजते हैं-तुमको शरम भी नहीं आती?"

यह सुन कर मैं एकदम घबड़ा गया। मुझे घबड़ाया हुआ देख कर वह बोलाः—"सुन! सिनेमेटोग्राफ के फिल्म, अर्थात् चित्र की मालाएं, तैयार करने में जब खर्च बहुत पड़ने लगा तब उसने ऐसी

(१५) अस्पताल के रोगी पर कुशल डाक्टर के शस्त्रक्रिया करते समय उसकी गतियों के फोटोग्राफ।

युक्ति निकाली कि जिससे एक चित्र के स्थान में १६ चित्र लिये जाने लगे। ये चित्र कर्मचारियों को दिखाये जाते; वे लोग उन चित्रों से अपनी तथा अन्य लोगों की कार्यप्रणाली के गुणदोषों की चर्चा करते और इस प्रकार यह निश्चित करते थे कि अपनी कार्य-प्रणाली में क्या सुधार किया जा सकता है।

शारीरिक गति अधिक स्पष्ट करने के लिए उसने विद्युद्दीपों की योजना की। वह बोलाः—"इधर आकाश के बादलों की ओर देखो।"

मैं ने ज्यों ही बादलों की ओर दृष्टि की तो वहां मानों सिनेमेटोग्राफ का एक पड़दा सा दिखाई दिया और उस पर एक के बाद एक चित्र दिखाई देने लगे। अन्त में उस काले पड़दे पर निम्नलिखित वाक्य ज्वलन्त अक्षरों में झलकने लगाः—

"उत्तिष्ठत। जाग्रत।"

(१६) एक जखम में टाँके लगाने समय व्यक्त होनेवाली उसके हाथ की गति।

दीवाली के इतने धुएं में कितने अनाथों की रक्षा की जा सकती ... पालियो! इसका कुछ विचार करो!

... मैं एकदम सबेरा हो गया। आंखे खुल गई और ... हूं कि कहीं कुछ नहीं है—मैं अपने स्थान का स्थान पर हूं!

काव्यगुच्छ।

(कविवर पं० रामनरेशजी त्रिपाठी)

कुसमय कौन किसका मित्र?

एक बार एक व्याध ने कुरंग का शरीर-
विद्ध तीर से किया गया कुरंग हो अधीर।
जा छिपा वनांत में सभीत एक कुंज बीच।
रक्त बिंदु देखता चला सदर्प व्याध नीच॥
कुंज में गया जहां कुरंग था अशक्त दीन।
व्याध के प्रहार से हुआ कुरंग प्राणहीन॥
शत्रु हो गया विपत्ति में स्वदेह-जन्य रक्त।
मित्र वे अलभ्य; जो न हों विपत्ति में विरक्त॥

अनित्यता।

महा घने कानन-मार्ग-मध्य में-
पड़ी बड़ी सुंदर एक थी शिला॥
उसी शिला ऊपर रम्य रूप में-
लिखा किसी ने यह नीति-वाक्य था-
असंख्य तृष्णाकुल पांथ क्लांत हो-
रुके यहां वे जल को, परन्तु वे-
चले गये; चिन्ह न शेष है कहीं।
अवश्य होगी मम भी दशा यही॥

प्रमदा-मुख।

प्रमदा-मुख सुंदर मैं निहार-
अति मुग्ध हो गया एक बार॥
बह चली नयन से अश्रु-धार;
यह देख कहा उसने पुकारः-
"सुनती थी तुम में ईश-भक्ति;
पर देख पड़ी विषयानुरक्ति।
सामान्य रूप मेरा बिलोक-
तुम सके नहीं दृग अश्रु रोक"।
उसकी बातें सुन इस प्रकार-
निज प्रकट किया मैं ने विचार,
"यह अभिप्राय है देवि! है न;
जिस कारण से मम झरे नैन।
जिसने सुधांशु-मुख-यह सुवर्ण-
है रचा, उसी का हुआ स्मर्ण।
उस शिल्पी का कौशल बिलोक-
दृग-अश्रु नहीं मैं सका रोक।

मिलन-सुख।

शरद के अति सुंदर चंद्र की-
छवि लुभा सकती कब अंध को?
भ्रमर-गुंजन की ध्वनि मोहिनी-
बधिर का मन-रंजन क्या करे?
अमृत में कितना सुख-स्वाद है-
न सकता मुख जीभ बिना बता।
यदि नहीं मन में अनुराग है-
मिलन का सुख तो फिर क्या मिले!

यौवन।

जगत के कहते सब लोग हैं-
सुखद है अति यौवन का समै।
पतन है अनिवार्य, परंतु हा!
रह नहीं सकता चिरकाल लौं।
नर-शरीर सरोवर चारु में-
कमल, जीवन का यह है खिला!
किरण से, दिन-नायक-काल के-
यह अवश्य कभी कुम्हलायगा।

सब एक समान नहीं होते।

सब सुमन न होते गंधवाले सजीले।
सुमधुर फल देते हैं नहीं वृक्ष सारे॥
न सकल सरसी में कंज उत्फुल्ल होते।
न सकल सुमनों पै भौंर गुंजारते हैं॥
शशि उदय न होता सर्वदा सर्व में है।
सब जगह नहीं है स्वर्ण की खान भू में॥
सब मनुज न होते प्रेम-अन्वेषणार्थी।
न सकल मन होते प्रेम-पाथोधि मग्न॥

मधु-मक्षिका।

(श्रीयुत ज्ञानेंद्रमोहन दत्त के बंगाली लेख का अनुवाद।)

परमात्मा की इस विस्तृत सृष्टि में व्यर्थ और तुच्छ एक भी पदार्थ नहीं है। उसने सब में अपनी पूर्ण महिमा प्रकट कर दी है। मनुष्य जब उसके सृष्टितत्व की चिकित्सा करने लगता है तब उसे तत्काल मालूम हो जाता है कि कोई कारण नहीं है कि मनुष्य प्राणी गर्व और अहंकार में मग्न रहे। सारे जीवजन्तु अपने अपने कार्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। हम मकड़ी की तरह जाला नहीं तन सकते। पक्षियों की तरह घोसले नहीं बना सकते। मधुमक्खियों की तरह फूलों से शहद एकत्र नहीं कर सकते। परमात्मा ने मनुष्य, पशु, कीटक, पतंग आदि, सब जीवजन्तुओं में भिन्न भिन्न भाव से अपना कौशल प्रकट किया है।

मधुमक्षिकाओं से हम बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकते हैं। एक छत्ते में, दस हजार से लेकर लगभग पचास हजार तक मधुमक्खियां रहती हैं; परन्तु देखिये कि कैसी सम्मति से, बिना आपस में कलह किये, अपना अपना कार्य करती रहती हैं। हम मनुष्यों को इस बात पर लज्जा आनी चाहिए कि हम दस आदमी भी मिल कर काम नहीं कर सकते और पचास हजार मक्खियां बिना लड़े-झगड़े प्रेमपूर्वक काम करती रहती हैं। ये असंख्य मक्षिकाएं, एक दो को छोड़ कर, कठोर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके, बड़े निष्काम भाव से, रात दिन परिश्रम करती रहती हैं। दूसरे के लिए वे स्वयं अपने सुख को तिलांजलि देती हैं। यदि किसी समय छत्ते में आहारादि के लिए विपुल द्रव्य नहीं इकट्ठा होता तो वे स्वयं आहार न करते हुए, भूखे ही, और कहीं से शहद ला कर अपनी मुख्य मक्खी (रानी-मक्खी) को तथा और अन्य छोटी छोटी मक्खियों को खाने के लिए देती हैं। शत्रु की चढ़ाई होने पर छत्ते के संरक्षणार्थ अपने प्राण तक देने को तैयार होती हैं। वे फूलों के मधु को छोड़ कर अन्य किसी वस्तु का संग्रह नहीं करतीं। मधु सञ्चय करने की ओर उनकी विलक्षण प्रवृत्ति रहती है। सदैव उनका छत्ता मधु से भरा ही रहता है; खाली हाथ वे कभी नहीं बैठतीं। उनके इसी अध्यवसाय और मधुसंचय की विलक्षण तृष्णा को देख कर भिन्न भिन्न देशों के कवियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से उनका वर्णन किया है। स्वच्छता और प्रतीकार-कुशलता के विषय में इनका बड़ा नाम है।
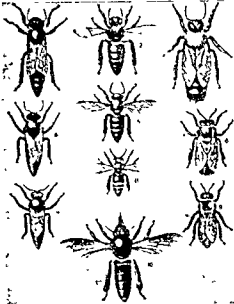
मधुमक्षिका.

१ रानी युरोपीय मक्षिका—इटाली जातीय (Apis mellifica)
२ दासी ... ...
३ पुं-मक्षिका ,, ,,
४ रानी भारतीय मक्षिका (Apis Indica)
५ दासी ,, ,,
६ पुं-मक्षिका ,, ,,
७ रानी क्षुद्र मक्षिका (Apis Flora)
८ दासी ,, ,,
९ पुं-मक्षिका ,, ,,
१० दासी पहाड़ी मक्षिका (Apis dorsata)

एक महात्मा कहता है:—"मक्खी (घराऊ) मलमूत्र पर बैठती है और शहद पर भी बैठती है; परन्तु मधु-मक्षिका सदैव शहद पर ही बैठती है। जो मनुष्य संसार में नीच कर्म करता है और साथ ही परमात्मा का भजन भी करता जाता है उसे मक्खी जानो; और जो मनुष्य परमात्मा की भक्ति करते हुए सदैव उस की आज्ञा के अनुसार परोपकारादि सत्कर्म करते रहता है उसे मधु-मक्षिका समझना चाहिए; क्योंकि वह परमात्मा के मधुरूपी भक्तिरस का पान करके सदैव परोपकार के कार्यों में प्रवृत्त रहता है।"

संसार के सम्पूर्ण मिष्ट पदार्थों को कवियों ने मधु की उपमा दी है। वही मधु इन क्षुद्र मधुमक्षिकाओं की कृपा से मनुष्य को प्राप्त होता है। हम जो यह लेख आज लिख रहे हैं सो इस लिए नहीं कि उन पर अत्याचार करके उनका सर्वस्व हम किस प्रकार से हरण किया करें। किन्तु, वास्तव में, हम यह निबन्ध इसी हेतु से लिख रहे हैं कि हम उनके साथ सद्व्यवहार करके उनको सुख किस भांति दे सकते हैं और उनको कुछ भी कष्ट न देते हुए किस प्रकार उनसे बहुत सा मधु प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् हम इस लेख में यही बतलानेवाले हैं कि मधुमक्षिकाओं को किस प्रकार पालने से और किन किन पदार्थों के खिलाने से वे सुखी हो कर हमें विपुल मधु प्रदान करेंगी।
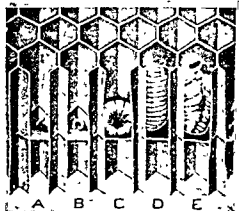
A अंडा B कीड़ा C बाधेन कीड़े की कुंडली D पुष्ट कीड़ा, जो रुद्धकोष में गोली रूप से रहता है, उसकी दशा E रुद्ध कोष की मक्षिका पुत्तलिका।

हमारी सम्मति में तो जिस प्रकार कबूतर, कुत्ता, खरगोश, इत्यादि जानवर पाले जाते हैं उसी प्रकार मधुमक्षिकाएं भी पाली जा सकती हैं। मधुमक्खी के निकट जाते ही मनुष्य को डर मालूम होता है; परन्तु वास्तव में डरने की कोई जरूरत नहीं। ठीक तौर से पालने पर उनसे मनुष्य को कोई भय नहीं रहता। किन्तु, इसके विरुद्ध, जैसे घर की गाय अपने मालिक को सहज ही में दूध दे देती है उसी प्रकार वे भी अपना शहद दे डालती हैं; और सदैव नवीन नवीन देती रहती हैं। मधुमक्खियों के एक दो छत्ते अपने घर में रखना कुछ कठिन नहीं होगा।

विलायत में मधुमक्खियों का पालना एक बहुत बड़ा व्यवसाय हो गया है। हमारे देश में यह व्यापार—यही क्या विलायत के और भी सारे व्यापार—नवीन ही हैं। अभी हमको बहुत कुछ सीखना है। इस शिक्षावस्था में भी लाभ हो सकता है। पर प्रार

हल व्यापार में यहां के लोगों को कुछ हानि ही उठानी पड़ती है। परन्तु हानि का विचार मन में आना भी बुरा है; इस से, लाभ होने को होता है, सो भी नहीं होता। कुछ भी हो, फायदे के लिए पहिले हानि उठानी ही पड़ती है। इसके सिवा एक बात और भी है, कि पहिले लोगों को जो फायदा नहीं होता, इसका कारण यही होता है कि उनकी व्यापार-प्रणाली में कोई न कोई भूल अवश्य होती है। उसका विचार करके, उचित प्रणाली से और मन को निराश न करते हुए, व्यापार जारी रखने से फायदा अवश्य होनाही चाहिए। पृथ्वी के अन्य देशों में जब कोई व्यापार लाभदायक होता है तब कोई कारण नहीं है कि वही व्यापार हमारे देश में लाभदायक न हो। हमारे देश में व्यापार की जो उन्नति नहीं होती, इसके तीन कारण हैं। पहला कारण अर्थाभाव; दूसरा अध्यवसाय का अभाव, और तीसरा व्यवसाय विषयक अनभिज्ञता।

मोम और मधु का संग्रह हमारे यहां बहुत दिनों से होता आता है; परन्तु मधुमक्खियों का संग्रह अवश्य ही हमारे देश में अभी तक प्रायः कोई नहीं करते। कई लोग कहते हैं कि हमारे देश में जंगल बहुत हैं; और इस लिए शहद हमें बहुत मिल जाता है; फिर क्या जरूरत है जो कृत्रिम उपायों से शहद प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। यह कथन किसी समय ठीक कहा जा सकता था। परन्तु आजकल के जमाने में यह कहना फिजूल सा मालूम होता है; क्योंकि पहले शहद बहुत सस्ता और शुद्ध मिलता था, और आज कल प्राय- विशुद्ध शहद मिलना कठिन हो गया है। बाजार का शहद शुद्ध नहीं होता। वह बहुत दिनतक रक्खा भी नहीं जा सकता। और उसमें दुर्गन्ध आने लगती है। ऐसा शहद प्रायः निरुपयोगी समझना चाहिए। इस लिए शुद्ध और सुगन्धित मधु प्राप्त करने के लिए मधु-मक्खियां ही घर में पालना चाहिए। इसके बिना विश्वास योग्य शहद नहीं मिल सकता।

अनेक रोगों की औषधियों में शहद का उपयोग किया जाता है। नवीन पैदा हुए बालक को भी पहले शहद ही देना पड़ता है। ग्रीष्म काल में शहद का शर्बत बहुत ही सुख-दायक होता है। प्रत्येक घर में एक बोतल शुद्ध शहद अवश्य रहना चाहिए।

मधुमक्खिका के पैर—A पिछले पैर B पिछले पैरों में परागसंग्रह।

कमल का मधु नेत्ररोग पर बहुत ही गुणकारक है। गुलाब के बाग के पास लगे हुए छत्ते का मधु निकाल कर देखा गया है; उस मधु में गुलाब कीसी सुगन्ध आती थी। शीत अथवा कास के विकार से गला बैठ जाने पर अदरक के रस में थोड़ासा शहद लेने से रोग की प्रबलता कम हो जाती है। छोटे लड़कों की सर्दी और कोष्ठबद्धता, तुलसी के रस में शहद देने से आराम होती है।

मधुमक्खियों से हमको शहद मिलता है सही, परन्तु यह शहद उनका निजस्व का नहीं होता; किन्तु वे फूलों से जमा करती हैं। प्रयोजन से अधिक शहद एकत्र कर रखने में उनका हेतु यही रहता है कि आगे काम पड़ने पर यह हमारे काम आयेगा। मधुमक्खिकाओं के छत्ते का शहद फूलों के शुद्ध शहद का सा नहीं होता। इसका कारण यही है कि मक्खियां पहले शहद को अपने मुंह में लेती हैं, और फिर वही शहद उनके पेट में मधुकोष के अन्दर जाता है। इसके बाद जब मधुमक्खिकायें छत्ते में आती हैं तब उसी शहद को वहीं [illegible] कर मधुकोष में भरती हैं। मधुमक्खियों के उदर में कुछ काल मधु के रहने से, उदर-रसायन के संमिश्रण से, उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। इसी लिए फूलों के शुद्ध मधु और मधुमक्खियों के छत्ते के मधु में अन्तर होता है।

हमारे देश में मधुसंग्रह करने के जो कुछ मार्ग हैं उनमें निम्नलिखित मार्ग मुख्य है। पहले मधुमक्खियों को छत्ते से उड़ा कर छत्ते को निकाल लेना, फिर छत्ते में मक्खियों के अंडों को निकालना, और इसके बाद [illegible] मक्खियों का संहार करना; और फिर इस छत्ते से शहद निकालना। शहद प्राप्त करने की यह रीति [illegible] से [illegible] शहद मिल जाता है; और [illegible] पर मधुमक्खियों का भी संहार होता है और न दूसरा ही [illegible] मधुमक्खियों का [illegible] मधुमक्खियों [illegible], चाहे

जब, चाहे जहां, इच्छानुसार ले जा सकते हैं। पद्मवन अथवा गुलाब-वाटिका में ले जा कर रखने से कमल और गुलाब का मधु सहज ही मिल जाता है। मधु-संग्रह की कोठियां भी यदि खोलना चाहें तो कोई असम्भव बात नहीं; किन्तु उन कोठियों से लाभ ही हो सकता है।

भारतवर्ष में विशेषतः बंगदेश में मधु-मक्खियों की बस्ती अधिक है। यहां के उपवन सदा-सर्वदा पुष्पों से खिले रहते हैं और यहां का जलवायु भी मधुमक्खियों के अनुकूल रहता है। उस प्रदेश में यदि मधुमक्खियों के पालने का व्यवसाय किया जाय तो अच्छी सफलता हो सकती है। दक्षिण में भी महाबलेश्वर, माथेरान, इत्यादि पहाड़ी सरसब्ज प्रान्तों में शहद का व्यवसाय अच्छा हो सकता है। उत्तर में हिमालय पर्वत के किनारेवाले जिलों में, जहां वनश्री की शोभा सदैव प्राणियों को सुखित करती रहती है, मधुमक्खियों के पालने से, बहुत शहद मिल सकता है। पंजाब की ओर काश्मीर में तो प्राकृतिक फुलवाड़ियों की इतनी विपुलता है कि चाहे मधुमक्खियों को पालकर शहद के भंडार भर लीजिए! सारांश, समस्त भारत में शहद का व्यवसाय थोड़े परिश्रम से ही किया जा सकता है। अमेरिका में तो पहले मधुमक्खियां थी ही नहीं। यूरप से उन्हें ले जाकर वहां के लोगों ने पहले यह देखा कि वहां वे अच्छी तरह पाली जा सकती हैं या नहीं। अन्त में जब उन्होंने देखा कि अमेरिका का जलवायु मधुमक्खियों के प्रतिकूल नहीं है; किन्तु वहां उनकी बाढ़ अच्छी हो सकती है, तब वहां के लोगों ने उनका पालना शुरू कर दिया और अब तो वहां इस व्यवसाय की बहुत उन्नति हुई है।

पूसा के कृषिकालेज में मधुमक्खियां रखी गई हैं, और वहां इस व्यवसाय की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया गया है।

हमारे देश में साधारणतया चार प्रकार की मधुमक्खियां पाई जाती हैं:—(१) Apis dorsata, (२) Apis Indica, (३) Apis Flora और (४) Melipona Sp.

Apis dorsata को पहाड़ी मधुमक्खियां कह सकते हैं। यह पर्वतों पर, बड़े बड़े वृक्षों पर अथवा मौका पाकर ऊंचे ऊंचे घरों के खंडहरों पर छोटे-बड़े छत्ते तयार करती हैं। छत्तों की लम्बाई-चौड़ाई लगभग तीन साढ़े तीन हाथ होती है। इस जाति की मधुमक्खिका टूटी हुई जगह पर कभी अपना छत्ता नहीं बनाती। इसके बड़े छत्ते में पचीस तीस सेर तक शहद रहता है। ये मक्खियां बहुत ही प्रखर होती हैं; इस कारण इनका पालना प्रायः असम्भव होता है; परन्तु किसी न किसी उपाय से यदि कोई उन्हें पालने लगे तो बहुत लाभ हो सकता है।

Apis Indica (एपिस इंडिका) इस जाति की मक्खियां सदैव अपने छत्ते आच्छादित स्थान में ही बनाती हैं। वृक्षों के कुंजों में, बड़े प्राचीन खड्हरों में, उजड़े हुए घरों में, अथवा किसी घर के छज्जे में प्रायः इनके छत्ते लगे हुए देखे जाते हैं। ये एक ही स्थान में, एक ही जगह पर, एक से अधिक छत्ते समानान्तर पर तैयार करती हैं। आयतन छोटा, पहाड़ी मधुमक्खी से यह मक्खी कुछ बड़ी होती है। इनके छत्ते में तीन साढ़े तीन सेर से अधिक शहद नहीं निकलता।

Apis Flora (एपिस फ्लोरा) ये बहुत ही छोटी होती हैं। एक ही छत्ता बनाती हैं। उनका घेरा [illegible] से अधिक नहीं होता। छोटे छोटे वृक्षों पर अथवा झाड़ियों के आसपास इनके छत्ते सदैव देखे जाते हैं। उनमें बहुत शहद नहीं रहता। [illegible] से अधिक पाव भर रहता है।

Melipona Sp. ये भारतीय मधुमक्खियों में सब से छोटी होती हैं। ब्रह्मा के मुल्क में इनकी अधिकता पाई जाती है। इनके छत्तों से एक प्रकार का मोम पदार्थ निकलता है जो, [illegible] में वार्निश बनाने के काम में उपयुक्त होता है। शहद इनके छत्तों में बहुत ही थोड़ा रहता है। इन मक्खियों के पालने से विशेष लाभ होने की आशा नहीं।

छोटी मक्खियों को संस्कृत में क्षुद्रक और उनके मधु को क्षौद्र कहते हैं।

सम्पूर्ण मक्खियों का दो प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है। एक जाति समय पर एक ही छत्ता तैयार करती है, दूसरी जाति एक समय पर अनेक छत्ते तैयार करती है। पहले वर्ग में दो प्रकार की मक्खियां होती हैं। एक जाति अत्यन्त छोटी (Apis Flora) और दूसरी जाति बहुत ही बड़ी होती है। उसे पहाड़ी मक्षिका (Rock Bee) कह सकते हैं। दूसरे वर्ग की मधुमक्खियां मध्यम आकार की होती हैं। उनको (Apis Indica) कहते हैं। हमारे देश में इन मक्खियों के पालने से लाभ हो सकता है। इटालियन मधुमक्षिका इससे बहुत मिलती जुलती है। परन्तु इटालियन इससे कुछ बड़ी जरूर होती है। हां, दोनों की कार्यकुशलता लगभग एक ही सी होती है।

मधुमक्खियों का जीवनचरित्र बहुत ही कौतूहलवर्धक है। जन्म से लेकर, सूक्ष्म दृष्टि से, उनके सम्पूर्ण जीवन के चार विभाग किये जा सकते हैं। यही भाग उनके जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएं हैं। (१) अंडा; (२) कीड़ा; (३) पुत्तली (मांस का गोला); और (४) पूर्णावयव मक्षिका। यही उनकी अवस्थाओं का क्रम दिखाई देता है। किसी छत्ते को यदि ध्यान से देखा जाय तो उस छत्ते के कुछ कोषों में अत्यन्त क्षुद्र, ईषत्, वक्र और श्वेत वर्ण नलाकार पदार्थ दिखाई देगा। उसी को अंडा कहते हैं। करीब तीन दिन में यह अंडा फूटता है और फिर आगे उसे कीड़े की दशा प्राप्त हो जाती है। कीटावस्था में ही उसे श्रेणीभेद से छै सात दिन सम्हालने पर मधुमक्खी कोष का मुँह बन्द कर डालती है। कोष का मुँह बन्द हो जाने पर कीड़ा ग्यारह बारह दिन में क्रमशः पुत्तलिका के स्वरूप में आता है। इस पुत्तलिका की अवधि पूर्ण होने पर फिर वह मधुमक्खी पूर्ण देह धारण कर के बाहर उड़ने लगती है।

मधुमक्खी के छत्ते में तीन प्रकार की मक्खियां देखने में आती हैं: (१) रानी मक्खी (Queen Bee); (२) दासी मक्खी (Worker Bee); (३) पुंमक्षिका अथवा नर।

प्रत्येक मधुचक्र में एक ही रानी मक्खी रहती है। उसका आकार अन्य मक्षिकाओं की अपेक्षा बड़ा होता है। उसकी पूंछ लम्बी होती है और पंख बहुत छोटे होते हैं। इसका काम अंडे रखना है। छत्ते को छोड़ कर वह बाहर ढूँढने भी नहीं जाती। सर्वदा वह छत्ते ही में रहती है। छत्ते की सारी मक्खियां, उसकी सन्तति होती हैं। इसकी अवस्था चार पांच वर्ष की होती है। यह रानी-मक्षिका छत्ते के जिस भाग में जन्म लेती है वह भाग छत्ते के बीचों बीच होता है, और अन्य भागों की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है। जिस समय रानी मक्खी उत्पन्न करनी होती है उस समय दासी मक्खियां छत्ते के बीच में एक दो बड़े घर तैयार करती हैं। उनके तैयार होने पर रानी-मक्खी उस जगह अंडा रखती है। एक रानी मक्खी दो हज़ार तक अंडे रख सकती है। तीन दिन में ये सब अंडे फूटते हैं। अंडे फूटने के बाद, दासीमक्खियां, जिस पंक्ति के अंडों को रानी-मक्खी बनाना होता है उसी पंक्ति को, एक प्रकार का बलकारक पदार्थ खाने को देती हैं। अंडे फूटने पर, पांच छै दिन के बाद, उस घर का द्वार दासी मक्खियां बन्द कर डालती हैं। 'पुत्तलिका-दशा' के रूप में सात दिन उसी बन्द घर में रह कर रानी मक्खी स्वयम घर से बाहर निकल आती है। अंडा रखने के बाद सोलह दिन में रानी-मक्खी अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त होती है। इस प्रकार नवीन रानी के बाहर प्रकट होते ही दासीमक्खियां उस घर को नष्ट कर डालती हैं। पूर्णावयव प्राप्त होने के बाद पांच छै दिन के भीतर रानीमक्खी, ठीक दोपहर के समय, जब कि सूर्य मेघाच्छन्न नहीं होता है, छत्ते से बाहर निकल कर इधर उधर उड़ने लगती है। इस समय कितनी ही पुंमक्षिकायें (नर-मक्खियां) उसका पीछा करती हुई निकलती हैं। आकाश में संयोग उसका [illegible] होता है। छत्ते में नर मक्खियां कुछ कम नहीं रहतीं, परन्तु वहां पर उनसे उसका संयोग नहीं होता। यह [illegible] नियम [illegible] कि छत्ते में संयोग न हो। छत्ते के बाहर [illegible] रानी से संयोग होता है वह नर, संयोग के बाद, तुरन्त ही मर जाता है! रानी अपने सारे जीवन भर में सिर्फ एक बार ही [illegible] है। पहले दिन जब रानी बाहर निकलती है उस समय यदि किसी पुरुष से उसका संयोग नहीं होता तो फिर वह, जब तक संयोग न हो, बराबर ठीक समय पर बाहर निकलती रहती है। संगम हो जाने के बाद रानी-मक्खी छत्ते में आकर अपने को बन्द कर रखती है। फिर वह कभी बाहर नहीं जाती। और यह भी नियम है कि यदि लगभग तीन सप्ताह तक बराबर रानी-मक्खी बाहर निकलती रहे; और इस अवधि में किसी पुरुष से उसका संयोग न हो तो फिर वह छत्ते से बाहर कभी निकलती ही नहीं—फिर उसे जन्म कुमारिका ही बन कर रहना पड़ता है। ये ब्रह्मचर्य के नियम तो देखिये! हम समझते हैं कि इतना कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने के कारण ही इन मक्खियों में इतनी उद्योग-शक्ति होती है। हम में से जो मनुष्य उद्योगशील बनना चाहें—और कौन नहीं बनना चाहेगा—उनको ब्रह्मचर्य का कठोर व्रत अवश्य पालन करना चाहिए—हमारी सम्मति में जो नवयुवक और नवयुवती अपने जीवन को स्वदेश कार्य में लगाना चाहते हैं उनको मधुमक्खियों की तरह कुमार और कुमारिका रह कर ब्रह्मचर्य का सख्त व्रत पालन करते हुए स्वदेशसेवा करनी चाहिए।

मधुमक्षिका के शरीर में दो जरायु होते हैं। संयोग के बाद एक जरायु में पुंवीर्य संचित होता है और दूसरे में अंड-प्रजननरस संचित होता है। यह रस अंडा के आकार में जब उस जरायु से बाहर आता है तब वह उपर्युक्त जरायु के पुंवीर्य से संसृष्ट हुआ रहता है। इन्हीं अंडों से रानी अथवा दासी मक्खियों का जन्म होता है। पुंवीर्य से संसृष्ट न होते हुए यदि अंडा बाहर पड़ता है तो उससे नर-मक्खी का ही जन्म होता है। रानीमक्खी पुंवीर्य की जरायु, अपनी इच्छा के अनुसार, चाहे बन्द और चाहे खुली रखती है। जिस प्रकार की सन्तति की आवश्यकता रहती है उसी जाति की सन्तति रानी-मक्खी उत्पन्न कर सकती है। वीर्य संयुक्त अंडों से केवल मादियां ही उत्पन्न होती हैं। और यदि यही अंडा, छत्ते के खास बड़े घर में पुष्टिकारक खाद्य खा कर तैयार होता है तो उससे रानी-मक्खी तयार होती है; और यदि यही अंडे साधारण घर में साधारणतया पोषित होते हैं तो उनसे दासी मक्खियां उत्पन्न होती हैं। रानी और दासी दोनों मक्खियां होती तो स्त्रीजाति की हैं, पर इन दोनों में भेद इतना रहता है कि रानीमक्खी परिपुष्ट हो कर प्रजावती होती है और दासीमक्खियों में प्रजननशक्ति बिलकुल ही नहीं होती। अंडे जब पुंवीर्य से संसृष्ट नहीं होते अथवा जरायु में पुंवीर्य बिलकुल ही नहीं होता तब उनसे नर ही उत्पन्न होते हैं। रानी के वृद्ध होने पर उसका पुंवीर्य नष्ट हो जाता है, अर्थात् स्त्रीमक्षिका उत्पन्न होना असम्भव हो जाता है। फिर नर ही नर पैदा होते रहते हैं। इस स्थिति के पहले यदि नवीन रानी उत्पन्न न हुई तो छत्ते का नाश हो जाता है। एक बात और है कि रानी के साथ पुंमक्षिकाओं का यदि संयोग न भी हो तो भी वह अंडे रख सकती है, पर ऐसी दशा में अंडों से नर के सिवाय अन्य मक्षिका उत्पन्न नहीं होतीं। ([illegible])

प्रतिज्ञा*।

([illegible])

न अपनी शान का [illegible] करेंगे हम।
हृदय की बात ही मुंह से कहेंगे हम॥
[illegible]
[illegible]
समय के साथ [illegible] है।
[illegible]
[illegible] में [illegible] हम।
न [illegible] हम।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] हम।
न [illegible] हम।

---

* [illegible]

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का नवम्बर मास।

लेखक:—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०।

हीना रोमानिया के लिए बुरा बीता। जान पड़ता है कि के प्रारम्भ में रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट शत्रु के गी और नवीन वर्ष के आरम्भ में, अर्थात् एक मास और र, रोमानिया का ऊपरी भाग, अर्थात् सिर्फ़ मोल्डेविया ानियन सरकार के हाथ में रह जायगी और नीचे का सारा ानी के हाथ लगेगा। रोमानिया पर जो यह संकट का अव- ा है उसके लिए सारे मित्र-राष्ट्रों को अत्यन्त खेद हो रहा यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रोमानिया का उद्धार लिए अगले वसन्तकाल में मित्र-राष्ट्रों की ओर से प्राणपण किया जायगा। रोमानिया के इस पराजय का यह कारण ना चाहिए कि मित्र-राष्ट्रों के यहां वीर योद्धाओं की संख्या -और यह भी न ख्याल करना चाहिए कि उनके पास अन्न रूद की कमी होगई होगी —वास्तव में मित्र-राष्ट्रों की सेना अधिकाधिक बढ़ रही है और बारूद के पर्वत भी अधि- ऊंचे हो रहे हैं।

रोमानिया पर ट क्यों आया? रोमानिया के ष्य-बल कम था? ा की सेना सात ाख से अधिक व फिर यह कैसे सकता है कि स मनुष्यबल कम फिर क्या रोमा- सेना शूरवीरता लड़ी? सो भी योंकि रोमानिया अच्छी तरह था कि हमारे पर और बाल- यह संकट आया देसी दशा में, ही, राजा से क तक सभी, जान ,युद्ध करते रहे। तो फिर ऐसा मौका कैसे आया? इस पराजय रण हैं। पहला कारण यह है कि रोमानिया एक कोने पर और रूस की एक दूर की रेलगाड़ी की निर्बल शाखा से वह से संबद्ध हुआ है। रोमानिया का रणक्षेत्र जर्मनी, आष्ट्रिया, ा और टर्की, इन चारों के लिए बिलकुल निकट का है! घर ले; और मानो रणभूमि में ही खड़े हैं! चारों देशों की रेल- की अनेक शाखायें रोमानिया की सीमा से भिड़ी हुई हैं। ण आष्ट्रो-जर्मन लोग अपनी बड़ी बड़ी तोपें रोमानिया की में सहज ही ले जा सके, और गोलाबारूद की पहुँच भी प से, प्रत्येक केन्द्र पर, प्रत्येक समय, उनकी ओर से होती तात्पर्य यह है कि रोमानिया पर जो विजय प्राप्त किया गया नुष्यों ने नहीं किया; किन्तु तोपों ने किया है; यंत्रों ने किया है; द्धसामग्री ने किया है। बिचारा रोमानिया एक छोटा देश! ास आस्ट्रो-जर्मनों की सी तोपें कहां! जैसा छोटा सा देश ी उसका तोपखाना! उसको यदि कोई तोपों की मदद ाता था तो रूस कर सकता था—सो रूस प्रारम्भ से ही ायुद्ध में तोपों के विषय में स्वयं गरीब और ऋणियां ! ऐसा नहीं कि उसने मदद न की हो; मदद उसने कोई कसर नहीं रखी; पर वह पूरी पूरी नहीं का, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं और न इसमें रूस

का कोई दोष ही है; क्योंकि कारण स्पष्ट है। यह महायुद्ध यंत्र- मयी है—बोलना, चालना, चिन्ह करना, संकेत करना; जो कुछ करना सब यंत्रों से ही! खाना-पीना भी यंत्र से ही। यांत्रिक योजना की हद हो गई है! किसी पलटन के साथ, उस पलटन के योद्धाओं की अपेक्षा, यंत्रों की ही संख्या अधिक रहती है; और उस पलटन के अधिकारी सेनानायकों की अपेक्षा कुशल इंजिनियरों की ही संख्या अधिक रहती है, उस पलटन को खाना-पीना देने का प्रबन्ध करने- वाले विभाग की अपेक्षा यंत्रों के पेट में पड़नेवाली गोलियों और पेट्रोलियम के पानी का प्रबन्ध करनेवाले विभाग का ही महत्व अधिक रहता है, बीमार अथवा घायल सैनिकों की शुश्रूषा करने के लिए एकत्र होनेवाले डाक्टरों की अपेक्षा मोटर इत्यादि भिन्न भिन्न यंत्रों को ठीक करने के लिए रणभूमि के निकट फैले हुए बाजार का ही आडम्बर विशेष दिखाई देता है! इस महायुद्ध की किसी रण- भूमि का यदि देवदूत की तरह आकाश से अवलोकन किया जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे किसी विस्तीर्ण यंत्रालय अथवा यांत्रिक कारखाने में, कुछ सैनिक, सैर करने के लिए, इत- स्ततः घूम रहे हों। जान पड़ता है कि ये यंत्र सैनिकों के साथ नहीं है, किन्तु सैनिक पहनावे के कुछ लोग, कौतूहल से, यंत्रों के बीच में खड़े हैं। यह यंत्रों का विस्तार है; शूर सैनिकों का नहीं है। यंत्रों की इस विस्तृत प्रद- र्शिनी के आगे बिचारे रोमानिया की क्या चल सकती है? बस, रोमा- निया का जो पराजय हुआ है उसका मुख्य कारण यही समझना चाहिए कि उसके पास यंत्रों की कमी है। दूसरा कारण यह है कि रोमानिया ने, इस भ्रम में पड़ कर कि, जर्मनी की यंत्रसामग्री अब समाप्त हो आई है, पहले ही से जो सैनिक नीति स्वीकार की, वह ठीक नहीं थी। युद्ध के प्रारम्भ होते ही रोमानिया एकदम ट्रांसलवेनिया में घुसा। यह सैनिक नीति उसने मित्रराष्ट्रों की सम्मति लेकर स्वीकार नहीं की। मित्रराष्ट्रों के युद्ध- कलाविशारद लोगों ने उसे यह सम्मति कभी नहीं दी थी। बात यह है कि रोमानिया तो युद्ध में शामिल ही इस शर्त पर हुआ कि ट्रांसलवेनिया हमारे अधिकार में आना चाहिए; और, अतएव, हम ऐसी ही सैनिक नीति स्वीकार करेंगे कि जिससे यह एकदम हमारे अधिकार में आजाय। इसलिए रोमानिया ने युद्ध आरम्भ करते समय ऐसी ही सैनिक नीति लक्ष्य में रखी कि जिससे बलगेरिया और तुर्किस्तान को दबाने का काम सालोनिका की सेना के द्वारा हो और रोमानिया एकदम ट्रांसलवेनिया को घेर ले। अब देखिये कि यह नीति उसी के सिर कैसे आई। ग्रीस का राजा धोखेबाज निकला; और इस कारण सालोनिका की सेना विशेष कुछ कर न सकी। इधर सेनापति मैकेनसन ने क्या किया कि जब उन्होंने देखा कि ग्रीस का राजा बिगड़े दिल है और सालोनिका की सेना कुछ नहीं कर सकती तब उन्होंने बलगेरियन और टर्किश सेना को अपने अधिकार में लेकर एकदम डेन्यूब प्रान्त पर चढ़ाई कर दी और पहली ही बार में बड़ा भारी विजय प्राप्त कर के कुस्तांजा-

रोमानिया की रणभूमि।

गये। और उसी समय आल्ट नदी पार करके आये हुए आस्ट्रो-
ज़र्मनों ने पिटेस्टी जिले को व्याप्त करके आर्जिस नदी की घाटी से
बुखारेस्ट पर धावा किया। बुखारेस्ट नगर बालकन प्रदेश का पेरिस
समझा जाता है। इतना सुन्दर और सम्पत्तिवान नगर बालकन
प्रदेश में अन्य नहीं है। इस नगर के चारों ओर छोटे छोटे किलों
का परिवेष्टन है और कई महीने तक भिड़ने का सामर्थ्य इसमें था;
पर रोमानिया को यह स्वप्न में भी कल्पना न थी कि युद्ध के प्रारम्भ
में ही हमें राजधानी का नगर भिड़ाना पड़ेगा; और इसी कारण
उस नगर के किलों की तोपें अन्य जगह चली गई थीं। इसका फल
यह हुआ कि ज्यों ही आस्ट्रो-जर्मन सेना बुखारेस्ट के पास आई
त्यों ही राजधानी के द्वारा युद्ध करने का विचार रोमानिया को
छोड़ देना पड़ा; और दिसम्बर के प्रारम्भ में ही, सैनिक सामग्री की
दृष्टि से, राजधानी खाली कर दी गई। रोमानिया की सरकार,
परराष्ट्रीय वकील; खजाना; सोना-जवाहिरात, और अन्य महत्व-
पूर्ण सब वस्तुओं के साथ, रोमानिया के बिलकुल उत्तर की ओर
ईशान कोण में, रूस की सीमा के पास, जासी नामक मुकाम में
चली गई। और दिसम्बर के पहले सप्ताह में बुखारेस्ट नगर करीब
करीब आस्ट्रो-जर्मनों के हाथ में चला गया। बुखारेस्ट राजधानी
को यदि युद्ध में नहीं भिड़ाया तो रणभूमि के किस मुकाम पर रोमानि-
यन सेना दृढ़ता-पूर्वक डँट सकेगी? जान पड़ता है कि बुखारेस्ट के
उत्तर ओर से जानेवाली प्राहोवा नदी के उस पार रोमानियन सेना
को, आश्रय का अच्छा स्थान मिलेगा और उक्त नदी की घाटियों
में भयंकर लड़ाइयां होंगी। पर वहां की नदियों के आश्रय में एक
बड़ा भारी दोष भी है। वह यह कि, डान्यूब नदी में आस्ट्रो-जर्मन
जहाज मनमाना संचार कर सकते हैं; और इन जहाजों
के बल पर रोमानियन सेना की बाईं ओर घेरा डाला जा
सकता है और इस घेरे के कारण उस नदी का आश्रय छोड़ना
पड़ता है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो रोमानियन
सेना का पीछे हटना प्राहोवा नदी तक नहीं रहेगा; किन्तु ऐसी भी
सम्भावना है कि उक्त सेना सिरेज और प्रुथ नदियों को पार कर के
रोमानिया का सारा मुल्क छोड़ कर, रूस की सीमा पर बेसारेबिया
त तक हटती जायगी। इधर सेनापति हिंडेनबुर्ग ने कुछ दिन
ले अपना यह विचार प्रकट किया था कि हम रोमानिया को
कर रूस की बाईं ओर घेरा डालेंगे। और इस में सन्देह नहीं
सैनिक नीति की दृष्टि से डान्यूब नदी के दोनों किनारे अपने
कार में रखना आस्ट्रो-जर्मनों को अत्यन्त अभीष्ट है। इस लिए
ग, इस समय, डान्यूब के उत्तर ओर वाले बेसारेबिया के भाग
पने अधिकार में करने के लिए, पूरा पूरा प्रयत्न किये बिना
नहीं रहेंगे; और यह भी बात है कि डान्यूब नदी के दोनों
जैसे जैसे उनके हाथ में आते जायँगे वैसे वैसे ही दुहरे
तिहरे, रेलवे के समान सुलभ और शीघ्रता के जल-मार्ग, उन
में आते जायँगे; और इस कारण डान्यूब नदी के किनारे
जो उनकी गति होगी उसे और भी वेग अवश्य ही मिलता
। इस समय, डान्यूब नदी का उपयोग कर के उसे सम्पूर्ण-
ने हाथ में लेना ही आस्ट्रो-जर्मनों का मुख्य उद्देश्य दिखाई
अतएव, अब मित्र-राष्ट्रों को ऐसी कोई बाज़ी मारना चाहिए
फ्रान्स; गेलेशिया, इटली की रणभूमि में; अथवा सलिनोका
आस्ट्रो-जर्मन एकदम भयभीत हो जावें; और वर्तमान
नीति को छोड़ कर, कहीं मार्ग ही में, उन्हें थम जाना पड़े।
ई शक नहीं कि अक्टोबर और नवम्बर में रूस, इंगलैंड,
नी और सर्विया चुप नहीं रहे—रूस ने कार्पेथियन पर्वत
ताप दिखलाया; वर्डन के मैदान में फ्रांस ने जर्मनों को
ड़ा; सोमनदी पर अंग्रेजों ने जर्मनों को नीचा दिखाया;
ट्रेन्स पर्वत पर भी आस्ट्रिया को पीछे हटाया; और सली-
ना ने मोनेस्टिर ले कर मेसिडोनिया की उस प्राचीन
स्थानभ्रष्ट होनेवाली सर्वियन सेना की पुनः प्राणप्रतिष्ठा
राक्रम कुछ कम महत्व के नहीं हैं—तो भी, उनको
नहीं दिया जा सकता जितना कि आस्ट्रो-जर्मन सेना-
विद्ध कर के रोमानिया को उसके आक्रमण से
जा सकता है। और अब तो शीतकाल का प्रारम्भ
स कारण ऐसी कुछ बहुत सम्भावना नहीं दिखाई

देती कि अन्य रणभूमियों के विलक्षण फेरफारों से रोमानिया
पर कुछ विशेष प्रभाव पड़ेगा और वह मन्द हो जायगा। उ
नदी को पूर्णतया अपने अधिकार में रखना जिस प्रकार आस्ट्रो-
सैनिक नीति को अभीष्ट है उसी प्रकार, यदि हो सका तो,
हिंडेनबर्ग, सालिनोका को भी अपने अधिकार में लेकर, वहां
मित्र-राष्ट्रों की सेना को निकाल देना आवश्यक समझेंगे। प्रेहोवान
के उत्तर ओर यदि रोमानियन सेना गई तो समझना चाहिए
मानो रूस के युद्ध में ही रोमानिया का युद्ध भी आ गया। ऐसी दश
में, इस ओर रूस का युद्ध जाड़े के मौसिम भर मुलतवी रख कर
पहले सालोनिका की ओर बढ़ना कदाचित् आस्ट्रो-जर्मन पसन्द
कर लेंगे। परन्तु, रोमानिया के पीछे हटने से, अभी तक, इस युद्ध
में उन्हें जो लाभ हुआ है उसका पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए अगले
वसन्तकाल की मार्ग प्रतीक्षा करना एक प्रकार से कदाचि
उचित भी नहीं जान पड़ेगा; क्योंकि गतवर्ष का अनुभव है।
काल में रूस फिर हृष्ट पुष्ट हो जाता है और आस्ट्रो जर्मनों
रगड़ कर उन की हड्डी नरम करता है। इस लिए रू
हृष्ट-पुष्ट होने के पहिले ही सम्पूर्ण डान्यूब नदी हाथ में आ
तब तो ठीक है—अन्यथा उनकी वह महत्वाकांक्षा व्यर्थ
यगी; ऐसी दशा में, यही अनुमान होता है कि, आस्ट्रो-जर्मन स
निका की ओर नहीं बढ़ेंगे; और अभी दो तीन महीने अच्छी त
रोमानिया का ही पीछा करते रहेंगे। सिर्फ एक ही बात के लि
डान्यूब नदी का लोभ छोड़ कर सालिनोका की ओर आस्ट्रो-जर्म
सेना के बढ़ने की सम्भावना जान पड़ती है—और वह बात यह है कि
जब ग्रीस के राजा कान्स्टेन्टिनाइन पर मित्रराष्ट्रों की सेना धावा
करने के लिए तैयार हो। ग्रीस के राजा ने गुप्त रीति से जर्मनी को
किस प्रकार सहायता की है; सालिनोका की सेना, उसकी धोखे-
बाजी के कारण, कैसी अटकी पड़ी है—सो सब बातें अब अच्छी
तरह से प्रकट हो गई हैं; और इसी कारण मित्रराष्ट्रों को इस राजा
की सेना को विध्वंस करने तक की नौबत आगई है। और ऐसा
अनुमान है कि दिसम्बर में मित्रराष्ट्रों और ग्रीस के राजा में युद्ध
यदि छिड़ गया तो रोमानिया की बहुत सी आस्ट्रो-जर्मन सेना नीचे
दक्षिण की ओर सालिनोका की तरफ उतरेगी। अस्तु। चाहे आस्ट्रो-जर्मन
शीतकाल में रोमानिया का पीछा करते रहें; और चाहे सालोनिका
की ओर उतरें—ये दोनों रणभूमियां दूसरी श्रेणी की हैं; और इस
कारण रोमानिया अथवा ग्रीस के फेरफारों से महायुद्ध के अगले वर्ष
के प्रवाह पर कोई बहुत बड़ा प्रभाव नहीं पड़ सकता। नवीन सेना
और नवीन युद्धसामग्री तैयार करने के लिए इंगलैंड, फ्रांस, रूस, जर्मनी
और आस्ट्रिया में जो इस समय प्रबल प्रयत्न हो रहा है; बस इसी प्रयत्न
का आगामि साल महायुद्ध के स्वरूप पर प्रभाव पड़ेगा। रूस में ड्यूमा
सभा को भी अब अधिक अधिकार मिले हैं और उसका महत्व
स्वीकार करने वाले राजनीतिज्ञ रूस के मुख्य प्रधान हुए हैं। इससे
यह कहा जा सकता है कि आगे खूब जोरशोर से युद्ध जारी रखने
में रूस के लोग अपनी सरकार को पूरे तौर से साथ देने के लिए
तैयार हैं। फ्रांस तो इस महायुद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए सब
प्रकार स्वार्थत्याग करने को तैयार है; रोमानिया की हार से इंगलैंड
में लड़ाई की हवा और भी तेजी से बहने लगी है, और सप्ताह में
दो दिन मांस और मछलियों के बिना, व्रतस्थ रीति से रह कर, प्रति
दिन के भोजन में, जहां तक हो सकेगी, कमी कर के, सब ओर से
और सब प्रकार से युद्ध को जारी रखने की वहां के लोगों ने प्रतिज्ञा
कर ली है। यह प्रतिज्ञा पूर्ण होने के लिए यह आवश्यक समझा
गया कि प्रधानमंडल एकसा होना चाहिए और इसी लिए लिबरल
और कंसर्वेटिव-मिश्रित प्रधानमंडल को तोड़ कर मुख्य प्रधान मि०
आस्क्विथ ने भी दिसम्बर के शुरू में अपने स्थान से त्यागपत्र दे
दिया। दिसम्बर में जब युद्ध का उत्तेजक और एकसा तथा प्रबल
दम प्रधानमंडल बन जायगा तब महायुद्ध के सारे सूत्र उनमें से
दो तीन युद्ध-पक्षपाती राजनीतिज्ञों के हाथ में चले जायँगे। ऐसा
होने पर अवश्य ही इंगलैंड का युद्धोत्साह द्विगुणित हो जायगा।
इंगलैंड, फ्रांस और रूस के नवीन नवीन प्रयत्नों के उत्तर में जर्मनी
ने भी, जान पड़ता है, खूब जोर शोर से तैयारी करने का निश्चय
कर लिया है। कामकाज करनेवाले मजदूरों की कमी न होने देने
के लिए जर्मनी ने बेलजियम में, इस बीमर्वी शताब्दी में भी, दास

को दूसरा रूप दे रहा है। और अपने मित्र के देश में फौजी कानून के बने हुए इलाकों को भी शत्रुओं के नवीन कानून की सरकारी ... में पास किया है; पोलैण्ड को स्वतंत्र राज्य दे देने की घोषणा कर के वहां के लोगों को फौजी नौकरी करने के लिए लाचार किया गया है, इसी को लोग पहले ही से ... में शामिल समझा गया है; और ... के ... का दाना दाना भी लूट लिया जायगा, सो स्पष्ट ही है। इस तरह सब भांति बदनाम होते हुए भी अगले साल जर्मनी फिर भी इटली के साथ लड़ाई जारी रखने की इच्छा रखता है। और किसी कारण से न सही, तथापि यूरप की वर्तमान दुर्दशा पर अमेरिका का हृदय अवश्य दयार्द्र होगा और बहुत सम्भावना है कि उसकी ओर से इस शीतकाल में दोनों पक्षों में सन्धि करा देने का पूरा पूरा उद्योग हो। अतएव यहां पर यह सूचना देना आवश्यक है कि अगले दो तीन महीने, जब कि पाठक रोमानिया और सलोनिका के युद्ध की ओर ध्यान रक्खेंगे, अमेरिका के लोकमत की ओर भी अवश्य ध्यान रखें।

दो प्रान्तिक परिषदें।

अहमदाबाद-प्रान्तिक-परिषद्।

बैरिस्टर ज़िना।
(परिषद् के अध्यक्ष)

बम्बई की प्रान्तिक परिषद् इस वर्ष गत २१,२२,२३ अक्टूबर को अहमदाबाद में सफलतापूर्वक हुई। सूरत की कांग्रेस के बाद यह पहला ही अवसर था जब कि एक मुसल्मान सज्जन की अध्यक्षता में इस परिषद् में बम्बई के सब नरम गरम-दल के नेता उपस्थित हुए थे। स्वयंसेवक सेना संगठित करने, हथियारों का तथा प्रेसएक्ट का कायदा रद करने, इत्यादि पर प्रभावशाली भाषण हुए। स्वागतकारिणी के अध्यक्ष ने ऐतिहासिक उदाहरणों से स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार पर ज़ोर दिया। परिषद् के अध्यक्ष बैरिस्टर ज़िना ने यह प्रतिपादन किया कि अब सत्ता लोगों के हाथ में देनी ही चाहिए।

अमरावती-प्रान्तिक-परिषद्।

मध्यप्रदेश की प्रान्तिक परिषद् इस मास के प्रथम सप्ताह में डा० गौर की अध्यक्षता में बड़े समारोह से हुई। कोई १५० प्रतिनिधि उपस्थित थे। स्वागतकारिणी के अध्यक्ष माननीय जोशी ने अपने भाषण में यह बतलाया कि ब्राह्मण सिपाही क्यों नहीं मिलते, मोर्ले मिन्टो के सुधारों से हमारी तृप्ति क्यों नहीं होती; स्वराज्य के बिना हमें क्यों सन्तोष नहीं हो सकता, और श्रीमती एनीबेसेण्ट को इस प्रान्त में न आने देकर सरकार ने कैसा अन्याय किया है। डा० गौर ने अपने भाषण में पहले स्वराज्य के लिए आन्दोलन करने की प्रेरणा की, और फिर कहा कि मध्यप्रान्त के लिए कार्यकारिणी सभा अवश्य चाहिए; और प्रेसएक्ट के समान ज़ुल्मी कानून अवश्य रद होना चाहिए। मुधोलकर साहब ने अपने

डॉक्टर गौर।
(परिषद् के अध्यक्ष)

भाषण में यह भविष्यद्वाणी की कि ब्रिटिश लोग हमें स्वराज्य दिये बिना कभी न रहेंगे।

प्राणाचार्य स्वर्गीय बालशास्त्री लागवणकर।

आप पूने के बड़े नामी वैद्य थे। ३ नवम्बर को ६० वर्ष से कुछ अधिक अवस्था में आपका प्लेग से देहान्त होगया। आयुर्वेद का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करने के बाद आपने अपने कई मित्रों की सहायता से बम्बई में अँगरेज़ी शारीरशास्त्र और इन्द्रियविज्ञान का अध्ययन किया। पाश्चात्य वैद्यकशास्त्र से भारतीय वैद्यकशास्त्र की तुलना कर के आपने सदैव युक्ति और तर्क के साथ भारतीय वैद्यक को विशेष उपयोगी सिद्ध किया। बालशास्त्री जी ने अपने अचूक निदान और यशस्वी चिकित्सा से महाराष्ट्र में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बड़े बड़े पाश्चात्य डाक्टरों ने निराश होकर जिन रोगियों को जवाब दे दिया उनको आपने आयुर्वेदचिकित्सा से अच्छा कर दिया। पूने में आयुर्वेदविद्यालय और आयुर्वेदरुग्णालय चला कर आपने सैकड़ों विद्यार्थियों को आयुर्वेद की शिक्षा दी; और तनमनधन से रोगियों का उपकार किया। आयुर्वेद की उन्नति के लिए आप रातदिन तनमनधन से प्रयत्न करते रहते थे। पूने में म्युनिसिपैलिटी की ओर से जो देशी आयुर्वेदिक दवाखाना चल रहा है उसके स्थापित होने में भी आप ही ने विशेष प्रयत्न किया था; और कुछ वर्ष आप अवैतनिक सेवा भी उसमें करते रहे। इस वर्ष वैद्यक सम्मेलन का अधिवेशन पूने में ही फरवरी के अन्तिम सप्ताह में होनेवाला है, इसकी सफलता के लिए आप

पूरा पूरा प्रयत्न कर रहे थे; पर दुःख की बात है कि सम्मेलन होने के पूर्व ही आप स्वर्गवासी होगये! आपके समान परोपकारी और विद्वान् वैद्य यदि थोड़े भी भारत में उत्पन्न हो जायँ तो आयुर्वेद का बेड़ा पार हो जाय! क्या हमारे अन्य वैद्यगण आपके जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे?

स्वर्गीय पं० बिशन नारायण दर।

पं० बिशन नारायण दर उन इने गिने देशभक्तों में से एक थे कि जो बैरिस्टरी के समान व्यवसाय करते हुए भी भारतमाता की वर्तमान दुर्दशा को दूर करने के लिए रातदिन

...ा और प्रयत्न करते रहते थे। आपका ... सन्० १८६४ में हुआ। ११ नवम्बर को ...का स्वर्गवास हो गया। इस वर्ष लखनऊ ...स की स्वागतकारिणी सभा के आप ही ...त चुने गये थे, पर कांग्रेस होने के पहले ...आप सब कांग्रेस-प्रेमियों को शोकसंतप्त ... हुए चल बसे। शिक्षा-प्रचार, समाज-...र, राजनैतिक आन्दोलन, इत्यादि अनेक ... से आपने देश को उठाने का प्रयत्न ...। १९११ में आप प्रान्तिक परिषद के ...त हुए; इसके बाद कलकत्ता (कांग्रे...) कांग्रेस के भी अध्यक्ष हुए, आप ...मान गवर्नमेंट भी करती थी, और प्रजा ...ी आप नेता थे। आप अपने मतों का ...ादन निर्भयता से करते थे। उर्दू और ...ज़ी के आप बड़े मार्मिक लेखक थे; आपके ...लोकवास से युक्तप्रान्त का एक देशहितैषी ... उठ गया। परमात्मा आपकी आत्मा को ... प्रदान करे।

आस्ट्रिया के सम्राट

स्वर्गीय फ्रांसिस जोसफ़।

८६ वर्ष की अवस्था में अभी उस दिन आपका परलोकवास हो गया। योरोपीय महाभारत के आप धृतराष्ट्र कहे जाते हैं। आप ही के कारण यह महाभयंकर युद्ध ठना। आपने ६८ वर्ष आस्ट्रिया का राज्य किया। इनका जीवन शोक-दुःख से परिपूर्ण है। बहुत से इनके नातेदारी अचानक मृत्यु से परलोकवासी हुए। इनकी पत्नी का खून एक अराजक ने किया, इनके लड़के प्रिंस रूडोल्फ ने अपनी एक प्रेमपात्रा-सहित आत्महत्या कर ली, इनकी भाभी अकस्मात् पेरिस में आग से जल गई; और इनके बड़े लड़के के बाद इनका भतीजा, जो गद्दी पर बैठनेवाला था, वह सर्विया में मारा गया; इसी के कारण यह भयंकर-जन-संहार-कारी युद्ध उपस्थित हुआ। इस युद्ध का अन्त देखे बिना ही आस्ट्रियन सम्राट् परलोकगामी हुए, अवश्य ही आप अपने साथ युद्ध की भावना ले गये होंगे। आपने अपने राजत्वकाल में प्रजा को सुखी सन्तुष्ट करने का बड़ा प्रयत्न किया; पर अधिकांश काल आपकी प्रजा असन्तुष्ट ही रही, सारांश आपका जीवन अन्त तक अशान्तिमय रहा। अब आपके बाद आपके एक नवयुवक भतीजे आर्च ड्यूक आस्ट्रिया के सम्राट् होनेवाले हैं।

स्वागत-गीत।

(जबलपुर-साहित्यसम्मेलन में देवियों के द्वारा गाया हुआ एक गीत)

बन्धुगण, स्वागत सबका आज।
आये आप दूर से श्रम कर, करने हिन्दी-काज ॥ ध्रु० ॥
लेखक, वक्ता, कवि, अनुरागी।
श्रोता, भक्त, सहायक, त्यागी ॥
जिन जिन के हिय आशा जागी।
उनकी जुड़ी समाज ॥ बन्धु० ॥ १ ॥
आप अकेले कष्ट न पावें।
संकट में न कहीं घबरावें ॥
इससे हम सब धीर धरावें।
यदपि हमें है लाज ॥ बन्धु० ॥ २ ॥
शिक्षित आप अशिक्षित हम हैं।
सभी प्रकार आप से कम हैं ॥
पंथ आपके हमें अगम हैं।
टूटा है रथ-साज ॥ बन्धु० ॥ ३ ॥
शस्त्र सभ्यता लेकर करमें।
आप चढ़े हैं जगत-समर में ॥
हमें छोड़िये मत अब घर में।
अबलापन के व्याज ॥ बंधु० ॥ ४ ॥

स्वागत-गान।

(जबलपुर-साहित्यसम्मेलन में स्वयंसेवक बालकों द्वारा गाया हुआ गीत)

स्वागत, आओ आओ भाई!
आओ राष्ट्र जगाओ भाई!
व्याकुल रह रह दिवस बिताये दर्शन-भाव समाये,
आओ हृदय बिछे हैं सादर इन पर चरण जमाओ। भाई
राष्ट्र-प्रेम की ध्वजा उठाओ माता को समझाओ,
पुष्प-पुंज की भांति शीश सब चरणों बीच नवाओ। भाई
अंग भंग हैं अति कुढंग हैं सुरति बिसर जनि जाओ,
फटे रक्त-रंजित चरणन को आंसू सींच धुलाओ। भाई
हिम पर्वत से गूंज उठाओ सागर तक पहुंचाओ,
सब प्रान्तीय भेद अब तोड़ो भारत एक बनाओ। भाई
राष्ट्रदेवि करुणामयि श्यामिनि माता कहि गुण गाओ।
भारत-बन्धु, राष्ट्रभाषा को मिलकर शीश चढ़ाओ। भाई

एक भारतीय आत्मा।

सम्पादकीय समालोचन ।

१—सप्तम-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ।

नवम्बर मास के प्रथम सप्ताह में यह सम्मेलन जबलपुर में साहित्याचार्य पंडित रामावतार शर्मा के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ हुआ। मध्यप्रदेश में स्वाभाविक ही हिन्दी का अच्छा प्रचार है, परन्तु इस साहित्यसम्मेलन ने उक्त प्रान्त में विशेषरूप से साहित्य चर्चा उपस्थित कर दी। सभापति के द्वारा सम्मेलन के कार्यक्रम का संचालन समुचित रीति से नहीं हुआ—इस विषय में समाचारपत्रों ने टीका-टिप्पणी की है। कुछ भी हो, हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि इस सम्मेलन ने मध्यप्रदेश निवासियों पर बहुत अच्छा और स्थायी प्रभाव छोड़ा है। मध्यप्रदेश भारत का केन्द्रस्थल है, सो यहां भारत के सभी प्रान्तों के भिन्न-भिन्न-भाषा-भाषी कुछ न कुछ लोग रहते हैं। इन सब सज्जनों ने सम्मेलन में भाग लिया, और हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय भाषा के तौर पर सम्मानित किया; पारसी, सिन्धी, गुजराती, मदरासी, बंगाली, इत्यादि लोगों में से कई एक ने तो सम्मेलन में भाषण भी किया। और महाराष्ट्र बन्धुओं ने तो तन-मन-धन तीनों से सम्मेलन की पूरी पूरी सेवा की। हमारे माननीय ज्येष्ठ बन्धु पं० माधवराव सप्रे बी० ए० ने तो सम्मेलन होने के कई मास पूर्व से ही सारे प्रान्त में घूम-घूम कर सम्मेलन के अनुकूल लोकमत जागृत किया; और सब प्रकार के धनी-मानी लोगों को इस की ओर झुकाया। सम्मेलन में उपस्थित रहते समय हम से लोगों ने कहा कि इस 'विराट'-आयोजन के आन्तरिक प्राण आप ही हैं, और बाह्य शरीर का कार्य श्रीयुत गोविन्दलाल पुरोहित ने किया है। शरीर और प्राण के साथ इन्द्रियों का कार्य करनेवाले मा० शुक्ल, रा० सा० द्विवेदी, झा-बन्धु, खण्डवा-मंडली इत्यादि मध्यप्रदेश के अनेक साहित्यसेवी और साहित्यप्रेमी धनी-मानी सज्जन हैं। स्वयंसेवकों के नायक पं० बांकेबिहारीलाल वाजपेयी ने जिस उत्साह और प्रेम के साथ सम्मेलन में सेवा का प्रबन्ध किया वह प्रशंसनीय था। इस सम्मेलन में, इस लेखक ने, सब से अधिक आदर पाने योग्य और महत्त्वपूर्ण बात जो देखी वह यह थी कि इसमें देवियों ने प्रत्यक्ष भाग लिया। स्वागतगीत गाये,—और एक महाराष्ट्र देवी ने हिन्दी में व्याख्यान भी दिया। इस देवी ने कहा कि "महाराष्ट्र में हिन्दी का प्रचार होना चाहिए, और सम्मेलन में स्त्रियों को भी विशेष तौर पर निमंत्रित करना चाहिए।" महाराष्ट्र में हिन्दी के प्रचार होने का कार्य थोड़ा थोड़ा हो ही रहा है। जिसके "निमित्त-कारण" हमारे महाराष्ट्र "ज्येष्ठबन्धु" ही हैं। हम लोगों को सहायक चाहिए, सो भी मिल रहे हैं और मिलेंगे। विदुषी देवियों को निमंत्रित करने के लिए साहित्यसम्मेलन के संचालकों को अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। इस वर्ष हिन्दी में दो नाटक भी सम्मेलन के अवसर पर खेले गये। उनमें खंडवा की मंडली ने "भारतीय आत्मा" का जो नीति-प्रधान नाटक दिखलाया वह अत्यन्त प्रशंसनीय रहा। इस नाटक को देखकर मन में आया कि नारद के समान कूटनीतिवाले साधुओं की संसार को बड़ी आवश्यकता है, जो स्वयं अलिप्त रहकर, प्यार ही प्यार अपनी कूटनीति के पेंच भिड़ाकर संसार के दुःखों को दूर करते रहें! साहित्यप्रदर्शिनी भी इस वर्ष अच्छी रही, इसकी व्यवस्था का श्रेय पं० [illegible]प्रसाद जी अग्निहोत्री को है। सारांश, इस वर्ष का सम्मेलन मध्यप्रदेश के निवासियों में, विशेषरूप से साहित्यप्रेम का बीज बो गया है और आशा है कि उस बीज से अनेक अंकुर उत्पन्न हो कर, शीघ्र ही, मध्यप्रदेश, साहित्य का एक हराभरा क्षेत्र बन जायगा!

२—जापान में एक और भारतीय उपदेशक।

रवीन्द्र बाबू ने जापान में जा कर जो आध्यात्मिकता का प्रचार किया उसका वर्णन चित्रमयजगत् के गतांक में दिया जा चुका है। अब हाल ही में पं० हरिप्रसाद जी शर्मा जापान में भारतीय धर्म का प्रचार कर रहे हैं। समाचार आया है कि आप के व्याख्यानों का वहां के लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। वहां के बड़े बड़े विद्वान् लोग भारतीय धर्म और सभ्यता पर अब बड़ी श्रद्धा से विचार करने लगे हैं। पंडित हरिप्रसाद जी उन्हें संस्कृत का उच्चारण कराते हैं। भारतीय धर्म और यूरप के भौतिक धर्म की तुलना करते हुए आपने यूरोपीय भौतिकता का युक्ति और तर्क के साथ खंडन करना प्रारम्भ किया है। आप वहां शीघ्र ही एक गीताक्लास भी खोलनेवाले हैं। वहां के पत्रों ने पंडित जी की बड़ी प्रशंसा की है। आपके लेखों को जापानी भाषा में अनुवाद कर के, वहां के पत्र बड़े सम्मान से प्रकाशित कर रहे हैं। जापान का भारत की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है; क्योंकि भारत और जापान का गुरु शिष्य का सम्बन्ध है, पर बात वैसी ही है। गुरु 'गुड़' ही रहा और चेला 'शक्कर' हो गया! आज कल जापान अपना व्यवसाय भारत में खूब बढ़ा रहा है, और भारत के बाजार जापानी माल से भरे हुए दिखाई दे रहे हैं। क्या भारतीयों को जापान से औद्योगिक शिक्षा नहीं लेनी चाहिए? हम समझते हैं कि यदि भारत में अध्यात्म और उद्योग दोनों मिल कर काम करने लगें तो इसकी दशा जल्द सुधर जावे।

३—आर्यसमाज और वर्णव्यवस्था।

जब से कविरत्न पं० अखिलानन्द जी की "वैदिक वर्णव्यवस्था" नामक पुस्तक निकली है तब से आर्यसमाज में 'वर्णव्यवस्था' विषय में बड़ा तहलका मच गया है। यहां तक कि समस्त भारतवर्ष के समाजों की प्रतिनिधि "सार्वदेशिक सभा" को भी उक्त पंडित जी के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने की आवश्यकता हुई। आर्यसमाज में वर्णव्यवस्था पर सम्मति देनेवाले दो दल हैं। एक दल कहता है कि वर्णव्यवस्था सिर्फ गुणकर्म के अनुसार होनी चाहिए, दूसरा दल कहता है कि गुण-कर्म के साथ 'स्वभाव' भी रहता है। अब यह देखना चाहिए कि 'स्वभाव' क्या चीज है। वास्तव में स्वभाव मनुष्य के प्राकृतिक गुणकर्मों का ही परिणाम है। जैसे जिसके प्राकृतिक गुणकर्म होते हैं वैसा ही उसका स्वभाव बनता जाता है। और मरते समय जैसा 'स्वभाव' जो मनुष्य अपने साथ ले जाता है वैसा ही उसका पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म पाकर फिर वह अपने स्वभावानुसार गुण धारण करते हुए कर्म करने लगता है। इसी बात को ध्यान में रख कर श्रीकृष्णभगवान् ने गीता में कहा है:—

> ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
> कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ १८-४१ ।

हे परंतप, अर्थात् शत्रुओं को ताप देनेवाले, अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्म, उनके स्वभावजन्य गुण के अनुसार बँटे रहते हैं। अर्थात् अपने अपने स्वाभाविक गुण के अनुसार मनुष्य कर्म करता है। इससे यह भी जाना जाता है कि स्वभाव का पुनर्जन्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जभी तो गर्भ में आते ही प्राणी अपने मातापिता के स्वभाव को धारण करने लगता है, और पैदा होने के बाद, संस्कृत होकर, अपने अपने स्वभाव के अनुसार, काम करने लगता है। इसी बात को, उपर्युक्त ४१ वें श्लोक के आगे ४२ वें श्लोक में गीता में इस प्रकार बतलाया है:—

> शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
> ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

इत्यादि।

शम, दम, तप, शौच, क्षान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य इत्यादि ब्राह्मण के "स्वभावज कर्म" हैं। सारांश, यही है कि स्वभाव मनुष्य के साथ सदा ही रहता है वह बदल नहीं हो सकता।

४—"[illegible]" का [illegible] मंदिर।

[illegible] में "[illegible]" [illegible] हिन्दी [illegible] है, इसके [illegible] "[illegible]" [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कर रहे हैं। [illegible] के हिन्दी-[illegible] [illegible] हिन्दी में [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] हैं कि [illegible]

किया; परन्तु वास्तव में उन्हें यह समझना चाहिए कि राजा की भाषा ही राज्यभाषा नहीं हो सकती। किन्तु राज्य के निवासी जो भाषा अधिक संख्या में बोलते लिखते होंगे उसी को, प्रजा के सुभीते की दृष्टि से, राज्यभाषा बनानी पड़ेगी। बड़ौदा का ही उदाहरण लीजिए। वहां महाराष्ट्रों की संख्या कम नहीं है; परन्तु राज्य की भाषा गुजराती होने के कारण गुजराती का ही प्रचार राजकाज में किया गया है। सो महाराजा इन्दौर ने हिन्दी का राजकाज में प्रचार कर के पूर्ण न्याय और प्रजाहितैषिता का ही परिचय दिया है। महाराष्ट्र लेखकों को इसका विरोध क्यों करना चाहिए था? जब एक ओर महाराष्ट्र-सम्मेलन के समान संस्था हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा का मान दे रही है; और महाराष्ट्र के 'तिलक' के समान प्रधान राजनीतिज्ञ हिन्दी का आदर करते हैं तब इन्दौर के लेखकों का इस साधारण बात पर "अकांड तांडव" करना कहां तक शोभा देता है? सरस्वती-सम्पादक ने अपने नोट में इस बात का भी उल्लेख किया है कि इन्दौर की मराठी ग्रन्थोत्तेजक कमेटी ने मराठी की २० पुस्तकों पर बहुत थोड़ी थोड़ी तादाद में पुरस्कार दिया है; और इससे जान पड़ता है कि पुस्तकें विशेष महत्व की नहीं हैं, अथवा कमेटी ने कंजूसी की है। इस बात पर भी मार्तंड बिगड़ा है। परन्तु सच तो यह है कि कमेटी ने थोड़े ही रुपये में अधिक ग्रन्थकारों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया है। अन्यथा २० पुस्तकें न चुन कर ७।८ पुस्तकें ही चुनी जातीं और उनके लिए अच्छा पुरस्कार दिया जाता। सरस्वती-सम्पादक ने जो यह लिखा है कि विशेष महत्व की पुस्तक एक नहीं-सो भी ठीक है; क्योंकि विशेष महत्व की, छपी हुई, पुस्तक १००।५० रु० के पुरस्कार के लिए भेजता ही कौन है—सच तो यह है कि विशेष महत्व की (छपी हुई) पुस्तक का मान पहले ही पर्याप्त हो जाता है। हमारी सम्मति में तो काफी पुरस्कार देकर यदि कमेटी भिन्न भिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर योग्य लेखकों से पुस्तकें लिखाया करे तो साहित्य का विशेष उपकार हो सकता है।

५—संस्थाओं का संस्थापन और उनका संचालन।

देश के उद्धार के लिए नाना प्रकार की आन्दोलनकारिणी और कार्यकारिणी संस्थाओं के संस्थापन की आवश्यकता को कौन अस्वीकार करेगा? परन्तु ध्यान में रखना चाहिए कि किसी संस्था का संस्थापन कर देना उतना कठिन नहीं है जितना कि उसका संचालन करना है—किम्बहुना बहुत काल तक संस्था का संचालन करते हुए उसके द्वारा देश को लाभ पहुंचाते रहना ही सच्चे अर्थों में उसका "संस्थापन" कहा जा सकता है। हमारे देश में आजकल प्रायः देखा जाता है कि प्रति दिन अनेक संस्थाएं खुलती हैं; पर उनको विलीन होते भी देर नहीं लगती। कई मनुष्य तो ऐसे हैं कि जिनका जीवन ही संस्थाएं खोलते खोलते बीता है; और जिन्हों ने अपने जीवन में बीसियों संस्थाएं खोलीं; पर चला एक को भी नहीं सके। अब स्वाभाविक ही यह प्रश्न पैदा होता है कि ऐसे लोगों को संस्था संस्थापन में सफलता क्यों नहीं प्राप्त होती—क्यों नहीं वे अपनी संस्थाओं को चिरकाल तक चला कर स्वदेश का उपकार कर सकते हैं? जहां तक हमने सोचा है, इसका कारण चरित्र की हीनता ही है। इस जगह 'चरित्र' शब्द में हम दोही गुणों का समावेश करना चाहते हैं; और वे गुण हैं—स्वार्थत्याग और धैर्य। महात्मा हंसराज का दयानन्द-एंग्लो-वैदिक कॉलेज क्यों एक सफल संस्था है?—महात्मा मुंशीराम का गुरुकुल कैसे चल रहा है—प्रोफेसर कर्वे का महिला-आश्रम क्यों उन्नति कर रहा है—डॉ बुकर वाशिंगटन की शिक्षण-संस्था (हबशियों की) अमेरिका में कैसे सफल हुई—इसकी कुंजी क्या है? बस, यही स्वार्थत्याग और धैर्य। स्वार्थ कई प्रकार का होता है—लोकैषणा, वित्तैषणा, दारैषणा, ये तीन मुख्य स्वार्थों में से हैं—कोई इसी लिए संस्था खोलता है कि हमारा नाम हो जाय, कोई इस लिए खोलता है कि इसी बहाने हमारा खर्च चलेगा, और काम करनेवाले भी कमायेंगे; तथा कोई दारैषणा के अधम स्वार्थ से किसी संस्था को चलाते हैं—काम तो यह है कि जब सब प्रकार के स्वार्थों का त्याग कर के अपने अस्तित्व को संस्था में मिला दे, अपना और संस्था का एकजीव कर दे, अपना तन, मन, धन, स्त्री, पुत्र, सब संस्था ही को अर्पण कर दे—किम्बहुना अपने आप को संस्था में गला दे, तब संस्था सफल हो सकती है। जैसे बीज अपने को गला कर वृक्ष तैयार करता है और फिर उसी वृक्ष के फल तथा साया से संसार सुख पाता है उसी प्रकार महात्मा पुरुष अपने को जब संस्था के रूप में-संस्था की जड़ में-गला देता है तब वह संस्था फलवती होती है और देश को उससे सुख होता है। अब, चरित्र के दूसरे गुण, अर्थात् धैर्य, को लीजिए। मनु ने अपने धर्म के दस लक्षणों में पहला लक्षण यही 'धृति' के नाम से बतलाया है—इसकी भी संस्था-संचालक के लिए बड़ी आवश्यकता है। राजर्षि भर्तृहरि ने धृतिधारी महात्मा का कैसा अच्छा फोटो खींचा है:—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशन्तु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

जिसको अपनी संस्था चलाना है, नीति-निपुण चाहे उसकी [निन्दा] किया करें और चाहे प्रशंसा; धन चाहे उसके पास आवे और आया हुआ भी चला जाय; संस्था चलाते चलाते चाहे प्राण आज ही चले जांय, चाहे युग युग वह जीता रहे—वह प्रण को नहीं छोड़ता-न्याय के मार्ग से अपनी संस्था को [चलाता] ही जाता है। इतना जिसमें धैर्य है, साथ ही जिसमें स्वार्थत्याग [है] उसे फिर संस्था के लिए पैसे का सवाल नहीं रहता; लोग आप आप धन दे जाते हैं। आज कल प्राय देखा जाता है कि सं[स्थाओं] के लिए धन एकत्र करने को उपदेशक या उपदेशिकाओं [की] "आवश्यकता" पड़ती है। यह भारत का दुर्भाग्य है [कि] "उपदेशक" नाम को इस प्रकार कलंकित किया जाता है [उपदे]शक कोई धन एकत्र करने की मशीन नहीं है। संस्थाओं के [संचा]लक यदि चरित्रवान् (स्वार्थत्यागी और धैर्यशाली) होते [तो] धन एकत्र करने के लिए उपदेशक रखने की आवश्यकता नहीं [पड़ती।] संचालकों के चरित्रबल से सहायक आप ही आप तैयार हो [जाते।] इसी प्रकार सब अच्छी संस्थाएं चलती हैं।

साहित्य-चर्चा।

ग्रन्थ-साहित्य।

हिन्दी-गौरव ग्रन्थमाला और उसकी तीन पुस्तकें—हिन्दी साहित्य के [लिए] यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि ग्रन्थप्रकाशन का कार्य उत्साही, साहित्यप्रेमी और कुछ पूंजी रखनेवाले महाशयों ने उ[ठाया] है। ऐसे ही एक महाशय श्रीयुत उदयलाल काशलीवाल ने ब[म्बई] से उपर्युक्त ग्रन्थमाला प्रारम्भ की है। अभी तक जैन साहित्य-सं[सार] में ही आप कार्य करते थे; पर अब आपने हिन्दी-साहित्य के वि[स्तृत] मैदान में पदार्पण किया है, यह आप के लिए और साहित्य के [लिए] भी गौरव का विषय है। उपर्युक्त ग्रन्थमाला के तीन ग्रन्थ प्र[काशकों ने] हमारे पास समालोचनार्थ भेजे हैं:—(१) *आरोग्यदिग्दर्शन*—महा[त्मा] गांधी की पुस्तक का अनुवाद पं० गिरिधर शर्माकृत। पृष्ठ संख्या [...] कागज छपाई अच्छी। मूल्य ॥≈) इस ग्रन्थ का महत्व उसके ले[खक] और अनुवादक की योग्यता पर से ही मालूम हो जाता [है।] महात्मा गान्धी सादे जीवन के पक्षपाती हैं, और यही ऋषि जी[वन] आरोग्यता और आयुर्वृद्धि का कारण है। (२) *कांग्रेस के [पिता] मिस्टर ह्यूम*—सर विलियम वेडरबर्न की एलन आक्टेवियन ह्यूम नाम[क] अँगरेजी पुस्तक का अनुवाद। अनुवादक बा० दयाचन्द गोयली[य] बी० ए० और बा० चिरंजीलाल माथुर बी० ए० मूल्य ।||) यह [ह्यूम] साहब का जीवनचरित्र पढ़ने से भारत के राजनैतिक इतिहास [की] अनेक बातें संक्षिप्ततया मालूम हो जाती हैं। (३) *सफल गृहस्थ*—अँगरेजी के प्रसिद्ध लेखक सर आर्थर हेल्प्स के निबन्धों का अनुवा[द] बा० सूरजचन्द सोधिया बी० ए० एल० टी० कृत। पृष्ठसंख्या [...] मूल्य ॥≈)। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले नवयुवक को, इस पुस्त[क] का मनन करने से और इसके अनुसार आचरण करने से, अप[नी] जीवनयात्रा में सफलता अवश्य प्राप्त हो सकती है। पुस्तकों के मूल्य उनकी पृष्ठसंख्या देखने से कुछ अधिक जान पड़ता है। [पर] उनकी छपाई-सफाई और कागज की वर्तमान महंगी पर ध्यान दे[ते] हुए उचित है। साहित्यप्रेमियों को इस ग्रन्थमाला का आदर कर[ना] चाहिए। ग्रन्थमाला के व्यवस्थापक से, नन्दाबाड़ी, गिरगांव, बम्ब[ई] के पते पर पुस्तकें मिलेंगी।

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो! तेजस्विता दीजिए। देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से। फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से॥

भाग ६] मार्गशीर्ष सं० १९७३ वि०—दिसम्बर स० १९१६ ई० [संख्या १२

नवीन वर्ष का संदेश।

("गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं।" क्या यह ठीक है?)

(लेखक—श्रीयुत बाबू गुलाबराय जी एम० ए०।)

काल भी संसार के अभेद्य रहस्यों में से एक समझा जाता है। दार्शनिकों तथा कवियों ने इसके विषय में अनेकानेक कल्पनायें की हैं। काल क्या है, इसका उत्तर देने में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य सब ही देशों के दार्शनिक विचारों की समालोचना करनी पड़ेगी। इस दुष्कर कार्य को छोड़ कर हमको काल के विभाग की ओर दृष्टि डालना चाहिये और देखना चाहिये कि उस से हमें अपनी उन्नति में सहारा मिलेगा या नहीं। काल के तीन भाग किये गये हैं—भूत, वर्तमान और भविष्य। वर्तमान की स्थिति एक निमेष मात्र भी नहीं रहती। सच्ची क्षणभंगुरता उसी की है। वर्तमान छूते ही उड़ जाता है। जहाँ वर्तमान का ज्ञान हुआ, वहीं वह अनंत भूत काल में जा मिलता है। भविष्यत् भी भूत काल की भांति अनन्त है। इन दो अपार समुद्रों के बीच वर्तमानरूपी एक छोटी सी नहर है जिसके द्वारा भूत और भविष्यत् का योग होता रहता है। भविष्यत् सदा वर्तमान होता रहता है और वर्तमान भूत संज्ञा को प्राप्त होता जाता है। इसी प्रकार काल की गति पीछे को चलती रहती है। यदि इसे मानसिक शब्दों में कहें तो वर्तमान हमारा क्षणिक दृश्य है, भूत हमारी स्मृति है तथा भविष्य हमारी आशा है। हमारी आशायें सदा पूर्ण हो कर स्मृति रूप में परिवर्तित होती रहती हैं।

अहा! काल क्या ही बड़ा भयंकर सर्प है! यह अतृप्त आजन्म भूखा, सदा ही चराचर का भक्षण किया करता है। क्या राजा क्या रंक, क्या पंडित, क्या मूर्ख, क्या देव क्या दानव, इस महा विकराल भुजंगम की प्रज्वलित ज्वाला में सभी भस्म होते आये हैं और होते जायँगे। राजर्षि भर्तृहरि ने क्या ही अच्छा कहा है—

> भ्रात कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्त चक्रं च तत्।
> पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः॥
> उद्रिक्त स च राजपुत्र निवहस्ते बन्दिनस्ताः कथा।
> सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः॥ *

यह सब को खा खा कर अपने खाये हुओं की अस्थियों का ढेर लगाता रहता है। अब यह देखना चाहिये कि क्या इन अस्थियों में पुनर्प्राण-संचार हो सकता है? क्या ये काल-कवल फिर उठ कर चल फिर सकते हैं? हाँ अवश्य। हम कालकवलित खाये हुए जीवों को फिर जीवन प्रदान कर सकते हैं। भूत काल को खींच कर वर्तमान में मिला सकते हैं, एवं वर्तमान का विस्तार, बिन्दु से समुद्र हो सकता है।

यह सजीवन बूटी कौनसी है। वह संजीवनी विद्या इतिहास है। इसके द्वारा हमें बीते हुये काल के लोग बाइस्कोप के चित्रों की भांति चलते फिरते दिखाई देने लग जाते हैं। प्राचीन काल के लोग हम लोगों में हिलमिल कर रहने लग जाते हैं। परोक्ष प्रत्यक्ष की संज्ञा को प्राप्त होता है। देश काल की सीमा ही नहीं रहती और सारा नाटक एक दृश्य में दिखने लगता है।

यह कौन सा इतिहास है जो भूत और वर्तमान की सीमा को तोड़ देता है। यह इतिहास सर्वत्र वर्तमान है। प्रत्येक पुस्तक मनुष्य जाति का इतिहास बतला रही है। प्रत्येक प्राचीन प्रथा भूतकाल को वर्तमान से मिला रही है। भाषा के प्रत्येक शब्द में मनुष्य जाति का इतिहास अंकित है। संसार में जितनी पुस्तकें हैं प्रायः वे सब ऐतिहासिक ही हैं, कारण कि उन्हीं से मनुष्य के ज्ञान-क्रम-विकास का पता चलता है।

इतिहास सब जगह है, पर उसके पढ़ने ही में भेद है। यदि इतिहास को केवल मात्र इसी बात के जानने के लिये पढ़ते हैं कि अमुक काल में कौनसा राजा हुआ और उसने कब तक राज्य किया, तो इतिहास भी भूतकाल को फिर बुलाने में असमर्थ है। बीता हुआ समय फिर किस तरह लौट सकता है? इतिहास के उचित व्यवहार से-जो कुछ हम पढ़ें, उसे हमको वर्तमान के सम्बन्ध में पढ़ना चाहिये। जो लोग केवल बड़े २ आदमियों की क्रमागत नामावली ही याद करने को इतिहास पढ़ना कहते हैं, वे निरे भूत काल का भार ही अपने सिर पर चढ़ा लेते हैं। यदि हम किसी देश के साहित्य का इतिहास पढ़ें तो हम को देखना चाहिये कि अमुक काल में किन २ घटनाओं के कारण उस जाति में अमुक विचारों का आविष्कार हुआ। इसके अतिरिक्त हम को इस पर भी ध्यान देना चाहिये कि किसी काल विशेष में मनुष्य की कौनसी आन्तरिक आवश्यकताओं के कारण अमुक विचारों की उत्पत्ति हुई और फिर उन विचारों से उन आवश्यकताओं की कहां तक पूर्ति हुई। उन आन्तरिक आवश्यकताओं पर विचार करने से ज्ञात हो जायगा कि हमारी वर्तमान आवश्यकतायें बहुत से अंशों में प्राचीन काल की आवश्यकताओं से समानता रखती हैं। अपने पूर्वजों के सुचरित्रों को पढ़ कर किस कठोर से कठोर हृदय वाले के नयन हर्ष से सजल नहीं हो जाते हैं! अपने भावों को प्राचीन पुरुषों के भावों से मिला देना ही भूत काल को पुनर्जीवित करना है।

* कहूं कहे ऐसो सुराज्य भयो बहु भूप अर्पनन आय भरे।
जहं लसी मनोहर राजसभा जिमि चन्द्रमुखीन छटा छहरे॥
'हरिजू' जहं राजकुमार घने गुनि बंदि सुकीरति गान करे।
तिहि काल के काल गये सब ते निहि बारहिं बार प्रनाम करे॥
पं० हरिमोहन सेन उपर्युक्त श्लोक का पद्यानुवाद।

हम को पूर्व पुरुषों का अनुकरण तो करना चाहिये, किन्तु वह अनुकरण स्वाधीनानुवर्ती हो, अन्यथा हम उन लोगों को अपने में पुनर्जीवित न कर सकेंगे। जो लोग प्राचीन लोगों का स्वाधीनता से अनुकरण नहीं करते, वे अपने पूर्वजों के सच्चे उपासक ही नहीं, कारण कि वे केवल उनके मृतशरीर की उपासना करते हैं। आत्मा की उपासना नहीं करते हैं। हम यदि सत्ययुग के लोगों के ऐसे कार्य करें तो अब भी सत्ययुग लौट सकता है। हमको केवल इसी पर संतुष्ट न हो जाना चाहिये कि हमारे पूर्वज ऐसा करते थे, वरन् हमको यह जान लेना भी आवश्यक है कि वे ऐसा क्यों करते थे। उन कारणों के वर्तमान होते हुए हमको भी वैसाही करना चाहिये। देखिये, भारतवर्ष में अब भी कहीं कहीं प्राचीन काल जीवित है, कमी इतनी ही है कि हमारा अनुकरण हमारे स्वतंत्र विचारों का फल नहीं है और इसी से पूरा अनुकरण नहीं हो सकता। जब हम यह जान लें कि किन किन स्थितियों में हमारे पूर्वज थे। क्या काम करते थे और उन स्थितियों के वर्तमान होने पर स्वतंत्र रीति से पूर्वजों के विचारों में सहमत हो कर उन के कामों का अनुकरण करें, तब ही हमारा इतिहास पढ़ना सफल होगा, अन्यथा नहीं, क्योंकि जब तक हम किसी कार्य को, उसके यथेष्ट तत्व को जान कर नहीं करते हैं, तब तक वह 'कार्य' करने ही के योग्य नहीं—वह तो निरा खेल है और जब हम उसके अंग प्रत्यंग जान लेंगे, तो उसके करने में हमें पूर्ण सफलता होगी और तदनुसार हम भूत को वर्तमान बनाने में समर्थ हो सकेंगे। ऐसा अनुकरण करने ही में 'पुत्रो वै आत्मा' यह लोकोक्ति सार्थक हो सकेगी। तब ही हमारे पूर्वज हम में पुनर्जीवित होंगे।

जो काल व्यतीत हो जाता है, वह कदापि नष्ट नहीं होता। यदि अच्छी भांति बीता है तो उसे हम दुहरा कर और भी अच्छा बना सकते हैं और जो बुरी तरह से हाथ से निकल गया है तो फिर उसे लौटा कर अच्छा बना सकते हैं। वर्तमान के सदुपयोग से हाथ गया वक्त फिर हाथ आ जाता है। बीती को बिसारना न चाहिये। हम उसकी भित्ति पर एक बड़ा महल खड़ा कर सकते हैं। जो बीती को बिलकुल बिसार देता है, वह आगे की भी सुधि नहीं ले सकता। यदि हमारा गत जीवन अच्छा है तो भी हम बीती से बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हमारा पिछला जीवन अगले जीवन को बनाता है। जीवनभर में एक अभिन्न सम्बन्ध हुआ करता है। यदि भावी जीवन अच्छा बन जायगा तो सारा जीवन का जीवन भी अच्छा कहलायगा और साथ ही बिगड़ा हुआ गत जीवन भी उन्नत हो जायगा। इसलिये हम को गत जीवन का तिरस्कार न करना चाहिये। यदि अब भी हम सदाचार से रहें तो हम पिछले को सुधार सकते हैं। क्योंकि अभी हमारे इतिहास की इतिश्री नहीं हो गई। उन्नत दशा में सदा अवनत के सुधार की सम्भावना रहती है। जब चीज़ बनकर तैयार हो जाये, तब उसका सुधार कठिन है, पर हमारा तो सदा निर्माण ही होता रहता है, फिर पिछले जीवन के उद्धार में संदेह ही क्या है?

जो हाल व्यष्टि का है वही समष्टि का भी है। जितना अंश हमारे जातीय इतिहास का प्रशंसनीय है उसे हम अपने सुकर्मों से और भी प्रशस्य बना सकते हैं। यदि वह किन्हीं कारणों से कलुषित है तो वह उज्वल भी हो सकता है। दोनों ही अवस्थाओं में गत काल हमारे लिये नष्ट नहीं हो जाता। यह हमारे हाथ में है कि बुरे को अच्छा और अच्छे को और भी अच्छा बना लें।

जो लोग काल को खोया हुआ समझ कर नैराश्य समुद्र में डूब जाते हैं उनका कहीं ठिकाना नहीं रहता। काल का नाश नहीं होता। पुरुषार्थहीन पुरुष व्यतीत काल से लाभ नहीं उठा सकते। पर पुरुषार्थियों के लिये भूतकाल ही उद्धार की आशा है। पुरुषार्थ की बड़ी महिमा है। पुरुषार्थ ही से "गया वक्त फिर हाथ आ जाता है।"

पाठक और बालचन्द्र की, झरिया [बंगाल] की, कोयले की नवीन खान।

खान खोलने समय के उत्सव का चित्र।
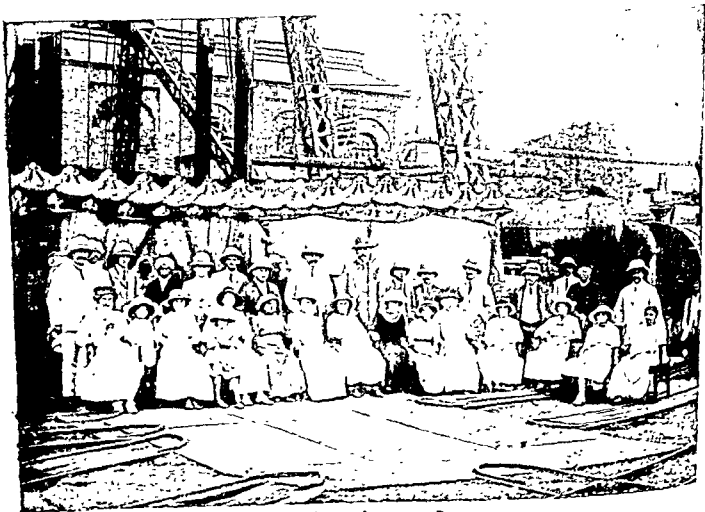
मधु-मक्षिका।

(श्रीयुत ज्ञानेन्द्रमोहन दत्त के बंगाली लेख का अनुवाद।)
(गत अंक से आगे समाप्त।)

दासी-मक्षिकाएं सदैव काम करती रहती हैं। शहद इकट्ठा करना, छत्ता तैयार कर के सब प्रकार से उसकी खबरदारी रखना; इस भय से कि कोई शत्रु छत्ते पर चढ़ाई न कर दे, सदैव उसके आस-पास पहरा देते रहना और रानी मक्षिका की हर घड़ी, हर प्रकार की, सेवा करना, इत्यादि सारे कार्य दासी-मक्षिका के ही हैं। सूर्योदय नहीं होने पाता कि वे बाहर निकल पड़ती हैं। फिर फूलों से रस चूस ला कर छत्ते में रखती हैं और थोड़ी देर छत्ते के आसपास पहरा दे कर फिर शहद लेने चली जाती हैं। वे शहद लाने के लिए छत्ते से लगभग एक कोस दूर चली जाती हैं, और इसी बीच में यदि कोई संकट छत्ते पर आ जाता है तो छत्ते में रही हुई दासी-मक्षिकाएं तुरन्त वहां से उड़ कर, बाहर शहद के लिए निकली हुई अपनी सहचारियों को, उस संकट की खबर लगाती हैं; और फिर वे सब मक्षिकाएं, क्रोध से भरी हुई, वहां से एकदम दौड़ते आकर अपने शत्रु पर टूट पड़ती हैं। दासी-मक्खियों की उम्र लगभग छै मास की होती है। यह हम बतला ही चुके हैं कि ये मक्खियां होती तो मादी ही हैं; पर इनके सन्तति नहीं होती। ये छत्ते की रक्षा करती हुई पहरा देती रहती हैं, और आक्रमणकारी शत्रु को देख कर के उसे दूर भगा देती हैं। इनके मुंह में तीक्ष्ण सिरे की एक थैली सी रहती है, उसमें विषाक्त बाण होते हैं। मक्खी मनुष्य को काटती क्या है, वही विषाक्त बाण शरीर में प्रविष्ट कर के भग जाती है। इस बाण के घुसते ही मनुष्य के शरीर में वेदना होती है; और यदि धीरे से उस बाण को निकाल डाला जाय तो वेदना भी तुरन्त बन्द हो जाती है, और यदि दंश करते समय स्वयं मक्खी की ही वह विषाक्तबाणपूर्ण थैली टूट जाय तो वह भी जीती नहीं रह सकती।

साधारणतया मध्यम आकार के छत्ते में दासी मक्खियों की संख्या बीस हजार से कम नहीं होती। दासी मक्खियों की उम्र कम होती है, इसका कारण यही जान पड़ता है कि उनको काम बहुत करना पड़ता है।

पुंमक्षिका दासीमक्षिका से कुछ बड़ी होती है। उसका कीड़ा भी बड़ा ही होता है। पुंमक्षिका सदैव छत्ते में नहीं दिखाई देती। केवल रानी मक्षिका को जब आवश्यकता होती है तभी पुंमक्षिका की उत्पत्ति की जाती है। एक छत्ते में समय पर पांच छै नर भी दिखाई नहीं देते। नर मक्षिका की उम्र साधारणतया दो महीने तक होती है। रानी के तईं गर्भसम्भव करने के अतिरिक्त चूंकि नर का कोई कार्य नहीं रहता; अथवा अपने आहार का भी वह कुछ प्रबन्ध नहीं करता, इस कारण दासीमक्षिका, रानी के गर्भवती होते ही, नरमक्षिका के पंख नोच कर उसको बहुत तंग किया करती है! इसी कारण नर जल्दी मर जाता है! कई बार देखा गया है कि दासी मक्षिका उसे जान से भी मार डालती है!

नरमक्षिका यहां तक निकम्मी होती है कि वह दंश भी नहीं कर सकती। उसका जन्म यदि दासी के घर में होता है तो वह आकार में भी छोटी होती है। इसलिए छत्ते में उसके अंडे को स्वतंत्र स्थान दिया जाता है। तीन दिन में अंडा फूट कर उससे कीड़ा निकलता है। उसे पुष्ट करने के लिए दासीमक्षिकाएं, बड़ी सावधानी से, उसे राजा की कोठरी में ले जाती हैं। वहां ले जाने पर उसे पुष्टिकारक भोजन दिया जाता है। पुत्तलिकास्वरूप प्राप्त हो जाने पर, करीब तेरह दिन में, वह पूर्णावयव धारण कर के छत्ते से बाहर निकल आता है।

पालतू मधुमक्खियों के छत्ते में शहद के होने न होने की जांच।

R छावनी, B बच्चियों का घर, F मक्षिकाओं के बैठने का बरामदा।

छत्ते के ऊपरी भाग में शहद और नीचे के भाग में अंडे अथवा छोटी मक्खियां रहती हैं। छत्ते के ऊपर के सब छिद्र शहद से अच्छी तरह भर कर उनके मुंह पर मोम चिपका देती हैं। अवसर के अनुसार यह मोम निकाल कर मधु मक्खियां उस शहद का सेवन भी करती हैं।

रानीमक्षिका प्रत्येक घर में एक एक अंडा डालती है। कुछ दिनों बाद अंडे फूट कर उनसे कीड़े निकलते हैं। छत्ते में जो कुछ छोटी छोटी मक्खियां होती हैं, अर्थात् जो उड़ नहीं सकतीं वे, भांडार से खाद्य पदार्थ लेकर उन कीड़ों को खिलाती हैं। इसके बाद वे कीड़े योग्य समय पर अपने अपने घरों में अपनी [illegible] से पुत्तली-स्वरूप धारण करते हैं। [illegible] समय ही दासी मक्षिकाएं उनके घरों के द्वार मोम से बन्द कर देती हैं। कुछ दिनों बाद इस स्थिति से वे कीड़े मक्षिकारूप धारण कर के द्वार फोड़ कर बाहर निकल पड़ते हैं। इसके बाद वे मक्षिकाएं पांच छै दिनों में छत्ते से बाहर निकल कर अपने काम में लगते हैं। सब अंडे एक ही आकार के होते हैं। रानी और नर के कीड़े दासी-मक्षिका की अपेक्षा बड़े होते हैं। रानी की कोठरी [illegible] और नर की [illegible] होती हैं। इससे नर और मादी का भेद जाना जाता है।

बीच के भाग में नीचे की ओर एक छिद्र रहता है। इसी छिद्र से मक्खियां भीतर बाहर आती जाती रहती हैं। ऊपर का भाग, जो छप्परसा होता है, उसे निकालने पर भीतर की मक्खियां सहज ही दिखाई देती हैं। बीच का भाग उठा कर यदि देखा जाय तो सब से निचले भाग पर मक्खियों का मलमूत्र पड़ा हुआ दिखाई देता है। इसको साफ़ करते रहते हैं।

अब इस पेटी का परिमाण बतलाना चाहिए। सब से नीचे की चौकी नौ इंच ऊंची, १७½ इञ्च लम्बी और १४½ इंच चौड़ी होती है। चौकी के पैर सरल होते हैं। प्रत्येक पाये के नीचे पानी भरे हुए बर्तन रखते हैं। इससे छत्ते में चींटियों का संसर्ग नहीं होने पाता। इस चौकी की लम्बाई की ओर मक्खियों के आने-जाने का मार्ग रहता है। इस द्वार के आगे छज्जे की तरह एक तख्ता लगा रहता है। इस पर आ कर मधुमक्खियां विश्राम लेती हैं, अथवा यहीं से छत्ते पर पहरा देती हैं। इस तख्ते पर पास ही मधुमक्खियों को भीतर-बाहर करने के लिए पेटिका में मुख रखा जाता है।

बीच का भाग इस उत्तमता से बनाया जाता है कि जिससे चौकी पर सहज ही जोड़ा जा सके। उसके चारों ओर की लकड़ी ½ इंच मोटी और भीतर का घेरा १५×१५ इंच होता है। इस पेटिका की चौड़ाई की ओर दोनों बाजुओं के भीतरी भाग ८⅜ इंच उँचाई की तख्तियां लगी रहती हैं। इन तख्तियों की चौड़ाई इतनी होती है कि पेटिका की तख्तियां लगा कर १०½ इञ्च जगह निकल आती है। इस पेटी के बाहर की ओर नीचे एक एक टुकड़ा ऐसा लगा रहता है कि वह भाग नीचे के भाग पर सहज ही जम जाता है। इस भाग में नीचे छिद्र होता है। इससे मक्खियां भीतर-बाहर सहज ही आ-जा सकती हैं।

सब से बाहरी भाग बाहर से १७½ इञ्च लम्बा और १४½ इंच चौड़ा होता है। उनके बीच की उँचाई ६½ इंच और बाजू की ५½ इंच होती है। उनके ऊपर दो बाजुओं में टीन के पत्रों का छप्पर के समान आच्छादन पड़ा रहता है। इस कारण पेटी में पानी जाने का बिलकुल डर नहीं रहता। ऊपर का भाग नीचे के भाग पर ठीक ठीक बैठ जाने के लिए उस भाग में कुछ कील रखते हैं।

चौखटों के ऊपर के किनारे १७ इंच लम्बे और नीचे के किनारे १४ इञ्च लम्बे रहते हैं। ऊपर के किनारों के ऊपरी भाग से नीचे के किनारों के निचले भाग तक उनकी चौड़ाई ८½ इंच होती है। चौखट के किनारे ⅞×½ इंच मोटे रहते हैं।

ये चौखटें पेटी के भीतरी भाग के तख्तों पर खुली रखी जा सकती हैं। प्रत्येक चौखट में ऐसा समान्तर रखा जाता है कि पन्द्रह इंच में दस चौखटें आ जाती हैं।

पेटी और चौखटों की लकड़ी बिलकुल नरम होती है। गीली लकड़ी का उपयोग करने से चौखटों और पेटियों के तख्ते टेढ़े हो जाते हैं। देवदारु की पेटियां बनाई जा सकती हैं; और चौखटें शीशम अथवा अन्य किसी मज़बूत लकड़ी की बनानी चाहिएं।

पेटियों की बनावट इत्यादि बतलाई गई, अब यह बतलाना चाहिए कि मधुमक्खियों को किस प्रकार लाना चाहिए। विलायत से अथवा पूसा कालेज से यदि मधुमक्खियां मोल लाई जावें तो वे पेटी के साथ ही आती हैं और इस कारण उनके पालने में विशेष अड़चन नहीं आती। तथापि, यह जानना आवश्यक है कि यदि बिलकुल ही नवीन मक्खियों को पेटी में लाना हो तो क्या उपाय करना चाहिए।

पौष-माघ अथवा फाल्गुन मास में वृक्षों के नीचे अथवा बाग़ में पेटियां रख देने से बहुधा मधुमक्खियां आप ही आप उन पेटियों में छत्ते रखने लगती हैं। पेटी में नौ चौखटें रख कर उनके पीछे की ओर एक तख्ता पतला सा लगाना चाहिए। यह सिर्फ़ इसी लिए कि जिससे मक्खियां चौखट के बाहर छत्ता न बना सकें। चौखट के ऊपर की ओर, किनारे पर, मोम अथवा मोम का कृत्रिम छत्ता बनाना पड़ता है। कृत्रिम छत्ता तैयार करने का यंत्र मोल मिलता है। बीच बीच में यह देखते रहना पड़ता है कि मधुमक्खियां पेटी में छत्ता बनाती हैं या नहीं। मोम अथवा कृत्रिम छत्ता यदि चौखट पर होता है तो मधुमक्खियां उस मोम पर ही छत्ता तैयार करने लगती हैं। छत्ता रख देने के बाद चौखट पर आइलक्लाथ अथवा कोई न कोई गरम कपड़ा बिछाना पड़ता है। इस कपड़े से दो काम होते हैं। एक तो मधुमक्खियों का छत्ता गरम रहता है और दूसरे ऊपर के भाग में छत्ता नहीं बना सकतीं।

मक्खियां पकड़ने की दूसरी रीति यह है कि माघ मास से लेकर वैशाख मास के बीच तक किसी समय में भी मधुमक्खियों के समूह को पकड़ कर पेटी में बन्द कर लेना चाहिए। मक्खियों को पेटी में रखने पर कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मक्खियां पेटी से बाहर निकल कर किसी वृक्ष की डाल पर जा बैठती हैं। परन्तु वहां भी वे छत्ता नहीं बनातीं। ऐसे समय में वृक्ष की डाल पर एक लकड़ी का चौकोना खोका रख देना चाहिए। इसके बाद, डाली के जिस भाग पर मक्खियां बैठी हों वहां थोड़ा सा हलका धुआं दे देने से मक्खियां उड़ कर उस खोके में जा बैठती हैं। जब सब मक्खियां खोके में चली जावें तब खोके के मुहँ पर एक कपड़ा डाल कर मक्खियों सहित यह खोका, छत्ते के लिए तैयार की हुई पेटी पर, ला कर रख देना चाहिए। इसके बाद उस खोके का द्वार खोल कर मक्खियों पर धीरे धीरे शक्कर का रस छोड़ना चाहिए। ऐसा करने से मक्खियां वह रस चाटने लगती हैं और फिर वे भगने का प्रयत्न बिलकुल नहीं करतीं। तथा वे पेटी में घुस कर वहीं अपना छत्ता बनाना आरम्भ करती हैं।

मधुमक्खियां पकड़ कर लाने की तीसरी रीति यह है कि मक्खियों को छत्ते सहित लाकर पेटी में रखें। बाद को अकसर देखा जाता है कि वे पेटी में कहीं न कहीं छत्ता तैयार करती हैं उस जगह पर से मक्खियों को उड़ाने का प्रयत्न करने के पहले छत्ते पर अथवा पास के भाग पर लकड़ी का खोका अथवा कपड़े की थैली इस प्रकार लगावे कि छत्ते के पास थोड़ा सा ही धुआं लगाने से मक्खियां कहीं न कहीं ऊपर के भाग में आश्रय लेने के लिए उड़ जावें। मक्खियां उपर्युक्त खोके में बड़ी चतुरता से लाई जाती हैं। उस जगह उन्हें बन्द कर लेने के बाद, उनका वह पहले का छत्ता धीरे धीरे छुरी से काट डालना चाहिए। इसके बाद छत्ते का एक एक भाग चौखट में चिपकाना चाहिए। किंचित् अग्नि की आंच देने पर छत्ते के भाग जब पिघल जाते हैं तब मोम की सहायता से वे चौखट में अच्छी तरह चिपकाये जा सकते हैं। इस प्रकार सब भाग चौखट में चिपक जाने पर, उन चौखटों को पेटी में लगाना चाहिए और फिर उन मक्खियों को, जो कि एक भाग में बन्द कर दी गई थीं, धीरे धीरे छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से वे छत्ते का आश्रय ले लेती हैं। एक बार छत्ते में लग जाने पर फिर उनके भाग जाने का बिलकुल ही डर नहीं रहता। यह सब रात्रि में ही करने से ठीक होता है। क्योंकि उस समय सभी मक्खियां छत्ते में रहती हैं। दिन में करने से बहुतसी मक्खियां स्थानभ्रष्ट होने के कारण मर जाती हैं।

पीछे बतलाया जा चुका है कि छत्ते की ¾ (पद तृतीयांश) मक्खियां छत्ते को छोड़ कर बाहर शहद इत्यादि अथवा अन्य उपयोगी सामग्री एकत्र करने के लिए चली जाती हैं। मक्खियों का यह नियम है कि वे जिस स्थान से दूर जाती हैं उसी स्थान में फिर बिनचूक लौट आती हैं। वे बाहर से लौट आकर यदि अपना स्थान ठीक दशा में नहीं पातीं—अर्थात् उसे भ्रष्ट अथवा टूटा-फूटा हुआ या बदला हुआ पाती हैं तो वे तुरन्त ही मर कर गिर पड़ती हैं। रात के समय सभी मक्खियां छत्ते में ही बसेरा लेती हैं। ऐसे समय में छत्ते का स्थान बदलने में अथवा उनका मार्ग भिन्न करने में सुभीता रहता है। इस रीति से यदि एक स्थान से दूसरे स्थान को छत्ता ले जाना हो तो प्रति दिन दो तीन फ़ीट उसे हटाना चाहिए।

विलायत से अब जहाज़ में रख कर मक्खियों की पेटियां आती होती हैं तब पेटियों का द्वार बन्द कर रखना पड़ता है। इससे मक्खियां भग नहीं सकतीं। परन्तु जब जहाज़ को किसी बन्दर पर दो तीन दिन मुकाम करना पड़ता है तब समुद्र तीर पर उन पेटियों को रख कर उनके मुँह खोलने पड़ते हैं। मुँह खोलते ही मक्खियां बाहर निकल पड़ती हैं और खाद्य-द्रव्य ढूँढ़ने के लिए दूर दूर तक चली जाती हैं। और सायंकाल को फिर अपने छत्तों का आश्रय लेने के लिए बिनचूक वहां लौट आती हैं। इनके लौट आने पर पेटियों के द्वार बन्द कर के फिर उन्हें जहाज़ में रख देते हैं।

एक बार रानी मक्खी को पकड़ रखने से फिर उसके दल की मक्खियां उसे कभी नहीं छोड़तीं। इस कारण रानी को हस्तगत

में रखने के लिए छत्ते के आसपास तार की जालियों का वेष्टन लगाते हैं। परन्तु तार की जालियों के छिद्र ऐसे होते हैं कि अन्य मक्खियां उनसे सहज ही आ जा सकती हैं। रानी का शरीर अन्य मक्खियों से बड़ा होता है, इस कारण वही सिर्फ आ जा नहीं सकती।

धुएं की सहायता से यदि मक्खियों को एक जगह से दूसरी जगह हटाने का काम पड़े तो चिंधियों का ढेर लगा कर, उसे जला कर, उसके धुएं से यह काम सहज में हो जाता है। थोड़े से कारबोलिक एसिड से भीगी हुई चिंधी के द्वारा उस एसिड का गंध मक्खियों को देने से वे जगह छोड़ देती हैं। ऐसे ही उपायों से मक्खियों को हटा कर ऊपर के भाग में उन्हें बन्द कर सकते हैं।

जब छत्ते और मक्खियों को दूसरी जगह ले जाना होता है तब उसके पहले ही सात आठ दिन उसी जगह छत्ते की पेटी रखनी होती है। उस पेटी का द्वार भी छत्तों की ओर ही कर के रखना आवश्यक होता है। ऐसा न करने से पूर्वस्मृति के कारण, अनेक मक्खियां पहले के स्थान के आसपास भटकती हुई मर कर गिर पड़ती हैं।

पाठक कदाचित् यहां पर यह प्रश्न करेंगे कि छत्ते के ले जाने का वृत्तान्त तो बतलाया; परन्तु ले कौन जायगा? क्योंकि मनुष्य को मक्खियों के काटने का भय तो बना ही रहता है। परन्तु बात यह है कि, मधुमक्खियों पर प्रेम करते रहने से धीरे धीरे आप ही आप मालूम हो जाता है कि दूसरे का प्रेम अथवा शत्रुता सर्वथैव अपने ही मन पर अवलम्बित रहता है। मधुमक्खियों के छत्तों को आज बहुत से लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। ऐसी पेटियों से, जिनमें छत्ते रक्खे होते हैं, मक्खियों को हटा कर पेटियां साफ करते हैं। परन्तु यह सब करते समय लोगों के मन में मक्खियों के विषय में डर बिलकुल ही नहीं होता—किम्बहुना उन पर बड़ा प्रेम होता है—अर्थात् सदैव उनके ध्यान में यही रहता है कि ये मक्खियां हमारी पालतू हैं। सारांश यही है कि मक्खियों को किसी प्रकार का भी कष्ट देने की भावना ही जब मन में नहीं आती तब कोई कारण नहीं है कि मक्खियां उनको काटें। परन्तु यदि कोई व्यर्थ ही मक्खियों से डर कर उनके प्रतीकार करने का प्रयत्न करता है तो वे अवश्य आक्रमण करती हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि कोई मक्खी सहज ही मनुष्य के शरीर की ओर आती है और मनुष्य, यह समझ कर कि वह काटने के लिए आती है, उसे मारने का प्रयत्न करता है—ऐसी दशा में मक्खियां समझती हैं कि यह हमारा शत्रु ही है और फिर वे तत्काल उसे दंश करने लगती हैं, कितने ही बार वे अपनी मक्खियों की सेना ले कर उस पर टूट पड़ती हैं। लोग कहते हैं कि जो डरता है उसी को, भूत पीड़ा करता है सो बिलकुल सच है। भय को हृदय से निकाल कर उसकी जगह प्रेम को स्थापित करना चाहिये—फिर कोई विघ्न बाधा नहीं आती—शत्रु भी मित्र हो जाते हैं! यह अनुभव की बात है!!

अस्तु, मक्खियों के दंश से बचने के लिए उपाय भी अनेक हैं। पैरों में पतलून, शरीर में कोट, सिर में टोपी, और टोपी पर से जाला छोड़ कर उसे गले में बांधने से, फिर मक्खियां दंश नहीं कर सकतीं। उनके साथ व्यवहार करते समय हाथों में दस्ताने भी पहन जा सकते हैं। इस प्रकार पहनावा पहन कर फिर मनुष्य आनन्दपूर्वक उनके साथ व्यवहार कर सकता है। कोट-पतलून यदि न हों तो जिन कपड़ों से शरीर ढक जाये उन्हीं को पहनने से काम चल सकता है। महुए के तेल में तुलसी का रस मिला कर शरीर में लगा लेने से फिर मक्खियां बिलकुल पास नहीं आतीं। तुलसी की पत्तियां पचा कर मक्खियों पर छिड़कने से वे दूर भग जाती हैं। धुएं से भी वे दूर हट जाती हैं सो ऊपर बतला ही चुके हैं। धुआं देने का एक लाभ मिलता है। कोई शब्द सुन कर, एकदम अपने छत्ते की ओर किसी को आता हुआ देख कर, अथवा किसी मरी हुई मक्खी की बास पा कर मधुमक्खियां काटने के लिए प्रवृत्त हुआ करती हैं। धीरे धीरे पीछे की ओर से यदि छत्ते के पास जायें तो मनुष्य को वे किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं देतीं। एक बात और भी है कि जिस समय मक्खियां मदमस्त हो कर अथवा भय के कारण 'भन् भन्' आवाज करती रहती हैं, ऐसे समय में उनके

पेटी की मधुमक्खियों के छत्ते के पास धुएं के ले जाने से वे
के भाग में चली जाती हैं। वे छत्ते के निचले भाग में बिलकुल
जातीं। यदि वे नीचे आ बैठें तो फिर कुछ डर नहीं रहता।
ज्यों ही मालूम होता है कि हमारा संकट अब टल गया त्यों
फिर पूर्ववत् ऊपर आ जाती हैं। छत्ता टूट जाने पर वे फिर
छत्ता बनाती हैं।

वर्षा काल में छत्तों की पेटियां पानी में रखनी पड़ती हैं। इ
कारण यह है कि उस काल में Wax moth नामक एक कीड़ा
को हानि पहुँचाया करता है। यह कीड़ा छत्तों का बड़ा भय
शत्रु है। यह एक बार जहां छत्तों में लगा कि फिर उनका
किये बिना नहीं छोड़ता। यह धीरे धीरे सारा छत्ता खा डा
है। एक प्रकार का पतंग रात के समय गुप्त रीति से छत्तों में
कर अंडे देता है। उन अंडों से यह कीड़ा उत्पन्न होता है।
कीड़े से फिर पतंग बन जाता है। यही इस कीड़े का इतिहास
इसी की हानि से बचने के लिए छत्ते की पेटी को पानी में रख
पड़ता है। पेटी भी सदैव अत्यन्त स्वच्छ रखनी चाहिए। साधार
तया, मक्खियां जहां प्रायः अपने छत्ते तैयार करती हैं वहां
कीड़ा जा नहीं सकता।

छत्तों से शहद निकालने का भी एक यंत्र होता है। इस यंत्र
द्वारा शहद निकालने से छत्ता और उसके भीतर के अंडे नष्ट न
होते। चौखट के सहित छत्ता पेटी से निकाल कर उसके अंडों
एक कपड़े का टुकड़ा डाल कर, शहद रहने वाले भाग के अ
मुख पर बारीक छिद्र कर दिये जाते हैं। इसके बाद वह चौख
एक चपटी टीन की पेटी में, शहद के संग्रह के मुख नीचे की
कर के रखी जाती है। यह चौखट इस रीति से रखी जाती है।
टीन की पेटी ज़ोर से फिराने पर केन्द्रातिग गति से (Centrifug
force) छत्ते का शहद बाहर निकल कर पेटी में गिरने लगता है
सारा शहद निकल आने पर चौखट बाहर निकालते हैं और उ
पर से कपड़े का आवरण अलग कर के उसे फिर पूर्ववत् पेटी
रख देते हैं। इसके बाद मधुमक्खियां फिर उस छत्ते पर आ
पूर्ववत् मधुसंग्रह करने लगती हैं। ऐसे समय में उन्हें शक्कर
पानी में मैदा मिला कर देने से अच्छा होता है।

भिन्न भिन्न स्थानों से, विलायत से और पूसा कालेज से, मधु
छत्ते मोल लाने से उनकी संख्या सहज ही बढ़ने लगती है। इस
बाद क्रमशः मधुमक्खियों के व्यापार के विषय में जानकारी
बढ़ते जाती है। छत्ते में नवीन रानी उत्पन्न करना, उसके द्वार
नवीन छत्ता तैयार कराना, इस प्रकार नवीन नवीन छत्तों की संख्या
बढ़ाना—इत्यादि सभी बातें, उपर्युक्त रीति से मधुमक्खियों के पालन
से, मालूम होती रहती हैं। सूक्ष्म रीति से, होशियारी के साथ
इस व्यवसाय का प्रयोग करने से उसमें स्वयं आनन्द आने लगता
है और मधुमक्खियां पालने की कला अवगत हो जाती है।

अब अन्त में, मधुमक्खियों के दंश करने पर क्या उपाय करना
चाहिए—सो भी बतला देने से अच्छा होगा। हम इस लेख में
ऊपर बतला चुके हैं कि मधुमक्खियां काटते समय अपना डंक
मनुष्य के शरीर में गोंप देती हैं और प्रायः वह डंक शरीर में टूट
रहता है और इसी कारण वेदना हुआ करती है इस पर उपाय
यह है कि यदि डंक टूट रहे तो उसे होशियारी से निकाल डालना
चाहिए और उस जगह पर बेंज़िन (Benzene) अथवा लिक
अमोनिया (Liquid ammonia) अथवा टिंक्चर
टिंक्चरलेडम (Tinc Leadum) लगाने से वेदना दूर हो
जाती है। यदि बहुत अधिक दाह होती हो तो गरम पानी में
सेकने से आराम मालूम होता है। परन्तु जिन्हें कई बार मक्खी का
लेती है उन्हें फिर कष्ट भी नहीं मालूम होता।

मधुमक्खियों के विषय में यदि विशेष जानना हो तो Supdt.
Entomological Department pusa Institute से पूछ कर
मालूम हो सकता है। कीटतत्व-विभाग के सरकारी ... बन्द
बन्द पावरलीन, पूसा कालेज की Bulletin No. 16 ...
10; अथवा Land Obacus और Indian ... Dairy
Farm नामक पुस्तकों में मधुमक्खी-पालन के विषय में भी ...
दिया हुआ है उसे पढ़ना चाहिये। इससे, इस व्यवसाय की ...
रखने वालों को बहुत ही लाभ होगा।

अन्त में सहकारिता ने हाथ लगाया।

(लेखक—श्री० कृष्णाजी गोविन्द तिरे।)

ज्ञान से बद्धता अथवा परतन्त्रता नष्ट होकर मोक्ष अथवा स्वतंत्रता की प्राप्ति होती है। पर ज्ञान प्राप्त होने का सच्चा साधन कौन है? आत्मसंशोधन। जीव का मूल स्वरूप, उसकी वर्तमान दशा और उसकी उन्नति के मार्ग में विघ्न, इत्यादि बातों का खुलासा विवेक पूर्वक आत्मसंशोधन किये बिना नहीं हो सकता। जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा फल मिलता है। सुख अथवा दुःख की प्राप्ति मनुष्य के कर्म पर अवलम्बित रहती है। जो कोई यह समझता है कि हमको कोई दूसरा सुख या दुःख देता है वह भ्रम में है। अपना उद्धार अथवा अधोगति अपने हाथ में है। मनुष्य अपना शत्रु आपही और अपना मित्र भी आपही है।

उपर्युक्त सब सिद्धान्त वेदान्तशास्त्र के हैं; परन्तु नित्य के व्यवहार में भी इन्हीं का उपयोग होता रहता है। अपनी अवनति अथवा दुःख का खप्पर दूसरों के मत्थे फोड़ कर स्वयं अलग हो जाने की आत्मघातकी प्रवृत्ति जब मनुष्य में आने लगती है तब उसकी अधोगति होने देर नहीं लगती। इसलिए आत्मसंशोधन के द्वारा अपने दोषों को पहचान कर उन्हें दूर करने के लिए पूरा पूरा प्रयत्न करना ही उन्नति का सच्चा मार्ग है। हम में जो अच्छाई है उसे स्थिर रख कर जब तक हम दूसरों के उत्तम गुणों को ग्रहण करने के लिए तैयार न होंगे तब तक हमारी उन्नति होना कठिन है। निरुद्योगी, स्वाभिमानशून्य और केवल भाग्य-भरोसे बैठे रहनेवाले लोग जगत् की वर्तमान प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकते। ऐसे लोग नामशेष हो जायँगे अथवा कभी नाश न होने वाली पराधीनता के पंक में पड़े सड़ते रहेंगे। आलसी और निरुद्योगी पुरुष न स्वार्थ सिद्ध कर सकता है और न परमार्थ, क्योंकि परमार्थ का मार्ग तो स्वार्थ से भी कठिन है और उसमें स्वार्थ-साधन से भी अधिक परिश्रम तथा धैर्य की आवश्यकता होती है। जो यह कहता है कि "ऐसी हरि-इच्छा होगी वही होगा" वह अपना आप ही घात करता है। सच तो यह है कि मनुष्य अपने भाग्य का आप ही मालिक है। परमात्मा तो उसके शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा या साक्षी है और जो जैसा करता है उसे, अपने न्याय से, वैसा ही फल देता है। हाँ, जो उसके न्याय पर सदैव पूर्ण विश्वास रखते हुए, कार्य के फलाफल का भार उस पर रखते हुए, सदैव उद्योग करता रहता है, उसको परमेश्वर का सहारा अवश्य रहता है।

तात्पर्य यही है कि हमको यदि अपनी उन्नति करना है तो अपनी आप आलोचना करते हुए, अपने दोषों को दूर करने का प्रारम्भ कर देना चाहिए। आज हम में जो हजारों दोष वास कर रहे हैं उन्हीं के कारण आज हम जीवित हो कर भी मृततुल्य हो रहे हैं। बात यह है कि सद्गुणों का तेज ही कुछ ऐसा होता है कि उनकी ओर तिरछी नजर से देखने का किसी को साहस नहीं हो सकता। अत एव उन सद्गुणों को अपने अन्दर लाने का प्रयत्न हमको करना चाहिए। अपने प्राचीन राष्ट्रीय गुण जिस प्रकार हमें अपने अन्दर लाना चाहिए उसी प्रकार समयानुकूल हमारी उन्नति में सहायता देनेवाले जो अन्य राष्ट्रों के वर्तमान गुण हैं उनको भी एकदम स्वीकार करना चाहिए। अन्यथा काम नहीं चल सकता।

अन्य राष्ट्रों में अनेक अनुकरणीय गुण हैं। विचारपूर्वक अवलोकन करने से वे सहज ही मालूम हो सकते हैं। उनमें से आज हम एक गुण के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं। अस्तु।

आज जो राष्ट्र वैभवशाली दिखाई देते हैं उनको उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में जो अनेक गुण कारणीभूत हुए हैं उनमें से सहकारिता का गुण मुख्य है। जो कार्य किसी भी एक व्यक्ति के हाथ से नहीं हो सकता उसको अनेक व्यक्ति एक साथ मिल कर करते हैं—बस इसी का नाम सहकारिता है। उद्योगधंधे और व्यापार में आज स्वतन्त्र राष्ट्र जो इतने बढ़ रहे हैं सो सिर्फ सहकारिता के ही बल पर। कहते हैं कि पारस पत्थर सिर्फ लोहे को सोना बनाता है; पर सहकारिता एक ऐसा पारस-पत्थर है कि इसका स्पर्श मिट्टी को भी सोना बना सकता है। इस तत्व की कीमत अभी हम लोगों को बिलकुल ही नहीं मालूम है और इसी कारण हम लोगों को अनेक कार्यों में सफलता प्राप्त नहीं होती। आज कल हमारे देश में सहयोगी-कोठियों का बहुत प्रचार हो रहा है। अल्प काल में ही इस विषय में हम लोगों ने जो उन्नति की है उसे देख कर यूबैंक साहब ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में, जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है, बहुत आश्चर्य और सन्तोष प्रकट किया है। निस्सन्देह यह बात हमारे लिए अत्यन्त उत्साहजनक है। ऐसी दशा में आज यदि हम इस विषय में कुछ लिखें कि सहकारिता से एक गाँव का कैसा उपकार हुआ तो इससे हमारे देश की सहकारी हलचल को अवश्य ही कुछ उत्तेजना मिलेगी। इसी आशा से यह वृत्तान्त इस मास के चित्रमयजगत् में दिया जाता है।

लगभग १७ वर्ष की बात है। अमेरिका की वाशिंगटन रियासत में टाकोमा नामक एक शहर है। वहाँ की एक कोठी पर एक मुनीम था। मुनीमत का वेतन प्रायः अधिक नहीं होता! और वेतनवृद्धि की आशा भी तभी है जब कोई ऊपर का मुनीम मरे! ऐसी दशा में नौकरी से उसे कुछ सन्तोष नहीं होता था। वहाँ से सात आठ मील पर प्यालप नामक एक स्थान था। वहाँ की जमीन बड़ी उपजाऊ थी। स्फटिक के समान स्वच्छ पानी का प्रवाह चारों ओर बहता था। जमीन काली और मुलायम थी। उसमें इतना कस था कि सिर्फ कुदाल से एक बार गोड़ कर बीज बो देने से ही पैदावार फट पड़ती थी। यह सब हाल देख कर उस मुनीम ने सोचा कि अब नौकरी को सदैव के लिए नमस्कार कर के हम खेती के व्यवसाय में क्यों न पड़ें? अन्त में नौकरी उसने छोड़ दी और उपर्युक्त स्थान में कुछ एकड़ जमीन ले कर वह कृषिकार बन गया। उस स्थान में अनेक लोगों के फल-वृक्षों के बाग थे। अतएव ही अन्य लोगों की तरह उसने भी अपनी भूमि में फलवृक्ष लगाये।

पृथ्वी ने अपना कार्य ठीक ठीक किया। उसने उसकी सब आशायें सफल कीं। फसल कभी खराब नहीं हुई। पर आश्चर्य की बात यह कि उससे उसका पेट भी पूरा पूरा नहीं भरता था। मुनीमत की जगह पर जो वेतन उसे मिलता था उतना द्रव्य भी इस खेती के धंधे में उसके पल्ले नहीं पड़ता था। फसल वह अच्छी तैयार करता था; पर उसकी योग्य कीमत नहीं आती थी। पैदावार से खर्च भी चलना मुश्किल होगया। यह केवल उसी का हाल नहीं था। उस मुकाम के सब किसान ऐसी ही दीन दशा में थे। पैदावार तो अच्छी होती थी; पर भूखों सब मरते थे।

आज वही लोग बड़े वैभव, सुख और आनन्द में हैं। उनके परिश्रम का बदला उनको आज द्विगुणित से भी अधिक मिलने लगा है। जिस भूमि से उनका पहले निर्वाह नहीं होता था वही भूमि अब उन्हें भरपूर सम्पत्ति प्रदान करती है। उन्होंने सुन्दर घर बनाये हैं और वहाँ सुखशान्ति मूर्तिमान विराजमान है। इस वर्ष की अवधि में दैन्य का वहाँ से देशनिकाला हो गया है और [illegible] का साम्राज्य छा गया है। इस सारे परिवर्तन का श्रेय सहकारिता और वाल रैस साहब (उक्त मुनीम) को है।

मि० वालरैस कोठी पर मुनीम थे। वहाँ उन्हें हलवारा-ग्राम [illegible] मिला था। [illegible] में काम करने के कारण हिसाब किताब में वे खूब दक्ष हो गये हैं। अतएव इन्होंने यह बात तुरन्त ही ताड़ ली कि यहाँ लोगों के व्यवसाय में त्रुटि कहाँ पर है। इन्होंने देखा कि वहाँ का प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे की गर्दन काटने के उद्योग में रहता है। वहाँ का प्रत्येक किसान अपने पड़ोसी की अपेक्षा अपना माल कम भाव से बेचने के लिए तैयार रहता था। इस कारण इनका

माल गिरा देते थे। कीमतें उन्होंने बिलकुल ही उतार डालीं। यदि कहा जाय कि इससे ग्राहकों को लाभ होता होगा सो भी नहीं। उनको माल महँगा ही पड़ता था। सारा लाभ दलाल लोग बीच ही में हड़प कर लेते थे। यह सम्पूर्ण हाल जान लेने पर मि० पाल हेम्स ने पुयालप और सम्नेर नामक दो गांवों के लोगों की सभा की और उनके समक्ष यह सारा वृत्तान्त निवेदन किया। उन्होंने कहा, "सच्ची शक्ति एकता में है। उसी का अवलम्बन करने से सब को सुख होगा। इसलिए हम सब लोगों को एक हो जाना चाहिए।"

तदनुसार वे सब एक होगये। और तब सन् १९०२ में उन्होंने एक मंडली स्थापित की। इसका नाम है "पुयालप और सम्नेर के किसानों की सभा"। वाशिंगटन रियासत के नियमानुसार उस सभा की रजिस्टरी भी करा ली गई है। पर इस सभा की विशेषता यह है कि केवल व्यवसाय के तत्व पर ही यह नहीं चलाई जाती; किन्तु पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति की वृद्धि करना इस सभा का उद्देश्य है। प्रति डालर (डालर=तीन रुपय दो आने) एक के हिसाब से दो हजार भाग उन्होंने स्थापित किये। एक भाग लेनेवाले को मेम्बर के पूर्ण अधिकार मिलते हैं। एक मनुष्य १५ भाग तक ले सकता है। परन्तु १५ भाग लेनेवाले के लिए जो अधिकार हैं वही एक भाग लेनेवाले के लिए भी हैं। क्योंकि प्रत्येक हिस्सेदार एक ही मत दे सकता है—फिर उसने चाहे जितने भाग क्यों न लिये हों। उन दो गावों के सब किसान इस सभा के मेम्बर हो गये हैं। १९११ में १३०० मेम्बर थे; और उनमें १९३५ भाग बँटे हुए थे। अर्थात् प्रत्येक मेम्बर के हिस्से में औसत से डेढ़ भाग पड़ा। १९१४ में यही मेम्बरों की संख्या १८०० हुई।

किसान के पास जमीन कितनी है, इस का कुछ भी महत्व नहीं, किन्तु जो फल उत्पन्न करता है उसी को इस सभा का मेम्बर बनाया जाता है, फिर उसके पास जमीन चाहे कितनी ही क्यों न हो। गमलों में चार वृक्ष लगा कर, उनके फल बेचनेवाला भी मेम्बर हो सकता है। इस सभा के प्रत्येक मेम्बर की जमीन औसत से दो तीन एकड़ है। पाल हेम्स साहब ने यही प्रयत्न किया कि परस्पर को हानि न पहुँचाते हुए सब लोग मिल कर, एकता से, व्यवसाय करें। उनका यह प्रयत्न अधिकांश में सफल हुआ। सभा का यह सख्त नियम है कि प्रत्येक मेम्बर अपनी सारी पैदावार सभा के सिपुर्द कर दे और जो अपनी पैदावार अलग ही अलग बेचेगा उसका नाम सभा से एकदम निकाल दिया जायगा।

जो व्यवसाय पहले उनके लिए हानिकारक होता था वही व्यवसाय, एकता के बल पर, अब उन्हें सुखप्रद होने लगा। जिन जिन बन्दरों में उनका माल जहाजों से जाता है वहां वहां उन्हों ने अपने विश्वासपात्र दलाल नियत किये हैं। वे अपने दलालों को बिक्री पर ढाई रैकड़ा के हिसाब से कमीशन देते हैं। इस उपाय से किसानों की आमदनी दुगनी हो गई है। अब ग्राहक पर उसका बोझा बिलकुल ही नहीं पड़ता। सभा ने बीच के दलाल निकाल डाले, इसी से इतना अन्तर पड़ गया। सभा अपना माल अपने दलालों के द्वारा थोक व्यापारियों को बेचती है।

उससे आश्चर्य की बात यह है कि सभा स्वयं माल बिलकुल मोल नहीं लेती। यह सिर्फ अपने मेम्बरों का माल जमा कर के उसी की बिक्री करती है। बस उसका सिर्फ इतना ही काम है। साधारणतया सहकारी संस्थाओं का यह नियम रहता है कि वर्ष भर में उनकी ओर से जो व्यापार होता है और उसमें जो नफा होता है वह व्याज के रूप से हिस्सेदारों में बाँट दिया जाता है। परन्तु यह सभा अपने मेम्बरों का माल लेती है और उसी की बिक्री करती है। अर्थात् यह सिर्फ दलाल का काम करती है। बिक्री का दाम मालिक को तुरन्त ही मिलता है। इस कारण लाभ की रास्ता देखते हुए किसी को बैठना नहीं पड़ता। जिस दिन जिसका माल बिकता है उस दिन की बिक्री में ही उसके माल के अनुसार हिस्सा रहता है। उदाहरणार्थ, जैसे सोमवार, बुधवार, और शुक्रवार के दो दिन किसी का माल निकलता हो तो उन दिनों की बिक्री में ही उसके माल के अनुसार वह हिस्सेदार रहता है। इस योजना के किसी पर अन्याय नहीं होने पाता। स्वयं उद्योग करके दूसरों के अपना माल निकालता है उसे पहले पहल उसके माल अधिक आता है, अर्थात् उसका उद्योग सफल होता है।

आलस्य अथवा लापरवाही के कारण जिनकी फसल पीछे उठती है उनका माल भी पीछे बिकता है और दाम कम आता है। इसी प्रकार उद्योग के अनुसार प्रत्येक को फल मिलता है। आलस को उत्तेजना नहीं मिलती। प्रति दिन का आया हुआ माल एकत्र करके बेच डालना—बस इतना ही सभा का मुख्य कार्य रहता है। बिक्री का दाम सभा में जमा नहीं होता, किन्तु रोज का रोज माल के मालिकों को दे दिया जाता है।

इस सभा के स्थापित होने पर लोगों को उनके माल की जो अधिक कीमत मिलने लगी उसका स्वाभाविक ही यह परिणाम हुआ कि उस गाँव में माल की उपज खूब बढ़ गई। किसानों को अपना व्यवसाय बढ़ाने में स्वाभाविक ही उत्तेजना मिली। व्यवसायी लोगों की संख्या खूब बढ़ी; और पुराने लोगों ने अपनी खेती का विस्तार बढ़ाया। इस कारण बाजार में माल की खप कम होगई; और ऐसा मालूम होने लगा कि जैसे सहकारी प्रयत्न की सफलता ही हानिकारक होगी। परन्तु अध्यक्ष पाल हेम्स साहब (आप ही अब भी सभा के अध्यक्ष हैं) ने उस संकट के लिए भी उपाय निकाल लिया। अर्थात् जो माल मांग से अधिक होता इसे टिकाऊ बनाने के लिए उन्होंने एक कारखाना खोल दिया।

माल की भरमार होने पर ज्यों ही यह मालूम होने लगता है कि अब उसकी कीमत बहुत ही उतर जायगी त्यों ही उक्त कारखाने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। इससे बाजार में माल की भरमार नहीं होती और भाव ठीक रहता है। सारा माल उपयोगी बना रहता है; व्यर्थ बिलकुल नहीं जाता। जो माल ताजा नहीं खप सकता उसे टिकाऊ बनाते हैं। इससे दूना-लाभ होता है। किसानों के माल का अच्छा मूल्य आता है; माल पास बना रहने से ग्राहकों को भी समय पर वह मिलता जाता है और मूल्य भी उन्हें उचित ही देना पड़ता है।

इस कारखाने का इतिहास भी बड़ा कौतूहलवर्धक है। इसकी असली पूंजी लगभग छै हजार की थी। आज उसी कारखाने की कीमत १५०००० रुपया है। उसका प्रबन्ध एक स्वतंत्र मंडली के हाथ में दिया हुआ है। पर उस पर स्वामित्व है गाँव के सब लोगों का। परन्तु इस कारखाने की खास विशेषता यह है कि इसके लिए एक पाई भी आरम्भ में अथवा अब तक किसी को देनी नहीं पड़ी। फिर इसकी पूंजी आई कहां से? बात यह है कि लोगों के माल की बिक्री के दाम प्रति दिन देते समय कुछ पैसे काट लिये जाते हैं। ये पैसे सभा अपने पास जमा रखती है। बस इन्हीं पैसों की जमा हुई पूंजी से पालहेम्स साहब ने यह कारखाना खोला है।

सभा का काम बड़ी सफाई, सचाई और डौल से चलाया जाता है, तभी तो प्रति दिन लोगों को अपने माल का मूल्य मिल जाता है, और थोड़े फुटकर पैसों की जमा हुई पूंजी पर और भी एक बड़ा कारखाना चल रहा है। प्रेम, सहानुभूति, एकता, सच्चाई और निस्स्वार्थभाव से जो कार्य किये जाते हैं उनसे कैसा लाभ होता है सो देखिये!

पहले पहल इस कारखाने की इमारत पचास फीट चौड़ी डेढ़ सौ फीट लम्बी थी; पर आज उसका विस्तार साढ़े तीन एकड़ जमीन पर हो गया है। तीन सौ मनुष्य उसमें काम करते हैं। वे सब मनुष्य स्त्री ही हैं। इनकी मजदूरी की दर निश्चित नहीं। काम के अनुसार उन्हें मिहनत का बदला मिलता है। प्रत्येक स्त्री प्रति दिन तीन से नौ रुपये तक कमाती है। कारखाने में मजदूरों के लिए सब प्रकार के अच्छे सुभीते हैं। काम का प्रबन्ध भी मजदूरों के लिए अत्यन्त सुविधाजनक और सहज है। मजदूरों की विश्रान्ति के लिए एक विश्रान्तिभवन अलग ही बना हुआ है और वह सब प्रकार के सुख साजों से सजा हुआ है। यहां ये मजदूर स्त्रियां अपने लड़के बच्चे लाकर रखती हैं।

यह बात तो सभी जानते हैं कि माल जितना उत्तम होगा उतनी ही अधिक कीमत बाजार में उसकी आयेगी। इस कारण पालहेम्स साहब इस बात के लिए बड़ा प्रयत्न करते हैं कि लोगों का उत्पन्न किया हुआ माल उत्तम श्रेणी का हो। वे लोगों को इस के लिए बार बार उपदेश देते और सहायता करते हैं। सारांश यही है कि पाल हेम्स साहब रात दिन इस बात का प्रयत्न करते रहते हैं कि इनके कार्य बिलकुल वैज्ञानिक रीति से हों, परिश्रम व्यर्थ न जावे और

किसी भी वस्तु का दुरुपयोग न हो। सब किसानों के पास बहुत सी मुर्गियां रखने का प्रबन्ध उन्होंने कर दिया है। क्योंकि मुर्गियां उनकी खेती के लिए बहुत उपयोगी होती हैं। फलवाले वृक्षों के लिए जो कीड़े हानिकारक होते हैं उन्हें वे खा डालती हैं। इनसे वृक्षों का बचाव होता है। इसके अतिरिक्त उनके अंडों से भी खूब आमदनी होती है। पालहेम्स साहब वे सब अंडे मोल ले लेते हैं। बस, शर्त यही है कि पुयालप ग्राम के फल जिस प्रकार सर्वोत्तम होने चाहिएं उसी प्रकार वहां के अंडे भी उत्तम ही होने चाहिएं। दो दिन से अधिक बासी अंडे वे नहीं लेते। अंडों को बाहर से ...और फिर उन्हें बाहर भेजने का व्यवसाय वे बड़ी होशियारी ... हैं। वे इस बात का बड़ा ख़याल रखते हैं कि ग्राहकों को ...अच्छे और ताजे ही अंडे मिला करें। सच पूछिये तो व्यापार-...य में सच्चाई ही एक अमूल्य वस्तु है। बिना सचाई का ... दो कौड़ी का होता है। अपनी सच्चाई या 'बात' या ...की रक्षा करना ही व्यापार में बड़े महत्व की बात होती है ...सी पर व्यापार की सफलता या विफलता अवलम्बित रहती ...च्चाई देख कर ही ग्राहक बार बार व्यापारी के पास आता ...स्वयं ही अधिक दाम देकर भी माल ले जाता है। इसी ...े पुयालप ग्राम का माल बाज़ार में बड़े प्यार से बिकता है। ...ा नियम है कि 'पुयालप' नाम जिस माल पर पड़े वह माल ...ही होना चाहिए। पालहेम्स साहब यह चाहते हैं कि पुया-...म के माल का मूल्य बाज़ार में अधिक ही आना चाहिए; ...सी प्रकार वे यह भी चाहते हैं कि वहां का माल भी ...ही तैयार हो। अर्थात् ग्राहक को उत्तम श्रेणी का माल देकर ...ही श्रेणी का मूल्य लेना उनको अच्छा मालूम होता है। ग्राहक ...ही लूट लेना अथवा किसी न किसी तरह उसकी आंखों में ...झोंक कर उसके पैसे छीन लेना व्यापार का आत्मघातकी ...न है। यह सिद्धान्त उक्त साहब को बिलकुल ही मान्य नहीं है।

...सारे उत्तम प्रबन्ध का यह परिणाम हुआ है कि सभा के ...म्बरों की जेबें सदैव गरम रहती हैं। प्रति एकड़ उनकी आम... साढ़े चार सौ से ले कर नौ सौ रुपये तक रहती है। अर्थात् ...ी से वहां की पृथ्वी की पैदावार प्रति एकड़ ६७५ रुपये पड़ती ...स कारण जिसके पास दस पन्द्रह एकड़ जमीन होती है और ...खेती की पैदावार पर ही जिसका निर्वाह रहता है उसका ...अत्यन्त सुख और समृद्धि से चलता है; और उपव्यवसाय के ...र एक दो एकड़ भूमि जो लोग जोतते हैं उनका सारा ...का खर्च उसी पर चल जाता है।

...न प्राप्त होने पर मनुष्य का मन स्वाभाविक ही विलासिता की ...झुकता है। यह झुकाव इस रीति से होता है कि मनुष्य को ...ान का भान भी नहीं होने पाता कि वह अब दुर्गुणों के चक्कर ...में पड़ कर अवनतिगर्त की ओर वेग से जा रहा है। जब सारी ...ति खो कर वह भिखारी बन जाता है तब कहीं उसकी आंखें ...ती हैं। परन्तु उस समय कुछ लाभ नहीं होता। मतलब यह ...वैभव प्राप्त होने पर मनुष्य को अपनी बुद्धि ठिकाने पर रखने ...ड़ी सावधानी रखनी चाहिए। पाल हेम्स साहब ने इस ...य में भी बड़ी दूरदर्शिता और चातुर्य से काम लिया है। अपनी ...के मेम्बरों का अवशिष्ट धन वे कारखाने में फँसा रखने का ...यत्न करते हैं। इसके सिवाय वे सब को यह भी समझाते रहते हैं ...सम्पत्ति को अविवेक के साथ व्यर्थ खर्च करने से अन्त में कैसी ...ा हुआ करती है। वे अपने मेम्बरों को मितव्ययिता का आच-...रण कराने में कुछ भी कसर नहीं रखते।

कारखाना चलाते हुए उन्हें धन की आवश्यकता बार बार होती ...है। पहले पहल तो वे बैंक से व्याज पर धन ले लिया करते थे, ...पर अब वे सभा के मेम्बरों से ही ऋण ले लिया करते हैं। इस ...पर वे आठ फी सदी व्याज देते हैं। मेम्बरों की सुविधा के ...लिए वे प्रति मास व्याज का हिसाब करते हैं। इसके सिवाय यह ...बात है कि कारखाने को धन देनेवाला अपना धन चाहे जब ले ...सकता है। इस सारे उत्तम प्रबन्ध का यह सुपरिणाम हुआ है कि ...ग्रामवासियों के हज़ारों रुपये सदैव सभा के हाथ में रहते हैं और ...ग्रामवासियों को भी सन्तोषप्रद लाभ रहता है। यह सभासदों की ...पूंजी १९१४ में लगभग तीन लाख थी।

इस प्रबन्ध से सब से बड़ा लाभ यह हुआ है कि सब सभासदों में एक प्रकार से अपनत्व का सम्बन्ध उत्पन्न हो गया है। सम्पूर्ण ग्राम का प्रबन्ध एक अच्छे अविभक्त (सम्मिलित) कुटुम्ब की तरह चल रहा है। निज-पर-भाव, पारस्परिक ईर्षा-द्वेष, इत्यादि विकारों का वहां से देशनिकाला होगया है। इस विषय में सभा का मूल उद्देश्य सोलह आना सिद्ध हुआ है। कुटुम्ब में, गाँव में, अथवा राष्ट्र में यदि ऐसी ही एकता या मेल हो जाय तो फिर किसी बात की कमी नहीं रह सकती।

यह सहकारिता यहीं पर समाप्त नहीं हुई-किन्तु सम्मिलित बिक्री का लाभ जब सभा को मालूम हो गया तब सम्मिलितरूप से माल खरीदने का लाभ भी उसके ध्यान में आया। अतएव सभा ने उसी रीति से पहले पहल घास के पूरे (गट्ठे) खरीदे। इसके बाद अनाज, चारा दाना तथा गृहस्थी के लिए आवश्यक अन्य सब वस्तुएं एकत्र खरीदीं। ये सब वस्तुएं थोक खरीदने के कारण सभा को बहुत सस्ती पड़ती हैं और सभा अपने मेम्बरों को वह सारा सामान मूल कीमत पर ही मोल देती है। बीच के सब मनुष्यों का नफा उस पर न लगने के कारण वह सब सामान मेम्बरों को बहुत ही सस्ता पड़ता है। जो आटे का बोरा फुटकर भाव से सवा चार रुपये का आता है वही उपर्युक्त रीति से तीन रुपये दो आने का आता है। यही हाल अन्य सब सामग्री का समझना चाहिए। इस प्रबन्ध का एक यह और अच्छा परिणाम हुआ है कि सभा के मेम्बरों को अन्य स्थानों में भी सामग्री सस्ती मिलने लगी है। उस प्रान्त के व्यापारी अब प्रत्येक ग्राहक से यह प्रश्न करते हैं कि तुम कहां के रहनेवाले हो। और यदि वह ग्राहक सुखसम्पन्न पुयालप गाँव का होता है तो उसे सौदा निराले ही भाव से मिलता है। इस प्रकार उस गाँव की सहकारिता ने दोनों ओर से कल्याण किया है। अर्थात् उसके माल का दाम तो अधिक आता ही है; किन्तु दूसरे का माल भी उसे सस्ता मिलता है।

सहकारिता से एक यह लाभ भी अच्छा हुआ है कि उस गाँव का, फल टिकाऊ करने का कारखाना, विनिमय का एक उत्तम साधन होगया है। कारखाने में एक जगह एक बड़ा भारी तख्ता लगा रखा गया है। उसमें ग्रामवालों के सब नोटिस लगते हैं। मानो वह जगह ग्राम वालों का थाना ही है। उस जगह लगनेवाले नोटिसों का एक नमूना यहां हम पाठकों की जानकारी के लिए देते हैं:—

१ जानस्मिथ को एक कुल्हाड़ी के बदले हंसिया चाहिए।
२ विलियम जेम्स को पच्चीस गट्ठे लकड़ी मोल लेना है।
३ हेनरी राबिन्सन को तीन दर्जन मुर्गी के अंडे चाहिए।

सारांश यह है कि, पुयालप गाँव के लोगों के सारे व्यवहारों का स्वरूप उस कारखाने में दिखाई देता है। गाँववालों की एकता का पूर्ण स्वरूप वहां दिखाई देता है। अतएव पुयालप की सह-कारिणी सभा न केवल एक व्यापारी संस्था ही है; किन्तु सब लोगों को एकत्र करनेवाला एक प्रेमबन्धन भी है।

उस एक ही प्रेम-सूत्र में जिस महापुरुष ने सारी बस्ती को बांध दिया उस महापुरुष का थोड़ा सा वृत्तान्त दे कर हम यह लेख पूर्ण करेंगे।

पाल हेम्स साहब अच्छे ऊंचे पूरे बदन के, आरोग्य और प्रसन्न-चित्त हैं। उनका स्वभाव मृदुल है। दया के मानो वे अवतार हैं। मन बिलकुल निर्मल है। उद्योग उनमें हार गया है। वे सदैव किसी न किसी उद्योग में लगे ही रहते हैं। पर साथ ही वे इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखते हैं कि उनकी हलचलों से किसी का मन न दुखे। उनका विचार है कि समाज का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए कि किसी मनुष्य को भी साधारणतया [illegible] का कष्ट न रहे। उनका कहना है कि जिस नगर या ग्राम के लोग साधारण-तया सुखसमाधान से अपनी गृहस्थी चला सकते हैं उस नगर या ग्राम उन्नत दशा में समझना चाहिए। उनका मत है कि यह दशा कुछ अच्छी नहीं कि बस्ती के दो चार लोग तो धन जमा कर के गुलछर्रे उड़ाते रहें और बाकी के लोग भूखों मरते रहें। सांसारिक व्यवहारों का ज्ञान पालहेम्स साहब को बहुत अच्छा है। व्यवसाय करने में वे सिद्धहस्त हैं, सो इस लेख के [illegible] आप ही [illegible] हैं। [illegible]

तें उनमें हैं-पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे कभी धन-हो सकते हैं; क्योंकि वे अपना सारा समय लोककल्याण में ते हैं और यह बात भी सिद्ध है कि जो लोग संसार के उपकार उठाते हैं उनको अपने जीवन की-अपनी गृहस्थी की-देनी ही पड़ती है। ऐसी परोपकारवृत्ति वाले महाशय के वहां के निवासियों की कितनी पूज्यबुद्धि होगी सो हमारे को सहज ही मालूम हो सकता है। जिस काम में वे पड़ते प्रधानत्व उन्हीं के ऊपर आता है। अपने देश-बान्धवों में उनकी मूर्ति देवता की तरह निवास करती है। स्विफ्ट क ग्रन्थकार ने लिखा है कि "जिस भूमि में पहले अनाज दाना अथवा घास का एक डंठल उत्पन्न होता रहा है उस दो दाने अथवा दो डंठल जो मनुष्य उत्पन्न करता है वही मनुष्यजाति का सच्चा हितैषी है; ऐसा मनुष्य देश का जितना हि करता है उतना सैकड़ों राजनैतिक पुरुषों के द्वारा नहीं सकता।" बस, इसी कसौटी पर पालहेम्स साहब की योग्य को जँचना चाहिए। उन्होंने फलों की उपज तो बढ़ाई ही; पर अपने गाँव के किसानों की आमदनी सब प्रकार से बढ़ा व उन्हें सुखी बनाया। राजनीतिक हलचल की ओर भी उनका ध्या रहता है। उस ओर भी उन्होंने अपने देश की बहुत सेवा की है क्या हमारे पाठकों में से कोई सामर्थ्यवान् सज्जन पालहेम्स साह का अनुकरण करने को तैयार न होंगे? गरीब और दीन-ही किसानों को योग्य मार्ग पर लाकर उनकी साम्पत्तिक दशा व सन्तोषजनक बनाना ही सच्ची स्वदेशसेवा है। हमारी भार भूमि को ऐसे स्वदेश-सेवकों की अत्यन्त आवश्यकता है।

जापान का नवीन मंत्रि-मंडल।

(जापान की वर्तमान राजनीति का रहस्य)

[illegible]

[illegible] के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ [illegible] हैं। इस [illegible] मंत्रिमंडल के मुखिया [illegible] अन्यतम प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में से हैं। इनका जन्म [illegible] कुल में हुआ है। [illegible] राजनीतिज्ञ भी इन्हीं के कुल के हैं। सन् १८३१ में, [illegible]

जब कि जापान में पर्याप्त सुधार का प्रवेश करना निश्चित हुआ, समुराई (क्षत्रिय) वंश के लोगों का, बहुमानदर्शक शस्त्र-चिन्ह धारण करने का, विशेष अधिकार ले लिया गया; यही नहीं तक इस जाति का नाम भी बदल कर शिज़ोकू (साधारण जन) रख दिया गया। परन्तु, बाह्य नाम में यद्यपि परिवर्तन हो गया, तथापि क्षत्रियत्व का अभिमान, जो इस कुल के लोगों के खून में मिला हुआ था सो, उनसे अब भी दूर नहीं हुआ है। वे अब भी इस बात का बड़ा गौरव समझते हैं कि "हम बड़े कुल में पैदा हुए हैं।" सारांश, जापान के एक पुराने क्षत्रिय कुल में काउंट तरौची का जन्म हुआ है, और उन्होंने अपना आचरण अभी तक अपने कुल के अनुकूल ही रखा है। उनकी अवस्था इस समय ६४ वर्ष की है; तथापि शरीर, बुद्धि और मन में कुछ भी निर्बलता नहीं दिखाई देती। विद्या और अनुभव के द्वारा जिस चातुर्य की प्राप्ति होती है उसे प्राप्त करने में उन्होंने कभी त्रुटि नहीं की। उन्होंने यूरप की यात्रा की है और रूस-जापान-युद्ध में सेनापति के नाते से तथा उसके बाद कोरिया के गवर्नर के नाते से उन्होंने अपनी योग्यता संसार को दिखला दी है। रणांगण में शत्रु का व्यूह भेद करना हो, अथवा शान्ति के समय देश का अन्तस्थ सुधार करना हो, काउंट तरौची ने अपनी बुद्धि की कुशाग्रता एकसमान ही प्रकट की है। ऐसे सुयोग्य मनुष्य को, ऐसे संक्रामक समय में, जापान की राज्यनौका खेने का जो भार दिया गया सो उचित ही है। आजकल प्रधान मंत्री वही ठीक समझा जाता है कि लोकसभा में बहुमत जिसके पक्ष का हो और जो स्वयं लोकसत्ताक राज्यप्रणाली का पक्षपाती तथा पुरस्कर्ता हो। परन्तु काउंट तरौची को जापानी लोकसभा के बहुमत का आश्रय नहीं है—यही नहीं बल्कि वे उन लोगों में से हैं जो कहते हैं कि लोकमत को बहुत आदर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। एकसत्ताक राज्यप्रणाली ही उन्हें हितकारक मालूम होती है। इस कारण यह शंका की जाती है कि ऐसे स्वमताभिमानी पुरुष का नेतृत्व जापान के समान नवीन सुधार के अनुगामी राष्ट्र को स्वीकार होगा या नहीं। कुछ वर्ष पहले प्रिन्स कात्सुरा ने लोकसभा के बहुमत की परवा न करते हुए राज्यकार्य चलाने का प्रयत्न किया था, परन्तु उन्हों ने जो बिल सभा के सामने पेश किये उन्हें सभा ने पास करने से इन्कार कर दिया इस लिए अन्त में उनको त्यागपत्र ही देना पड़ा। अब इस बार कैसा होता है सो शीघ्र ही मालूम होगा।

आजकल की सी असाधारण परिस्थिति यदि न होती तो भूतपूर्व प्रधान मंत्री काउंट ओकूमा के अलग होने का कोई कारण नहीं था, क्योंकि वे लोकसत्ताक राज्यपद्धति के पुरस्कर्ता थे और जापान की तरुण पीढ़ी को उनके मत पसन्द थे। लोकसभा का बहुमत भी उनके अनुकूल था। परन्तु इस समय तो जापान के सामने यह महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित है कि उसकी परराष्ट्रीय नीति कैसी होनी चाहिए। जापान के सन्मुख इस समय तीन कूट प्रश्न अकस्मात् आ उपस्थित हुए हैं—(१) वर्तमान महायुद्ध में जापान को किस नीति का अंगीकार करना चाहिये; (२) अमेरिका से झगड़ा बढ़ाना चाहिए या नहीं; और (३) चीन के कारबार में हस्तक्षेप करना उचित है या नहीं—और इन तीनों प्रश्नों के विषय में जापान का एक मत नहीं है। कोई अमेरिका के विषय में आदर बुद्धि रखता है तो कोई कहता है कि अमेरिका से युद्ध किये बिना कार्य नहीं चलेगा; कुछ लोग यह प्रतिपादन करते हैं कि चीन के कारबार में हाथ डालने का जापान को कुछ भी अधिकार नहीं है तो कुछ राजनीतिज्ञ यह आग्रह करते हैं कि चूंकि चीन की चूक का परिणाम जापान की स्वतंत्रता के लिए भी बाधक हो सकता है; इसलिए वहां की परराष्ट्रीय नीति की ओर जापान को पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए। सारांश यह है कि ऐसे मौके पर बहुमत देख कर राज्यकार्य-भार चलाने का सरल मार्ग मंत्रिमंडल के लिए हितकारक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नों के विषय में लोगों के मत प्रति दिन बदलते रहने के कारण उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके सिवाय, मंत्रिमंडल यह भी नहीं कह सकता कि हम ऐसे समय में कुछ नहीं करेंगे—चुप ही रहेंगे। क्योंकि चुप रहना भी तो राजनीति में एक चाल ही समझी जाती है; और इस चाल के बुरे भले परिणाम के विषय में लोग मंत्रिमंडल को ही उत्तरदायी समझते हैं। यह आपत्ति टालने के लिये यदि कोई निश्चित नीति स्वीकार की जाय और अन्त में वह हानिकारक सिद्ध हो तो भी देश का बहुमत निस्सन्देह विरुद्ध होगा। परराष्ट्रीय नीति स्वीकार करने में लोकमतानुयायी मंत्रिमंडल को इसी प्रकार की अड़चनें रहती हैं। उदाहरण के लिए उस नीति को लीजिए जो जापान की चीन के साथ है। चीन ने जब राजसत्ताक प्रणाली को तोड़ डाला तब जापान ने आनन्द प्रदर्शित किया; परन्तु जब आगे चल कर लोकसत्ताक प्रणाली स्थापित होने लगी तब अध्यक्ष को आदर देने में जापान ने टाल-मटूल की; यूआन शि-काई अध्यक्षपद से जब सम्राटपद प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा तब जापान ने तटस्थ वृत्ति धारण की; और फिर यह देखते ही कि, वह सम्राट होनेवाला है, काउंट ओकूमा ने यह सन्देशा भेजा कि "खबरदार, तुम सम्राट् हुए तो"। बस, जापानी राजनीतिज्ञों ने ऐसी ही चंचल और अनिश्चित नीति चीन के विषय में आज तक धारण कर रखी है। तात्पर्य यह है कि ऐसे समय में परराष्ट्रीय नीति निश्चित करने के काम में लोकमत मार्गदर्शक नहीं होता; किन्तु मंत्रिमंडल को अपने मत से ही कदम बढ़ाना पड़ता है। और ओकूमा के शासन काल में यह कदम आज एक दिशा से तो कल दूसरी दिशा से पड़ता रहा—बस इसी कारण उन्हें प्रधान मंत्री के पद से त्यागपत्र देना पड़ा।

लोकमतानुयायी प्रधान मंत्री को एक ओर हटाकर स्वमत से चलने वाले तरौची से, राज्यसूत्र स्वीकार करने की प्रार्थना जो इस समय जापानी राष्ट्र ने की उसका कारण यही है। इस बीसवीं शताब्दी में एकतंत्री मंत्रिमंडल के हाथ में अधिकार देने पर कुछ लोग जापान को दोष देने के लिए तैयार होंगे; परन्तु जब वे देखेंगे कि इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इत्यादि देशों में भी, पक्षभेद-विरहित ही नहीं, किन्तु सम कहलानेवाले चार पांच लोगों के हाथ में ही राष्ट्र की राजनीति को चाहे जिस ओर ले जाने की स्वतंत्रता दे रखी है तब फिर जापान ने जो समय पर सावधान हो कर इस प्रणाली को कार्यरूप में परिणत किया, इस पर उन्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा। इतना बड़ा परिवर्तन जो बिना किसी गुल-गपाड़ा के हो गया, इस का कारण यही कि जापान की "बड़ी सभा" इंगलैंड की लार्डसभा के समान निर्जीव नहीं है। किन्तु वह अनुभवी राजनीतिज्ञों की बनी है और किसी संकट के समय राष्ट्र का नेतृत्व स्वीकार करने का सामर्थ्य उसमें है। मि० तरौची के अधिकारारूढ़ होने का श्रेय इसी सभा को देना चाहिए। ऐसी दशा में कई जापानी समाचारपत्रों ने यूरोपियन राष्ट्रों को यह उपदेश दिया है कि जापान की तरह उन्हें भी अनुभवी लोगों की सभा बनानी चाहिए। परन्तु इसमें कोई अर्थ नहीं है। चाहे जापान हो, चाहे योरोपियन राष्ट्र हों, यह एकसत्ताक राज्यपद्धति इस समय निरुपाय होकर स्वीकार की गई है और ज्यों ही यह समय निकल गया त्यों ही प्रायः सभी राष्ट्र फिर यह प्रणाली दूर कर देंगे।

तरौची के अधिकारारूढ़ होने में कौन सी परिस्थिति कारण हुई, इसका दिग्दर्शन यहां तक किया गया। अब यह देखना चाहिए कि चीन की राजनीति में दस्तन्दाजी करने का कारण जापानी लोग क्या बतलाते हैं। वे कहते हैं कि, ' हम चीन की परिस्थिति की ओर जो इतनी सूक्ष्मता से ध्यान देते हैं, इससे योरोपियन राष्ट्रों को व्यर्थ की शंका नहीं करनी चाहिए। जैसे जर्मनी यदि हालैंड का कोई प्रदेश ले लेवे तो इससे जिस प्रकार इंगलैंड की स्वतंत्रता को धक्का पहुंचने की सम्भावना है, अथवा मेक्सिको में यूरोपियन राष्ट्रों का हस्तक्षेप जिस प्रकार संयुक्त राष्ट्र को खलता है, उसी प्रकार चीन में यूरोपियन या अमेरिकन राष्ट्रों का प्रवेश भी जापान की स्वतंत्रता में धक्का पहुंचाने की सम्भावना उत्पन्न करता है। अतएव चीन की परराष्ट्रीय नीति की ओर ध्यान देने में हमारा उद्देश्य केवल अपनी रक्षा करना ही है। चीन का राज्य हड़पने की हमें बिलकुल इच्छा नहीं है। परन्तु चीन, योरोपियन और अमेरिकन राष्ट्रों के भड़काने में आकर, हमारी ओर सन्देहदृष्टि से देखता है। वह समझता है कि हमारे और उसके हित-सम्बन्ध परस्पर-विरोधी हैं। वह हम से साफ साफ कहता है कि, ' जापान को हमारे राज्य-कार्यभार में हाथ डालने की कोई आवश्यकता नहीं, हम चाहे अपने देश में राजसत्ता की स्थापना करें अथवा उसको निकाल कर लोक-

सत्ताक राज्य का झंडा खड़ा करें; अपने देश के उद्योगधंधे बढ़ाने के लिए चाहे योरोपियनों को लावें, चाहे अपने नवयुवक अमेरिका को शिक्षा के लिए भेजें; और कारखाने, सेना, समुद्री सेना, इत्यादि स्थापित करने के लिए जहां से हमें कम व्याज पर कर्ज मिलेगा वहीं से हम लावेंगे; सारांश, जिन उपायों से हम अपने राष्ट्र का हित कर सकेंगे उनकी योजना करने के लिए हम पूर्णतया स्वतंत्र हैं।' इससे साफ़ जान पड़ता है के हम जिस दृष्टि से अपनी (जापानी) और चीन की परराष्ट्रीय राजनीति चलाना चाहते हैं वह दृष्टि ही चीन के राजनीतिज्ञों को मान्य नहीं है।" इससे जान पड़ता है कि जापान और चीन के हित-सम्बन्ध परस्पर-विरोधी हैं, और चीनी लोगों ने अपने मन में यह बात ठहरा ली है कि जापान से अपनी रक्षा करने के लिए किसी परकीय सत्ता का आश्रय लेना आवश्यक है। अस्तु। इस विषय में जापानी लेखकों के कथन का सारांश इतना ही है कि, "चीन और जापान के झगड़े की जड़ नष्ट करने के लिए अच्छे गम्भीर राजनीतिज्ञ की आवश्यकता है और इसीलिए इस समय कौंट तरौची को अधिकार प्रदान किया गया है।"

इस प्रश्न का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर के और जापान के मुख्य मुख्य लोगों से मिल कर लाला लाजपतराय जी ने अमेरिका के एक पत्र में अपनी सम्मति प्रकट की है। हम समझते हैं लालाजी ने अपनी यह सम्मति समता और निर्भीकता के साथ दी है। आप के कथन का सारांश इस प्रकार है.—"हम एशियावासी लोग जापान के इस व्यवहार को देख कर बड़े गड़बड़ में पड़ गये हैं। हम हृदय से जापान का समर्थन करना चाहते हैं। जापान का नेतृत्व एशियावासी आनन्द से स्वीकार करेंगे। प्रत्येक कठिन प्रसंग के लिए जापान को बिलकुल तैयार रहना चाहिए। इसके लिए वे सब प्रकार का कष्ट सहने को तैयार रहेंगे। परन्तु यदि स्पष्ट शब्दों में कहना हो तो जापान चीन को जो सदैव दबाया करता है उसका मतलब ही हमारी समझ में नहीं आता। और यह भी मुझे मालूम है कि चीन के विषय में जापान ने जो यह नीति स्वीकार की है सो कितने ही चतुर और दूरदर्शी जापानी राजनीतिज्ञों को पसन्द नहीं है। उन्हें चीन से पूरी पूरी सहानुभूति है। चीन को सहायता करने की उनको इच्छा है। उनका मत है कि जापान को एशियानिवासियों का नेतृत्व स्वीकार करना चाहिए। ये लोग संसार के किसी भाग के भी उदार लोगों की समता करनेवाले हैं। वे कहते हैं कि जापान जो नेतृत्व स्वीकार करेगा, इस का यह तात्पर्य नहीं है कि वह अपने पड़ोसी राष्ट्रों की स्वतंत्रता हरण करके उनका राज्य अपने राज्य में मिला ले; किन्तु एशिया के अनेक लोगों को [illegible]त्मोद्धार के कार्य में मदद करने के लिए उन्हें नैतिक सहारा देवे। [प]रन्तु असली अड़चन यह है कि इन दूरदर्शी और उदारबुद्धि महा[त्]माओं के विचार साधारण जनता को पसन्द नहीं आते; उन्हें वही [लो]ग प्रिय मालूम होते हैं जो कहते हैं कि साम्राज्य का विस्तार [हो]ना चाहिए।" अस्तु।

[ज]ापानी प्रधान मंत्री को दूसरा जो महत्वपूर्ण प्रश्न हल करना है [वह] अमेरिका-सम्बन्धी है। प्राचीन काल में भूमध्यसागर का [आधि]पत्य प्राप्त करने के लिए बड़े बड़े राष्ट्र प्रयत्न कर रहे थे। उस [के ब]ाद एटलांटिक महासागर को महत्व प्राप्त हुआ और अब ऐसा [जान] पड़ता है कि आगे से सम्पूर्ण क्रांतियों का केन्द्रस्थान पासिफिक [महा]सागर बनेगा। अब पासिफिक महासागर में जिस राष्ट्र की [सत्ता] स्थापित होगी उसी राष्ट्र के हाथ में संसार के मुख्य [व्यापा]र की कुंजियां आवेंगी। अतएव यह श्रेष्ठता प्राप्त करने के [लिए इ]स समय जापान और अमेरिका में प्रतिस्पर्धा हो रही है। [ज]ब से इस बात का विश्वास हुआ है कि वर्तमान महायुद्ध [में अ]न्य यूरोपियन राष्ट्र और भी कुछ वर्ष उक्त श्रेष्ठता के लिए [प्रयत्न न]हीं कर सकेंगे तब से तो उक्त प्रतिस्पर्धा को और भी तीव्र [स्वरूप प्राप्त] हो गया है। इसके सिवाय एक बात और है; वह यह [कि वर्त]मान महायुद्ध में प्रत्यक्ष भाग न लेते हुए इन दोनों राष्ट्रों ने योद्धा राष्ट्रों को गोला-बारूद और अन्न-सामग्री पहुँचा[कर बहुत] धन प्राप्त किया है; और इस युद्ध के निमित्त से प्राप्त किये [हुए धन को] भावी युद्ध के ही कार्य में लगाने की सुविधा भी उन्हें [...] प्राप्त है! ऐसी दशा में ये दोनों राष्ट्र, खूब चढ़ाऊपरी [से जल] और स्थल सेना की तयारी में, पानी के समान, उस धन [को खर्च] कर रहे हैं। हां, इतना अवश्य है कि प्रत्यक्ष युद्ध शुरू करने [के लिए] कोई न कोई कारण दिखलाना ही पड़ता है। परन्तु गत पच[ास वर्षों] का अनुभव तो यही बतला रहा है कि तैयारी होजाने प[र] कारण मिलने में कुछ बहुत देर नहीं लगती। और इन राष्[ट्रों ने] तो कई प्रश्न ऐसे सुलगते हुए छोड़ रखे हैं कि उतनी भी देर [न] लगेगी। इसके सिवाय वे प्रश्न भी इतने विवादपूर्ण हैं [कि] उनका सन्तोषजनक निपटारा कभी हो ही नहीं सकता। [इन] प्रश्नों में तीन चार महत्व के हैं:—(१) जापान ने [अभी] हाल में जर्मनी के जो टापू छीन लिए हैं वे जापान [के] ही अधिकार में रहेंगे या जर्मनी को लौटा दिये जायँगे? (२) चीन में जापान की जो श्रेष्ठता बढ़ रही है उसे अमेरिका [को] मान्य करना चाहिए या नहीं? (३) अमेरिका जो अपनी सामुद्रिक सेना बढ़ा रहा है उसका लक्ष्य जापान के विरुद्ध है या नहीं? और (४) अमेरिका में जापानी लोगों को, एशियानिवासी होने के कारण, जो प्रतिबन्ध होता है सो स्वीकार किया जाय या नहीं?

इसी प्रकार के उलझे हुए प्रश्नों के कारण इन दोनों राष्ट्रों मे परस्पर वैमनस्य हो रहा है। और चीन में जापान की श्रेष्ठता के विरुद्ध अमेरिका की ओर से जैसे जैसे प्रयत्न होता जायगा वैसे वैसे ही यह वैमनस्य और भी बढ़ता जायगा। उपर्युक्त चार प्रश्न मानों इन दोनों राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों के हाथ के सूत्र हो रहे हैं। वे जिस प्रकार घुमाये जायँगे उसी प्रकार इन दोनों राष्ट्रों के लोग न्यूनाधिक रूप से एक दूसरे पर टूट पड़ेंगे, अथवा स्नेहालिंगन देंगे।

नवीन जापानी मंत्रिमंडल के सामने आने वाले एक और प्रश्न का भी यहां उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है। कुछ दिनों से जापान ने रूस से मित्रता की सन्धि कर ली है; और इस हेतु से जापान ने रूस को बहुत सा गोला-बारूद तथा कर्ज दिया है, इसलिए अब अमेरिका इस सन्देह में पड़ गया है कि रूस अब जापान के इस उपकार का बदला किस रूप में चुकावेगा। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि यह मित्रता का नाता कहीं जल्दी ही न टूट जाय; ऐसी लोगों को शंका है; क्योंकि जापान के समाचारपत्रों ने यह शिकायत शुरू कर दी है कि, "रूस ने कर्ज की बड़ी भारी रकम तो जापान से ली है, और युद्धसामग्री इंगलैंड तथा अमेरिका से खरीद रहा है; जापान से क्यों नहीं खरीदता?" परन्तु हम समझते हैं कि रूस जो जापान की सामग्री नहीं खरीदता इसका कारण यह होना चाहिए कि उसकी सामग्री बहुत ही हलके दर्जे की होती है। टेढ़े-मेढ़े बूट पहन कर यदि सिपाही युद्धक्षेत्र में आयँगे तो वे अच्छी तरह से कदम कैसे बढ़ा सकेंगे और यदि वे ऐसा न कर सकेंगे तो भयंकर हानि होने की सम्भावना रहेगी। रूसी राजनीतिज्ञों ने जापान से जो सुलह कर ली, इसका यह मतलब नहीं समझना चाहिए कि रूसी सेनापति अपने सिपाहियों के लिए जापानी बूट भी पसन्द कर लेंगे। इसके सिवाय यह भी बात है कि अंगरेज और अमेरिकन कारखानेवाले रूस के लिए, बहुत मुद्दत के उधार पर भी माल पहुँचाने के लिए तैयार हैं; और इधर जापान के कारखानेवाले उधार माल देने से रहित हैं। ऐसी दशा में यह नहीं समझना चाहिए कि रूस के मन में जापान के विषय में मित्रभाव नहीं है; किन्तु इसका इतना ही अर्थ लेना चाहिए कि कम खर्च और फौजों सुभीते की दृष्टि से ही रूस को अमेरिकन माल लेना विशेष लाभदायक प्रतीत होता होगा। अस्तु, जो कुछ भी हो। अमेरिका और जापान का परस्पर ईर्षा-द्वेष दिन दिन बढ़ रहा है और अब देखना चाहिए कि इसका अन्त कहां होता है।

लो० तिलक का दक्षिण-महाराष्ट्र का प्रवास।

गदग में लोकमान्य के अभिनन्दनार्थ सभा।

हुबली में

श्रीसिद्धारुढ़ स्वामी और लोकमान्य तिलक।

वली के पिञ्जरापोल के सेक्रेटरी श्रीयुत सेठ चतुर्भुजजी लोकमान्य तिलक के बाईं ओर खड़े हैं।

लोकमान्य तिलक बेलगांव में।

२३ नवम्बर को सुबह ९ बजे बेलगांवनिवासियों ने एक निजीस्थान में लोकमान्य तिलक के अभिनन्दनार्थ पानसुपारी दी। उसके उत्तर में आप भाषण दे रहे हैं।

बेलगांव में सभास्थान पर विराजमान होते समय का चित्र।

२३ नवम्बर को बेलगांवनिवासियों ने सुबह ९ बजे लोकमान्य तिलक को एक निजी स्थान में पानसुपारी के लिए निमंत्रित किया। उस समय सभास्थान में विराजमान होते समय का फोटो।

हुबली में श्रीयुत तवीब के मकान में लोकमान्य का स्वागत हो रहा है।

राष्ट्रीय गीत ।

(ये कवितायें लखनऊ की कांग्रेस में गाई गई थीं ।)

मातृ-वन्दना ।

वन्देमातरम् ।

सुजलाम् सुफलाम् मलयज-शीतलाम्
शस्य-श्यामलाम् मातरम् । वन्दे०

शुभ्रज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल-शोभिनीम्
(सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्)
सुखदाम् वरदाम् मातरम् । वन्दे०

त्रिंश कोटि कंठ कलकल निनाद-कराले,
द्वित्रिंश कोटि भुजैर्धृत खर करवाले,
के बले मा तुमि अबले,
बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीम् मातरम् । वन्दे०

श्यामलाम् सरलाम् सुस्मिताम् भूषिताम्
धरणीम् भरणीम् मातरम् । वन्दे०

स्वागत-गान ।

स्वागत प्यारे बन्धु हमारे ।
भारत माता तुमको प्यारी,
तुम भारत माता को प्यारे ।
देतीं है प्रेमाश्रु अर्घ्य वह,
जान तुम्हें आंखों के तारे ।
धन्य धन्य उस पर तुम सब ने—
अपने तन-मन धन सब वारे ।
अहो भाग्य राष्ट्रीय सभा में,
तुम जो प्रतिनिधि रूप पधारे ।
हुए आज एकत्र देश के,
सब प्रदेश के न्यारे न्यारे ।
प्रगट करो निज भाव प्रेम से,
हरो देश के संकट सारे ।
खोलेगा केवल स्वराज्य ही,
उन्नति के सब मार्ग तुम्हारे ।

भारत-गौरव ।

जय भारत जिसकी कीर्ति सुरों ने गाई ।
हम हैं भारतसन्तान करोड़ों भाई ।
हाँ गूंज उठे आकाश अनिल के द्वारा ।
अगणित कण्ठों से बहे एक स्वर-धारा ।
यह हो पुकार कर सुने चराचर सारा ।
अब तक भी है अस्तित्व अखण्ड हमारा ।
अब तक भी है कुल-कीर्ति हमारी छाई ।
हम हैं भारतसन्तान करोड़ों भाई ।
जब इसी दिशा से प्रथम प्रकाश हुआ था ।
इन साम-गान से मोह विनाश हुआ था ।
पृथ्वीतल का पशुभाव हताश हुआ था ।
मानवकुल में मनुजत्व विकास हुआ था ।
हमसे जीवन की ज्योति जगत् ने पाई ।
हम हैं भारतसन्तान करोड़ों भाई ।

सब बातों में हम रहे सदा आगे हैं ।
विघ्नों के डर से कभी नहीं भागे हैं ।
सदियों तक सोये किन्तु पुनः जागे हैं ।
अब भी हम ने निज भाव महा त्यागे हैं ।
फिर बारी है संसार ! हमारी आई ।
हम हैं भारतसन्तान करोड़ों भाई ।

स्वराज्य-आशा ।

अहले-वतन मुबारक तुम को यह बज़्म आला ।
जिस में नई उमेदों का है नया उजाला ॥
दुनियां के मजहबों से यह रंग है निराला ।
मसजिद यही है अपनी और है यही शिवाला ॥
हो होमरूल हासिल अरमान है तो यह है ।
अब दीन है तो यह है ईमान है तो यह है ॥
दायदाय दोस्तां को सर ओ सुमन मुबारक ।
रंगी तबीयतों को रंगे-सुख़न मुबारक ॥
बुलबुल को गुल मुबारक गुल को चमन मुबारक ।
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक ॥
गुंचे हमारे दिल के इस बाग़ में खिलेंगे ।
इस ख़ाक से उठे हैं इस ख़ाक में मिलेंगे ॥
इस ख़ाके दिलनशीं पर बादल सा छा रहा है ।
तूफान बेकसी का हम को सता रहा है ॥
लेकिन यह दौड़ हसरत दुनियां से जा रहा है ।
मायूस हो न जाना वोह दिन भी आ रहा है ॥
बर्तानियां का साया सर पर कबूल होगा ।
हम होंगे ऐश होगा और होमरूल होगा ॥

देशाभिमान-गीत ।

भारत हमारा देश है ।
हित उसका निश्चय चाहेंगे ।
और उसके हित के लिये,
हम कुछ न कुछ कर जायेंगे ।
भारत हमारी मातृभूमि,
है ऋण हम पर बहुत ।
उसके मिटाने के लिये,
हम कुछ न कुछ कर जायेंगे ।
भारत की दुखप्रद अवनति पर,
क्यों न आंसू बहायेंगे ।
उसके हटाने के लिये,
हम कुछ न कुछ कर जायेंगे ।
धर्म, विद्या और धन से,
उन्नति भारत की होवे ।
उस की उन्नति के भाग में,
हम कुछ न कुछ कर जायेंगे ।

नया प्रभात ।

जगे जागृति का नया प्रभात ।
हम स्वराज्य के योग्य नहीं हैं कहो न ऐसी बात
यह कहने से बृटिश जाति का होता है अपमान
भारतीय हम इस को कैसे सुन लें मूक समान
कि जिन की राज-भक्ति विख्यात ।
जगे जागृति का नया प्रभात ॥
उस उदार शासन का फल क्या है अयोग्यतामात्र
नहीं कर सकी है क्या उस की शिक्षा हमें सुपात्र
और वह घात और प्रतिघात ?
जगे जागृति का नया प्रभात ॥
समय आगया है हम चाहें अब अपने अधिकार ।
देखो पूर्वाकाश हुआ है आलोकित इस बार ।
मिटी है दुःस्वप्नों की रात ।
जगे जागृति का नया प्रभात ॥

मधुर तान ।

छिड़ेगी आज मधुर वह तान ।
है जिस पर भारत का निर्भर,
गर्व-सहित उत्थान ॥ छिड़ेगी० ॥
उस स्वर्गीय नाद का जिस धुन,
होगा मिलकर गान ।
गूंज उठेगा उस के स्वर से,
सारा हिन्दुस्तान ॥ छिड़ेगी० ॥
तीस कोटि आत्मा का जिस दिन,
लगा हुआ है कान ।
वही मधुर ध्वनि आज उठेगी,
इसी मंच दरम्यान ॥ छिड़ेगी० ॥
शिव प्रताप बसरक सुनिश्चित,
यहां पतित जो म्लान ।
कुसुमित हो लहलहा उठेगा,
यह भारत-उद्यान ॥ छिड़ेगी० ॥
मंगल मोदमले "नम" "गंगा" ने,
उमड़ चढ़े विमान ।
करन रेणु इस ध्वनि धारा में,
राष्ट्र परम असमान ॥ छिड़ेगी० ॥
इस सम्मान की मथ कथा में,
हम भारत सन्तान ।
'माधव' हिन्द स्वराज 'तिलक' को,
बारम्बार करदान ॥ छिड़ेगी० ॥

लो० तिलक का भाषण।

(कांग्रेस के बाद कानपुर में 'स्वराज्य' विषय पर दिया हुआ व्याख्यान।)

प्रिय महोदयो !

यह मेरे लिए शोक की बात है कि मैं आप की मातृभाषा में व्याख्यान नहीं दे सकता जो कि राष्ट्रभाषा कहाने के योग्य है। और मुझे विश्वास है कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होगी। यद्यपि मैं टूटी फूटी हिन्दी बोल सकता हूं, तो भी अच्छा अभ्यास न होने के कारण मैं अपने कथन को उपयुक्त शब्दों में आप पर प्रकट नहीं कर सकता। अतः अंग्रेजी में ही मुझे बोलना पड़ेगा। लखनऊ की कांग्रेस 'स्वराज्य' के विषय पर एक स्मरणीय कांग्रेस हुई है। २० वर्ष पश्चात् अन्त को हम लोग परिणाम पर आ गये। स्वराज्य के अतिरिक्त इसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं। मैंने कांग्रेस में कहा था कि 'स्वराज्य' ही कांग्रेस के सब प्रस्तावों का आधार और उनकी जड़ है। इसी प्रश्न को ध्यान से सोचो तब मालूम हो जायगा कि 'स्वराज्य' इस देश के लिए नवीन सृष्टि का उत्पन्न कर देने वाला है। देश का सब प्रकार का विकास (मानसिक, बौद्धिक आदि) इसी पर निर्भर है। अन्य सभ्य देशों की भांति तुम कुछ नहीं कर सकते, यह बहुत बार कहा जा चुका है। जब तक आप स्वराज्य प्राप्त न कर लें, तब तक यह असम्भव है कि अन्य देशों की भांति किसी क्षेत्र में आप उनकी समता कर सकें। स्वराज्य हमारा 'जन्म-स्वत्व' (Birth-Right) है। प्रत्येक बात में, क्या व्यापार, क्या उद्योग-धन्धे और क्या शिक्षा सभी की उन्नति के मार्ग में आप के लिए बाधायें हैं। आप जो कुछ चाहते हैं उसे नहीं कर सकते। आप के हृदय में जो कुछ है उसे आप पूरा नहीं कर सकते। कांग्रेस में 'स्वराज्य' के विरोधियों को मुंहतोड़ उत्तर दिया जा चुका है। हम ने भी दो प्रश्नों को उठाया था, पर इस समय मैं भाषा-भिन्नता तथा समय-संकीर्णता के कारण उनको नहीं कह सकता, यद्यपि आप सब सी विषय को सुनने के लिए एकत्रित हुए हैं, ार आपने जो मेरा स्वागत किया है वह मेरा ागत नहीं, वरन् आप अपने 'स्वराज्य' का ागत कर रहे हैं। कोई वक्ता जो स्वराज्य' पर बोल रहा हो, उसका स्वागत करना, 'स्वराज्य' स्वागत करना है। आप सब के यहां पर एकत्रित होने से वराज्य' का समर्थन होता है। आप केवल यहां 'स्वराज्य' का दर करने के लिए आये हैं। इसी के लिए इतनी भीड़ है। इसे कर ही कहा जा सकता है कि 'स्वराज्य' के लिए देश में ना भाव है, कितनी उत्कट आकांक्षा है। यह सभा ही राज्य' के विरोधियों का मुंहतोड़ जवाब है। इसके बराबर झूठी बात ही नहीं कि हम स्वराज्य के योग्य नहीं। प्राचीन में, विशेषतः उत्तरीय भारत में, 'स्वराज्य' का सा राज्य है। चातुर्वर्ण्य के अनुसार अभी तक जातियां विभक्त हैं। उनके कर्म विभक्त हैं। उनकी कर्म-भिन्नता के कारण ही मनु तथा ोंा के समय में यह नीति थी कि क्षत्रिय देश की रक्षा करें, अध्ययन करें तथा शिक्षा दें। परन्तु क्या अब वे बातें रह ब वे कहां? सब का कर्तव्य जाता रहा। कर्म से श्रेष्ठता, जन्म से नहीं। क्षत्रियों का काम ब्रिटिश लोगों ने ले लिया। ने कर्तव्यों से पतित हो गये। कानपुर एक व्यापारिक पर क्या वास्तव में ऐसा कह सकते हैं कि व्यापार हमारा है? यह देश हमारे लिए तो नहीं, परन्तु अन्य देशों के लिए

लो० बाल गंगाधर तिलक।

भले ही लाभदायी है। कच्ची धातु दूसरे देशों में जाने ल जिस कलाकौशल, कारीगरी के लिए भारत प्रसिद्ध था उसके वह अब दूसरों पर निर्भर होगया। ब्राह्मण जो देश के मस्तिष्क उन पर बुद्धि का सब काम था, परन्तु अब वह मस्तिष्क इतना पड़ गया है कि हम अपने अद्वितीय दर्शनों के रहते हुए भी विदे दर्शनों को सीखते हैं! हम लोग प्रति दिन अपनी बातें खोते जा र हैं। हम सैनिक स्वयं-सेवा-स्वत्व से हीन कर दिये गये। इस क्षत्रिय अपने पद से पतित हो गये। अन्य जातियां भी अपने कर्तव्यों से च्युत हो गईं या कर दी गईं। क्षत्रिय कहने को तो क्षत्रिय हैं, पर वे उन गुणों के रखने का दावा नहीं रखते। 'स्वराज्य' का भाव आपको स्वतन्त्रता प्राप्त करने की इच्छा देगा। वह पूर्व स्थिति फिर उपस्थित कर देगा। ब्रिटिश शासन के भीतर ही तुम्हारी वही दशा हो जायगी जो पूर्व समय में थी। मुझे विश्वास है कि 'स्वराज्य' की आकांक्षा आपकी दशा सुधारने, आपको साम्राज्य में सम पद देने के लिए पर्याप्त होगी। जिस प्रकार आप अपने घरों में अपने भाइयों से बराबर हिस्सा लेने को झगड़ते हैं, उसी भांति साम्राज्य में भी सम पद पाने के लिए प्रयत्न कीजिए। साम्राज्य के एक सजीव हिस्सेदार बनिए, अपने सामाजिक जीवन को प्राप्त कीजिए। इसी के लिए स्वायत्त शासन का जन्म हुआ है कि आप अपने घर के मालिक स्वयं बन सकें। 'स्वराज्य' आपका स्वत्व है। इस पर आपको विचार करते रहना चाहिए। जब तक आप स्वयं अपने घरेलू मामलों में स्वतन्त्र नहीं होते, तब तक आप अपने घर के मालिक नहीं बन सकते। मान लो, यदि कोई अंग्रेज़ इन स्वत्वों से हीन हो जाय तो वह क्या कहा जायगा? वह भी ऐसा ही कहा जायगा जैसे हम सब लोग कहे जाते हैं। संसार के इतिहास में भारत के दर्शन के समान कोई दर्शन नहीं, वही हमें जन्म स्वत्व (Birth Rigth) और घरेलू शासन को सिखावेगा। आप लोग उस स्वत्व के योग्य हैं पर, आपने उसे देखा नहीं! यह वही मसल हुई जैसी कि पंच तंत्र में सियार और शेर की कथा है। सियार ने कहा था कि "पहिले अपनी छाया जल में तो देखो तब कहो कि तुम भेड़ हो या शेर!" वेदान्त आपको स्वयं पहिचनवावेगा। अपने कर्तव्यों को आप उसी से सीख सकेंगे। यदि आप अपने पर विश्वास करना सीख जांय तो विरोधियों की बाधायें आपके सामने फटकने भी न पावेंगी। आप निराश दिखलाई पड़ते हैं। आपका दोष केवल इच्छा का न होना मात्र है। इच्छा ही सर्वस्व है। इच्छा-शक्ति को दृढ़ बनाइए, फिर कोई शक्ति बाधा नहीं डाल सकती। यदि यही इच्छा-शक्ति भारतवर्ष में हो जाय, तो फिर कोई भी आपत्ति, विरोध अथवा बाधा उपस्थित नहीं हो सकती। अपने जन्म-स्वत्व की प्राप्ति के लिए यही एक मात्र उपाय है। आपको चाहिए कि प्रातः सायं इसी की प्रार्थना करें, इसी को बढ़ावें। प्रार्थना खाली नहीं जाती। जन्मस्वत्व का भाव जग, यही बाधाओं को हटा कर सफल करेगा। यद्यपि ईश्वर को किसी की प्रार्थना की परवाह नहीं। तथापि आप अपनी मनोकामना के लिए, 'स्वराज्य' के लिए, प्रार्थना किया कीजिए। और, एक या दो वर्ष में आप अवश्य सफल हो जांयगे, आपको स्वराज्य मिल जायगा।

(अनु०)

जासूस या चुगलखोर ?

(लेखक—श्री० गोपाल रामचन्द्र नीरे, एम्०ए० बी० एससी०, स्टेट सर्जन, इन्दौर ।)

यूरप का वर्तमान महायुद्ध जब से शुरू हुआ तब से अनेक बुरी भली बातें—जो कि आज तक गुप्त रीति से हो रही थीं और घर ही घर में ही सब को मालूम न थीं वे प्रकट हुई हैं और हो रही हैं और युद्धसमाप्ति के बाद भी कुछ काल तक इसी भांति प्रकट होती रहेंगी। कितनी ही नवीन तोपें, बन्दूकें, भांति भांति की बारूद, प्राणघातक वायु, विमानयंत्र, विमान, इत्यादि चीजों का आविष्कार हुआ और इस महायुद्ध में उनका प्रयोग भी हुआ। सम्पूर्ण तथा सब का भुकाव और उद्देश्य एक ही है और उसी ओर सब सभ्य राष्ट्रों की सारी बुद्धिमत्ता खर्च हो रही है; और वह उद्देश्य प्राणनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रत्येक बुद्धिमान महाशय अपनी सारी बुद्धिमत्ता एक इसी बात में खर्च करता है कि, "असंख्य प्राणियों की आहुति अत्यन्त स्वल्प काल में किस प्रकार दी जा सकती है।" बस, एक इसी विषय की ओर सारे राष्ट्रों के विचार और उद्योग अविश्रान्त रीति से हो रहे हैं; आज यद्यपि सारी बुद्धिमत्ता एक ही ओर खर्च हो रही है; और उसका फल तथा उद्देश्य बड़ा हुए दिखाई पड़ता है, तथापि, युद्ध की समाप्ति के बाद, शान्ति स्थापित होने पर, यदि कुछ सुशिक्षित, अल्पवयस्क इसमें शेष बचेंगे तो इन आविष्कारों का अन्य दृष्टि से विचार होकर उनकी उपयोगिता में भी भिन्न प्रकार का परिवर्तन हो जायगा। और इस समय जो आयुध प्राणहानि करने के उपयोग में आ रहे हैं वही आयुध उस समय प्राणरक्षा करने के काम में आने लगेंगे। जिनके कारण आज यह भय उपस्थित हो रहा है कि मानो बड़े बड़े राष्ट्र मिट्टी में ही मिल जायँगे, वही आविष्कार, युद्ध के बाद शान्ति स्थापित होते ही उन्हीं राष्ट्रों तथा अन्य राष्ट्रों के लिए भी, उन्नति का कारण बनेंगे। विद्युत्शास्त्र, पदार्थविज्ञानशास्त्र, सृष्टिशास्त्र, आरोग्य-शास्त्र, वैद्यशास्त्र, इत्यादि अनेक शास्त्रों को एकदम ऐसी उत्तेजना मिलेगी कि असंख्य नवीन तत्त्व, शास्त्रीय या वैज्ञानिक नियम, और कायदे, संसार के सम्मुख उपस्थित होंगे और हम लोगों के नित्य व्यवहार में कल्पनातीत अन्तर पड़ जायगा। अतएव जिन्हें इस भयंकर संग्राम के अन्तिम परिणाम का भय अथवा शंका मालूम होती होगी, वे यदि थोड़ासा धैर्य धरेंगे अथवा हिम्मत सम्हालेंगे तो उन्हें आगे चल कर स्वयं ही मालूम हो जायगा कि इस लड़ाई की भयंकर हानि से सांसारिक सुधार का पैर पीछे नहीं हटेगा; किन्तु आगे ही बढ़ेगा। लड़ाई में अपूर्व शौर्य तथा वीरश्री दिखलाने के बदले में वी० सी०, डी० एस० ओ०, इत्यादि अनेक पारितोषिक आज सिपाहियों को और उनके अधिकारियों को बड़ी धूमधाम से मिल रहे हैं। परन्तु जिन लोगों की बुद्धिमत्ता के बल पर इतने सैनिक लड़ रहे हैं उनके नाम तोपों की गर्जना में सुनाई नहीं देते; और उन्हें इस समय कोई नहीं पहचानता। तथापि यह कभी न भूलना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य के पारितोषिक का समय कभी न कभी आता है और तभी उसे वह मिलता भी है। यदि कोई पूछे कि लड़ाई के समय यश का भागी कौन है तो उत्तर यही मिलेगा कि "योद्धा"—ऐसे समय में कोई किसी कवि का नाम नहीं लेता। परन्तु शांति स्थापित होने पर योद्धा और सेनापतियों का नाम भूल जायगा और वे पीछे पड़ जायँगे; और इस समय जो एक कोने में रह पड़े हैं, परन्तु वास्तव में जो राष्ट्रों की उन्नति और यश के आधारस्तम्भ हैं, वे फिर एक के बाद एक आगे आने लगेंगे और उनके यश की तेजोराशि के सामने सिपाही और सेनापति इस प्रकार फीके पड़ जायँगे जैसे चन्द्र के सामने उडुगण! अस्तु। अब यह देखने के लिए, कि इस युद्ध में सम्पूर्णतया, राष्ट्रों का कदम कितना आगे बढ़ा है, हम सब लोगों को एकचित्त से यह प्रार्थना करते रहना चाहिए कि "हे ईश्वर, अब शीघ्र शांति कर।"

ऊपर हमने जो यह प्रदर्शित किया है कि आज कल सारे जगत् की बुद्धिमत्ता एक ही मार्ग से और एक ही उद्देश्य की ओर, अर्थात् प्राणहानि के शीघ्र उपायों का आविष्कार करने की ओर, खर्च हो रही है सो अक्षरशः ठीक है। वर्तमान समय में यूरप के सारे राष्ट्र इसी विचार में मग्न हैं कि प्रत्येक बात में कम खर्च कैसे करें। और इसका हेतु भी यही है। कम खर्च से रहकर, जहां तक हो सके, युद्ध में मदद करने से हमारा पक्ष बहुत दिन तक ठहर सकेगा—इसका हेतु क्या है? वही प्राणहानि। परन्तु एक बार जहां लड़ाई समाप्त होकर शांति स्थापित होगई कि फिर अवश्य ही इन सब प्रयत्नों के कारण अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों और नियमों में अन्य प्रकार का ही परिवर्तन होगा। किंबहुना इस समय का सारा अर्थशास्त्र ही लौटपौट हो जायगा। हम ऊपर यह दिखला चुके हैं कि आज कल जो विचार अथवा आचार संसार में हो रहा है उस सब का हेतु एक ही है और वह हेतु "त्वरित प्राणहानि" करना ही है। तो फिर इस सारी आचार-विचार-श्रेणी को, युद्ध के भयंकर हथियारों में से ही एक हथियार क्यों न माना जाय? अधिक क्यों—प्रत्यक्ष भयंकर हथियारों से भी इस विचार-श्रेणी को अधिक तीव्र और घातक मानने में भी अतिशयोक्ति न होगी। इसका कारण लीजिए—प्रत्यक्ष तलवार अथवा तोप जहां एक बार ढल कर तैयार होगई तहां समझ लो कि उसका कर्तव्य निश्चित होगया—यह निश्चित होगया कि वह इतने मनुष्यों का, इतने अन्तर पर, इतने मिनट में अथवा इतने सेकंड में संहार करेगी। परन्तु वह तलवार अथवा तोप जिसने तैयार की है उसकी बुद्धि की तीव्रता और विशालता, उसकी बनाई हुई तलवार अथवा तोप पर से, ठहराई नहीं जा सकती। क्योंकि उसने जो एक तोप तैयार की, और वह तैयार होगई, तथा उसकी शक्ति भी निश्चित होगई—तथापि उसके बनानेवाले के सिर में ये विचार सदैव चक्कर काटते ही रहेंगे कि इससे भी अधिक जोरी तोप कैसे तयार की जाय। ऐसी दशा में यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्रत्यक्ष तोप की अपेक्षा उसका गुण अधिक प्रबल, भयंकर और घातक है।

बस, इन्हीं तीव्र और त्वरित प्राणनाशक यंत्रसाधनों में ही 'जासूस' को भी एक अत्यन्त भयंकर हथियार समझना चाहिए। तोप, तलवार, बन्दूक, बम, शेल, ग्रेनेड, गैस, इत्यादि सभी अपनी अपनी तौर पर, निस्सन्देह बड़े भयंकर प्राणघातक हैं। पर ये सब दृश्य हैं। वे कहां हैं, कैसे हैं, कितने हैं, क्या करेंगे और कैसे करेंगे—इत्यादि उनके सम्बन्ध की सारी बातें प्रत्यक्ष हैं, अतएव उनका सब हाल मालूम हो सकता है। यही नहीं; बल्कि—उनके दृश्यत्व के कारण, उनकी शक्ति अथवा प्रभाव मालूम होते हुए भी, उनका विशेष डर नहीं मालूम होता। परन्तु "जासूस-" रूपी हथियार का यह हाल नहीं है। 'जासूस' दृश्य है—और आंखों के सामने खड़ा है; पर दिखाई नहीं देता! सत्य ही है; मित्र बन कर घर में आता है, मीठी मीठी बातें बोलता है, घर के भीतर-बाहर की सब बातें देख जाता है; और शत्रु को चुपके से सब खबर दे देता है। अब आप ही बतलाइये, जासूस बड़ी बड़ी तीव्र तलवारों से और तोपों से भी अधिक तीव्रतर अथवा तीव्रतम हथियार है या नहीं? सच तो यह है कि यदि 'जासूस' का इतना महत्त्व न होता तो जर्मनी ने इस "जासूस-विभाग" की इतनी उन्नति करने में इतना धन क्यों व्यय किया होता! इस युद्ध में 'जासूस' की तीव्रता और घातकता जितनी प्रकट हुई है उतनी और कभी नहीं हुई थी। विवाहित स्त्री अथवा पति, स्कूलमास्टर, घर का नौकर, होटेल की नौकरानी अथवा मजदूर,—इत्यादि अनेक बाहर-भीतर के काम, जैसा मौका आ पड़े, अपनी बुद्धिमानी, शिक्षा, अथवा व्यवसाय का

न करते हुए, स्वीकार करना कुछ कम साहस की बात नहीं य में प्रीति न रखते हुए भी प्रेम करना, धन और ऐश्वर्य र भी दरिद्री का भेष करना, विद्या रखते हुए भी मूर्ख का कर वैसे ही बर्तना, इत्यादि कार्य कुछ साधारण नहीं हैं— ने के लिए बड़े साहस की आवश्यकता है। इसके लिए दमा, आत्मसंयमन, निर्लज्जता, इत्यादि भी चाहिए। इसको पर्व बिलकुल भूलना चाहिए और समय आ पड़ने पर प्राणों देने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके लिए देशाभि- र स्वामिभक्ति के मसाले में आत्मा को वर्षों तक रखना । "मैं" स्वयं ही मेरा राजा और मेरा देश है, रा राजा और मेरा देश ही "मैं" है—इस प्रकार जा और देश के लिए तादात्म्य आजाता है तब त कल्याण के लिए विचारवान् और विद्वान् मनुष्य ासूस' बनने के लिए तैयार हो जाता है और जासूस में जो संकट आते हैं उन्हें सहने के लिए तैयार हो जाता ह बात जर्मनी के जासूसों की संस्था ने अच्छी तरह से सिद्ध है। कंस को जिस प्रकार ध्यान में, मन में, स्वप्न में, काष्ठ में, पाषाण में, कृष्ण देख पड़ता था उसी प्रकार "ब्रिटिश" ो जर्मन जासूस दिखाई देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं नी की "जासूस-संस्था" अत्यन्त निन्दनीय है; और उस देखा जाय तो जर्मनी अवश्य ही अत्यन्त नीचता का और र कार्य करता है; पर लड़ाई का विचार एक ओर रख कर र्फ "जासूस-संस्था" का ही विचार किया जाय तो उसकी ा सहज ही मालूम हो सकती है। जब हम इस बात को लगते हैं कि लड़ाई में इस संस्था ने कितने हज़ार और कितने प्राणियों की हानि की होगी तब हमारे शरीर पर रोमांच जाते हैं। परन्तु जब हम इस संस्था की देशभक्ति स्वामि- स्वार्थत्याग और कष्टसहिष्णुता पर विचार करते हैं तब श्चर्य से चकित होना पड़ता है। ब्रिटिश अथवा मित्र-राष्ट्रों ासूस-संस्था है। "बायस्काउट्स" जासूस संस्था की ही है। यह संस्था कहीं प्रौढ़ावस्था में तो कहीं बाल्यावस्था में देती है। यह जहां प्रौढ़ावस्था में है वहां यह फल भी रही है; और जहां यह बाल्यावस्था में है वहां यह इस समय में पड़ी है स्वयं आप ही आप हँसती अथवा रोती है। अब 'वसन्त' के दिन देशाभिमान और स्वामिभक्ति की पूजा चाहिए और उस पूजा में "सुवर्णपुष्प दक्षिणायें प्राणै सह समर्पयामि" कहना चाहिए। इस संस्था के सभासद घर लोग चाहिए—अर्थात् वे विश्वसनीय होने चाहिए। उन्हें न अपने घर की ही पूरी पूरी जानकारी चाहिए; किन्तु अपने एक एक मनुष्य की भी जानकारी चाहिए। जब तक यह न हो कि किस को, किस समय, किस जगह और कौनसी ने से हमारा कार्य होगा और हम अपना कर्तव्य पूर्ण कर तब तक 'जासूस' खबर किसको देगा? अतएव "जासूस" ले मनुष्य को न सिर्फ देशाभिमानी और स्वामिभक्त ही होना चाहिए; किन्तु विद्वान् और चतुर होने के साथ साथ स्वार्थत्यागी भी होना चाहिए। आंखें होकर अंधा, कान हो कर बहरा, मुंह होकर गूंगा होने का बहाना जिसे कर आवे वही जासूस बन सकता है।

अस्तु। यहां तक यह बतलाया गया कि लड़ाई के समय में "जासूस" एक कैसा भयंकर हथियार है। पर, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, जब शांति स्थापित हो जायगी तब इस जासूसी संस्था का उपयोग क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है। जर्मनी आज २५ वर्ष से लगातार इस संस्था के लिए परि- श्रम और धन खर्च करता आया है, तब आज उसकी यह संस्था इतनी अच्छी संगठित हुई है कि जिसका उपयोग उसे आज अच्छा हो रहा है। वास्तव में देखा जाय तो जासूस बनना मानो एक प्रकार से नीति के विरुद्ध आचरण करना ही है। क्योंकि जासूस को एक ओर के समाचार दूसरी ओर चुपके से अर्थात् चोरी से बत- लाने पड़ते हैं। इसके मूल में जब तक देशसेवा और स्वामिभक्ति, ये दो गुण हैं तब तक स्वार्थत्याग आप ही आप होता रहता है। ऐसे जासूस एक प्रकार से विश्वसनीय होते हैं। परन्तु जहां बिल- कुल स्वार्थमूलक जासूस होने की सम्भावना रहती है वह देशा- भिमान और स्वामिभक्ति का कहां ठिकाना? ये जासूस स्वार्थ के लिए अपने स्वामी को बेच लावेंगे, देश के साथ बेईमानी करेंगे; स्वार्थसाधन के लिए अपने स्वामी की प्रतिष्ठा धूल में मिला देंगे— किंबहुना उसके शरीर और प्राणों के विरुद्ध भी उमड़ेंगे। अपने स्वामी और उसके विश्वासु मित्रों में अथवा सेवकबन्धुओं में वैमनस्य करा देंगे और उन्हें स्वामी के यहां से दूर हटा कर उनकी जगह स्वार्थी नीच, भाड़े के बदमाश लाकर खड़े कर देंगे। सहानुभूति और प्रेम दिखला कर विश्वास को बातें करेंगे, अथवा विश्वास दिख- लाकर झूठी सहानुभूति और प्रेम दिखलायेंगे। जब देखेंगे कि अपनी धोखेबाज़ी खुलती है तब स्वामी की हत्या तक कर डालेंगे। इन्हें कुल नहीं मालूम, शील की परवा नहीं, विद्या की लाज नहीं, प्रतिष्ठा का लेश नहीं। ये धन के लिए विषयाधीन होंगे और अपने साथ मालिक को भी विषयपंक में फँसावेंगे; और जब वह गले तक उस विषयरूपी कीचड़ में फँस जायगा तब स्वयं उसके सिर पर चढ़ कर दाबेंगे। ये 'जासूस' नहीं हैं—चुगुलखोर हैं। जासूस शत्रु के राज्य की हानि करता है और चुगुलखोर स्वयं अपने राज्य की हानि करता है। बस यही दोनों में फर्क है! जासूस, अपने मालिक और अपने देश के हित के लिए सच्ची सच्ची खबरें ला- देता है और चुगलखोर, स्वयं अपने हित के लिए, स्वार्थ के लिए; अपनी निज की, स्वकपोलकल्पित, बिलकुल झूठी और द्वेषमूलक खबरें बतलावेगा। इसलिए युद्ध के समय जिस प्रकार जासूसों की परख राजा के लिए आवश्यक है उसी प्रकार शांति के समय, चुग- लखोरों की पहचान भी अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा ये चुगुल- खोर इधर उधर की झूठी मनगढ़न्त खबरें राजकर्मचारियों को बत- ला कर, व्यर्थ की अशांति उत्पन्न करा देते हैं।

पि-प्रदर्शिनी (सन् १९१५) की कमेटी का चित्र।

लड़का शीशे म देखता है।

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का दिसम्बर मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए० ।)

दिसम्बर के पहले सप्ताह में रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट जर्मनों के अधिकार में चली गई और उत्तर ओर बुजू शहर तथा बुजू नदी की सीध में रूसो-रोमानियन सेना हटने लगी। सम्पूर्ण दिसम्बर मास यह सेना शत्रु से लड़ते हुए पीछे हटती रही। मार्ग में बुजूगाँव के पास और सरत-रिमनी के मैदान में बड़ी बड़ी लड़ाइयां हुईं। सरत-रिमनी की लड़ाई दिसम्बर के अन्त में पांच दिन होती रही। इस लड़ाई में जर्मन सेना की खूब सत्यानाशी हुई; परन्तु अन्त में रूसो-रोमानियन सेना को पीछे हटना पड़ा। जनवरी के प्रारम्भ में रूसो-रोमानियन सेना, बड़े प्रबन्ध के साथ, फाक्शनी के पूर्व में, सीरेद नदी का मैदान पकड़ कर, सीरेद और डान्यूब के संगम तक, जमी हुई है। सीरेद नदी तक का दक्षिणी मोल्डेविया एक प्रकार से जर्मनों के अधिकार में चला गया है और सम्पूर्ण मोल्डेविया पर अधिकार कर के रूस के बेसारेबिया प्रान्त में प्रवेश करने के लिए, सम्पूर्ण मोल्डेविया में, उत्तर से लेकर दक्षिण तक, जर्मनी बराबर प्रयत्न कर रहा है। मोल्डेविया में जो लड़ाइयां हो रही हैं सो सिर्फ रोमानियन सेना से ही नहीं हो रही है, किन्तु दक्षिण ओर की, रूस की, मुख्य सेना से ही यह भिड़न्त है, इससे जान पड़ता है कि जनवरी में जर्मनी कुछ बहुत आगे नहीं बढ़ सकेगा। मोल्डेविया की इन लड़ाइयों को यदि एक ओर रख दिया जाय तो दिसम्बर मास, प्रत्यक्ष युद्ध की दृष्टि से, बिलकुल मन्द ही व्यतीत हुआ। कोवेल के मैदान में और गेलेशिया में जर्मनी ने कुछ बढ़ने का उद्योग किया, सो इसलिए कि जिससे रूस मोल्डेविया की ओर अपनी बड़ी सेना न ला सके। इधर फ्रांस और इटली की रणभूमि में भी छोटी बड़ी लड़ाइयां हुईं। पर वास्तव में देखा जाय तो दिसम्बर मास में चारों ओर एक प्रकार का सन्नाटा ही सा रहा। बुखारेस्ट का पतन होने पर युद्धवार्ता का मानो जीवन ही चला गया। तब से, युद्ध के समाचार निर्जीव और शिथिल से आने लगे। और युद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य बात को ही महत्व प्राप्त होगया। रूस के प्रधान मंत्री ने त्यागपत्र दे दिया और नवीन मंत्रिमंडल नियत हुआ; फ्रांस के मंत्रिमंडल में भी परिवर्तन हुआ; और इंगलैंड में मि० आस्किथ का मंत्रिमंडल बदला तथा मि० लायड-जार्ज प्रधान मंत्री बने। मि० आस्किथ के शासनकाल में मंत्रिमंडल पन्द्रह बीस लोगों से बना हुआ था; परन्तु लाइड जार्ज ने जब देखा कि इस महायुद्ध के समान विकट प्रसंग में बीस पच्चीस लोगों के झुंड के द्वारा राज्य-शकट ठीक ठीक नहीं चलाया जा सकता तब उन्होंने अपना मंत्रि-मंडल सिर्फ पांच मनुष्यों का ही रखा और बड़ी तेजी के साथ, परन्तु विचार-पूर्वक, कार्य चलाने का निश्चय किया। यद्यपि मंत्रिमंडल पांच मनुष्यों का बनाया गया है, तथापि इंगलैंड की सारी राजसत्ता वास्तव में इस समय सिर्फ तीन मनुष्यों के ही हाथ में है। यह त्रिमूर्ति, मि० लाइड जार्ज, मि० बोनारला और मि० बालफोर्ड, इन तीन महाशयों की ही बनी है। और इसी को सम्पूर्ण मंत्रिमंडल कहना चाहिए। मि० बोनारला की दृष्टि समुद्री सेना पर है। मि० बालफोर्ड का मुंह 'परराष्ट्र' की ओर है; और मि० लाइड जार्ज ने तलवार हाथ में पकड़ी है। यही इस त्रिमूर्ति की छवि है। यही इसका चित्र है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामुद्रिक विभाग और परराष्ट्रीय विभाग का कार्य विशेष महत्वपूर्ण है, तथापि मुख्य प्रश्न इस समय यही हो रहा है कि पृथ्वी पर किस प्रकार विजय प्राप्त किया जाय; और इसी कारण लाइड जार्ज के हाथ के मजबूत ने ही अपनी ओर सब का ध्यान आकर्षित कर लिया है। यही बात यदि संक्षेप में कही जाय तो इस समय सिर्फ लाइड जार्ज के ही ऊपर इंगलैंड की सारी राज-सत्ता आ रही है। अर्थात् मि० लाइड जार्ज मंत्रिमंडल हैं, मि० लाइड जार्ज ही इंगलैंड की पार्लिमेंट हैं, और मि० लाइड जार्ज ही इंगलैंड की सम्पूर्ण राजसत्ता हैं! विलक्षणता पर भी यहां तक

रोमानिया की रणभूमि।

कता है कि इस समय इँगलैंड ने, इस महायुद्ध के विकट प्रसंग से र पाने के लिए ही अपनी पार्लिमेंटरी राज्यप्रणाली एक ओर रख र, एकमुखी राज्यव्यवस्था, अनेक पर्दों की आड़ में, यहां तक के अपने को भी न मालूम होने देते हुए, प्रारम्भ की है। सच है, ठिन अवसर पर ऐसा करना ही पड़ता है अथवा यह कहिये कि से मौके पर स्वयं ही ऐसा हो जाता है। राजनीति का यह ायदा ही है कि मनुष्य की बुद्धिमत्ता के द्वारा बहुमुखी राजसत्ता ा परिपोष किया जाय और महायुद्ध के समान विकट प्रसंग में सी बहुमुखी राज्यव्यवस्था से एकमुखी राज्यव्यवस्था उत्पन्न कर ी जाय। ग्रीस और रोम के प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के रिवर्तनों के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। परमात्मा करे, इँग- ंड का वर्तमान व्यवहार, उस प्रकार के परिवर्तनों के उदाहरणों ी मालिका में, न पिरोया जावे! अस्तु। इधर मि० लाइड जार्ज ा तीनमुखी अथवा पंचमुखी मंत्रिमंडल स्थापित हुआ और उधर ़ारेस्ट का पतन हुआ—ये दोनों घटनाएँ एक ही समय में हुईं। ़ारेस्ट का पतन होते ही अचानक जर्मनी ने अपनी पार्लिमेंट का धिवेशन किया; जिसमें जर्मनी के प्रधान मंत्री ने यह आघोषित केया कि रोमानिया में प्राप्त किये हुए इस विजय के अवसर पर र्मन सम्राट् को यूरप की वर्तमान सत्यानाशी पर बड़ी दया आ ही है और उनका ऐसा विचार है कि अब और भी आगे यदि सी प्रकार युद्ध जारी रखा जायगा तो, जनता की दृष्टि से और रमेश्वर के न्याय-सिंहासन के आगे जर्मन राष्ट्र अपराधी कहा ायगा। इसलिए जर्मनी ने, अपने मित्रराष्ट्रों की सम्मति से, अमे- रेका के प्रेसिडेन्ट डा० विलसन् को मध्यस्थ करार देकर, सन्धि के ेए हाथ बढ़ाया है। नाटक में जिस प्रकार मेहतर का स्वांग लेकर केदम कोई प्रेक्षकों के सामने आजावे और इससे जैसे अद्भुतरस त्पन्न हो जाय उसी प्रकार, जब कि वर्तमान महायुद्ध की अगली यारी के लिए सारे राष्ट्र अपनी अपनी कमरें ज़ोर से कस रहे हैं ब, जर्मनी ने एकाएक अपना संधि का हाथ बढ़ाया इस कारण बको बड़ा विस्मय हुआ और युद्धवार्ता छोड़ कर सब लोग सन्धि- ार्ता ही करने लगे। जर्मनी ने प्रे० विलसन के पास अपना सन्धि- त्र भी भेज दिया, विलसन साहब ने उसे मित्रराष्ट्रों के पास भेज दिया। जर्मनी की सन्धिवार्ता मित्रराष्ट्रों की राजधानी में पहुँचते ही, स्थान स्थान के उत्तरदायी राजनीतिज्ञों ने प्रबलता के साथ सन्धि का निषेध किया। पहले अपने विजय की पुकार कर के फिर जयोत्साह के मद में जर्मनी ने जो यह सन्धि का हाथ बढ़ाया है उसको पकड़ना मानो अपना पराजय स्वीकार करना है! ऐसी दशा में ऐसी अपमानास्पद सन्धि कौन स्वीकार कर सकता है? बस यही ध्वनि रूस, इटली, फ्रांस और इँगलैंड, इन चारों देशों में एक ही समय सुनाई देने लगी। रूसने तो यह प्रकट किया कि जब तक हमारे देश में शत्रु रहेगा और जब तक रोमानिया और सर्विया की स्वतंत्रता पूर्ववत् ही नहीं हो जायगी तब तक हम सुलह नहीं कर सकते; इटली ने यह आश्वासन दिया कि चाहे कुछ भी हो, हम अपने मित्रों को छोड़ेंगे नहीं; फ्रांस ने यह निश्चय किया कि जब तक हमारे देश से शत्रु निकल न जायगा और बेलजियम पूर्ववत् अपनी स्वतंत्रता प्राप्त न कर लेगा तब तक हम अपनी तलवार फिर म्यान में न रख जायेंगे! और इँगलैंड के नवीन प्रधान मंत्री मि० लायड जार्ज ने पार्लिमेंट के अपने पहले भाषण में ही यह स्पष्ट कह दिया कि जर्मनी को अपने कुकर्मों का पश्चात्ताप होना चाहिए; और जो हानि अभी तक हुई है वह सब पूरी कर देनी चाहिए; और इस बात का विश्वास दिलाना चाहिए कि फिर कभी ऐसा काम जर्मनी के हाथ से न होगा, तभी सन्धि हो सकती है—अन्यथा नहीं। सैनिक सेवा करनेवाली इँगलैंड की पुरानी सेना नष्ट हो जाने पर इँगलैंड ने बहुजनसमाज से नवीन सेना स्थापित की, नवीन तोपें ढालीं और नवीन गोलाबारूद बना कर, एक बार नहीं, दो बार नहीं, तीन बार नहीं, किन्तु कई समय के मसाले जर्मनों को बराबर दिया! अब इस प्रकार इँगलैंड को अपनी शक्ति का अनुभव हो रहा है और जब कि उसे इस बात का विश्वास है कि यह शक्ति अभी ...ी वह और भी बढ़ती ही जायगी तथा सब राष्ट्रों का मनुष्य- ...र द्रव्यबल चाहे जितना और चाहे जिस प्रकार खर्च किया ...ेगा और इसीलिए जब कि उसने अपना नवीन प्रबल मंत्रि-

मंडल भी स्थापित कर लिया है, तब फिर जर्मनी का विजय स्वीक कर के और उसका सैनिक यंत्र जैसा का तैसा रख कर इंगलैं सुलह कैसे कर सकता है? छोटे छोटे राष्ट्रों का रक्षक और मनुष्य का पालक इँगलैंड यदि इस प्रकार सुलह कर लेगा तो उसके न में कालिमा नहीं लगेगी? इस प्रकार मि० लाइड जार्ज, मि आस्क्विथ, मि० बोनार्ला, लार्ड कर्जन, इत्यादि सभी नये-पुराने रा नीतिज्ञों ने जर्मनी की सन्धिवार्ता का निषेध किया। अन्त जर्मनी की यह सन्धिवार्ता स्वच्छन्दता का लक्षण समझी गई औ ऐसा मालूम होने लगा कि जैसे अब सन्धिविषयक विचार लो के सामने से हट ही जायेंगे। परन्तु इतने ही में प्रे० विलसन सन्धि के पुरस्कर्ता के तौर पर प्रकट हुए; और उन्होंने संधि के विषय दोनों पक्षों को एक पत्र भेजा। जब कि अभी तक दोनों पक्ष, ब प्रबलता से, लगातार, यही कहते आये हैं कि संसार का कल्या करना चाहिए; मनुष्यता की रक्षा करनी चाहिए; सबलों को इ प्रकार चल कर, कि जिससे दुर्बलों का जीवन दुःखमय न हो, प मात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए; और अपने राष्ट्र य यथोचित वृद्धि कर के स्थान स्थान के सब राज्यकर्त्ताओं को मनुष्य जाति का हितसाधन करने की ओर ध्यान देना चाहिए—त फिर प्रेसिडेंट विलसन पूछते हैं कि, "महायुद्ध के उच्च उद्देश्य ज कि तुम दोनों के एक ही हैं तब फिर तुम लड़ते क्यों हो?" इँग लैंड कहता है कि मैं छोटे छोटे राष्ट्रों का रक्षक हूं; जर्मनी कहता है कि मैं छोटे छोटे राष्ट्रों से छेड़छाड़ नहीं करना चाहता। इँगलैंड यूरप की सभ्यता को पूज्य मानता है और जर्मनी पद पद पर क्रिश्चि यनदेव की दुहाई देता है। अपने साम्राज्य की रक्षा करने के अति- रिक्त इँगलैंड की और कोई कामना नहीं है; और जर्मनी तो दूसरे के तिनके को भी हाथ न लगाते हुए, हां खाली पड़ी हुई जगह में ही अपनी वृद्धि कर के, अपने देश में ही घिरी हुई अपनी शक्ति को, पिचपिच की तकलीफ़ से छुड़ाना चाहता है। वह सिर्फ़ उसे खुली हवा दिखाना चाहता है। प्रे० विलसन कहते हैं कि तुम दोनों के उद्देश्य जब परस्पर विरुद्ध नहीं हैं तो फिर तुम एक दूसरे के सिर फोड़ कर खून-खच्चर क्यों कर रहे हो? और यदि कोई यह कहे कि मूढ़ता से जब ये दोनों मरकट रहे हैं तो मरने कटने दो, तुम्हें बीच में पड़ कर क्या करना है—इस पर डा० विलसन कहते हैं, यूरोपीय सभ्यता की प्रतिष्ठा यूरप की तरह अमेरिका भी मानता है; और मनुष्यत्व की रक्षा के लिए यूरप की तरह अमेरिका को भी परमेश्वर के सामने उत्तर देना पड़ेगा; तथा छोटे छोटे राष्ट्रों की रक्षा योग्य रीति से होती है या नहीं—सो देखने का काम केवल यूरप पर ही छोड़ देने से काम नहीं चलेगा। दुर्बलों की रक्षा, मनु- ष्यता की संस्थापना और परमात्मा की प्रसन्नता—ये तीनों बातें युद्ध करने वाले राष्ट्रों को जितनी प्रिय हैं उतनी ही अमेरिका को भी प्रिय हैं। महायुद्ध के और भी जारी रहने से इन उच्च उद्देश्यों को हानि पहुँचने की सम्भावना है—ऐसी दशा में अमेरिका को, अन्य कारणों से न सही तो, कम से कम इन उद्देश्यों की रक्षा के लिए तो अवश्य ही, योद्धा राष्ट्रों के बीच में, मध्यस्थ की तौर पर, खड़ा होना पड़ेगा। और थोड़ी देर के लिए उपर्युक्त उच्च उद्देश्यों की बात भी एक ओर रख दो—तो भी, केवल स्वार्थ की दृष्टि से भी, अमेरिका को इस झगड़े के मिटाने का प्रयत्न करना ही पड़ेगा। इसका कारण प्रेज़िडेन्ट विलसन यह बतलाते हैं कि यूरोप के इस महायुद्ध की यह विषम दावाग्नि अब कुछ इस रीति से भड़क रही है कि उसकी चिनगारियां अमेरिका तक आये बिना नहीं रह सकतीं। और इसलिए अमेरिका में आग लग जाने के पहले ही, अपने घर को बचाने के लिए, अमेरिका को यूरप की आग बुझानी चाहिए। बस इसी आशय का पत्र तैयार कर के प्रे० विलसन ने, यह देखने के लिए कि संधि का कोई मार्ग निकलता है या नहीं, सब योद्धा राष्ट्रों से दोनों पक्षों के वकील अपने पास भेज देने की प्रार्थना की। वास्तव में आज यूरप की ऐसी दशा है कि अमेरिका की समुचित प्रार्थना का अपमान करने में किसी का लाभ नहीं हो सकता। जर्मनी ही यदि अमेरिका के साथ किसी प्रकार की हठ- धर्मी या लापरवाही का बर्ताव करेगा तो न केवल व्यापारी की दृष्टि से, किन्तु सरकारी दृष्टि से भी अमेरिका को मित्रराष्ट्रों की मदद करनी पड़ेगी। और अमेरिका चाहे प्रत्यक्ष युद्ध में शामिल न हो...

[illegible]पि यदि वह सिर्फ अपने द्रव्यबल और बुद्धिबल से ही मित्रराष्ट्रों को पूरी पूरी सहायता करेगा तो समझना चाहिए कि जर्मनी का जीवन अब आगे एक आध साल से अधिक नहीं चल सकेगा। और यदि अमेरिका की विवेकबुद्धि की मित्रराष्ट्रों ने परवा न की तो द्रव्यबल और यंत्रबल की दृष्टि से मित्रराष्ट्रों का ही पलड़ा हलका हो जायगा और अभी जो अन्तिम विजय मित्रराष्ट्रों का ही निश्चित समझा जाता है उसमें कुछ न कुछ सन्देह उपस्थित हुए बिना न रहेगा। बात ऐसी है कि अमेरिका की दृष्टि जिस ओर घूम जायगी उसी ओर अन्तिम विजय निश्चित समझा जायगा। अमेरिका के इसी महत्व के कारण और डा० विलसन की निष्पक्षपातपूर्ण सरलता के कारण सन्धिविषयक प्रस्ताव को अस्वीकार करने का साहस कोई भी न करेगा। अस्तु। अब प्रे० विलसन के पत्र पर इस प्रकार की टीका होने लगी कि सन्धि की शर्तें पहले जर्मनी अपनी ओर से उपस्थित करना प्रारम्भ करे तो विचार होते समय उपस्थित रहने में सुभीता होगा। बाद को, जनवरी के प्रारम्भ में यह प्रकट हुआ कि जर्मनी अपनी सन्धि विषयक शर्तें प्रे० विलसन को बतलाने के लिए तैयार हो गया है। यदि प्रे० विलसन समझेंगे कि जर्मनी की शर्तें इस ढंग की हैं कि जिनको मध्यस्थ की हैसियत से मित्रराष्ट्रों के सामने रखने में कोई हानि नहीं है तो फरवरी मास में सन्धि की शर्तों पर सिर्फ विचार करने के लिए अमेरिका में सभा होगी और प्रे० विलसन की मध्यस्थी से कोई न कोई मार्ग निकल कर एप्रिल-मई मास के अन्त तक सन्धि हो कर युद्ध की परिसमाप्ति हो जायगी। और यदि जर्मनी की शर्तें ऐसी होंगी कि प्रे० विलसन के समान सरल महाशय भी मध्यस्थी न कर सकेंगे तो फरवरी में ही जर्मनी का सन्धि का हाथ, युद्ध की नवीन तैयारी की धूमधाम में लुप्त हो जायगा। और यदि जर्मनी की शर्तें ऐसे होंगी कि प्रे० विलसन के समान पुरुष के बीच में पड़ने से कोई हानि न होगी तो फिर यह प्रश्न है कि क्या बिना जर्मनी का पूर्ण पराभव किये ही और बिना उसका सैनिक यंत्र तोड़े ही, मित्रराष्ट्र सन्धि पर हस्ताक्षर कर देंगे? इस प्रश्न का विचार दो दृष्टियों से करना चाहिए। पहली दृष्टि है प्रतिष्ठा की और दूसरी है लाभ-हानि की। यद्यपि ये दोनों दृष्टियां सदैव परस्पर संलग्न ही समझी जाती हैं, तथापि व्यवहार में कुछ अन्तर तक उनका भेद स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यह सच है कि लाभ हानि के पेट से ही प्रतिष्ठा की उत्पत्ति होती है और प्रतिष्ठा के कारण ही लाभ-हानि को स्थिर स्वरूप प्राप्त होता है। तथापि यदि प्रतिष्ठा और लाभ-हानि इन दोनों दृष्टियों को अलग अलग रख कर ही विचार किया जाय तो भी कोई हानि नहीं है। अच्छा तो पहले हमें लाभ-हानि की दृष्टि से विचार करना चाहिए। लाभ-हानि का विचार करते समय रूस इंग्लैंड, फ्रांस और इटली का पृथक पृथक, और सब का साथ भी, विचार करना चाहिए। अच्छा मान लीजिए कि फ्रांस और जर्मनी दोनों को प्रे० विलसन की मध्यस्थी स्वीकार होगई तो प्रे० विलसन साधारणतया फ्रांस के लिए आज क्या करेंगे? और जो कुछ वे करेंगे वह फ्रांस को कहां तक पसन्द आयेगा? जर्मनी यदि इस बात पर राज़ी हो गया कि वह फ्रांस का जीता हुआ प्रदेश छोड़ देगा और बेलजियम को फिर वैसा ही स्वतंत्र कर देगा; और प्रे० विलसन ने भी यदि इस बात पर अपनी सम्मति प्रदर्शित कर दी तो बतलाइये फ्रांस क्या करेगा? जब यह निश्चय हो जायगा कि युद्ध की हानि दोनों पक्ष अपनी अपनी सहन करें तब फिर, फ्रांस के भावी अभ्युदय की दृष्टि से, पृथक पृथक स्थिति में विचार करते हुए, ऐसी सन्धि पर हस्ताक्षर करने में फ्रांस के लिए कोई हानि नहीं है। फिर फ्रांस को इस प्रकार का डर रखने का भी कोई कारण नहीं दिखता कि जर्मनी का सैनिक यंत्र कायम रहने से आगे उसे कोई अधिक भय होगा। सन् १८७० के फ्रांस जर्मनी युद्ध की अपेक्षा इस महायुद्ध में फ्रांस ने बहुत अधिक सैनिक सफलता प्राप्त की है। वर्डून की लड़ाई से स्वसंरक्षा का आत्मविश्वास फ्रांस में उत्पन्न होगया है; और गुप्तचरों के चक्रव्यूह की योजना अब [illegible] दशा को पहुंच गई है कि रूस और इंगलैंड के समान मित्रों की सहायता मिलने पर आस्ट्रो-जर्मनों को आगामी युद्ध में, फ्रांस की सीमा के बाहर ही रोक रखने में कोई बाधा नहीं आ सकती। इसके अतिरिक्त [illegible] देशों की रक्षा किले करते थे, अब आगे से गुप्तचरों के चक्रव्यूह यह काम करेंगे। गुप्तचरों के चक्रव्यूहों ने राष्ट्रीय संरक्षा का काम पहले से अब अधिक सुलभ कर दिया है। इस परिवर्तित स्थिति पर ध्यान देने से मालूम होता है कि सन् १८७० के बाद फ्रांस को जर्मनी का जैसा डर था वह डर वर्तमान महायुद्ध की समाप्ति के बाद न रहेगा। परन्तु यह प्रश्न फिर भी उपस्थित रहेगा कि जर्मनी का सैनिक यंत्र तोड़े बिना यदि सुलह कर ली जायगी तो फिर इस बात की जवाबदारी कौन लेगा कि जर्मनी फिर भी ऐसी ही उद्दंडता न करेगा? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यह जवाबदारी गुप्तचरों के चक्रव्यूहों ने ले ली है, यह जवाबदारी, वर्डून की लड़ाई में देख पड़नेवाली फ्रांस की शूरता ने ले ली है; यह जवाबदारी फ्रांस के सम्मिलित स्वार्थत्याग ने ले ली है। सारांश यही है कि, इस जवाबदारी की शक्ति जब स्वयं फ्रांस में ही मौजूद है तब फिर व्यर्थ इस बात का विचार करते हुए समय व्यतीत करना किस बुद्धिमान को पसन्द आ सकता है? इस प्रकार फ्रांस की दृष्टि से जब हम पृथक विचार करते हैं तब जान पड़ता है कि प्रे० विलसन के समान शान्त और विचारवान् मध्यस्थ की बात को अस्वीकार करने का उसे कोई कारण नहीं है। हां, यदि प्रे० विलसन इंगलैंड और रूस का मन न रिझा सके तो फिर अवश्य ही ऐसे मित्रों को छोड़ कर फ्रांस कदापि अपनी तलवार म्यान में न ले जायगा। अच्छा, अब रूस के सम्बन्ध में विचार कीजिए। रूस से सन्धि करने में, जर्मनी के, साधारणतया, इस प्रकार के विचार जान पड़ते हैं। पोलैंड का स्वतंत्र राज्य जो जर्मनी ने अपने पंजे के नीचे निर्माण किया है उसे रूस स्वीकार करे। रूस पहले ही पोलैंड का स्वतंत्र राज्य निर्माण करना चाहता था—ऐसी दशा में, यह झगड़ा अवश्य उपस्थित होगा कि अब पंजा किसका माना जाय? अन्य शर्तों का मेल यदि मिलाते बना तो प्रे० विलसन, पोलैंड में जर्मनी और रूस दोनों के पंजों को न्यूनाधिक प्रमाण से अवश्य मिला सकेंगे और तब यह नहीं कहा जा सकता कि यह बात मध्यस्थ के उपाय के बाहर की है। इसके बाद बालकन प्रदेश और टर्की के विषय में प्रश्न आता है। महायुद्ध के सारे झगड़े का केन्द्र यही है। रूस के राज्यकर्त्ताओं की सौ दो सौ वर्ष से यह महत्वाकांक्षा चली आती है कि बालकन प्रदेश और टर्की पर हमारा प्रभाव रहना चाहिए। क्या रूस इस महत्वाकांक्षा को तिलांजलि देने के लिए तैयार होगा? जर्मनी कहेगा कि बालकन प्रदेश को अब मैंने अपने पंजे में लिया है और तुर्किस्तान से संलग्न होगया है। ऐसी दशा में इसको महायुद्ध का "अनिवार्य अर्थ" समझ कर निष्कारण शोक न करते हुए, रूस अपना अगला मार्ग क्यों न देखे? रूस को एक ईरान देश है, वहां से दक्षिणी समुद्र की ओर बढ़ कर वह अपनी आन्तरिक उन्नति का मार्ग क्यों न निकाले? इसके मार्ग से रूस के व्यापार के लिए भूमध्यसागर पहले की तरह खुला ही रहेगा। फिर रूस की इसमें क्या हानि है। रूमानिया, सर्विया, मांटिनिग्रो, इत्यादि छोटे छोटे राष्ट्र हैं, सब इस महायुद्ध में बढ़े हुए पंख भर उखाड़े जावेंगे, परन्तु वहां की जनता जब आन्तरिक स्वतन्त्रता का उपभोग कर के अपना [illegible] दिन काटने लगेगी तब उसके मार्ग में जर्मनी बाधा [illegible] डालेगा? बालकन प्रदेश और तुर्किस्तान पर [illegible] द्वारा [illegible] का उद्योग क्या स्वयं रूस ने गत सौ वर्षों में दो तीन बार नहीं किया? रूस को यह उद्योग दो तीन बार छोड़ नहीं देना पड़ा? यह उद्योग [illegible] के बाद रूस की उन्नति नहीं हुई? [illegible] अथवा [illegible] बार यदि फिर उसे यह उद्योग छोड़ देना पड़ेगा [illegible] उन्नति में बाधा क्यों आवेगी? रूस को [illegible] महत्वाकांक्षा हृदय में रखने वाले रूस के [illegible] इस महायुद्ध में [illegible] [illegible]

ला दुसरा प्रबल पक्ष रूस में है। इस समय रूसी
डल में बराबर परिवर्तन हो रहा है। और सेनापति हिंडन-
कथनानुसार रोमानिया का पीछे हटना, यदि रूस को भाई
पीछे हटने का, महीने डेढ़ महीने में, कारण हुआ, तो रूस
त्वाकांक्षी पक्ष प्रबल नहीं रह सकता। रूस ने यदि तुर्कि-
षयक महत्वाकांक्षा छोड़ दी तो प्रे० विल्सन की मध्यस्थी
लैंड के स्वीकार कर लेने में कोई मानहानि नहीं है। इस
में इँगलैंड का एक बाल भी बांका नहीं हुआ और आगे
भी सम्भावना नहीं। तुर्की साम्राज्य के जर्मनी के छाया के
ाने के कारण कुछ लोगों ने यह मिथ्या भय उपस्थित कर दिया
अब इजिप्ट और भारत की अंगरेजी सत्ता में भी जर्मनी आगे-
ाका लगायेगा। पर थोड़ा सा विचार करने से ही यह
हो जायगा कि इस डर में भी कुछ तत्व नहीं है। इँगलैंड
ले की तरह व्यापारी चैनबाज़ों का राष्ट्र नहीं है; किन्तु
योद्धाओं का साम्राज्य बन गया है। और इस साम्राज्य
नक शक्ति जर्मनी के ही समान, किंबहुना उससे कुछ अधिक
हां, इँगलैंड ने जब तक अपना सैनिक यंत्र नहीं बनाया
तक जर्मनी का यह हौआ था! पर अब क्या है? इँगलैंड
की तो बात ही जाने दीजिए; हां, जर्मनी अवश्य इँगलैंड
क यंत्र को डरा करेगा। यूरप अथवा इजिप्ट में इँगलैंड,
ौर रूस की त्रिकुटी को आस्ट्रो-जर्मनों से डरने का कोई
नहीं है। गुप्तचरों के चक्रव्यूह और इँगलैंड की नवीन सैनिक
, महायुद्ध के पहले से भी अधिक सुलभता के साथ,
राजकीय क्रांतियों के प्रश्न आज हल कर दिये हैं। हां,
छ डर रह गया है तो इतना ही कि जर्मनी के पंख के नीचे
ों का सैनिक यंत्र, ईरान के द्वारा भारत को कष्ट देगा। पर
व्यर्थ ही है; क्योंकि ईरान में जब रूस का बांध बँध
तब यदि जर्मनी तुर्कों का सैनिक यंत्र बना सकेगा तो क्या
भारत का सैनिक यंत्र बना ही न सकेगा? जर्मनी यदि तुर्की
यंत्र बनायेगा तो इँगलैंड भारतीय यंत्र बनायेगा। अब इस जगह
प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इँगलैंड, फ्रांस और रूस, इन तीनों
साम्राज्यों की सैनिक शक्ति जब इतनी भारी है तब जर्मनी के मुख
पर का विजयरंग उतारे बिना उनको सुलह क्यों करना चाहिए?
क्योंकि इँगलैंड को इस बात का पक्का विश्वास है कि १६१७ में
जर्मनी के मुँह पर का लाल विजय-रंग उतार कर उसकी जगह
काला रंग पोत देंगे। ऐसी दशा में चाहे रूस डगमगाने भी
लगे तो उसे सम्हाल कर इँगलैंड को और भी दो तीन वर्ष क्यों
न लड़ना चाहिए? परन्तु फिर प्रे० विल्सन की मध्यस्थी को कहां
जगह मिलेगी? सिर्फ एक जगह मध्यस्थ के लिए अवकाश रह
जायगा; और वह अवकाश यही है कि इँगलैंड, फ्रांस, जर्मनी अथवा
रूस, सब जगह, अब सैनिक व्यवसाय और परम्परा के नेता कम
हो रहे हैं और राष्ट्रीय सेना के राष्ट्रीय नेता आगे बढ़ने लगे हैं।
ऐसी सेना को अपने देशों पर आनेवाली आपत्ति भर मालूम होती
है; परन्तु महत्वाकांक्षा का मोह राष्ट्रीय सेना को बांध नहीं सकता।
और भी दो तीन वर्ष यदि युद्ध जारी रहा तो स्वकीयों को हाथ में
लेना, दूरवालों के गले में गुलामगीरी बांधना, स्वदेश में परधर्म के
और भिन्न वर्ण के लोगों को काम-काज के लिए रहने देना, नवयु-
वकों का अपरिमित नाश होने के कारण बहुभार्यों की रूढ़ि जारी
करना, द्रव्यनाश के कारण आगे-पीछे अमेरिका और जापान की
साहूकारी सिर पर ले कर उद्योगधंधे में उनके आश्रित हो जाना,
इत्यादि अनेक आधि-व्याधियां यूरोप के पीछे लगेंगी। ये आधि-
व्याधियां ऐसी हैं जो कि दो-तीन वर्ष बाद प्राप्त किये हुए विजय
को कुरूप बनाती हैं, इस कारण, रूस यदि कहीं डगमगाया तो प्रे०
विलसन की मध्यस्थी को आज ही अवकाश मिल जाने की संभा-
वना है। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि जनवरी-फरवरी मास में
अमेरिका की संधि-चर्चा की ओर और मोलडेविया की लड़ाइयों
की ओर सब का ध्यान जायगा।

खंडवा का हाईस्कूल-बोर्डिंग १६१६।

हेडमास्टर श्रीयुत कालेले की बदली के समय लिया हुआ फोटो।

सों की पंक्ति—हाईस्कूल खंडवा के शिक्षक लोग—श्री० हरिदास, श्री० पां० कुलकर्णी, श्री० गोलवेलकर; श्री० य० ज० कुलकर्णी; श्री० चांदोरकर; मि० मुहम्मद;
श्री० धारे; श्री० गोखले; श्री० कालेले हेडमास्टर; श्री० शास्त्री; श्री० मावलगकर; श्री० लोकराम; मि० अजीमुल;
श्री० मोतीलाल; श्री० मंडलोई; श्री० नाईक; श्री० तात्या कालेले। [फोटोग्राफर—एम० वी० नाथू, खंडवा।]

और पूना का फर्ग्युसन कालेज—ये दो ही कालेज भारत में जो स्वावलम्बनपूर्वक हजारों विद्यार्थियों को अब तक उच्च दे चुके और दे रहे हैं। उपर्युक्त सोसायटी यह भी विचार रही है कि अगले 'नववर्ष' से "न्यू इँग्लिश (हाई) स्कूल" हिन्दी का क्लास खोल दिया जाय। इस सोसायटी के संचा-की इस दूरदर्शिता और राष्ट्र-प्रेम की जहाँ तक प्रशंसा करें ही है। आशा है कि इसका आदर्श ले कर पूने के अन्यान्य में भी हिन्दी भाषा की श्रेणियां खोली जायँगी। इधर प्रो० महिला-विद्यालय में भी हिन्दी भाषा के अध्ययन का अच्छा है। क्योंकि हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक पं० हरि राम-दिवेकर एम० ए० इसी विद्यालय में महोपाध्याय (प्रोफेसर) इस प्रकार पुण्य नगरी में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ते खकर किस देशहितैषी का हृदय हर्षोत्फुल्ल न होगा?

हमारा युद्ध-लेख।

दी के मासिकपत्रों में युद्ध के विषय में मार्मिक लेख प्रायः बिल-नहीं निकलते। परन्तु चित्रमयजगत में प्रारम्भ से ही इस विषय में त चर्चा होती आई है। विशेषतः युद्ध के विषय में हमारा किस मार्मिकता के साथ लिखा जाता है सो पाठकों को बत-की आवश्यकता नहीं। इसके लेखक पंडित कृष्णाजी प्रभाकर लकर महाराष्ट्र के अत्यन्त मार्मिक लेखकों में से हैं। जिस तिलक महाराज के हाथ में 'केसरी' का सम्पादन-भार था मय तिलक महाराज के पीछे रह कर आप ही प्रायः सम्पा-कार्य किया करते थे। आप उस समय लेखनकला में 'प्रति-' कहे जाते रहे हैं। यहां तक कहा जाता है कि आप, केसरी म्पादकता में, अपने विचार तिलक के विचारों से हूबहू मिला। एक बार का ज़िक्र है कि एक क्रमप्राप्त लेख लिख कर तिलक ज कहीं बाहर कार्यवश चले गये। दूसरे सप्ताह में उस क्रम का का लेख खाडिलकर महाशय को लिखना पड़ा। परन्तु तिलक ज ने जब यह लेख पढ़ा तब कहा कि बस, इस लेख में, इन ों के अतिरिक्त, हम भी और कुछ न लिखते! इससे सिद्ध है पको जो "प्रति-तिलक" कहा जाता है सो बिलकुल उचित मारे पाठक, जो कि ध्यानपूर्वक युद्धलेख का अध्ययन निर-रते होंगे, वे जान सकते हैं कि युद्ध के विषय में आपके अनु-कितने सत्य निकलते हैं। आप अपने युद्धलेख में केवल युद्ध-ओं का ही वर्णन नहीं करते; किन्तु सैनिक दाँव-पेचों का भी ार्मिकता और मनोरंजकता के साथ वर्णन करते हैं। आपका ध्यान से पढ़ने से परराष्ट्रीय अनेक राजनैतिक प्रश्नों की [illegible] सहज ही हो जाती है। खाडिलकर महाशय, सम्पूर्ण र अपने विषय का अनेक देशी और विदेशी पत्रों के आधार [illegible] कर के अपना लेख लिखते हैं और यही कारण है कि लेख इतना मार्मिक, और राजनैतिक, तथा सैनिक दाँवपेचों का [illegible] करनेवाला होता है। विषय की वर्णनशैली कैसी मार्मिक चतुरतापूर्ण होती है सो पाठकगण जानते ही हैं। हम अपने ों से आग्रहपूर्वक निवेदन करते हैं कि वे इस लेख का ध्यान-अध्ययन प्रतिमास अवश्य किया करें। इस लेख से युद्ध [illegible] स्वरूप, प्रति मास का, उन्हें सहज ही मालूम होगा, क्योंकि समाचारपत्रों से सिर्फ ऊपर की ही फुटकर घट-[illegible] हो सकती है।

इस वर्ष की कांग्रेस।

वर्ष की कांग्रेस जिस धूमधाम के साथ होने की आशा थी [illegible] के साथ हुई। प्रतिनिधियों की संख्या लगभग ढाई [illegible] हो गई थी और दर्शकों की संख्या [illegible] थी। इतनी [illegible] दर्शकों [illegible] कांग्रेस के [illegible] पर नहीं देखी [illegible] लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, श्रीमती एनीबेसेंट, बा० [illegible] राष्ट्रीय [illegible] का [illegible] स्वागत किया गया। सभापति बा० [illegible] का भाषण [illegible] रहा। [illegible] कहते हैं कि [illegible] स्वराज्य के योग्य नहीं हैं [illegible] भाषण [illegible] दिया है। परन्तु [illegible] यह विचार किया [illegible] के लिए शीघ्रता न करनी चाहिए—इस पर समाचारपत्रों ने टीका-टिप्पणी की है। शेष बातों की दृष्टि से आपका भाषण, एक गम्भीर राजनीतिज्ञ के योग्य ही है। देशभक्ति और देशाभिमान की मात्रा भी उसमें कम नहीं है। इस वर्ष की कांग्रेस में सब से विशेष उल्लेखनीय विषय "स्वराज्य" का रहा। इस विषय पर तिलक-प्रभृति अनेक देशभक्तों के जोरदार भाषण हुए; परन्तु इस विषय पर आन्दोलन किस प्रकार प्रारम्भ किया जायगा और आन्दोलनकर्ता कौन कौन विशेष व्यक्ति नियत किये जाँय-इस बात पर कोई भी विचार कांग्रेस में नहीं हो पाया। लो० तिलक ने इस विषय को कमेटी में उठाया था; पर सभापति ने नियम-विरुद्ध कह कर छोड़ दिया। अस्तु। दूसरी उल्लेखयोग्य महत्व की बात इस वर्ष यह थी कि "राष्ट्रीय सभा" में "राष्ट्रीय भाषा" का प्रवेश इस वर्ष अच्छा रहा। जब कोई हिन्दी बोल सकनेवाला वक्ता मंच पर खड़ा होता और पूछता कि "हिन्दी में या अँगरेजी में?" तभी "हिन्दी हिन्दी" का शोर मच जाता था; और अन्त में हिन्दी में ही उसे वक्तृता देनी पड़ती थी। कई वक्ताओं ने हिन्दी में भाषण किया जिनमें दादासाहब खापर्डे का हिन्दी-भाषण लोगों ने बड़े कौतूहल और उत्साह के साथ सुना। महात्मा गान्धी का हिन्दी प्रेम प्रसिद्ध ही है। आपने तो एक प्रस्ताव पेश करते समय भरी सभा में कह दिया कि जब तक कांग्रेस का प्रत्येक नेता राष्ट्रभाषा हिन्दी नहीं सीख लेता तब तक मैं राष्ट्रीय सभा में बोलने को तैयार नहीं और मदरासी रिपोर्टरों से आपने साफ कह दिया कि जब तुम हिन्दी सीख कर आओ तब हमारे व्याख्यान की रिपोर्ट लो। इस वर्ष सभापति का भाषण भी हिन्दी में होगया है और अभ्युदय कार्यालय प्रयाग से ॥) में मिलता है।* कांग्रेस के साथ औद्योगिक कान्फरेंस, राय सीतानाथ बहादुर की अध्यक्षता में, समाजसुधार परिषद बा० ज्योतिःस्वरूप के प्रधानत्व में और राष्ट्रीय-भाषा-सम्मेलन महात्मा गान्धी के सभापतित्व में सफलतापूर्वक हुए। मुसलमान भाइयों ने मुसलिम लीग और उर्दू कान्फरेंस भी की। हिन्दू सभा का भी एक 'विराट' अधिवेशन हुआ। इस सभा के द्वारा 'हिन्दूजाति' और 'हिन्दूधर्म' की रक्षा का कार्य जब बराबर साल भर होता रहे तब इसका यह "विराटत्व" सार्थक हो—अन्यथा "कोरे हिन्दूधर्माभिमानियों की अकर्मण्य सभा" के अति-रिक्त इसे और कुछ भी न कहा जा सकेगा।

प्लेग की ओषधि।

इस समय भारतवर्ष में यत्र-तत्र प्लेग का बहुत जोर सुनाई दे रहा है। इस महामारी को भारत में आये मुद्दत होगई, पर अभी तक कोई निश्चित ओषधि इसकी जानी नहीं गई। स्वामी मंगलदेव जी साधु (आगरा) ने हमारे पास एक नुसख़ा भेजा है। आपका कथन है कि यह नुसख़ा प्लेग को रोकने के लिए बहुत ही लाभ-दायक सिद्ध हुआ है। प्रति दिन इसका सेवन करने से प्लेग या अन्य किसी भी वबाई बीमारी के होने का डर नहीं रहता। नुसख़ा इस प्रकार है:—

दक्खनी मिर्च (काली-मिर्च, सफ़ेद आतशाली) १ तोला,
कर्मांजी २ तोला,
नीम की कोंपल ताज़ी ४ तोला,
दोनामरुआ की पत्ती ४ तोला,

इन सब को बारीक पीस कर अरबेरी के बेर के बराबर गोली बना कर छाया में सुखावें, और एक एक गोली सुबह-शाम ठंढे पानी से निगल ली जावे। "बाबू प्रयागनारायण जी वकील, [illegible] पाड़ा, आगरा" की ओर से ये गोलियां धर्मार्थ भी [illegible] बाँटी जाती हैं। जिनके यहां इस समय प्लेग आदि हो उन मह-[illegible] को उक्त [illegible] साहब के यहां से गोलियां मँगा लेनी चाहिए। [illegible] जो लोग धर्मार्थ बांटने के लिए मँगावेंगे उन्हें अधिक तादाद में भी भेजी जा सकेंगी। और जो महाशय स्वयं बनाना चाहें [illegible] [illegible] [illegible] यह नुसख़ा प्रकट किया गया है। और उपर्युक्त वकील [illegible] महाशय भी सिर्फ धर्मार्थ ही [illegible] हैं, [illegible] नहीं। यह इस कारण लिखना पड़ा कि [illegible] [illegible]

* [illegible]

कार्य साधा करते हैं। समाचारपत्रों में इस प्रकार के अनेक विज्ञा-न निकलते रहते हैं। ऐसे स्वार्थी धूर्तों से संसार को सदैव बचना चाहिए।

कारखाना चलाने में ज्वालामुखी का उपयोग।

यह विज्ञान-युग है। इस युग में जो न हो सो थोड़ा है। और कोई युग होता तो शायद यह बात सच भी न समझी जाती कि पन्द्रह हजार हार्स-पावर (अश्व-शक्ति) का बिजली का कारखाना ज्वालामुखी की उष्णता के द्वारा चलाया जा सकता है। परन्तु इस विज्ञान युग में यह बात प्रत्यक्ष कार्यरूप में परिणत हो रही है। और सफलतापूर्वक हो रही है। आप कहेंगे, कहां? तो लीजिए। लड़ाई के कारण, जैसे सब जगह, उसी तरह इटली पत्थर का कोयला बहुत तेज हो गया है, एक टन कोयला पौंड को मिलने लगा है। परन्तु वहां के लोग इस तेजी से हो कर, भारतीय कारखानों की तरह, अपने कारखाने न करनेवाले नहीं। कोयले की महँगी होते ही उन्हों ने सृष्टि रे पदार्थों से ही उक्त काम लेने के उपाय ढूंढ़ने प्रारम्भ किये। उन्हें उपाय मिले भी। सच है, "जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां"—ाग सृष्टि को खोजते ही नहीं—अथवा यों कहिये, ठीक शिक्षा न के कारण हमारी आविष्कारिणी शक्ति मारी गई है! के टस्कनी प्रान्त के लोगों को, कोयले की जगह, उष्णता का लेने के लिए एक निराला ही उपाय सूझ पड़ा। उस प्रान्त के ाग की पृथ्वी में बड़े बड़े दरार पड़ गये हैं और इन दरारों यन्त तप्त वाष्प बड़ी तेजी के साथ निकल निकल कर आकाश ड़ा करती है। यह वाष्प प्रायः नियमित परिमाण में ही ा करती है और उसके साथ पृथ्वीमाता के पेट से और जो द्रव्य निकलते रहते हैं उनमें "बोरिक एसिड" भी रहता आज तक इस भाफ का उपयोग सिर्फ बोरिक एसिड निका-ौर आसपास के घरों में उष्णता उत्पन्न करने में होता था। उसमें से बहुत सी भाफ प्रायः व्यर्थ ही जाती थी। इसलिए कुछ काल पहले, वहां की एक विज्ञान-परिषद के सभापति गिनौरी कौंट ने सोचा कि इस भाफ की शक्ति का इससे और भी ।यदि कोई उपयोग किया जाय तो इससे बहुत लाभ हो। तदनु-उन्होंने अपने प्रयोग प्रारम्भ किये। अधिक वाष्प मिलने के उन्होंने पृथ्वी में और भी छेद किये। इन कृत्रिम छेदों से भी बहुत सी भाफ मिलने लगी। भूगर्भशास्त्र के द्वारा उन्हें मालूम कि यह, पृथ्वी के दरारों के द्वारा ऊपर निकलनेवाली भाफ, तल से ३०० फीट से लेकर ५०० फीट के नीचे की एक बड़ी चट्टान के भी नीचे से आती है। तब भाफ के इस मुख्य म स्थान तक नलों की योजना की गई। इन नलों के मुख का १२ से २० इंच तक है। यद्यपि नवीन छिद्र किये गये, तथापि के दरारों से जो भाफ आती थी उसमें कुछ भी न्यूनता नहीं हां, नवीन छिद्र जो किये गये हैं उनमें ५० फीट का अन्तर र रखा गया है। प्रत्येक छिद्र से लगभग एक हजार से ले कर ज़ार हार्स-पावर तक की भाफ प्रति घंटे निकलती है और ि उष्णता लगभग १५० डिग्री सें० के बराबर रहती है। प्रिंस री कौंट ने चालीस हार्स-पावर का एक इंजिन इस भाफ की र पर लगाया है और वह अच्छा चलता है। हां, यह बात है कि भाफ के साथ पृथ्वी के पेट से बोरेक्स और गन्धक दि पदार्थों का जो अंश आता है उसके कारण इंजिन जल्दी ब हो जाता है और उसकी दुरुस्ती जल्दी जल्दी करनी पड़ती तथापि आशा है कि प्रयत्न से यह त्रुटि भी दूर हो जायगी। न के बल पर, प्रकृति के पदार्थों का, संसार के लाभ के लिए, प्रकार उपयोग कर लिया जाता है, इसका यह एक बहुत क उदाहरण है। हमारे भारतवर्ष में भी न जाने कितने गिक साधन अदृश्यरूप से उपस्थित हैं, पर उनका आविष्कार वाला कोई नहीं निकलता। और यहां जिन प्राकृतिक पदार्थों आविष्कार होता भी है उनका श्रेय भारतीयों के भाग्य में नहीं । और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि जब तक भारत न-शिक्षा का प्रचार नहीं होता और भारतीयों के हाथ में ज्य के अधिकार नहीं आते तब तक यह दुर्गति दूर होने की आशा नहीं।

जापान के कागज़ के कारखाने।

वर्तमान महायुद्ध के कारण कागज के कारखानों की बड़ी दुर्दशा होगई है। न सिर्फ भारतवर्ष में ही, किन्तु सम्पूर्ण देशों में इस समय कागज का बड़ा भारी अभाव हो रहा है। परन्तु भारत के कारखाने तो प्रायः विदेशी मसाले पर ही अवलम्बित रहने के कारण बहुत ही शिथिल हो रहे हैं। इधर बाहर से भी कागज़ बहुत ही कम आता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यहां कागज की कीमत तिगुनी तक बढ़ गई है अधिकतर समाचारपत्र और मासिकपत्र बिलकुल कृश होगये हैं और पुस्तकों का निकलना भी कम हो गया है। यहां के लोग समझते थे कि जापान से कागज आने पर कुछ काम चलेगा; पर जापान से जैसी आशा थी, वैसा कागज नहीं आया। वहां स्वयं कागज की कमी हो रही है। १९१५ में जापान में १ लाख ४५ हजार टन कागज़ की खपत थी, इसमें से ६० हजार टन कागज़ कूटे हुए मसाले से और ८५ हजार टन रासायनिक रीति से तैयार किये हुए मसाले से बनाया जाता था। रासायनिक प्रणाली से तैयार किया हुआ ६० हजार टन मसाला जापान में बाहरी देशों से आता था और शेष वहीं तैयार होता था। युद्ध के कारण जब बाहर से मसाला न आने लगा तब वहां के लोगों का ध्यान कागज के व्यवसाय की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ; और इसकी जांच करने के लिए एक कमीशन बैठाया गया। इस कमीशन ने, कागज के लिए आवश्यक द्रव्यों की जांच कर के अपना यह मत प्रकट किया है कि यदि कारखानेवालों को रियायती भाव से जंगली लकड़ी पहुँचाई जायगी और अन्य आवश्यक सुभीते यदि उन्हें दिये जायँगे तो जापान में कागज का व्यवसाय खूब बढ़ सकता है। अब इस सम्मति के अनुसार वहां कार्य भी प्रारम्भ हो गया है और साकहालिन नामक मुकाम में कागज का मसाला तैयार करने के लिए कई कारखाने खुल गये हैं। इस प्रकार जापान ने अब कागज के व्यवसाय को अपने हाथ में लिया है और यदि वहां शीघ्र ही अधिक परिमाण में कागज़ तैयार होने लगा तो वहां से हमारे देश में कागज खूब आवेगा। परन्तु ऐसी आशा रखना परावलम्बी या परमुखापेक्षी ही होना है। इससे उचित तो यही है कि हम दूसरे के मुख की ओर देखने की अपेक्षा न रखते हुए स्वयं अपने देश में कागज के कारखाने खोलने का प्रयत्न करें। इस देश में बांस और नाना प्रकार की घास, इत्यादि कागज़ बनाने के इतने प्राकृतिक पदार्थ मौजूद हैं कि जितने अन्य किसी देश में नहीं हो सकते। ईख और गन्ने से रस पेर लेने के बाद जो डंठल रह जाते हैं उनसे भी कागज़ बन सकता है। भारतमाता के पास किस बात की, किस द्रव्य की, कमी है? हां, कमी है सिर्फ उद्योग साहस, और ज्ञान का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग करने की। परन्तु यह बात तो धीरे धीरे आगे बढ़ने से ही आवेगी। क्या हमारी सरकार और हमारे यहां के लक्ष्मीपुत्र इस ओर ध्यान न देंगे?

बने हुए देशभक्त।

मनुष्य एक बड़ा विलक्षण प्राणी है—इसे परमात्मा ने प्रत्येक बात में पूर्ण बनाया है—ऐसा कोई विषय नहीं जिसे इसने अपनी बुद्धि-मत्ता और चातुर्य से पवित्र अथवा अपवित्र न बनाया हो। देशभक्ति के समान पवित्र कार्य में भी इसने अपनी धूर्तता से अपवित्रता का संचार कर दिया है। इस प्रकार के, देशभक्ति के नाम को कलंकित करनेवाले, प्राणी प्रत्येक देश में प्रत्येक समय होते रहे हैं। अवश्य ही हमारा भारतवर्ष भी ऐसे प्राणियों से खाली नहीं है। ऐसे प्राणी ऊपर ऊपर देशभक्ति का नाम लेते हुए भीतर भीतर देशद्रोह किया करते हैं। इनमें ये गुण विशेष होते हैं—चतुर भाषण, चातुर्य, प्रेम, ठाटबाट, परिस्थिति के अनुसार अपने को बनाना, ऐसे कोई कार्य करते रहना जिससे लोग आकर्षित होते रहें। ऐसे प्राणी, सर्वसाधारण लोगों को वंचना करने के लिए देशभक्ति का पूरा पूरा स्वांग सदैव किया करते हैं। कहीं कोई देशभक्तिविषयक व्याख्यान देते हैं, कहीं कोई संस्था खोलते हैं, कहीं वर्णित तरह से सरकार की बुराई ही किया करते हैं, कहीं कोई सार्वजनिक सेवा का ढोंग रचते हैं, कहीं किसी संस्था में घुस कर, अपनी [illegible] बातों, चिकनी चुपड़ी बातों से, संस्था के कार्यकर्ताओं को मोहित

के उसके मंत्री बन बैठते हैं; कहीं समाचारपत्रों के प्रचार का ढोंग
ते हैं-ऐसी कोई सभा सोसाइटी नहीं होती जिसमें ये मुरैठा बांध कर
पहुँचते हों। और, लोगों को आकर्षित करने के लिए, यह
बलाने के लिए कि मैं सभा में कैसा बोलता हूं-सभा में बोलने
लिए बड़े उत्सुक रहते हैं, बीसियों शिफारसें इधर उधर से
ड़वाते हैं कि किसी तरह थोड़ा समय मिल जाय! परन्तु इनकी
पूर्ण हलचल का यदि कोई परिणाम देखो तो कुछ नहीं—यदि
ई इस विचार से देखे कि इनकी इस हलचल से अन्त में देश या
राज का कोई लाभ वास्तविक होता है या नहीं—तो कुछ हाथ
हीं आता। ये प्राणी धूर्तता में अव्वल नम्बर के रहते हैं। अपने
र के बड़े बड़े लोगों से मिलते रहना—अपनी मीठी मीठी
पलूसी की बातों से हँस हँस कर उनको रिझाते रहना-बस यह
का विशेष कार्य रहता है। इनमें से कोई कोई देशभक्त ऐसे भी
और नीच होते हैं कि पुलिस के बिलकुल नीचे दरजे के
र ओछे विचारवाले कर्मचारियों से सदैव मिलते जुलते
ते हैं और उनके द्वारा सच्चे कार्यकर्ता देशभक्तों की झूठी शिका-
पुलिस के उच्च अधिकारियों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।
भी कभी ये अपने प्रयत्न में सफल भी होते हैं, जिससे निरपराधी
शसेवकों को कष्ट में पड़ना होता है। ऐसे धूर्त देशभक्त प्राणी
जा-प्रजा दोनों के दुश्मन होते हैं, देश में मिथ्याचार तो फैलाते
हैं; व्यर्थ की अशान्ति फैलाने के भी कारण होते हैं। इनका
न के निर्वाह का कोई स्थायी धंधा नहीं होता, किन्तु ऊपर
र कई प्रकार के धंधे करते हुए देखे जाते हैं। अपने देशभक्ति
आवरण के द्वारा लोगों की वंचना कर के ही ये अपना निर्वाह
या करते हैं; प्रायः सार्वजनिक कार्यों के नाम पर चन्दा उड़ाया
ते हैं। ऐसे वंचक और धूर्त देशभक्त प्रायः सब प्रकार की
नकारी रखते हैं। लेखकों में लेखक, वक्ताओं में वक्ता, समाज-
धारकों में समाज-सुधारक, डिटेक्टियों में इधर की उधर और
र की इधर लगानेवाले डिटेक्टिव, कभी सरकार की प्रशंसा
गीत गानेवाले; कभी उसकी अत्यन्त निन्दा करनेवाले, सफेद-
श, होते हैं। देश की नवीन पीढ़ी पर ये बहुत बुरा प्रभाव डालते हैं;
अपने बनावटी और अशुद्ध प्रेम, मधुरभाषण, इत्यादि के द्वारा नई
ढ़ी के छोकरों को बुरी तरह से आकर्षित कर लेते हैं; और प्रायः
पना सा ही उन्हें भी मिथ्याचारी बना देते हैं। सब प्रकार से
वकता का प्रचार करना ही इनके जीवन का कार्य रहता है।
शभक्ति दिखला कर भोलेभाले लोगों को फाँसना और उनसे कुछ
ठना ही इनका व्यवसाय रहता है। यह सब गुण-कर्म-स्वभाव, उनमें
सा कुछ भिना रहता है कि साधारणतया लोगों को यह परखना
यः असम्भव हो जाता है कि ये सच्चे देशभक्त हैं या मिथ्या-
री! प्रायः बाजारू लोग उन्हें देशभक्त ही समझते हैं और इसी
रण तो उनके जाल में फँसते हैं। परमात्मा ऐसे लोगों से संसार
बचावे!

हिन्दी-सम्पादक की योग्यता।

हमने पिछले अंक में हिन्दी-साहित्यसम्मेलन पर चर्चा करते
ए यह आशा प्रकट की थी कि इस वर्ष मध्यप्रदेश में हिन्दी-साहित्य-
म्मेलन साहित्यप्रेम का जो बीज बो गया है उससे शीघ्र ही
ध्यप्रदेश साहित्य का एक हराभरा क्षेत्र बन जायगा। हमारी
ह आशा सफल होने के लक्षण बहुत शीघ्र दिखाई दे रहे हैं।
जे श्रीवेंकटेश्वर-समाचार में हमने यह विज्ञापन देखाः—

"एक हिन्दी-सम्पादक चाहिये।

मध्यप्रदेश के एक जिले में नया हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकालने और उसका यथो-
चित सम्पादन करने के लिए एक सम्पादक की आवश्यकता है। हिन्दी और अंगरेजी
की अच्छी योग्यता होने के अतिरिक्त पत्र-सम्पादन-कला और वर्तमान धार्मिक,
सामाजिक आदि चर्चा का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। वेतन योग्यतानुसार दिया
जायगा। प्रशंसापत्रों सहित प्रार्थनापत्र निम्नलिखित पते पर भेजना चाहिए।

सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई।"

विज्ञापन को पढ़ कर हमारे मन में एकदम यह प्रश्न उठा
. इस योग्यता का सम्पादक हिन्दी-संसार में कहां से और कैसे
मिलेगा। उपर्युक्त विज्ञापन की "योग्यता" में तीन चार बातें
हैं:—(१) हिन्दी और अँगरेजी की अच्छी योग्यता, (२) पत्र-
सम्पादनकला का अच्छा ज्ञान, (३) वर्तमान धार्मिक, सामाजिक
आदि ('आदि' में क्या राजनैतिक का अन्तर्भाव सम-
झा जाय?) चर्चा का भी अच्छा ज्ञान। साथ ही साथ—इन सब
बातों की योग्यता उस सम्पादक में है या नहीं—इसका प्रमाण देने
के लिए "प्रशंसापत्रों" की भी आवश्यकता है। इन सब बातों
को लेकर अब हिन्दी-संसार पर दृष्टि डालना चाहिए। कई वर्ष
हुए एक ग्रेज्युएट (विमल बी० ए० पास) विद्वान् हिन्दी-लेखक ने
कहा था कि हिन्दी में जितने सम्पादक हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं
है कि जो यूनिवर्सिटी की सिढ़ियों पर चढ़ा हो। हम समझते
हैं कि यही स्थिति अब भी हिन्दीसमाचारपत्रों के सम्पादकों की बनी
हुई है। इसका मूल कारण यही है कि युनिवर्सिटी में हिन्दी भाषा
का प्रवेश न होने के कारण हमारे ग्रेजुएटों में मातृभाषा का प्रेम
ही नहीं होता; और साहित्यसेवा करने की ओर उनका ध्यान ही
नहीं जाता है। ये लोग कोरे एम० ए०, बी० ए० होते हैं; युनिवर्सिटी
के कोर्स के अतिरिक्त उनके ज्ञान का वृत्त और आगे कुछ भी नहीं होता,
अँगरेजी का भी ज्ञान पूरा पूरा उन्हें नहीं होता। अँगरेजी पढ़ लेने
के बाद, बस या तो उन्हें 'मास्टर' या 'वकील,' या 'डाक्टर' होने
या और किसी सरकारी नौकरी पाने की फिक्र पड़ जाती है।
साहित्यसेवा तो दूर रही-देशसेवा का अन्य कोई भी मार्ग उन्हें
सूझता नहीं—किंबहुना यह कहना चाहिए कि उन्हें शिक्षा ही ऐसी
मिलती है कि जो देशसेवा या साहित्यसेवा का भाव उनमें पैदा
नहीं होने देती। ऐसी दशा में हिन्दी और अँगरेजी का विद्वान्
सम्पादक कैसे मिले? अब दूसरी बात, अर्थात् 'सम्पादनकला' का
विचार कीजिए। सम्पादनकला का ज्ञान प्राप्त करने के दो ही मुख्य
साधन हैं—उक्त विषय के ग्रन्थ पढ़ना और किसी योग्य सम्पादक
के नीचे रह कर कार्य सीखना; फिर भी जब तक किसी सुयोग्य
सम्पादक की सेवा में रह कर कार्य न सीखा जाय तब तक, केवल
पुस्तकें पढ़ लेने ही से, कार्य नहीं चल सकता। फिर पुस्तकें भी तो
उस विषय की यहां नहीं मिलतीं; और मिलें भी तो रुचि कहां है?
जड़ ही कमज़ोर है। हिन्दी में सम्पादन-कला की बड़ी दुर्दशा है,
एक भी सम्पादक, अपने उत्तरदायित्व को अच्छी तरह समझने-
वाला हिन्दी में मिलेगा या नहीं—इसमें शंका ही है। इसके अनेक
कारण हैं। पर मुख्य दो ही जान पड़ते हैं, (१) सम्पादनकला-
सम्बन्धी अनुभव का अभाव, और (२) स्वतंत्रता का अभाव।
समाचारपत्र निकालनेवाले मालिक; और लेख लिखनेवाले सम्पा-
दक के विचार नहीं मिलते। मालिक यदि अपने स्वार्थ की
ओर खींचता है तो सम्पादक 'लोकहित' की विशेष दृष्टि रख-
कर अपने लेख लिखना चाहता है—इधर प्रेसएेक्ट की तलवार
अलग ही दोनों के ऊपर लटका करती है! अब बतलाइये सम्पा-
दनकला का अनुभव प्राप्त किये हुए हिन्दीसम्पादक कहां से मिलें!
तीसरी बात धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक चर्चा का ज्ञान प्राप्त
होना है-हम समझते हैं यह ज्ञान अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता
है। एक सम्पादक को तमाम देशों और भाषाओं के समाचारपत्र,
मासिक पुस्तकें और सामयिक तथा ऐतिहासिक पुस्तकों का अध्य-
यन निरन्तर करते रहना चाहिए और उस अध्ययन को अपने देश
की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साम्पत्तिक दशा के साथ
तुलते हुए (तुलनात्मक) ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; और फिर अपने
देश की दशा के अनुकूल—उसके हित पर दृष्टि रखते हुए—अपने
विचार प्रकट कर के लोगों को अपने अभीष्ट मार्ग की ओर
चलाना चाहिए। यह सम्पादनकला का अन्तरंग है, और इस कला
का बहिरंग समाचारपत्र के कलेवर में रहता है-सब प्रकार के
पाठकों के लिए उसे उपयोगी बनाना—सुपाठ्य गंभीर लेख, मनो-
रंजक लेख, समाचार; हास्यलेख; आन्दोलन करनेवाले लेख, सम्पा-
दकीय मार्मिक टिप्पणियां-समयोपयोगी और ऐतिहासिक आख्या-
यिकायें, कारटूस (स्थितिदर्शक मनोरंजक चित्र) इत्यादि बातें
बाह्य अंग हैं। परन्तु यह सब बाह्य और आन्तरिक विषय ऐसा ही
होना चाहिए कि जो सम्पादक की दृष्टि से उसके देश की दशा में
अभीष्ट परिवर्तन करनेवाला हो। अस्तु, ऐसा सम्पादक उक्त हमारे
सेठजी को कैसे और कहां से मिलेगा और यदि कोई अधकचरा
मिले भी तो किसी समाचारपत्र को छोड़ कर ही आयेगा। क्योंकि

[illegible]ी बैठे हुए सम्पादक मिलना असम्भव है। अच्छा यदि कोई सम्पादक अर्द्धदग्ध मिल भी गया तो "प्रशंसापत्र" कहां से लावेगा? कौन देगा? ऐसे अनेक प्रश्न हैं। हम तो समझते हैं कि जब तक अच्छे "हेड" (मस्तिष्क) वाले अँगरेजी के विद्वान् इस ओर नहीं झुकेंगे तब तक योग्य सम्पादक नहीं मिलेंगे। पर, ये यदि सम्पादक बनेंगे तो फिर देश के गरीबों का अनेक रूप से खून चूसनेवाला कौन बनेगा? इधर उधर के झूठे तर्क भिड़ा कर मुकदमा कौन लड़ावेगा? विलायती दवाइयों में यथेच्छ पानी मिला कर देश के धन को वाहियात तरह से अपने पास कौन जमा कर रखेगा? इसी प्रकार अन्य नौकरी पेशावालों को भी समझ लीजिए। ऐसी दशा में, जब सुयोग्य सम्पादक मिलना दुर्लभ हो रहा है तब, यही उपाय है कि सेठजी के समान; जिन श्रीमानों को सुयोग्य सम्पादकों की आवश्यकता होती है, वे सुयोग्य सम्पादक तैयार करने के लिए कुछ स्वार्थत्याग करें, अर्थात् पहले तो योग्य नवयुवकों को अपने आश्रय में रख कर सम्पादन कला की शिक्षा दिलावें; और दूसरे, ऐसे लखपती श्रीमान् लोग मिल कर क्या एक सम्पादकीय स्कूल नहीं खोल सकते हैं — जैसे श्रीमान् गोखले ने "भारत-सेवक-समिति" खोल कर देश-सेवक तैयार करने का उपक्रम कर दिया उसी प्रकार हमारे सेठ [illegible] श्रीमानों को "सम्पादन-कला-शिक्षक-समिति" खोल देना चाहिए, जिस से सुयोग्य सम्पादक, जो अभी तक दुर्लभ हैं, आगे सुलभता से मिलने लगें।

शिक्षा की आवश्यकता।

(१)

सब से प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में,
शिक्षा बिना ही पड़ रहे हैं, आज हम सब क्लेश में।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है।

(२)

जब तक अविद्या का अँधेरा हम मिटावेंगे नहीं,
जब तक समुज्वल ज्ञान का आलोक पावेंगे नहीं।
तब तक भटकना व्यर्थ है, सुख-सिद्धि के सन्धान में,
पाये बिना पथ पहुँच सकता कौन इष्ट स्थान में?

(३)

वे देश जो हैं आज उन्नत और सब संसार से—
चौंका रहे हैं नित्य सब को नवनवाविष्कार से।
बस ज्ञान के संचार से ही बढ़ सके हैं वे वहां,
विज्ञान-बल से ही गगन में चढ़ सके हैं वे वहां।

—भारत-भारती

भारत में स्त्री-शिक्षा।

लिखना-पढ़ना जाननेवाली स्त्रियों की संख्या प्रति सहस्र [illegible] प्रकार है:—

	१८९१	१९०१	१९११
हिन्दू-स्त्री	३	५	८
सिक्ख	२	७	१४
जैन	६	१८	४०
बौद्ध	२२	४२	५८
पारसी	३६८	५३८	६६७
मुसलमान	२	३	४
ईसाई	६७	१२५	१३५

अँगरेजी पढ़ना-लिखना जाननेवाली स्त्रियों की संख्या [illegible] दशसहस्र इस प्रकार है:—

	१९०१	१९११
हिन्दू	१	२
सिक्ख	०	२
जैन	१	३
बौद्ध	१	२
पारसी	६६१	१७०४
मुसलमान	०	१
ईसाई	६६५	९०४

साहित्य-चर्चा।

ग्रन्थ-साहित्य।

[illegible]—लेखक स्वामी सत्यदेवजी। मूल्य ॥-); मिलने का पता [illegible]माला आफ़िस, प्रयाग। हिन्दी की वर्तमान लेखन-कला पर विचार प्रकट करने के अतिरिक्त, निबन्धलेखन के नियम, उदाहरण, [illegible] पर भी विस्तृत विवेचन किया है। हिन्दी-संसार में अपने [illegible] एक ही पुस्तक है। जो नवयुवक हिन्दी में लेख लिखने [illegible] प्राप्त करने के अभिलाषी हैं उन्हें इस पुस्तक के अनुसार लेख लिखना सीखना चाहिए।

[illegible]—उक्त स्वामी जी का प्रसिद्ध व्याख्यान पुस्तकाकार [illegible] ।-)। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के बुरे परिणामों का अच्छा [illegible] गया है, और फिर राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता [illegible] व्यापक स्वरूप का वर्णन किया है। जो लोग भारत की [illegible] के विषय में विचार करना चाहते हैं उन्हें तो इस पुस्तक से [illegible] ही, पर सर्व साधारण को भी इस पुस्तक को पढ़ कर [illegible] शिक्षा के बुरे-भले परिणामों को जान लेना चाहिये।

[illegible]—स्वामी हरिप्रसाद जी "वैदिक मुनि" वेद-विषय के [illegible] विचार हैं। आपने वेद विषय पर स्वतंत्र रीति से विचार [illegible] है। इस विचार का फलस्वरूप अब आपने उस विषय पर [illegible] आरम्भ किया है। आपकी स्वतंत्र विचारशैली देख कर [illegible] ने आपके विरुद्ध भी शोला मचाया है। यह हम [illegible] ही रही है कि जहां किसी के स्वतंत्र विचार [illegible] उसके विरुद्ध कोलाहल मचाना शुरू किया। सच [illegible] के हमें और क्या कह सकते हैं? वेद-[illegible] स्वामीजी तीन भागों में समाप्त करेंगे। यह [illegible] प्रकार की जानकारी से भरा हुआ एक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। विरोध तो हम इस विषय में नहीं [illegible], पर हां, जो महाशय वेद के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहते हों उन्हें इस ग्रन्थ का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। मूल्य १।) और मिलने का पता पं० [illegible] आचार्य [illegible]-ब्रह्मचर्याश्रम [illegible], [illegible]।

प्रेमपुष्पांजलि—[illegible]। मूल्य [illegible]। प्रेम के विषय में कविताओं का संग्रह बड़े [illegible] से किया है। इसके सम्पादक प्रेम के बड़े पुजारी हैं। प्रेम का बड़ा [illegible] किया है। यह आनन्द की बात है। पुस्तक [illegible] है। [illegible] एक तथा प्रकाशक—कुमार देवेन्द्रप्रसाद जी [illegible]।

[illegible]—पूर्वार्ध, मूल्य ।=), [illegible] नाटकमण्डली के बड़े [illegible] हैं, और [illegible] के पद्य लिखने में आपने बड़ा [illegible] है। [illegible] देशहित का [illegible] की रचना की है और [illegible] खेला भी गया है। [illegible]।

[illegible]—पुस्तक [illegible] के लिए बड़े [illegible] है। [illegible] के लेखक को [illegible] को देखते हुए [illegible] है। लेखक [illegible] [illegible], [illegible], ए० ई० से [illegible] है।

[illegible]—इस पुस्तक के लेखक [illegible] एम० ए० [illegible] ([illegible]), [illegible] हम [illegible] हैं। [illegible]।

आपकी यह पुस्तक बीजगणित के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसका प्रचार स्कूल और कालेजों में होना चाहिए। मूल्य ।=) उपर्युक्त प्रोफेसरसाहब के ही पते पर मिलेगी।

भारतीय शासनपद्धति—द्वितीय भाग। पं० अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी की "राजनीतिरत्नमाला" का दूसरा रत्न यह निकल आया। इस भाग में भारतीय सेना, स्थानिकस्वराज्य, व्यवस्थापिका सभाएं, प्रिवीकौंसिल और कुछ परिशिष्ट, इतने विषय आये हैं। पुस्तक राजनीति के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ॥=) और मिलने का पताः—पं० प्रयागनारायण वाजपेयी, ३३ श्रीनाथलेन, सुकराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

पं० सीतारामशास्त्री की तीन पुस्तकें—पंडित जी श्रीहरियाना शेखावाटी ब्रह्मचर्याश्रम भिवानी (पंजाब) के संस्थापक विद्वान् महाशय हैं। आपने तीन पुस्तकें कृपापूर्वक भेजी हैं, (१) हिन्दी-निरुक्त नैघण्टुक कांड। वेदार्थ जानने के लिए निरुक्त का महत्व सर्वमान्य है। हिन्दी में उक्त भाष्य कर के पंडित जी ने बड़ा उपकार किया। पंजाब की सरकार ने इसके लिए आपको २००) पुरस्कार दिया है। मूल्य १॥।=); (२) हिन्दी-निरुक्त-भूमिका पूर्वभाग-निरुक्तविषयक व्याख्यान अच्छा है। मूल्य ।=), (३) हिन्दीसांख्यदर्शन-ईश्वरकृष्णीय सांख्यकारिका मूल ग्रन्थसहित। व्याख्या सुन्दर है। मूल्य ।); ब्रह्मचर्याश्रम का कार्य विवरण भी हमें मिला है, जिससे जान पड़ता है कि उक्त ब्रह्मचर्याश्रम विद्याप्रचार का अच्छा कार्य कर रहा है; श्रीमानों की सहायता का पात्र है। व्याकरणतीर्थ पं० माणिक्यचन्द्र जोशी द्वितीयाध्यापक संस्कृतविभाग के द्वारा उपर्युक्त ब्रह्मचर्याश्रम के पते पर पुस्तकें मिलेंगी।

मासिक-साहित्य।

श्रीकमला—पं० जीवानन्द शर्मा जी काव्यतीर्थ, कई वर्ष पूर्व, कलकत्ते से "कमला" नामक मासिकपत्रिका निकालते थे। अब उसी "कमला" को आपने "श्री" के साथ "बिहार पंजाब प्रेस, भागलपुर" से निकाला है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब इस कमला में पहले से अधिक "श्री" अर्थात् शोभा आ गई है। दूसरे भाग की प्रथम संख्या जो हमारे सामने है, इसमें दो रंगीन सुन्दर चित्र, तथा कई सादे भावपूर्ण चित्र हैं। लेख और कविताएं भी उपयोगी तथा मनोरंजक हैं। वार्षिक मूल्य ३) है। इस पत्रिका का प्रचार कर के पंडितजी का उत्साह बढ़ाना चाहिए।

शिक्षणकौमुदी—सम्पादक पं० कृष्ण केशव शिंगवेकर, जबलपुर। वार्षिक मूल्य २)। शिक्षा-विषयक चर्चा करनेवाला कोई पत्र हिन्दी में अच्छा नहीं था। सो शिंगवेकर महाशय ने यह पत्रिका निकाल कर हिन्दी भाषा का बड़ा उपकार किया है। इसमें सर्वसाधारण शिक्षा के तथा शालोपयोगी सचित्र लेख निकलते हैं। छपाई सफाई भी अच्छी है। पत्रिका आश्रय देने योग्य है। शिक्षाप्रेमियों को इसका प्रचार अवश्य बढ़ाना चाहिए।

कन्यामनोरंजन—सम्पादक पं० ओंकारनाथ वाजपेयी। देश में कन्याओं की शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है। ऐसी दशा में यह मासिक पत्र कन्याओं में मनोरंजकता के साथ विविध बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इसमें छोटी छोटी उ... ताएं, कौतूहलवर्द्धक खेल और तेल, पहेलियां इत्यादि हैं। एक हाफटोन चित्र भी प्रति मास रहता है। वा... मिलने का पता—ओंकार-प्रेस, इलाहाबाद। प्रत्ये... अपनी पढ़ी-लिखी कन्या के लिए यह पत्र मंगाना ...

विज्ञान—प्रयाग की विज्ञान परिषद का मुखपत्र। वार्षि... अनेक विद्वानों के वैज्ञानिक लेख विपुलता से प्र... निकलते हैं। वैज्ञानिक गहन विषयों को सरल री... द्वारा समझाने का प्रयत्न किया जाता है। उक्त प... प्रारम्भिक वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार करने के ... माला भी निकलती है। परिषद का प्रयत्न सराहन... परिषद के कार्यों की सफलता हृदय से चाहते हैं।

ज्ञानशक्ति—सम्पादक पं० शिवकुमार शास्त्री, गो... मूल्य २॥)। पत्रिका सचित्र है। लेख और कवित... एक उपन्यास भी क्रमशः निकलता है। मनोरंजकता... प्रवृत्ति है। वार्षिक मूल्य अन्य पत्रिकाओं को देख... हम इस पत्रिका की उन्नति के अभिलाषी हैं।

'प्रचारक' की युक्ति।

हमने अपने पिछले अंक में वर्णव्यवस्था पर ... दिखलाया था कि 'स्वभाव' क्या है। सहयोगी ... 'स्वभाव' को केवल आदत या टेव मानता है ... 'प्रकृति' के अर्थ में लेते हैं। सहयोगी ने अपने ता... वाक्यों का विपर्यास करते हुए अपनी युक्ति इस प्रक...

"इसका संक्षिप्तार्थ यही है कि जो मनुष्य जैसा ... गया, वैसा ही रहेगा। अशोक पहले क्रूर था, पीछे ... वाल्मीकि पहले डाकू था, फिर महा कवि होगया ... से अधार्मिक और अधार्मिक से धार्मिक बनते ... विश्व क्षत्रिय से ब्राह्मण होगया, यह सब कुछ नहीं ... गिरा, फिर कोई आशा नहीं। जो विचार एक ... अगले जन्म में रहेंगे। जब वह फिर मरा तब ... स्थिर रहेंगे। फिर उन्हीं विचारों के साथ ... विचारों के साथ अगला जन्म लेगा। फिर धर्म... और समाजसंशोधन से क्या लाभ? मनुष्यजा... अन्धकार के सिवाय कुछ नहीं। क्या ऐसा दर्शन... ईश्वर की सृष्टि का संचालक हो सकता है, जि... और अभ्युदय की आशायें एकदम लुप्त हो जाँय?

हमने अपने नोट में सिर्फ 'स्वभाव' और पुन... दिखलाया था। बस असली विषय को तो सह... ने 'टच' नहीं किया; और यह "संक्षिप्तार्थ"— तोड़ मरोड़ कर निकाला है! इस अंक के "सम... चन" में अन्यत्र जो एक टिप्पणी इसी विषय ... आशा है, आपके भ्रम का निरास हो जायगा।